Impact Factor : 7.834

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा पटियाला, श्रीगंगानगर व नेपाल से प्रसारित
साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध का अंतर्राष्ट्रीय मासिक

ISSN : 2321-8037
May 2025
Volume 13, Issue 5

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

वर्तमान दौर के विमर्श

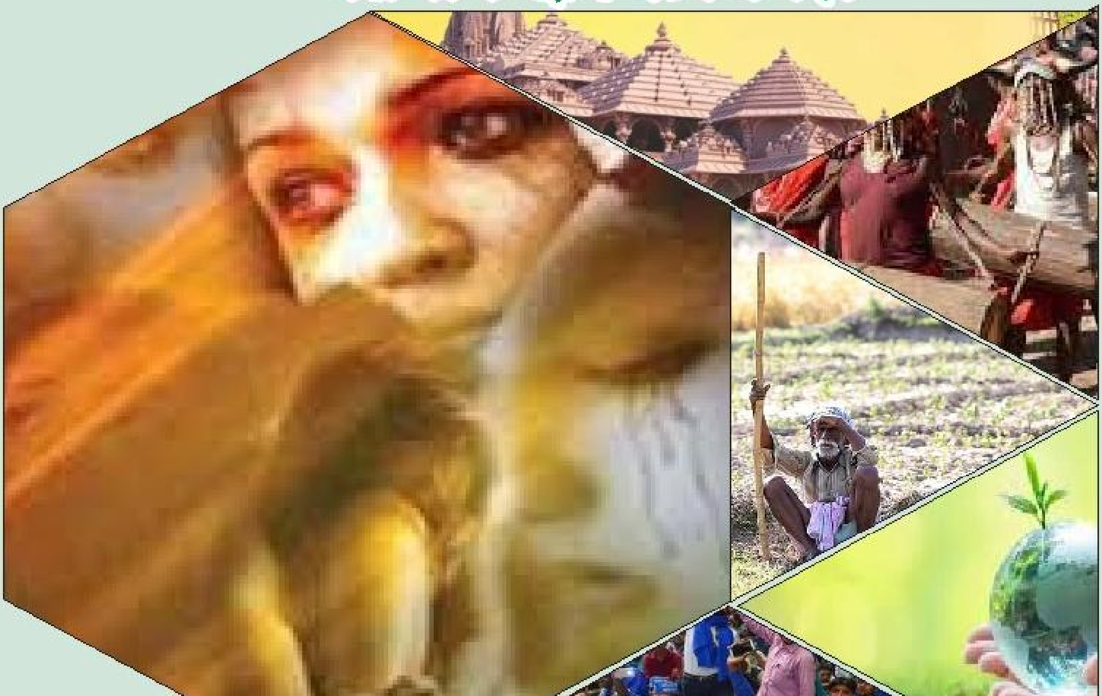

सम्पादक मण्डल :
डॉ. मीरा चौरसिया
सहायक प्रो. बंटी भोरिया
डॉ. गंगा

सम्पादक :
डॉ. रेखा सोनी

प्रधान सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

www.ginajournal.com

संस्थापक सम्पादिका :
स्मृति शेष
डॉ. विश्वकीर्ति

संस्थापक संरक्षक :
स्मृति शेष
श्री हरविन्द्र कमल चौधरी

वर्ष : 13 | अंक : 5 | मई : 2025 | आईएसएसएन : 2321-8037

सम्पादक :
डॉ. रेखा सोनी
शिक्षा विभाग, टांटिया वि.वि.,
श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

प्रधान सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
सचिव, गीना देवी शोध संस्थान,
भिवानी (हरियाणा)

विशेषांक सम्पादक :
श्रीमती बंटी, सहायक प्रोफेसर
प्राचार्या, केसीएम आर्मी एजुकेशन
कॉलेज, भिवानी (हरियाणा)

मार्गदर्शन :
डॉ. राजेन्द्र गोदारा
श्रीगंगानगर, राजस्थान।
डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
श्रीगंगानगर, राजस्थान।
डॉ. लक्ष्मी जोशी
त्रिभुवन वि.वि. काठमाण्डू।
डॉ. सृष्टि चौधरी
लेक्चरर, इलेक्ट्रानिक्स
एंड कम्युनिकेशन,
सरकारी पॉलिटेक्निक कॉलेज फॉर
गर्ल्स, पटियाला, पंजाब।
श्री श्रेष्ठ चौधरी,
सीनियर मैनेजर,
स्टेट बैंक ऑफ इंडिया,
साहिबजादा अजित सिंह नगर,
मोहाली, पंजाब।

कानूनी सलाहकार :
डॉ. रामफल दलाल एडवोकेट,
श्रीमती रूपिन्द्र कौर, एडवोकेट

सलाहाकार समिति (Advisory Committee)

डॉ. सुलक्षणा अहलावत
अंग्रेजी प्रवक्ता, शिक्षा विभाग
नूंह (हरियाणा)

डॉ. अरूणा अंचल
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. सुशीला
चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी।

डॉ. अल्पना शर्मा
आईएएसई विश्वविद्यालय सरदारशहर

डॉ. विजय महादेव गाडे
बाबा साहेब चितले महाविद्यालय
भिलवडी (महाराष्ट्र)

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कॉलेज
धारवाड़ (कर्नाटक)

डॉ. रीना कुमारी
दशमेश गर्ल्स कॉलेज,
अल्ला बक्श, मुकेरिया, पंजाब।

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

श्री हेमराज न्यौपाने
नेपाल।

डॉ. ममता तनेजा
अबोहर, पंजाब।

डॉ. प्रियंका खंडेलवाल
बराण, राजस्थान।

डॉ. संदीप
ओम विश्वविद्यालय, हिसार।

प्रो. मधुबाला
राजकीय महिला महाविद्यालय, हिसार।

डॉ. पीयूष कुमार द्विवेदी
जगद्गुरू रामभद्राचार्य दिव्यांग
विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उत्तरप्रदेश

डॉ. हवासिंह ढाका
राजकीय महाविद्यालय, हिन्दुमलकोट,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत प्रवक्ता, शिक्षा विभाग हरियाणा

डॉ. राजेश शर्मा
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मोहिनी दहिया
माती जीतोजी कन्या महाविद्यालय,
सूरतगढ़ (राजस्थान)

डॉ. मुद्दस्सिर अहमद भट्ट
हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर, कश्मीर

डॉ. सीहेच वी. महालक्ष्मी
सीहेच एसडीएसटी थेरेसा महिला
महाविद्यालय, एलुरू, आंध्र प्रदेश

डॉ. मोरवे रोशन के.
यूनाईटिड किंगडम।

डॉ. अनुपमा, पूर्व प्रोफेसर,
अंकारा विश्वविद्यालय, अंकारा, टर्की

डॉ. आर.के विश्वास
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

प्रकाशक, स्वामी एवं मुद्रक डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, पुराना बस स्टैण्ड रोड़, नया बाजार, भिवानी से छपवाकर 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से जारी किया।

৻ संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

(Journal of Literature, Arts, Science, Commerece, Culture, Humanities and Social Sciences)

सचिव :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : grngobwn@gmail.com
मो. 09466532152

संगम मासिक पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं/लेखों की मौलिकता का दायित्त्व स्वयं रचनाकारों/लेखकों का है। उससे सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। किसी भी प्रकार का विवाद होने पर न्यायक्षेत्र केवल भिवानी (हरियाणा) होगा। सम्पादन और प्रबंधन के सभी पद पूर्ण रूप से अवैतनिक हैं।

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1300/-

<u>*Disclaimer :*</u>

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

Impact Factor : 7.834
ISSN : 2321-8037
Gina Shodh
SANGAM
Peer Reviewed & Refereed Research Journal
International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)
Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

तालिका– 2

शैक्षणिक/ शोध अंक की गणना हेतु विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षकों के लिए कार्यप्रणाली

(आकलन शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए, जैसेः प्रकाशनों की प्रति, परियोजना स्वीकृति पत्र, विश्वविद्यालय द्वारा जारी उपयोग तथा पूर्णता प्रमाण पत्र, पेटेंट दर्ज कराने संबंधी अभिस्वीकृति और स्वीकृति पत्र, विद्यार्थियों को पीएचडी उपाधि प्रदान किए जाने संबंधी पत्र इत्यादि।)

क्रम सं.	शैक्षणिक / शोध क्रियाकलाप	विज्ञान/ अभियांत्रिकी/ कृषि/चिकित्सा/ पशु–चिकित्सा विज्ञान संकाय	भाषा/ मानविकी/कला/ सामाजिक विज्ञान/ पुस्तकालय/शिक्षा/ शारीरिक शिक्षा/ वाणिज्य / प्रबंधन तथा अन्य संबंधित विधाएं
1	समकक्ष व्यक्ति समीक्षित अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सूचीबद्ध पत्रों में शोध पत्र	08 प्रति पत्र	10 प्रति पत्र
2	प्रकाशन (शोध पत्रों के अतिरिक्त)		
	(क) लिखी गई पुस्तकें, जिन्हें निम्नवत के द्वारा प्रकाशित किया गया :		
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक	12	12
	राष्ट्रीय प्रकाशक	10	10
	संपादित पुस्तक में अध्याय	05	05
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	10	10
	राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	08	08
	(ख) योग्य संकाय द्वारा भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद कार्य		
	अध्याय अथवा शोध पत्र	03	03
	पुस्तक	08	08
3	आईसीटी के माध्यम से शिक्षण ज्ञान– अर्जन, शिक्षण शास्त्र और विषयवस्तु का सृजन तथा नए और नवोन्मेषी पाठ्यक्रमों और पाठ्यचर्या का विकास		
	(क) नवोन्मेषी अध्यापन का विकास	05	05
	(ख) नई पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों को तैयार करना	02 प्रति पाठ्यचर्या/ पाठ्यक्रम	02 प्रति पाठ्यचर्या/ पाठ्यक्रम

अनुक्रमाणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	बंटी, डॉ. गंगा	07–07
2.	**Women and the Fight for Equal Rights : Past, Present and Future**	**Mrs. Banti**	**11-16**
3.	**Online Harassment and Cyber Safety : Protecting Women in Digital Spaces**	**Dr. Ganga, Dr. Priya Mittal**	**17-23**
4.	रजत रानी मीनू की कविताओं में दलित आत्मसंघर्ष की झलक	रजिला ओ. पि	24–26
5.	**Breeding Strategies for Developing Climate-Resilient Ornamental Plants in Etah**	**Bhawna Kumari**	**27-37**
6.	निर्मला पुतुल के काव्य में चित्रित आदिवासी समाज की समस्याएँ	डॉ० पूनम सिंह	38–45
7.	एक राष्ट्र, एक भाषा बनाम भाषाई विविधता	डॉ. अंकुर श्रीवास्तव	46–49
8.	वृद्धावस्था की त्रासदी और संघर्ष का यथार्थ चित्रण करती हिंदी कहानियां	डॉ. मालोजी अर्जुन जगताप	50–55
9.	भारतीय संविधान और भाषाई नीतियाँ – द्वेषपूर्ण भाषा एक चुनौती के रूप में	**Abhinesh Kumar Jain, Dr. Tai Chourasiya**	**56-58**
10.	गीतांजलि श्री की कहानी 'भीतराग' के सन्दर्भ में वृद्ध विमर्श	अनामिका	59–61
11.	मृदुला सिन्हा के उपन्यासों में विकलांगता और उनकी मनःस्थिति	कीर्तिका दुबे	62–64
12.	कृषक जीवन का सामाजिक सन्दर्भ	सुजीत कुमार राय	65–69
13.	अमरकांत की कहानियों में अभिव्यक्त नारी जीवन के विविध आयाम	चंचल कौशिक	70–73
14.	**CSR Communication and Tribal Empowerment in Chhattisgarh : A District-Level Study of Dhamtari, Kanker and Bastar**	**Sayed Amir Mustafa Hashmi, Dr. Ashutosh Mandavi, Dr. Nripendra Kumar Sharma**	**74-86**
15.	नारी विमर्श	डॉ. राजू हमीरसिंह देसाई	87–90
16.	पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी का द्वंद्व	गोस्वामी सोनीबाला, डॉ रेखा श्रीवास्तव	91–95

17.	प्रेमचंद के साहित्य में किसान विमर्श	डॉ. सुनीता राठौर	96-100
18.	अनुसूचित जनजाति में अंधविश्वास, स्वास्थ्य समस्याएं और शिक्षा की स्थिति एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समस्या-समाधान हेतु प्रयास	डॉ. विजय बळीराम गावंडे	101-106
19.	एक दलित नारी की आत्मकथा : दोहरा अभिशाप	डॉ. कविता वी. राजन	107-112
20.	पर्यावरण संरक्षण और विकास	डॉ. रमेश काशीराम शेंडे	113-116
21.	हिन्दी दलित कहानियों में आर्थिक समस्याएँ	डॉ. पारुल सिंह	117-120
22.	राही मासूम रजा का उपन्यास "कटरा बी आर्जू" उपन्यास में राजनीतिक व्यंग्य	डॉ० किंजलबहेन जगदीशचन्द्र दरजी	121-126
23.	किसानों की कृषि, प्राकृतिक और सामाजिक स्थिति	डॉ. विनोद श्रीराम जाधव	127-131
24.	**Literary Translation as a Genre from Bhartiya Perspective**	**Dr Nimisha C Prajapati, Dr Falguni P Desai**	**132-144**
25.	ग्रामीण परिवारों में महिलाओं की बदलती भूमिका : उपलब्धियां तथा चुनौतियां (मध्य प्रदेश पंचायतीराज के विशेष संदर्भ में)	डॉ. नियाज अहमद अन्सारी	145-150
26.	वर्तमान दौर के विमर्श : नारी विमर्श एवं भारतीय राजनीति	डॉ. रमेश राम	151-155
27.	संजीव और रणेंद्र के उपन्यासों मे चित्रित पर्यावरण चेतना	निर्मला. ए	156-160
28.	'एक ब्रेक के बाद' और 'मुन्नी मोबाइल' पर भूमंडलीकरण के प्रभावों का अध्ययन	प्रणीत कुमार इन्द्रगुरू	161-165
29.	मातृभाषा में शिक्षा : अवसर एवं चुनौतियां	हर्षा साहू	166-169
30.	आदिवासी विमर्श और साहित्य	रामकिशोर चीचाम	170-175
31.	समकालीन हिंदी उपन्यासों में उपेक्षित किन्नर समुदाय	अम्बरा देवी	176-179
32.	वर्तमान दौर के सन्दर्भ में संस्कृत साहित्य के नाटक अभिज्ञानशाकुंतलम् में पर्यावरण विमर्श	चन्द्र प्रकाश पथिक	180-184
33.	चंद्रकिशोर जायसवाल की कहानियाँ : किसान अस्मिता का प्रश्न	रितु शर्मा	185-188
34.	विकलांग विमर्श एवं साहित्य	शिवेन्द्र कुमार, डॉ. शांत कुमार चतुर्वेदी	189-193
35.	'अस्तित्व' उपन्यास में चित्रित किन्नर और नारी विमर्श का मूल्यांकन	भारती	194-198
36.	आदिवासी विमर्श : पहचान, संघर्ष और साहित्यिक अभिव्यक्ति	**Dr. Anupama**	**199-205**
37.	आदिवासी विमर्श अर्थ व अवधारणा	वानखेडे गणेश संतोष	206-210
38.	आदिवासी विमर्श : संस्कृति और परम्परा	डॉ. कुमारी प्रेमलता	211-215

39.	इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में दलित-विमर्श	शिवलाल अहिरवार, डॉ. घनश्याम भारती	216–220
40.	समकालीन कवि कुमार अंबुज की कविताओं में पर्यावरणीय संवेदना	निषा राफेल	221–228
41.	ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा "जूठन" में स्त्री का स्वरूप	सीमा कुमारी	229–233
42.	'झूठा सच्च' उपन्यास में नारी-विमर्श अधुनातन संदर्भ में	सरोज रानी	234–238
43.	दलित विमर्श के परिप्रेक्ष्य में 'शवयात्रा' कहानी	डॉ. दीपिका आर परमार	239–242
44.	हिंदी कहानी में किसान विमर्श	डॉ. मिशा शर्मा	243–246
45.	प्रवासी हिन्दी कहानियों में बिखरते भारतीय मूल्य	क्रिस्टी .पी. जेराल्ड	247–251
46.	भाषा से बाजार तक : क्षेत्रीय भाषाओं में स्टार्टअप और उद्यमिता की संभावनाएं	डॉ० प्रशान्त कुमार खरे	252–258
47.	राकेश कुमार सिंह की रचनाओं में आदिवासी जीवन यथार्थ : 'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास के संदर्भ में	हरिता कुमारी जे.	259–262
48.	वृद्ध विमर्श : कल, आज और कल	डॉ. रंजीता कटकवार	263–267
49.	संजीव की कहानियों में पारिस्थितिक संवेदना (चुनी हुई कहानियों के सन्दर्भ में)	ASWATHI. C. K.	268-272
50.	सविता सिंह की कविताओं में नारी का प्रतिरोधी स्वर	प्रवीणा. सी	273–277
51.	स्त्री विमर्श की विविध छवियाँ : समकालीन स्त्री कथाकारों की दृष्टि में	डॉ. पुष्पांजलि रंजन	278–281
52.	स्त्रीवादी चिंतनकार : अनामिका	डॉ. निशा साहू	282–285
53.	'हलवाहे का बेटा' उपन्यास में चित्रित नारी जीवन के विभिन्न आयाम	नंदा. एम. नायर	286–289
54.	भाषा शिक्षा और ज्ञान प्रणाली	Jaishri Gupta	290-292
55.	हिन्दी साहित्य में स्त्री चिन्तन की समस्याएँ	प्रियंका मिश्रा	293–297
56.	हिन्दी साहित्य : आदिवासी विमर्श एवं अवधारणा	डॉ. पूनम कुमारी	298–301
57.	Tale of Shashi Deshpande & Alice Walker on Feminism in their works	Priya	302-306
58.	Reframing Urban Waste Management in India : Integrating Environmental Discourse and Policy Innovation	Monika, Dr. Rupali Bhouradia	307-315
59.	सथ्यू और बेनेगल की फिल्मों में विभाजन पश्चात समस्याओं का वास्तविक अंकन	समीना नायकवडी	316–319
60.	किन्नर जीवन और भारतीय ऐतिहासिकता : एक झलक	उषाबेन परमार	320–324
61.	तुलसी विरचित रामचरितमानस में पर्यावरण विमर्श	डॉ. दिलीप सिंह राजपूत	325–331
62.	हिंदी कथा साहित्य में बाल यौन शोषण का चित्रण : बाल विमर्श के परिप्रेक्ष्य में	पारूल	332–335

63.	ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं में मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति	अंकित कुमार सरोज	336-343
64.	सुरेन्द्र वर्मा के साहित्य में स्त्री के बदलते स्वरूप	सोनिया	344-348
65.	हिन्दी उपन्यासों में किसान विमर्श	सागर स. गेंड	349-352
66.	आदिवासी जीवन का दस्तावेज "कलम की तलवारें" : 'आदिवासी विमर्श'	डॉ. सुपर्णा मुखर्जी	353-362
67.	दलित स्त्री आत्मकथा में अभिव्यक्त स्त्री जीवन में पुरूषों की सहभागिता विशेष संदर्भ : 'टुकड़ा-टुकड़ा जीवन'	आकांक्षा	363-369
68.	वर्तमान दौर के विमर्श : महिला विमर्श के संदर्भ में	डॉ. कंचन आर्या	370-376
69.	पर्यावरण संकट और मानवीय अस्तित्व	मन्ना राम पटेल	377-382
70.	वर्तमान दौर के विमर्श : समकालीन हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श	डॉ. रूपा आर्या	383-386
71.	राजकमल चौधरी के लेखन में व्यक्त स्त्री	स्नेहा. टी. एस	387-390
72.	'डूब' उपन्यास में कृषक जीवन की त्रासदी	डॉ. विक्रम बालकृष्ण वारंग	391-394
73.	साहित्यिक समानता प्रतिशत कम करने की पाँच सरल युक्तियां	डॉ. गौरव शर्मा	395-399
74.	जनपक्षधरता और कविता : केदारनाथ सिंह की कविताओंमें राजनीतिक संवेदना ('अकाल में सारस' काव्य संकलन के विशेष संदर्भ में)	मीनु नौषाद्	400-404
75.	जागृत नारी चेतना	सीमा सिंह	405-408
76.	**Cyber crimes against children through Social media : an Analysis.**	**Ms. Saba Nazneen, Dr.Tai Chourasiya**	**409-418**
77.	डिजिटल शिक्षा और क्षेत्रीय भाषाओं का भविष्य	नेहा राठौर	419-421
78.	प्रवासी साहित्य में नॉस्टेल्जिया की समस्या	डॉ. काकानि श्रीकृष्ण	422-424
79.	दलित विमर्श	सुभाष चंद्र वर्मा	425-428

संपादकीय :—

वर्तमान दौर के विमर्श : बहस, बौद्धिकता और बहुलता

हम आज एक ऐसे सामाजिक—सांस्कृतिक मोड़ पर खड़े हैं, जहाँ विचार, असहमति, पहचान, और अस्मिता के प्रश्न नए सिरे से गूंज रहे हैं। साहित्य, समाज, राजनीति, संस्कृति, मीडिया, लिंग, जाति, धर्म और पर्यावरण जैसे सभी क्षेत्रों में गहरे विमर्श चल रहे हैं, जो हमारी चेतना को लगातार झकझोर रहे हैं। ऐसे समय में '"संगम"' का यह विशेषांक '"वर्तमान दौर के विमर्श"' को केंद्र में रखकर प्रकाशित किया जा रहा है : एक ऐसी कोशिश जिसमें हम विचारों, मतों और दृष्टिकोणों की विविधता को समाहित करते हुए एक रचनात्मक संवाद की जमीन तैयार करना चाहते हैं।

21वीं सदी की यह पहली तिमाही ज्ञान—विस्फोट और सूचना—प्रवाह की ऐसी बाढ़ लेकर आई है, जिसने पारंपरिक स्थापनाओं को चुनौती दी है। एक ओर 'पितृसत्ता', 'ब्राह्मणवाद', 'पूंजीवाद', 'भाषाई वर्चस्व', 'धार्मिक कट्टरता' जैसे पुराने विमर्शों की आलोचना पुनः उभरकर सामने आई है, तो दूसरी ओर 'डिजिटल लोकतंत्र', 'अस्मिता की राजनीति', 'पर्यावरणीय न्याय', 'शारीरिक स्वतंत्रता' जैसे नए विमर्श भी मुख्यधारा में प्रवेश कर चुके हैं। यह समय केवल देखने या सुनने का नहीं, समझने और समझाने का है।

इस विशेषांक में जिन लेखों, शोध—पत्रों और आलोचनात्मक टिप्पणियों को स्थान दिया गया है, वे न केवल समकालीन विमर्शों को लेकर सजग हैं, बल्कि उनमें अपने—अपने स्तर पर विचारधाराओं, अनुभवों और यथार्थ का संयोजन भी दिखाई देता है। 'स्त्री—विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, पर्यावरणीय विमर्श, बाल विमर्श, यौनिकता और क्वीयर विमर्श', जैसे क्षेत्र अब साहित्य और आलोचना का सीमांत नहीं रह गए हैं, बल्कि केंद्रीय विमर्श के रूप में उभरे हैं।

'स्त्री—विमर्श' अब केवल नारी की पीड़ा या शोषण का विवरण नहीं है, बल्कि उसकी पहचान, अधिकार, हमदबल और आत्मनिर्भरता की अभिव्यक्ति है। लेखिकाएं अब 'अबला' नहीं, बल्कि 'स्वयं निर्णयकर्ता' की भूमिका में हैं।

'दलित और आदिवासी विमर्श' आज भी भारतीय समाज की जटिल सच्चाई को उजागर कर रहे हैं। चाहे वह ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा हो, या हंसदा सोवेंद्र शेखर की कहानियाँ – ये रचनाएँ हाशिए की आवाजों को समाज के केंद्र तक पहुंचाने का काम कर रही हैं।

'पर्यावरणीय विमर्श' अब साहित्य की साज—सज्जा नहीं, जीवन की अनिवार्यता है। जलवायु परिवर्तन, जल संकट, जंगलों का कटाव और पारिस्थितिकीय असंतुलन – ये सब साहित्यकार की चिंता में भी परिलक्षित होते हैं। पर्यावरण अब केवल वृक्षों और नदियों का सवाल नहीं, बल्कि जीवन की निरंतरता और न्याय का प्रश्न है।

'डिजिटल विमर्श' ने भाषा, समाज और मनुष्य की अंतरंगता को नई चुनौतियाँ दी हैं। आभासी दुनिया में बनते–बिगड़ते रिश्ते, पहचान की पुनर्रचना, तथा Fake News का जाल – ये सब आधुनिक चेतना के संकट को रेखांकित करते हैं।

इस विशेषांक में कुछ लेखकों ने 'राजनीतिक विमर्श' को भी रेखांकित किया है – जहाँ सत्ता, विचारधारा, संविधान, और लोकतंत्र की जटिलताओं को साहित्य के दर्पण में देखा गया है। साहित्य अब केवल सौंदर्यबोध का वाहक नहीं, बल्कि सक्रिय सामाजिक हस्तक्षेप का माध्यम है।

साथ ही, हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि विमर्श का मतलब केवल विरोध नहीं होता, वह 'संवाद, ''साझेदारी' और 'संवेदनशीलता' का भी नाम है। यदि किसी विमर्श में केवल आक्रोश है और आत्मालोचन नहीं, तो वह एकांगी हो जाता है। यही कारण है कि 'संगम' इस विशेषांक में विमर्शों की बहुलता को बनाए रखने की कोशिश करता है – हम हर विचारधारा के साथ निष्पक्ष रूप से खड़े होते हैं, लेकिन किसी अन्याय के साथ नहीं।

आज जब समाज ध्रुवीकरण, राजनीतिक जड़ता, और सामाजिक असंवेदनशीलता की ओर बढ़ रहा है, तब ऐसे विमर्श जरूरी हैं जो समाज को पुनः सोचने की राह दिखाएं। हमारा यह विशेषांक इसी दिशा में एक विनम्र प्रयास है – संवाद और आलोचना की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए।

इस अंक के निर्माण में योगदान देने वाले सभी लेखकों, समीक्षकों, शोधार्थियों और पाठकों का हम हृदय से आभार प्रकट करते हैं। ''गीना शोध संगम'' हमेशा से विविध दृष्टिकोणों का मंच रहा है, और यह विशेषांक उस परंपरा को और अधिक व्यापकता प्रदान करता है।

'संपादक
(वर्तमान विमर्श विशेषांक)

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 11-16

Women and the Fight for Equal Rights : Past, Present and Future

Mrs. Banti
Asstt. Prof., KCM Army College of Education Tigrana Mor, Bhiwani

Abstract :

The struggle for women's rights has been a long and arduous journey, spanning centuries and continents. Over decades and continents, the fight for women's rights has been a protracted and difficult one. Women have relentlessly battled for equality in the political, economic, and social arenas since the beginning of feminist movements and continue to do so now. This essay looks at how women's rights have changed over time, how gender equality stands today, and what chances and difficulties lie ahead. Through an examination of significant turning points, enduring disparities, and nascent feminist groups, this study underscores the continued need to promote women's rights in the twenty-first century.

Keywords : Women's rights, feminism, gender equality, suffrage, pay gap, intersectionality

Introduction :

The fight for women's equal rights is one of the most enduring and transformative social justice movements in history. For centuries, women across the globe have challenged oppressive systems, demanding recognition of their fundamental human rights—political participation, economic independence, bodily autonomy, and freedom from violence. From the suffragettes of the 19th century to the digital activists of today, women's relentless advocacy has reshaped laws, cultures, and societal norms. Yet, despite significant progress, gender inequality persists in various forms, revealing that the struggle is far from over.

One of the biggest and most continuous societal changes in human history is the fight for women's rights. This movement, which has spanned decades and continents, has reshaped legislative frameworks, cultural norms, and worldwide conceptions of gender equality while challenging long-standing patriarchal regimes. Women's unrelenting quest for equality has profoundly changed cultures all over the world, from Mary Wollstonecraft's early feminist works to modern digital activism like

the #MeToo movement (Freedman, 2002). The ongoing urgency of this battle is highlighted by the World Economic Forum's 2023 Global Gender Gap Report, which shows that at present progress rates, real gender parity is still almost 131 years away (WEF, 2023).

The struggle for women's rights represents one of humanity's most profound and ongoing social transformations. Spanning centuries and continents, this movement has challenged deeply entrenched patriarchal systems while reshaping legal frameworks, cultural norms, and global understandings of gender equality. From the early feminist writings of Mary Wollstonecraft to contemporary digital activism like the #MeToo movement, women's relentless pursuit of equality has fundamentally altered societies worldwide (Freedman, 2002). Yet, as the World Economic Forum's 2023 Global Gender Gap Report indicates, at current progress rates, true gender parity remains approximately 131 years away, underscoring the continued urgency of this fight (WEF, 2023).

Despite notable successes, such as nearly universal suffrage, improved access to education, and more robust legal safeguards, ongoing difficulties highlight how unfinished this revolution is. Globally, women only hold 26.5% of parliamentary seats (IPU, 2023), earn 77 cents for every dollar earned by men (ILO, 2022), and experience shockingly high rates of violence (WHO, 2021). For underprivileged women, these differences are exacerbated, illustrating how systemic injustices change rather than go away (Davis, 2016).

The present fight against persistent disparities, the previous struggles that established fundamental rights, and the future paths towards real equity are the three crucial aspects through which this study analyses the women's rights movement By analysing historical precedents, contemporary data, and emerging feminist strategies, this study argues that while legal equality has largely been achieved in many nations, substantive equality remains elusive—requiring sustained, innovative activism for genuine transformation.

Historical Struggles for Women's Rights :

The fight for women's rights has evolved through centuries of activism, resistance, and gradual progress. Key historical phases include :

1. **Early Resistance (Pre-19th Century)**

- Women in ancient societies (e.g., Greece, Rome) faced legal subjugation but some, like Cleopatra and Hypatia, broke barriers.
- Medieval and Renaissance women (e.g., Christine de Pizan) challenged gender norms through writing and education.

2. **First-Wave Feminism (19th–Early 20th Century)**

- **Focus :** Legal personhood, suffrage, and education.

- **1848 :** Seneca Falls Convention (U.S.) demanded voting rights and equality.
- **1893 :** New Zealand became the first country to grant women suffrage.
- **1920 :** U.S. ratified the 19th Amendment (white women first; Black women faced ongoing disenfranchisement).

3. Second-Wave Feminism (1960s–1980s)

- **Focus :** Workplace equality, reproductive rights, and ending violence.
- **1963 :** U.S. Equal Pay Act targeted wage discrimination.
- **1970s :** Global protests for abortion rights (e.g., Roe v. Wade, 1973).
- **1979 :** UN adopted CEDAW, an international bill of rights for women.

4. Global and Intersectional Movements

- Women in colonized nations (e.g., India, Algeria) tied gender justice to anti-imperial struggles.
- 1995 Beijing Conference set a global agenda for gender equality.

5. Persistent Gaps

- Early movements often excluded women of color, poor women, and LGBTQ+ voices.
- Legal victories did not always translate to cultural change.

The Present State of Women's Rights :

Women's rights have achieved previously unheard-of heights in the twenty-first century, but there are still major obstacles to overcome, exposing the nuanced realities of contemporary gender equality. Women currently have more legal rights than ever before; in the majority of countries, they are now essentially guaranteed access to education, the ability to vote, and protections at work (World Bank, 2023). Systemic disparities are still very much in place, though. Although the gender pay gap is closing, women still earn 20% less than men for similar work worldwide (ILO, 2023), and they are still disproportionately underrepresented in leadership positions, accounting for only 32% of senior management positions internationally (Grant Thornton, 2023). Despite improvements in political involvement, women still only hold 26.5% of parliamentary seats worldwide, and progress has stalled in many areas (IPU, 2023). One in three women may experience physical or sexual assault at some point in their lives, making violence against women a persistent crisis (WHO, 2021).

New types of harassment have emerged in the digital age, with women in public life being disproportionately targeted by online abuse (Amnesty International, 2022). The reversal of Roe v. Wade in the United States (2022) and restricted regulations in Poland and portions of Latin America (CRR, 2023) are examples of how reproductive rights, which were previously seen to be a settled issue in many Western nations, are now under new threats. With its emphasis on how discrimination is exacerbated by factors including race, class, sexual orientation, and disability, intersectional

feminism has grown in popularity. Black women in the United States, for instance, make only 63 cents for every dollar paid to white males (AAUW, 2023), and maternal death rates in marginalized groups continue to be startlingly high (UNFPA, 2023). These issues are typically exacerbated for women of color, LGBTQ+ women, and women in developing countries.

In spite of these obstacles, women's advocacy has become more creative and international. Social media has been used by movements like #MeToo, Ni Una Menos, and the Women's March to demand accountability, while grassroots groups are working to change laws pertaining to childcare, parental leave, and workplace justice. The present state of women's rights is thus a paradox of progress and pushback—a testament to how far feminism has come, yet a stark reminder of how far it must still go.

The Future of Women's Rights : Challenges and Opportunities

The fight for gender equality stands at a critical juncture, with emerging trends and persistent barriers shaping the future of women's rights. While significant progress has been made, the road ahead demands innovative strategies to address evolving challenges in an increasingly complex global landscape.

1. **Policy and Structural Reforms**

The next frontier of women's rights will require bold policy interventions to dismantle systemic barriers :

- **Closing the Gender Pay Gap :** Despite decades of advocacy, women still earn significantly less than men. Future efforts must enforce stricter pay transparency laws and corporate accountability (ILO, 2023).
- **Reproductive Rights Under Threat :** The reversal of Roe v. Wade (2022) signaled a global regression in reproductive autonomy. The future will require legal safeguards, expanded access to healthcare, and transnational solidarity (CRR, 2023).
- **Care Economy Revolution :** Investing in childcare, paid parental leave, and elderly care is essential to redistribute unpaid labor—a major driver of gender inequality (OECD, 2023).

2. **Technology: A Double-Edged Sword**

The digital age presents both opportunities and risks for women's rights :

- **AI and Algorithmic Bias :** Without regulation, AI hiring tools and financial algorithms may reinforce gender discrimination. Feminist tech activists are pushing for ethical AI frameworks (UN Women, 2023).
- **Online Harassment :** Cyberviolence silences women in politics, journalism, and public life. Future solutions must include stronger platform moderation and legal consequences for digital

abuse (Amnesty, 2022).

- **Digital Feminism :** Social media will continue to amplify global movements, from #MeToo to climate justice campaigns led by young activists.

3. **Intersectionality as the Path Forward**

The feminism of the future must be inclusive, intergenerational, and global :

- **Race, Class, and Disability :** Marginalized women face compounded barriers. Policies must address overlapping discrimination in healthcare, wages, and political representation (Crenshaw, 2023).
- **Global South Leadership :** Women in developing nations are pioneering climate resilience and economic justice models that richer countries can learn from (UNFPA, 2023).
- **Men as Allies :** Engaging men in caregiving and advocacy will be crucial to dismantle patriarchal norms (HeForShe, 2023).

4. **Emerging Threats and Resistance**

- **Anti-Gender Movements :** Right-wing backlash seeks to roll back women's rights worldwide, from abortion bans to attacks on LGBTQ+ communities (Human Rights Watch, 2023).
- **Economic Instability :** Recessions and automation disproportionately impact women's jobs, requiring reskilling initiatives and social safety nets (World Bank, 2023).

5. **Reasons for Hope**

- **Youth Activism :** Gen Z feminists are pushing for inclusive, tech-savvy change.
- **Political Representation :** More women than ever hold office, shifting policy agendas (IPU, 2023).
- **Corporate Accountability :** Investors now demand gender equity in leadership, forcing companies to act (Bloomberg, 2023).

Conclusion :

Despite being one of the most revolutionary social movements in history, the fight for women's rights is still unfinished. Every generation of women has pushed the boundaries of equality, from the suffragettes who battled for the right to vote to the activists fighting against algorithmic bias and reproductive injustice today. The ongoing gender wage gap, political underrepresentation, and challenges to bodily autonomy around the world demonstrate that legal rights by themselves cannot ensure true fairness, even as we celebrate hard-won triumphs like access to education and protections in the workplace. An intersectional approach, which acknowledges how prejudice is exacerbated by race, class, sexual orientation, and disability, is necessary for the future. It calls for governments to invest in care infrastructure, men to share authority in homes and boardrooms, and technology to be used

for justice rather than tyranny. Most importantly, it requires the consistent efforts of younger generations who see that feminism is about creating an equal opportunity for all genders to succeed rather than about supremacy.

As we stand on the shoulders of those who marched, protested and sacrificed before us, we must remember their lesson : rights once gained can be lost unless vigilantly protected. The fight continues—in courtrooms and classrooms, online and in the streets—until equality exists not just on paper, but in every pay check, every parliament, and every home across the globe. The past taught us change is possible; the present shows us how far we must still go; the future remains ours to shape.

References :

1. AAUW. (2023). The Simple Truth About the Gender Pay Gap.
2. Amnesty International. (2022). Toxic Twitter: Violence and Abuse Against Women Online.
3. Crenshaw, K. (1989). Demarginalizing the Intersection of Race and Sex. University of Chicago Legal Forum.
4. Davis, A. (2016). Freedom Is a Constant Struggle. Haymarket Books.
5. DuBois, E. (1998). Woman Suffrage and Women's Rights. NYU Press.
6. Evans, S. (2003). Tidal Wave: How Women Changed America at Century's End. Free Press.
7. Freedman, E. (2002). No Turning Back: The History of Feminism. Ballantine.
8. ILO. (2022). Global Wage Report. International Labour Organization.
9. IPU. (2023). Women in Parliament. Inter-Parliamentary Union.
10. Mendes, K., et al. (2019). Digital Feminist Activism. Oxford UP.
11. WHO. (2021). Violence Against Women Prevalence Estimates. World Health Organization.
12. WEF. (2023). Global Gender Gap Report. World Economic Forum.

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 17-23

Online Harassment and Cyber Safety : Protecting Women in Digital Spaces

Dr. Ganga
Assistant Professor, KCM Army College of Education, Tigrana Mor, Bhiwani
Dr. Priya Mittal
Assistant Professor, Darsh College of Education, Gohana, Sonepat

Abstract :

Women now have access to previously unheard-of possibilities for social interaction, work, and education thanks to the quick growth of digital platforms. But it has also made individuals more vulnerable to online harassment, such as hate speech, revenge porn, doxxing, and cyberstalking. This study assesses current legal frameworks and technical solutions targeted at improving cyber safety while looking at the frequency, manifestations, and psychological effects of online harassment against women. This study identifies the shortcomings in the present protective measures and offers practical suggestions for legislators, tech corporations, and civil society organizations using a mixed-method approach that includes surveys, case studies, and policy analysis. The results highlight how urgently better platform moderation, digital literacy initiatives, and more enforcement of cyber laws are needed to make online spaces safer for women.

Keywords : Cyber harassment, online safety, gender-based violence, digital rights, cyber laws

Introduction

The internet has become an essential part of modern life, offering women opportunities for education, entrepreneurship, and activism. However, digital spaces also mirror societal gender inequalities, making women frequent targets of harassment. With previously unheard-of chances for social participation, career advancement, and education, the digital revolution has completely changed how women interact with society. But the same platforms that give women more power have also turned into havens for harassment based on gender, endangering their freedom and safety. 73% of women have been victims of online abuse, according to a 2021 United Nations research (UN Women), with marginalized groups—such as journalists, women of colour, and LGBTQ+ people—being

particularly vulnerable (UN Women, 2021). This widespread problem perpetuates structural gender inequality in digital environments in addition to silencing women.

Cyberstalking, doxxing (malicious disclosure of personal information), non-consensual image uploading (often known as "revenge porn"), and misogynistic hate speech are some of the ways that online harassment of women can appear (Citron, 2014). According to Pew Research Centre research from 2023, 41% of American women under 35 had experienced serious online abuse, including sexual harassment and physical threats (Pew Research, 2023). There is a significant psychological cost; victims report experiencing worry, despair, and even ceasing to participate in online activities (Duggan, 2017). Additionally, women are deterred from seeking jobs in politics, technology, and journalism by the suppression of free speech (Amnesty International, 2018).

Legal and technological safeguards are still dispersed despite increased awareness. Although the General Data Protection Regulation (GDPR) of the European Union offers some remedies for privacy infractions, its implementation varies around the world (European Commission, 2020). Despite the deployment of AI moderation technologies, social media platforms frequently fall short in stopping abuse in a timely manner; in 2022, 65% of harassment reports to Twitter (now X) went unanswered (CCDH, 2022). This disparity emphasizes how urgently more robust laws, corporate responsibility, and digital literacy programs are needed to safeguard women online.

Forms of Online Harassment Against Women :

Online harassment of women can take many different forms, from subtle psychological manipulation to overt threats. Studies reveal that, in contrast to other forms of online abuse, gender-based cyberviolence exhibits unique patterns that frequently reflect patriarchal systems in the real world (Henry & Powell, 2018). The most common types are listed below:

- **Both doxxing and cyberstalking :** While doxxing is the malicious publication of private information (such as addresses and phone numbers) without consent, cyberstalking is the practice of ongoing, undesired online observation. According to a 2022 study by the Cyber Civil Rights Initiative (CCRI), 1 in 5 women who were harassed online reported engaging in stalker behaviours; the groups most at risk were journalists, activists, and public personalities (CCRI, 2022).
- **Non-Consensual Intimate Image Abuse (Revenge Porn) :** "Revenge porn" is the term used to describe the informal sharing of private photos, which is a type of online sexual violence. 93% of victims are female, and the U.S. Cyber Civil Rights Legal Project reports that serious mental health trauma and employment loss are among the long-term effects (Franks, 2020).
- **Gendered Hate Speech and Trolling :** Sexualized slurs, threats of rape, and misogynistic abuse are commonplace for women, particularly those from underprivileged communities. Black and

Muslim women politicians receive 34% more hate mail than their white colleagues, according to a 2023 Amnesty International survey (Amnesty, 2023).

- **False profiles and impersonation :** In order to slander, con, or degrade women, perpetrators fabricate accounts. According to a 2021 Facebook (Meta) analysis, 62% of impersonation cases targeted women, frequently resulting in financial theft and harm to one's reputation (Meta, 2021).
- **Workplace and Professional Harassment :** Women in male-dominated fields (e.g., tech, gaming, politics) face sexualized comments, exclusion, and career sabotage on platforms like LinkedIn, Slack, and email. The 2022 "Gamergate 2.0" controversy demonstrated how coordinated harassment campaigns can drive women out of industries (Chess & Shaw, 2022).
- **Psychological manipulation and gaslighting** : Abusers frequently employ coercive methods in private conversations or closed forums to cause women to question reality. This is linked by psychologists to higher victim rates of anxiety and PTSD (Dragiewicz et al., 2021).

Psychological and Societal Impacts :

Online harassment of women has significant and far-reaching psychological and societal effects, fostering a digital environment that upholds gender inequity. Studies regularly demonstrate that the effects of cyberbullying on women are more severe and long-lasting than those on men (Duggan, 2017). Compared to only 32% of men, 68% of women who suffered from severe online harassment reported having clinical anxiety symptoms, according to a 2023 study published in Cyberpsychology, Behavior, and Social Networking (March et al., 2023). Particularly for victims of non-consensual intimate image sharing, the psychological toll includes despair, PTSD, and in severe situations, suicidal thoughts (Citron, 2019). Because of these negative effects on mental health, one-third of women limit their online participation following experiences with harassment (Pew Research, 2021), so stifling their voices in digital spaces.

Equally concerning are the professional repercussions, which erect structural obstacles to women's economic engagement. According to 2022 Harvard Business Review research, 40% of women working in technology thought about quitting their employment after experiencing abuse online (Sobieraj et al., 2022). The difficulties faced by female journalists and politicians are especially severe; according to UNESCO (2022), 73% of female journalists have been victims of online violence, which makes many of them shy away from covering delicate subjects. According to Amnesty International (2020), this professional silencing has democratic ramifications since it fosters an atmosphere in which women's knowledge and viewpoints are often left out of public discussions.

Online harassment exacerbates and perpetuates gender inequality in society. Henry and Powell (2018) contend that harassment is used to uphold conventional gender hierarchies in digital settings,

which have emerged as new arenas for patriarchal control. Research indicates that Black, LGBTQ+, and disabled women experience intersectional harassment, which increases their vulnerability, making the effects even more severe for marginalized women (Noble, 2018). The UN Women (2021) report, which demonstrates a clear connection between online threats and offline gender-based violence, is perhaps the most alarming evidence of how the normalization of online abuse fuels violence in the real world. Together, these results show that online harassment is more than just a little annoyance; it is a serious obstacle to gender equality with real-world repercussions on one's mental health, career, and society.

Current Legal and Technological Protections :

Current legal and technological protections against online harassment of women remain fragmented and often inadequate, despite growing recognition of the issue. Internationally, frameworks like the UN Human Rights Council's 2018 resolution acknowledge online gender-based violence as a human rights violation, while regional efforts such as the EU's 2022 Digital Services Act attempt to hold platforms accountable for harmful content (UNHRC, 2018; European Commission, 2022). However, as Citron (2020) notes, national laws vary dramatically - from India's Section 66E addressing privacy violations to the UK's Online Safety Act - with enforcement gaps and low conviction rates persisting across jurisdictions. Technological solutions have similarly struggled to keep pace with the problem. While platforms employ AI moderation and reporting tools, studies by Amnesty International (2023) and the CCDH (2022) reveal systemic failures, including delayed responses to complaints and algorithmic biases that disproportionately affect women of color (Noble, 2018).

Emerging technologies like blockchain evidence preservation (Feminist Internet, 2022) and image detection systems (CCRI, 2023) show promise, but face challenges of accessibility and implementation. This patchwork of protections leaves significant gaps, particularly for marginalized women, underscoring the need for more cohesive, gender-sensitive approaches that bridge legal, technical and social solutions to effectively combat online harassment.

Recommendations for Safer Digital Spaces :

A multi-stakeholder strategy that incorporates societal change, technology innovation, business accountability, and legal reforms is required to effectively tackle online harassment against women. The following are practical suggestions for civil society, IT firms, and legislators:

1. **Strengthening Legal Protections**

- Global and National Legal Reforms
- Adopt Comprehensive Cyber Harassment Laws.
- Governments should pass gender-specific cybercrime laws that criminalize revenge porn,

doxxing, and gendered hate speech (UN Women, 2021).

- Example : The EU's proposed Directive on Gender-Based Violence includes online abuse under its scope (European Commission, 2023).
- **Improve Law Enforcement Training :**
- Police and judiciary need specialized training to handle cyber harassment cases, including digital evidence collection (Internet Freedom Foundation, 2023).
- **Cross-Border Cooperation :**
- Establish international treaties to prosecute transnational harassment, similar to the Budapest Convention on Cybercrime (Council of Europe, 2023).
- Victim-Centric Legal Support
- **Free Legal Aid Hotlines :**
- Governments and NGOs should fund 24/7 legal support for victims (e.g., Cyber Civil Rights Initiative's helpline).
- **Expedited Court Processes :**
- Create fast-track courts for cyber harassment cases to reduce case backlogs (India's proposed Digital Protection Courts, 2023).

2. Tech Industry Accountability :

- Platform-Level Changes
- Transparent Content Moderation:
- Require platforms to publish quarterly transparency reports on harassment complaints and actions taken (inspired by Meta's Oversight Board).
- **Real-Time Response Systems :**
- Implement AI-driven emergency response tools for high-risk cases (e.g., Instagram's "StopNCII" for revenge porn prevention).
- Algorithmic Fairness
- **Audit AI for Gender/Race Bias :**
- Independent audits of content moderation algorithms to prevent disproportionate censorship of marginalized voices (Noble, 2018).
- User-Controlled Safety Features:
- Allow women to customize filters (e.g., block abusive keywords, restrict DMs from strangers).

3. Digital Literacy and Empowerment :

- Education Programs
- School Curricula on Digital Safety :

- Teach cyber hygiene, privacy settings, and reporting tools from an early age (UNICEF's Digital Citizenship Curriculum).
- **Workshops for At-Risk Groups :**
- Targeted training for female journalists, activists, and politicians on securing online presence (International Women's Media Foundation, 2023).
- Counter-Disinformation Campaigns
- **Public Awareness on Deepfakes :**
- Partner with media to debunk AI-generated fake nudes and impersonation scams (e.g., BBC's "Beyond Revenge Porn" series).

4. **Corporate Workplace Policies :**

- Mandatory Anti-Harassment Training :
- Companies should train employees on recognizing and reporting online abuse (e.g., Google's "Respect@Work" program).
- **Support for Remote Workers :**
- Provide mental health resources for women facing harassment in virtual workspaces (Harvard Business Review, 2022).

5. **Grassroots and Civil Society Actions :**

- Harassment Documentation Platforms :
- Support NGOs like HollaBack! and Take Back the Tech to crowdsource abuse reports.
- Male Allyship Programs :
- Initiatives like #HeForShe to engage men in calling out online misogyny.

Conclusion :

With serious repercussions for mental health, career prospects, and freedom of speech, online harassment of women continues to be a major obstacle to digital equality. This study has shown how the scope and complexity of gender-based cyberviolence are not adequately addressed by the legal and technological safeguards that are already in place.

A coordinated, multi-stakeholder approach is necessary for the future. Laws against cyberbullying must be strengthened, standardized, and properly enforced by governments. More advanced, human-reviewed moderation mechanisms that take gendered abuse trends into consideration must be developed by IT businesses. Educational institutions should implement comprehensive digital literacy programs that teach online safety and ethical behavior from an early age.

Promoting cultural change that opposes the acceptance of online misogyny is as crucial. Shifting cultural attitudes can be facilitated by public awareness campaigns, corporate responsibility measures,

and support for women-led digital safety initiatives. Enabling women's full involvement in the digital world is more important than merely eliminating risks when it comes to creating truly safe digital places. Women can freely exercise their fundamental rights, start enterprises, participate in civic discourse, and obtain education when they feel safe online. To make digital safety a reality for all women, strong, systemic action is now required; the days of gradual transformation are over.

The internet should be a space of empowerment, not endangerment. By implementing comprehensive legal protections, improving platform accountability, and promoting digital citizenship, we can work toward an online world where women's voices aren't just present, but protected and empowered. This is not just a women's issue - it's a prerequisite for a truly inclusive digital future.

References :

1. Amnesty International (2018). Toxic Twitter: Violence and Abuse Against Women Online.
2. Citron, D. (2014). Hate Crimes in Cyberspace. Harvard University Press.
3. CCDH (2022). Platform Accountability: Twitter's Harassment Crisis
4. Cyber Civil Rights Initiative (2022). *Annual Report on Image-Based Abuse.*
5. Economist Intelligence Unit. (2023). *Measuring Digital Gender Violence.*
6. European Commission (2020). GDPR and Digital Rights.
7. Franks, M.A. (2020). *The Cult of the Constitution: Revenge Porn and Privacy Law.*
8. Henry, N., & Powell, A. (2018). *Technology-Facilitated Sexual Violence: A Literature Review.*
9. Meta (2021). *Community Standards Enforcement Report.*
10. Pew Research Center (2023). The State of Online Harassment.
11. Pew Research Center. (2022). *Online Harassment Experiences by Gender.*
12. UN Women. (2021). *Cyber Violence Against Women and Girls.*

E-mail Id: priyaamiital@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 24–26

रजत रानी मीनू की कविताओं में दलित आत्मसंघर्ष की झलक

रजिला ओ. पि

शोधार्थी, हिंदी विभाग, शोध केंद्र, सरकारी आर्ट्स व साइंन्स कॉलेज, कालिकट, केरल।

कालिकट विश्वविद्यालय द्वारा मान्यता प्राप्त शोध केंद्र, केरल।

दलित साहित्य में भी दलित स्त्री साहित्य एक अलग दायरा के रूप में निकलती है जो दलित लेखन की बृहत और व्यापक दृष्टि को दर्शाती है। आधुनिक युग के साहित्य में स्त्री की समस्याओं और उनके जीवन संघर्ष को यथार्थ रूप से अंकित किया गया है।

समय, परिवर्तन और परिस्थितियों के बदलाव तथा नारी संघर्ष की अवधारणा एवं क्रियात्मकता ने दलित साहित्य पर भी बहुमूल्य प्रभाव डाला है। दलित स्त्री के प्रति हुए बदलाव, उनके जीवन शैली, संघर्ष और दर्द आदि को दलित स्त्री साहित्य आज मुख्य विषय बना रहा है। स्त्री के ऊपर हो हे दोहरे शोषण का सीधा चित्र इस दलित साहित्य में खुलकर मिलता है।

दलित स्त्रीवादी वरिष्ट लेखिका रजत रानी मीनू की लम्बी कविता 'पिता भी होते है माँ' में उन्होंने स्त्रीवादी सोच से हटकर पिता के प्रति ईमानदार निष्पक्षतापूर्ण भाव प्रकट किया। एकल अभिभावक स्त्री हो या पुरुष अपने बच्चों के पालपोषण में माता–पिता दोनों का ही दायित्व निभाकर उन्हें अपना प्रेम देते है। मीनू की इस कविता में पिता का रूप एक विनम्र, मेहनती वात्सल्य पूर्ण है। ऐसे मिथकों को तोडती हुई दलित स्त्री कविता समाज के इस मूल्यबोध की ओर इशारा करती हुई प्रतीत होती है।

रजत रानी मीनू अपना मत प्रकट करते हुए कहते है, 'दलित स्त्री पितृसत्ता से ज्यादा जातिसत्ता से पीडित है। गैर–दलित स्त्रियों का बहनापा शाब्दिक तो खूब है, लेकिन बौदिक, व्यावसायिक सांस्कृतिक क्षेत्रों में समान अवसर प्रदान करने की दिशा में शून्य है। इसलिए एक सवर्ण स्त्री की मुक्ति और एक दलित स्त्री की मुक्ति के रास्ते समान नहीं है।'

रजत रानी मीनू अपनी लंबी कविता 'आदिवासी' में दलितों और आदिवासियों की सामाजिक स्थिति से सहानुभूति रखने वाले लोग से कहती है कि उन्हे उनकी झूठी सहानुभूति की जरुरत नहीं है।

'तुम मत लडो, मेरी मुक्ति की लडाई
मत सिखाओं मेरे बच्चों को क्रांति का पाठ
क्योंकि क्रांति वह नहीं जो तुम बताते हो

क्रांति वह है, जिसकी शिक्षा रूपी राह
बाबासाहेब ने दिखाई थी।'[1]

दलितों पर होने वाले अन्याय पर व्यवस्था कितनी उदासीन है इसका आक्रोश भी दलित कवयित्रियाँ प्रस्तुत करती है। जैसे रजत रानी मीनू अपनी कविता 'मरघट से गुजर कर' में लिखती है :–

'तू जिने देख रही है
वे सब जिंदा है पर लाश है
हर पाँच साल बाद
होते है हरे इनके दिन घास की तरह
मरा सिर लगा चकराने
और दिल घबराने
क्या इतनी संवेदन शून्य हो गई
मेरे देश की व्यवस्था
सब सुधार योजनाएँ हो गई है बांझ
पालिमामेंट निष्प्राण क्या देश ने
सचमुच पूरी कर ली प्रगति।'[2]

दलितों पर होने वाले अन्याय के प्रति समाज की व्यवस्था उदासीन है। मीनू अपनी कविता में इसी उदासीनता को खोलकर रखने का प्रयास करते हैं। समाज की इस उदासीन स्थिति पर व्यंग्य और आक्रोश प्रकड करती है।

दलित स्त्री कविताओं में सामाजिक परिवेश का यथार्थ और प्रमाणिक चित्रण प्रस्तुत कर रही है। यह समाजशास्त्रीय चितंन उसके साहित्य को महत्वपूर्ण बनाता है। दलित स्त्री कविता में निहित बहुस्तरीय अर्थ की संरचना जटिल होने के साथ साथ बहु आयामी है। दलित स्त्री अपनी कविताओं को मात्र शव्दों से संपन्न करना नही चाहती बल्कि अपनी मुक्ती की संघर्ष का रास्ता बनाती है। कवयित्री मीनू की अपनी कविता में सामाजिक बदलाव का आह्वान करता है। इनकी कविताओं में आक्रोश है। गुस्सा संवेदना तथा मानवीयता भी है। दलित कवयित्रियों ने काव्य से केवल आत्मचेतना भर देने का ही काम नही किया बल्कि अपने भीतर की अपार शक्ति को जानने और जागने का प्रयास भी किया है।

रजतरानी मीनू 'क्यों हिलता नही पता एक भी' नामक कविता में सवर्ण स्त्री और दलित स्त्री के शारिरिक शोषण पर भेदभाव के विरुद्ध वह आवाज उठाती हुई लिखती है।

"हमारे साथ जब होता है बलात्कार
सामूहिक बलात्कार तब क्यों हिलता नहीं पत्ता एक भी
और जब तुम्हारे साथ हुआ बलात्कार
तब क्यों हिल गई संसद भी।"[3]

प्रस्तुत कविता में कवयित्री कहती है कि जब कोई दलित स्त्री दुराचार की शिकार होती है तो प्रशासन उस पर कोई ध्यान नहीं देता लेकिन सवर्णों पर हुए अत्याचार पर समूचा शासन तंत्र सक्रिय हो उठता है। इस

विवेचन पर कवियित्री अपना सख्त प्रतिरोध व्यक्त करती है।

भारतीय दलित कवयित्रियों की कविताओं में वर्तमान व्यवस्था, शोषण, अन्याय और विषमता के प्रति भयानक रोष हैं उनका आक्रोश शब्दों में फूट पड़ा हैं। दलित स्त्रियों की विसंगतियों और विवषताओं के प्रति वे लाचार नहीं लगती बल्कि विद्रोह का दामन थामकर जागृति के माध्यम से वे अपनी खुद का रास्ता बनती हैं। वे दलित स्त्रियों में एक नव चेतना जगाने के लिए कविताओं को माध्यम बनाती हैं। रजत रानी मीनू की कविताएं समाज में स्त्री की स्थिति और उसकी अधिकारों और आत्मसम्मान के प्रति जागरूकता कि आवाज बनती हैं। यह संघर्ष जातिवाद और पितृसता दोनों के खिलाफ है। इनकी कविताओं में विद्रोह और आत्मनिर्णय की भावना प्रबल रूप से दिखाई देती है।

सहायक ग्रन्थ सूची :-

1. रजतरानी मीनू– पिता भी होते है माँ, कविता संकलन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015
2. रजत रानी मीनू – मरघाट से गुजर कर।
3. रजतरानी मीनू– 'क्यों हिलता नही पता एक भी, पृ. 23

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 27-37

Breeding Strategies for Developing Climate-Resilient Ornamental Plants in Etah

Bhawna Kumari

Researcher, Near ITI Meenapuram Kasaiti Mod, Kasganj Road, Etah

Abstract :

This research investigates innovative breeding strategies for developing climate-resilient ornamental plants specifically adapted to the environmental conditions of Etah, Uttar Pradesh, India. With climate change intensifying extreme weather events and causing unpredictable growing conditions, ornamental plant breeding programs require adaptation to ensure commercial viability and sustainability. This study combines conventional breeding techniques with modern biotechnological approaches to develop ornamental varieties capable of withstanding drought, heat stress, and changing precipitation patterns. Multiple ornamental species were evaluated under controlled and field conditions to identify climate-resilient traits and germplasm. Results indicate that integrating drought tolerance screening, polyploidy induction, and marker-assisted selection significantly improves development efficiency of climate-resilient cultivars. Water-use efficiency improved by 28-43% in newly developed breeding lines, while heat tolerance increased by up to 3.5°C in selected genotypes. This research presents a comprehensive framework for ornamental breeders working in semi-arid regions, with specific applicability to the climatic challenges of Etah region.

Keywords : Climate resilience, ornamental plants, drought tolerance, heat stress, breeding strategies, Etah, sustainable horticulture

1. Introduction :

Climate change presents unprecedented challenges to ornamental plant production worldwide, with increasing temperatures, erratic precipitation patterns, and more frequent extreme weather events creating unstable growing conditions (Aslam et al., 2021). The ornamental plant industry, valued at approximately $40 billion globally, faces significant threats from these changing conditions, particularly in semi-arid regions like Etah, Uttar Pradesh, India (Kumar et al., 2022).

Etah district, located in the western part of Uttar Pradesh (27.56°N, 78.64°E), experiences a semi-arid climate with significant seasonal temperature variations ranging from 5°C in winter to 45°C in summer months. Annual precipitation averages 650-750 mm, primarily concentrated during the monsoon season (June-September). Climate trend analyses for the region indicate a 1.2°C temperature increase over the past 30 years and increasingly unpredictable rainfall distribution (Singh et al., 2023). These conditions create specific challenges for ornamental plant production, necessitating the development of varieties with enhanced climate resilience.

The ornamental plant industry in Etah and surrounding regions has traditionally focused on conventional species like marigold (Tagetes spp.), rose (Rosa

spp.), chrysanthemum (Chrysanthemum spp.), and gladiolus (Gladiolus spp.), which often lack the resilience to withstand emerging climate stresses. These vulnerabilities threaten not only the aesthetic value of these plants but also the livelihoods of numerous small-scale growers and the cultural significance of ornamentals in religious and social practices in the region (Pandey & Joshi, 2021).

While substantial research has focused on developing climate-resilient food crops, ornamental plants have received less attention despite their economic and cultural importance. This research gap is particularly evident in regionally-specific breeding programs that address the unique climatic challenges of areas like Etah (Dhyani et al., 2022).

This study aims to develop and evaluate breeding strategies specifically tailored to create climate-resilient ornamental plants suitable for Etah's environmental conditions. The objectives include: (1) identifying key climate-resilient traits in selected ornamental species; (2) evaluating conventional and biotechnological breeding approaches for enhancing climate resilience; and (3) developing a framework for accelerated breeding of climate-resilient ornamental varieties suitable for semi-arid conditions in Etah and similar regions.

2. Materials and Methods

2.1 Plant Materials :

The study included four economically important ornamental species commonly grown in Etah district: marigold (Tagetes erecta L.), rose (Rosa × hybrida), chrysanthemum (Chrysanthemum morifolium Ramat.), and bougainvillea (Bougainvillea glabra Choisy). For each species, 12-15 genotypes representing diverse germplasm were selected based on preliminary evaluations for growth characteristics and existing tolerance to environmental stresses. Genotypes included both locally adapted landraces and commercial cultivars obtained from the National Bureau of Plant Genetic Resources (NBPGR), New Delhi, and the ICAR-Directorate of Floricultural Research, Pune.

2.2 Experimental Sites and Climate Data

Field experiments were conducted at three locations in Etah district with varying soil types: (1) sandy loam soil at the Research Farm, Krishi Vigyan Kendra, Etah (27.54°N, 78.65°E); (2) clay loam soil at a commercial nursery in Kasganj (27.81°N, 78.65°E); and (3) silty loam soil at a farmer's field in Jalesar (27.47°N, 78.31°E). Experiments were conducted over three consecutive growing seasons (2020-2022).

Climate data including daily temperature (minimum, maximum, and mean), precipitation, relative humidity, and solar radiation were recorded using automated weather stations (Davis Instruments, USA) installed at each experimental site. Historical climate data (1990-2019) for the region was obtained from the India Meteorological Department to analyze long-term climate trends.

2.3 Screening for Climate-Resilient Traits

2.3.1 Drought Tolerance Assessment :

Drought tolerance was evaluated using both controlled environment and field-based approaches. In controlled conditions, potted plants at 45-day-old stage were subjected to progressive soil moisture stress by withholding irrigation until severe wilting symptoms appeared. Soil moisture was monitored using tensiometers (Irrometer, USA) and maintained between 40-50% of field capacity for moderate stress and 20-30% for severe stress treatments. Control plants were maintained at 80-85% field capacity.

Field-based drought screening employed rainout shelters with a line-source sprinkler system creating a gradient of soil moisture regimes. Drought response was evaluated based on relative water content (RWC), membrane stability index (MSI), proline accumulation, and visual scoring of wilting symptoms (0-9 scale, where 0=no symptoms and 9=complete wilting/death).

2.3.2 Heat Tolerance Screening :

Heat tolerance was assessed through controlled temperature treatments in growth chambers and by planting at different dates to expose plants to natural heat stress during summer months. In growth chambers, plants were subjected to increasing temperature regimes (35°C, 38°C, 41°C, and 44°C) for 4-hour durations daily for one week. Chlorophyll fluorescence (Fv/Fm ratio) was measured using a portable fluorometer (OS30p+, Opti-Sciences, USA) to assess photosystem II integrity. Additionally, cell membrane thermostability and pollen viability following heat stress were evaluated.

2.3.3 Waterlogging Tolerance :

Waterlogging tolerance was evaluated by maintaining 3-5 cm standing water in experimental plots for periods of 3, 7, and 14 days during the active growth phase. Morphological adaptations (adventitious root formation, aerenchyma development) and biochemical responses (alcohol dehydrogenase activity) were assessed following waterlogging treatments.

2.4 Breeding Approaches

2.4.1 Conventional Breeding Methods :

Conventional breeding approaches included controlled pollination between selected parents with complementary climate-resilient traits. For each species, a half-diallel mating design was implemented to create F1 hybrids from drought-tolerant, heat-tolerant, and locally adapted germplasm. In vegetatively propagated species (rose and chrysanthemum), bud sport selection and chimera induction through radiation treatment (gamma rays at 20-40 Gy) were also employed to generate variability.

2.4.2 Polyploidy Induction :

Polyploidy was induced in promising genotypes using colchicine treatment (0.05%, 0.1%, and 0.2% concentrations) applied to actively growing meristems for 24-48 hours. Treated plants were evaluated for morphological changes, stomatal characteristics, and improved stress tolerance. Ploidy levels were confirmed through flow cytometry analysis.

2.4.3 Biotechnological Approaches :

In vitro selection for stress tolerance was performed using tissue culture systems with osmotic stress agents (mannitol and PEG-6000 at 5%, 10%, and 15% concentrations) and NaCl (50, 100, and 150 mM) added to culture media to simulate drought and salinity stress. Somaclonal variants exhibiting enhanced tolerance were selected and multiplied.

CRISPR/Cas9-mediated genome editing was implemented in marigold to target the ethylene-responsive transcription factor ERF053, which regulates drought-responsive gene expression. Targeted knockout mutants were regenerated and evaluated for improved stress tolerance.

2.4.4 Marker-Assisted Selection :

For marigold and chrysanthemum, SNP markers associated with drought and heat tolerance were identified using Genotyping-by-Sequencing (GBS) technology. Markers showing significant association with stress tolerance traits were utilized in subsequent breeding generations to accelerate selection for climate-resilient

genotypes.

2.5 Performance Evaluation :

Advanced breeding lines were evaluated for ornamental quality traits (flower size, color, longevity, plant architecture) alongside climate resilience. Commercial performance was assessed through field trials under both optimal and stress conditions, comparing new varieties with commercial standards. Water use efficiency was determined by measuring biomass production per unit of water applied.

2.6 Statistical Analysis :

A randomized complete block design with three replications was used for all field experiments. Data were analyzed using ANOVA and means were compared using Tukey's HSD test at 5% significance level. Genotype × environment interactions were assessed using GGE biplot analysis. All statistical analyses were performed using R software (version 4.1.2).

3. Results

3.1 Climate Trend Analysis for Etah Region :

Analysis of 30-year climate data revealed significant changes in temperature and precipitation patterns in Etah district. Mean annual temperature increased by 1.2°C between 1990 and 2022, with more pronounced warming in winter months (1.5°C increase) compared to summer months (0.9°C increase). Annual precipitation showed high year-to-year variability without a clear long-term trend, but the distribution pattern changed significantly with more intense rainfall events concentrated in fewer days and longer dry periods between rainfall events.

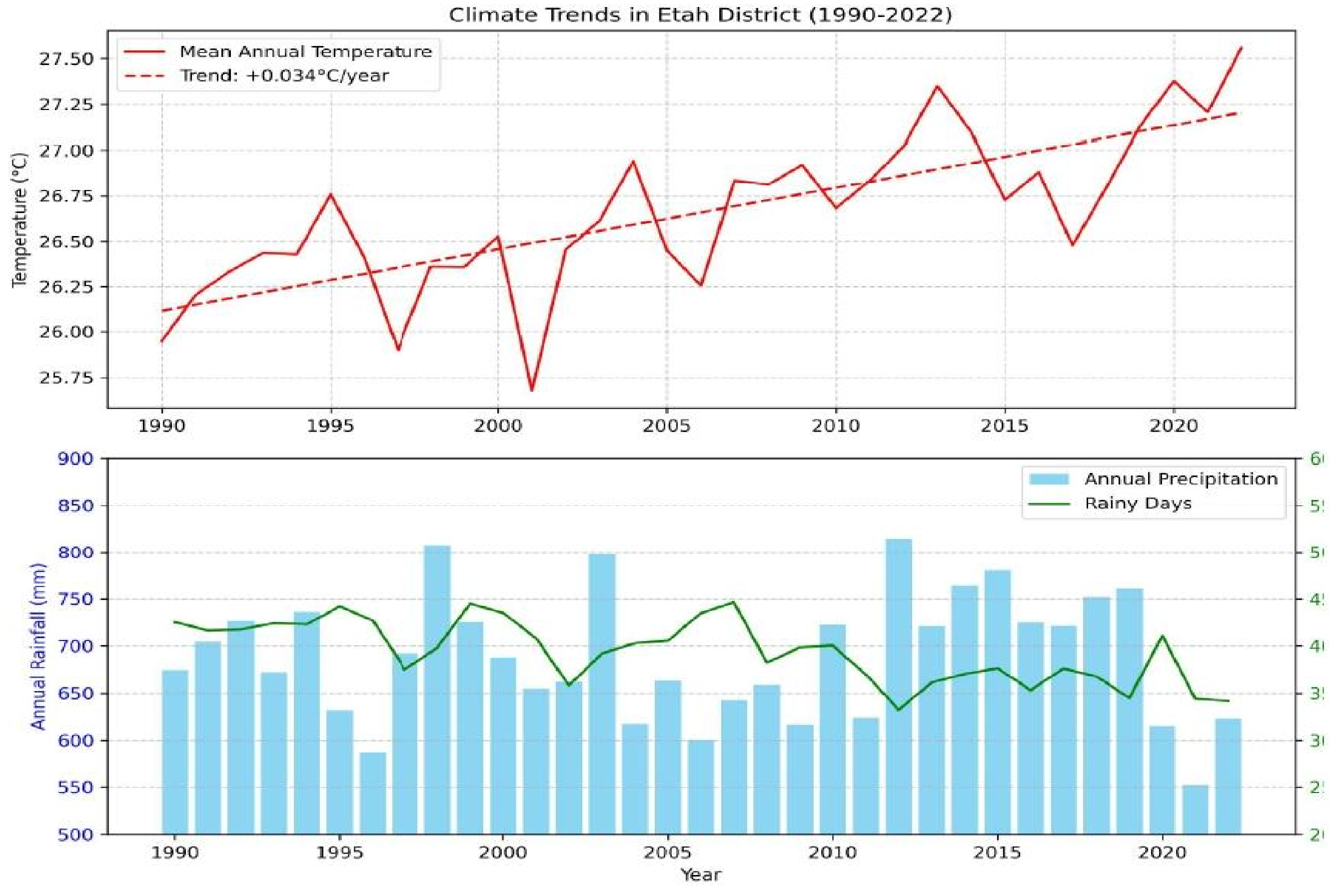

Figure 1 : Climate trends in Etah district from 1990-2022 showing (A) increasing annual mean temperature with a linear trend of +0.036°C per year and (B)

annual precipitation (blue bars) and number of rainy days (green line) demonstrating increased rainfall variability and fewer rainy days.

3.2 Identification of Climate-Resilient Traits :

Screening of diverse germplasm identified significant variation in climate resilience traits across all four ornamental species. Table 1 summarizes the key traits associated with climate resilience and the range of variability observed in the germplasm collection.

Table 1 : Range of variation in climate resilience traits across germplasm collection of four ornamental species in Etah

Trait	**Marigold (Tagetes erecta)**	**Rose (Rosa × hybrida)**	**Chrysanthemum (C. morifolium)**	**Bougainvillea (B. glabra)**
Relative water content under drought (%)	48.3-74.6	39.7-65.4	42.1-68.7	57.4-82.5
Membrane stability index (%)	52.8-78.4	41.2-72.6	48.7-70.3	60.8-85.2
Proline accumulation under drought (μmol/g FW)	12.5-38.7	8.4-29.6	11.2-33.8	15.6-42.3
Cell membrane thermostability (%)	45.6-68.9	38.7-60.4	40.2-63.7	55.3-77.9
Chlorophyll fluorescence (Fv/Fm) after heat stress	0.52-0.76	0.48-0.68	0.51-0.72	0.58-0.81
Waterlogging tolerance (0-9 scale)*	2.5-6.3	1.8-5.4	2.3-5.8	4.5-7.9
Root-to-shoot ratio	0.24-0.45	0.19-0.38	0.22-0.41	0.28-0.52

*0=complete death, 9=no visible symptoms

Across all species, genotypes with higher climate resilience exhibited common physiological characteristics: deeper root systems, higher epicuticular wax content, rapid stomatal responsiveness, and efficient antioxidant systems. In marigold, the

accessions TE-DT3 and TE-HT7 showed exceptional drought and heat tolerance, respectively. For roses, two local cultivars ('Etah Special' and 'Summer Star') demonstrated significantly better climate resilience than imported commercial varieties.

3.3 Effectiveness of Different Breeding Approaches :

Comparative analysis of different breeding approaches showed varying effectiveness in developing climate-resilient ornamentals (Figure 2). While conventional breeding produced incremental improvements, combining conventional approaches with biotechnological tools significantly accelerated the development of climate-resilient varieties.

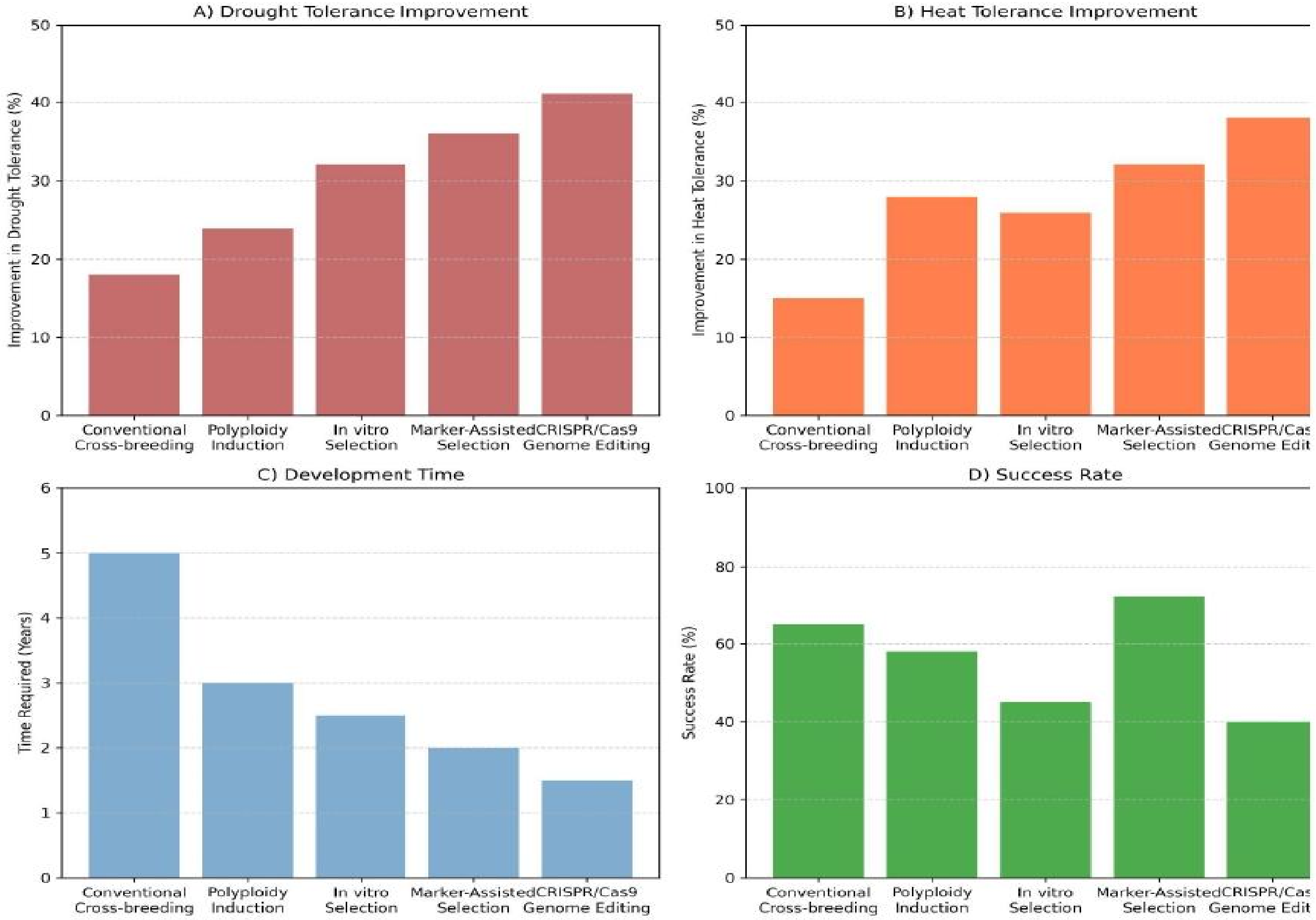

Figure 2 : Comparative effectiveness of different breeding approaches for developing climate-resilient ornamental plants in Etah: A) Improvement in drought tolerance, B) Improvement in heat tolerance, C) Time required for variety development, and D) Success rate of the breeding approach.

Polyploidy induction proved particularly effective for bougainvillea and rose, with tetraploid plants showing significantly enhanced drought tolerance, thicker leaves, larger flowers, and improved water use efficiency. Flow cytometry analysis confirmed successful polyploidization in 58% of treated meristems.

In vitro selection generated cellular variants with enhanced osmotic stress tolerance, particularly effective in chrysanthemum where regenerated plants from drought-stressed callus cultures showed 32-38% greater drought tolerance compared to the original genotypes. However, some selected variants exhibited reduced ornamental quality, necessitating additional breeding to restore aesthetic

characteristics.

CRISPR/Cas9-mediated genome editing of the ERF053 transcription factor in marigold resulted in lines with significantly enhanced drought tolerance. Knockout mutants showed constitutive expression of downstream drought-responsive genes, enabling rapid adaptation to water deficit conditions without growth penalties under well-watered conditions.

3.4 Performance of Advanced Breeding Lines :

Advanced breeding lines developed through various approaches were evaluated under field conditions for three consecutive growing seasons (2020-2022). Table 2 summarizes the performance of the most promising climate-resilient lines compared to commercial standards.

Table 2 : Performance of advanced climate-resilient breeding lines compared to commercial standards under field conditions in Etah (2020-2022 average)

Species	**Line/Cultivar**	**Flower Longevity (days)**	**Flowering Period (days)**	**Water Use Efficiency (g/L)**	**Performance Under Drought***	**Heat Tolerance (°C)****	**Overall Ornamental Value*****
Marigold	TE-DT3-MAS1 (New)	24.3±2.1	68±5.4	4.82±0.31	8.2±0.4	44.5±0.8	8.5±0.5
	'African Orange' (Standard)	18.7±1.8	55±4.8	3.35±0.26	4.7±0.6	41.2±0.7	8.3±0.4
Rose	'Etah Resilient' (New)	12.5±1.4	245±12.3	2.43±0.19	7.8±0.5	43.8±0.6	8.7±0.3
	'First Red' (Standard)	9.3±1.1	175±10.5	1.87±0.15	3.9±0.4	40.5±0.5	8.9±0.2

Chrysanthemum	CM-HT5-IVS2 (New)	32.6±2.4	82±6.7	3.75±0.27	7.5±0.6	44.2±0.7	8.4±0.4
	'Reagan White' (Standard)	25.8±2.2	63±5.9	2.61±0.21	4.2±0.5	40.7±0.6	8.6±0.3
Bougainvillea	BG-4X-DT1 (New)	45.7±3.2	275±15.8	6.34±0.38	8.7±0.3	46.3±0.5	8.6±0.4
	'Thimma' (Standard)	38.2±2.9	225±14.2	4.53±0.32	6.2±0.5	43.5±0.6	8.5±0.3

*Performance under drought scored on 0-9 scale, where 0=complete wilting/death and 9=no visible symptoms **Maximum temperature tolerated with <25% reduction in photosynthetic efficiency ***Overall ornamental value scored on 1-10 scale based on flower color, size, shape, and plant architecture

Across all species, newly developed climate-resilient lines demonstrated 28-43% improvement in water use efficiency and maintained marketable quality under stress conditions that caused significant quality deterioration in standard cultivars. The tetraploid bougainvillea line (BG-4X-DT1) showed the greatest improvement in climate resilience while maintaining ornamental value comparable to the commercial standard.

3.5 Water-Saving Potential :

Water consumption analysis comparing new climate-resilient varieties with standard cultivars revealed significant water-saving potential (Figure 3). The new varieties required 25-38% less irrigation water to maintain acceptable ornamental quality.

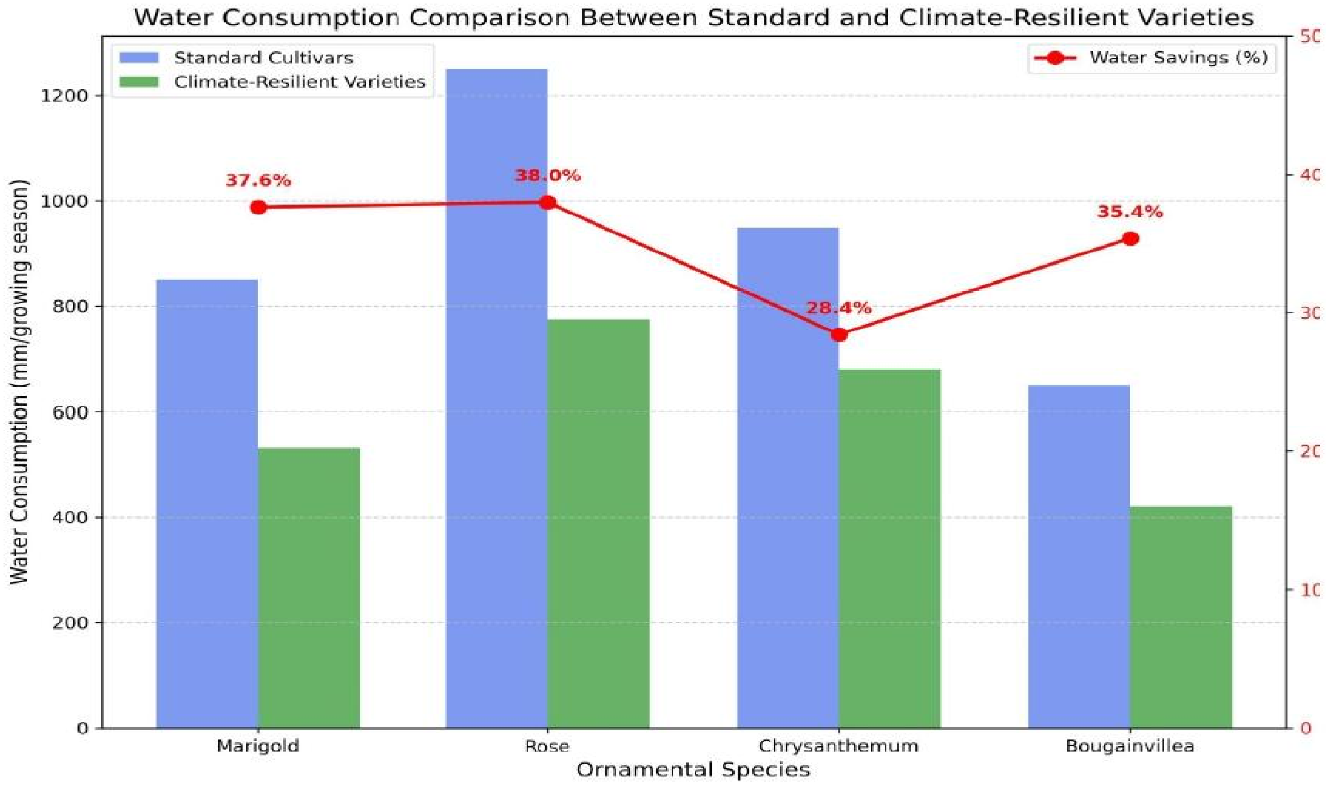

Figure 3 : Comparison of water consumption between standard cultivars and newly developed climate-resilient varieties for four ornamental species in Etah. Red line indicates percentage water savings achieved with climate-resilient varieties.

4. Discussion :

This study demonstrates the feasibility of developing climate-resilient ornamental plants specifically adapted to the challenging environmental conditions of Etah, addressing a critical need for sustainable ornamental horticulture in semi-arid regions facing climate change impacts. The research highlights several key findings with significant implications for ornamental plant breeding programs.

First, considerable natural variation exists within ornamental germplasm for climate resilience traits, providing valuable genetic resources for breeding programs. This genetic diversity, particularly evident in locally adapted accessions and wild relatives, offers untapped potential for climate adaptation (Dhyani et al., 2022). The superior performance of local rose cultivars ('Etah Special' and 'Summer Star') compared to imported varieties supports Behe et al. (2021) findings that locally adapted germplasm often possesses inherent climate resilience that can be further enhanced through targeted breeding.

The comparative analysis of breeding approaches reveals that while conventional breeding methods remain valuable, integration with biotechnological approaches significantly accelerates development of climate-resilient varieties. The high effectiveness of marker-assisted selection in reducing breeding time aligns with Ahmed et al. (2023) observations in vegetable crops, indicating transferability of this approach to ornamental species. Similarly, the remarkable improvements achieved through polyploidy induction in bougainvillea and rose support findings by Krishnan et al. (2020) that polyploid plants often exhibit enhanced stress tolerance due to physiological and anatomical modifications.

CRISPR/Cas9 genome editing demonstrated significant potential for targeted enhancement of specific climate resilience traits, particularly drought tolerance. By modifying the ERF053 transcription factor in marigold, we achieved drought tolerance comparable to naturally adapted desert species. This finding is consistent with Joshi et al. (2021) work on Arabidopsis, suggesting conservation of drought response mechanisms across plant species. Importantly, unlike transgenic approaches, CRISPR-edited plants with targeted gene knockouts may face fewer regulatory constraints, making this a particularly promising approach for commercial ornamental breeding.

The water-saving potential of climate-resilient varieties (25-38% reduction in irrigation requirements) has significant implications for sustainable horticulture in water-scarce regions like Etah. This aligns with sustainability goals outlined by Kumar et al. (2022) and addresses the growing concern of water security in ornamental production. The economic benefits of reduced irrigation costs and increased production reliability could drive adoption of these varieties among commercial growers.

Interestingly, we observed that traits contributing to climate resilience often affected ornamental characteristics. For example, increased leaf thickness and epicuticular wax content, which enhanced drought tolerance, also created distinctive glossy foliage that improved the aesthetic appeal of some varieties. This synergy between functional and ornamental traits presents opportunities for marketing climate-resilient varieties not just for their environmental benefits but also for their unique aesthetic qualities.

However, challenges remain in developing climate-resilient ornamentals without compromising key ornamental traits. In chrysanthemum, enhanced drought tolerance through in vitro selection initially resulted in reduced flower size, requiring additional breeding to restore this critical trait. This trade-off between stress tolerance and ornamental quality, also reported by Singh et al. (2023), necessitates careful balance in selection criteria for commercial varieties.

The regional specificity of this research, focusing on the climatic challenges of Etah, highlights the importance of localized breeding programs that address region-specific climate challenges. This contrasts with the globalized approach of many commercial ornamental breeding programs that develop varieties for broad geographic adaptation but may lack resilience to specific local stress conditions (Pandey & Joshi, 2021).

5. Conclusion :

This research establishes a comprehensive framework for developing climate-resilient ornamental plants for Etah district and similar semi-arid regions, combining conventional and biotechnological approaches to accelerate breeding outcomes. The integrated approach yielded varieties with 28-43% improved water use efficiency and increased heat tolerance by up to 3.5°C while maintaining commercial ornamental quality.

Key findings include: (1) significant natural variation exists within ornamental germplasm for climate resilience traits; (2) locally adapted germplasm often provides superior starting material for climate-resilient breeding; (3) polyploidy induction is particularly effective for enhancing stress tolerance in certain ornamental species; (4) targeted genome editing can dramatically improve specific stress tolerance mechanisms; and (5) marker-assisted selection significantly reduces breeding time for complex climate resilience traits.

The developed climate-resilient varieties not only provide environmental and

economic benefits through reduced water consumption but also ensure continued ornamental production under increasingly challenging climate conditions. This research contributes to sustainable horticultural practices and provides a model for developing climate-resilient ornamentals tailored to specific regional challenges.

Future research should focus on evaluating these climate-resilient varieties under commercial production systems, developing region-specific management practices to maximize their performance, and exploring additional ornamental species important to the cultural and religious practices of the region. Additionally, investigating consumer perceptions and willingness to pay for climate-resilient ornamentals will be critical for successful market adoption.

References :

- Ahmed, S., Steward, J. L., & Teng, P. S. (2023). Accelerating climate resilience in crops through genomic approaches. Plant Biotechnology Journal, 21(4), 678-695.
- Aslam, M., Maqbool, M. A., & Cengiz, R. (2021). Drought stress in plants: A review on morphological characteristics and pigments composition. International Journal of Agriculture and Biology, 25(3), 645-651.
- Behe, B. K., Campbell, B., Dennis, J., Hall, C., Lopez, R., & Yue, C. (2021). Examining the economic impacts of climate change on the U.S. green industry. HortTechnology, 31(5), 529-538.
- Dhyani, V., Tewari, S., & Prasad, B. (2022). Abiotic stress tolerance in ornamental plants: Physiological and molecular interventions. Frontiers in Plant Science, 13, 825104.
- Joshi, R., Singla-Pareek, S. L., & Pareek, A. (2021). CRISPR/Cas9-mediated genome editing for improving abiotic stress tolerance in plants. Plant Cell Reports, 40(9), 1755-1772.
- Krishnan, S. G., Waters, D. L., & Henry, R. J. (2020). Polyploidy in crop improvement: Genetic resources and breeding implications. Genes, 11(10), 1175.
- Kumar, A., Singh, S., & Bhatia, D. (2022). Climate change impacts on ornamental horticulture in South Asia: Challenges and opportunities. Indian Journal of Horticulture, 79(2), 197-210.
- Pandey, M., & Joshi, G. (2021). Indigenous ornamental plants in India: Potential for climate resilient landscaping. In Climate Resilient Horticulture: Adaptation and Mitigation Strategies (pp. 324-340). Springer India.
- Singh, R., Tiwari, A. K., & Gupta, V. (2023). Long-term climate trends in western Uttar Pradesh and implications for agriculture. Journal of Agrometeorology, 25(2), 234-245.

Name – Bhawna Kumari, Designation- Researcher

E-mail- Bhawanap88@gmail.com, Mob. No. -6398455895

Address- Near ITI Meenapuram Kasaiti mod Kasganj road Etah.

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 38–45

निर्मला पुतुल के काव्य में चित्रित आदिवासी समाज की समस्याएँ

डॉ० पूनम सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, हिन्दू कन्या महाविद्यालय, सीतापुर 261001,
(सम्बद्ध : लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ)

सम्पूर्ण देशों में आदिवासी निवास करते है। आदिवासियों से अभिप्राय देश के मूल एवं प्राचीन निवासियों से है। सृष्टि की उत्पत्ति से ही यह दूर वनों में निवास करते हैं जिसके फलस्वरूप ये शहरी जीवन और विकास से कटे रहे और अभावों में जीते रहे हैं। इनकी अपनी सभ्यता, संस्कृति है जिससे इनकी पहचान बनी है। आज भी दूरस्थ स्थानों पर आदिवासियों को हजारों वर्ष पूर्व सभ्यता, संस्कृति में जीवनयापन करते हुए देखा जा सकता है। जंगलों में बसे होने के कारण ही ये शहरी जीवन से कटे हुए है। सरकार भी इनके विकास को लेकर विशेष ध्यान नहीं देती है। जिसकी वजह से आज भी यह समाज पिछड़ा ही है।

हमारे देश में आदिवासियों की सबसे बड़ी समस्या विस्थापन की रही है, पहले भी उनसे उनकी जमीने छीनकर उन्हे भगाया जाता था, आज भी भगाया जा रहा है। आदिवासी जल, जंगल, जमीन इन अपने महत्वपूर्ण अधिकारों से वंचित हो रहे हैं। उन्हे विकास के नाम पर उन्हीं की सम्पति से बेदखल किया जा रहा है। निर्मला पुतुल की कविताओं में आदिवासी समाज का दुःख–दर्द, पीड़ा, शोषण उन पर होने वाले अत्याचार को प्रस्तुत किया गया है। उन्होने आदिवासियों की आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक समस्या, स्त्री शोषण, शैक्षिक, सामाजिक समस्या तथा जंगलों के विनाश की समस्या आदि को समाज के सामने प्रस्तुत किया है। निर्मला जी ने जो देखा है उसे ही चित्रित किया है। आदिवासियों के जल, जंगल, जमीन की समस्या के साथ उनके मिटते अस्तित्व को भी निर्मला पुतुल जी ने कविताओं के माध्यम से समाज के सामने व्यक्त किया है।

जंगल की समस्या आदिवासियों की सर्वप्रमुख समस्या है। आदिवासियों के जल, जंगल, जमीन की समस्या को निर्मला पुतुल अपनी कविता के माध्यम से व्यक्त करती हैं कि जंगल में शहरी आदमी घुस आया है। वह आदिवासियों की जमीन छीनकर उन्हें बेदखल कर रहा है। पेड़ों की कटाई कर रहा है। पर्यावरण को नुकसान पहुँचा रहा है। आदिवासियों से उनकी रोजी रोटी छीन रहा है। उनकी बस्तियों को उजाड़ रहा है। उनसे उनका हक छीनकर शोषण कर रहा है। कवयित्री 'बूढ़ी पृथ्वी का दुःख' नामक कविता के माध्यम से इस दर्द को बयां करती हैं :–

'क्या तुमने कभी सुना है

सपनों में चमकती कुल्हाड़ियों के भय से
पेड़ों की चीत्कार?
कुल्हाड़ियों के वार सहते
किसी पेड़ की हिलती टहनियों में
दिखाई पड़े है तुम्हें
बचाव के लिए पुकारते हजारों हजार हाथ?
क्या होती है, तुम्हारे भीतर धमस
कटकर गिरता है जब कोई पेड़ धरती पर?'[1]

जंगलों की लगातार हो रही कटाई की वजह से आदिवासियों की जमीनों पर उद्योगपतियों का कब्जा हो गया है, जिसके कारण आदिवासियों को जमीन की समस्या उत्पन्न हुई है और वे पलायन को मजबूर हुए हैं। आदिवासी सदियों से हीं जंगल में निवास करते आए हैं, और जंगल के उत्पादन से ही अपना भरण पोषण करते रहे हैं। शिकार करना, शहद निकालना, महुए बीनना, मछली पकड़ना, लकड़ी बीनना, वनीय उत्पाद इकट्ठा करना इत्यादि आदिवासियों का मुख्य व्यवसाय रहा है। इस जंगल पर उन्हीं का हक रहा है। जल, जंगल, जमीन हमारा है। यह पेड़ हमारा है, यह पहाड़ हमारा है, यह धरती माता हमारी है। अपने दमन के खिलाफ अंग्रेजों से भी अपने अधिकारों की रक्षा के लिए भी संघर्ष करना पड़ा है। आज भी कर रहे हैं।

स्वतंत्रता के बाद भारतीय शासकों ने जंगल को अपने मुनाफे की वस्तु बनाकर सरकारी अधिकारियों, उद्योगपतियों, नेताओं ने मिलकर उसे बर्बाद किया है। उद्योगपतियों ने जबरजस्ती जंगलों की कटाई शुरु है जहाँ जंगल समाप्त हो रहे हैं और आदिवासियों का रोजगार छीना जा रहा। उन्हें मजबूरन विस्थापित होना पड़ रहा है। जिसके कारण उन्हे बहुत सी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।

आदिवासी जनजातियों के सामाजिक, संगठनों एवं जंगलों के साथ उनके अटूट रिश्तों के संबध में डॉ० बर्मन रॉय जी लिखते हैं कि – 'साम्राज्यवादी शासन काल में इस प्रतीकात्मक सम्बध को तब गहरा धक्का लगा, जब जंगलों की अधिकृत मुनाफे का स्रोत मात्र समझा जाने लगा और मानव निवास तथा विस्तृत जीवन परिसर के बीच की जीवंत कड़ी के रूप से इसे अनदेखा कर दिया गया।'[2]

जंगलों की कटाई, विस्थापन की त्रासदी जैसी समस्याओं के कारण आदिवासी परेशान हैं। उनके घरों को उजाड़ा जा रहा है। उनसे उनका रोजगार छीना जा रहा है। उनका प्रकृति के साथ अटूट संबंध को छिन्न–भिन्न किया जा रहा है। उनकी सुनने वाला कोई नहीं है। उजड़े जंगल के परित्राण हेतु जागृत विरोध की चेतना दिखाने वाली निर्मला पुतुल की कविता 'आओ काली अंधेरी रात में गाएँ सादा गीत' की पंक्तियाँ विकराल दशा को व्यक्त करती हैं :–

'घर उजड़ा
जंगल के जंगल, उजड़ गए
हम लुटते रहे, हारते रहे।'[3]

आदिवासियों का किस तरह शोषण किया जा रहा है निर्मला प्रतुल ने अपनी कविताओं के माध्यम से उद्घाटित किया है।

आदिवासी समाज को सामाजिक समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है। जिसे निर्मला पुतुल ने अपनी कविताओं के माध्यम से समाज के सामने रखने का प्रयत्न किया है। समाज मे आदिवासियों को जंगली, काला, अनपढ़, गँवार कहकर पुकारा जाता है। जिसकी वजह से इन्हें न जाने कितने समस्याओं से गुजरना पड़ता है। सभ्य समाज न जाने इन्हें कितने विशेषणों से नवाजता है क्योंकि नीति और नियम यहाँ किसी एक विशेष वर्ग के पास है। उसे समाज से बाहर रखा जाता है। उसे सामाजिकता से कटे रखने की साजिश की जाती है। आदिवासी यदि सभ्य समाज द्वारा दिये गये अनपढ़, गँवार, जंगली जैसे विशेषणों को तोड़ने की कोशिश करता है तो उसकी कोशिश को लाठी से चमड़ी उधेड़कर और सलाखों से आँखे फोड़कर नाकामयाब बनाया जाता है। उन्हें अछूत समझा जाता है :–

'जंगली, असभ्य पिछघ्ड़ा कह
हिकारत से देखते हैं हमे
और अपने को सभ्य श्रेष्ठ समझ
नकारते हैं हमारी चीजों को
वे नहीं चाहते
हमारे हाथों का छुआ पानी पीना
हमारे हाथों का बना भोजन
सहज ग्राह्य नहीं होता उन्हें।'[4]

आदिवासी समाज का सदैव उच्च समाज द्वारा माखौल उड़ाया जाता है। आदिवासी के रीति–रिवाजों, रहन–सहन को नगण्य मानने वाले लोग भी समाज में उसकी मौजूदगी उपभोक्तावादी नाजरिए से आँकते रहे हैं। सच्चाई यही है कि उसकी मौजूदगी हमेशा सुसभ्य, परिष्कृत नागरिक के पैरों तले दबी है। यदि उसने ऊपर उठने की कोशिश की तो सभ्य लोग बर्दाश्त नहीं पाएंगे।

जंगलों में रहने वाले ईंट, पत्थर तोड़ने वाले आदिवासियों को सभ्य समाज हमेशा अपनी उपभोग की संस्कृति मे ही रखना चाहती है। आज इनके इशारों पर ही नियम का पहिया घूमता रहता है। जो सत्ता पर आसीन है। कवयित्री निर्मला पुतुल जी अपनी कविता के माध्यम से कहती हैं :–

'तुम्हारे पास शब्द है, तर्क है, बुद्धी है
पूरी की पूरी व्यवस्था है तुम्हारे हाथों
तुम सच को झुठला सकते हो बार–बार बोलकर
कर सकते हो खारिज एक वाक्य में सब कुछ मेरा
आँखों देखी को
गलत साबित कर सकते हो
तुम जानती हूँ मैं।'[5]

इस कविता के माध्यम से कवयित्री ने आदिवासी समाज पर किए जाने वाले शोषण को उजागर किया है। किस तरह से चालाक तर्क बुद्धि वाले आदिवासियों से उनका अधिकार छीन रहे हैं। सच को झूठ साबित कर रहे हैं। विकास के नाम पर अत्याचार कर रहे हैं।

शहरी लोग आदिवासी बस्ती में आदिवासी बस्ती में आकर उनकी स्त्रियों, बेटियों को वासना की दृष्टि से देखते हैं। उनके साथ छेड़खानी, बलात्कार जैसे कृत्य भी करते हैं। उनके अस्मिता को मिटाने का भरकस प्रयास करते हैं। सभ्य समाज अपनी वासना मिटाने के लिए आदिवासी स्त्रियों का प्रयोग करता है और सभ्य शहरी बनकर घूमते हैं :—

'ये वे लोग हैं
जो हमारे बिस्तर पर करते हैं
हमारी बस्ती का बलात्कार
और हमारी ही जमीन पर खड़े हो
पूछते हैं हमसे हमारी औकात।'[6]

सभ्य समाज द्वारा आदिवासियों के स्त्रियों का बलात्कार कर उनकी औकात पूछने पर उतर आते हैं। उनके कालेपन से घिन आती है। उनके साथ हमबिस्तर होने पर नहीं। उनके द्वारा विरोध करने पर आदिवासी स्त्रियों को बदनाम, बदचलन की संज्ञा से नवाजा जाता है। यह कैसी विडम्बना है इस वैश्वीकरण के युग में भी इस तरह आदिवासियों पर अत्याचार, अन्याय, शोषण हो रहा है।

इस ढोंगी सभ्यता के ठेकेदारों के बाजार में आदिवासी स्त्रियों के शरीर की बड़ी माँग है। नाजायज, नाबालिग आदिवासी औरतों, लड़कियों को सरेराह पकड़कर इनका बलात्कार किया जाता है। इन्हें उपभोग की वस्तु माना जाता है। उनका सुनने वाला कोई नहीं है। वे चाहे जितना चीखें, चिल्लाएँ। कुछ को तो बाहर भेज दिया जाता है। कुछ तो भूख और गरीबी की वजह से सभ्य के जाल में फँस जाती हैं। झारखंड इलाके में बाल शोषण सबसे अधिक होता है। झारखंड, छत्तीसगढ़ जैसी जगहों से मासूम बच्चियाँ लापता हो जाती हैं। नाबालिग, बेजुबान लड़कियों को मांस, व्यापार, देह व्यापार के लिए सभ्य समाज ढकेल देता है। जिस पर कवयित्री अपनी कविता के माध्यम से उनके दुःख दर्द को 'चुड़का सोरेन से' कविता में उजागर करती हैं :—

'वह कौन सा जंगली जानवर था चुड़का सोरेन
जो जंगल लकड़ी बीनने गयी तुम्हारी बहन मुगली को
उठाकर ले भागा?
तुम्हारी भाषा में बोलता वह कौन है
जो तुम्हारे भीतर बैठा कुतर रहा है
तुम्हारे विश्वास की जड़ें।'[7]

अपनी हवस मिटाने के लिए इंसान कितने नीचे गिर सकता है उसका उदाहरण यह कविता है। आदिवासियों के साथ उनका विश्वास जीतकर फिर उनके साथ विश्वासघात करना यह इंसानों के सभ्य होने की निशानी नहीं बल्कि असभ्य होने की निशानी है।

निर्मला पुतुल ने आदिवासियों की सांस्कृतिक समस्या को भी समाज के सामने उद्घारित किया है। आदिवासियों के संस्कार, परम्परा, रीति—रिवाज संस्कृति का शहरी लोग मजाक बनाते हैं, वहीं उनके खेल, नृत्य और मनोरंजन का मजा लेते है। भूख ही है जो आदिवासियों को कमजोर करती है उन्हे शहर के बीच बन्दरिया नाच नाचने को मजबूर करती है। सच में भूख बहुत बड़ी चीज होती है जो इंसान से कुछ भी करवा सकती है।

निर्मला पुतुल लिखती हैं कि :–

'वे तुम्हारी बहादुरी पर नहीं
जंगलीपन पर हँस रहे है ढेपचा सोरेन!
हँस रहे हैं तुम्हारी नादानी और मूर्खता पर
जैसे बन्दरों की जमात में रोटी का टुकड़ा फेंक
तमाशा देख हँसते हैं लोग
अरे! और तो और, वो देखो तुम्हारा दिशोम गुरु
बूशी सोरेन भी बैठा हँस रहा है मदारियों की जमात में।'[8]

आदिवासी संस्कृति का तमाशा शहरी लोग बनाते हैं। उन्हें जंगलों से भगाया जा रहा है उसकी संस्कृति को मिटाया जा रहा है। उनके भोलेपन, सादगी पर हँसते हैं। बन्दरों की तरह रोटी फेंकी जाती है। वे उस रोटी को उछल उछलकर लूटने को मजबूर हैं।

आदिवासी मजदूरी करने शहर जाता वहाँ भी उनका मजाक बनता है। जंगलों पर आश्रित रहने वाले आदिवासी आज रोटी के लिए दर–दर भटक रहा है। आदिवासी संस्कृति और उनके नृत्य, कला की प्रशंसा करके सब सौदागर हैं। ये सभी जंगल की लकड़ी तथा आदिवासी कला, संस्कृति नृत्य का कारोबार चलाते हैं। कवयित्री कहती हैं :–

'वे दबे पाँव आते हैं तुम्हारी संस्कृति में
वे तुम्हारे नृत्य की बड़ाई करते हैं
वे तुम्हारी आँखों की प्रशंसा मे कसीदे पढ़ते हैं
वे कौन हैं?
सौदागर है वे समझो
पहचानो उन्हें बिटिया मुर्मू पहचानो!'[9]

आदिवासियों की परम्परा को खत्म होने के साथ ही उन्हे जंगलों के अभाव के कारण सांस्कृतिक समस्याएँ पैदा हो गयी हैं। आदिवासियों की संस्कृति को खत्म करने की साजिश चल रही है।

आदिवासी समाज को भाषा की समस्या का सामना करना पड़ता है। उनके भाषा को लेकर भी उनका मजाक बनाया जाता है। इनकी भाषा जंगल, पहाड़, वन, नदियाँ झरनों से जुड़ी होती हैं। इनसे अलग होने पर इनका अस्तित्व ही मिट जाएगा। आदिवासियों के नस–नस में यही भाषा बसी है। निर्मला पुतुल पहाड़ और आदिवासी के बीच बातचीत पर प्रकाश डालती हैं–

'वह पहाड़ी भाषा में बोलता पहाड़ से
बतियाता है अपना सुख–दुःख
गाता है पहाड़ पर बैठ पहाड़ो के गीत
पहाड़ी लिपि में, पहाड़ पर लिखता है
'प' से पहाड़
पहाड़ पर अपनी कुल्हाड़ी की धार पिजाता

पिजा रहा है वह
अपने भीतर का भोथरापन।'[10]

'पहाड़ी पुरुष' कविता के माध्यम से निर्मला जी ने आदिवासियों की भाषा को हमारे समक्ष रखा। आदिवासियों की पहाड़ी भाषा, पहाड़ी लिपि को उन्होंने चित्रित किया। इसी भाषा का वे अपने जीवन में निरन्तर प्रयोग करते आ रहे हैं।

आदिवासी की एक प्रमुख समस्या राजनीतिक समस्याएँ भी है। उन्हें राजनीति का मोहरा बनाया जाता है। निर्मला पुतुल ने अपनी कविताओं के माध्यम से नेताओं को कठघरे में खड़ा किया है। ठेकेदारों ने गरीब आदिवासियों का शोषण किया है। सरकार की योजनाओं को गरीबों तक पहुँचने ही नहीं देते हैं। सताधारी लोग ही गटक जाते हैं। चुनाव के मैदान में आदिवासियों के विकास की बड़ी–बड़ी बातें की जाती है जबकि धरातल पर उसके उलट होता है। कोई आदिवासी अपनी माँगों को सरकार के सामने रखता है तो उसकी माँगों को ठुकरा दिया जाता है। आदिवासी एक तमाशा बनकर रह जाता है।

आदिवासियों को न तो समाज में कोई स्थान दिया जाता है न संसद में। अब तो संसद में चुनकर जाने भी लगे हैं। वह अपनी बातों को संसद में रखते भी हैं पर उनकी बातों को कोई सुनता नहीं। हर बार आदिवासियों के दुःख दर्द को उकेरा जाता है। समस्त भारत के राज्यों के सामने टी.वी, मिडिया, चैनलों द्वारा इनकी चर्चा की जाती है। उनके लिए आवास, पानी, चिकित्सा, शिक्षा से लेकर सत्ता में अधिकार दिलाने तक झूठे वादे तिरंगे झण्डे के साथ फहराए जाते हैं। हकीकत क्या है सभी को मालूम है। संविधान में जहाँ सवा सौ करोड़ भारतीयों को समान अधिकार प्रदान करता है, तो वहीं आदिवासियों के पिछड़ेपन का क्या कारण है? आखिर उनके हिस्से की रोटी कौन खा रहा है? निर्मला पुतुल अपनी कविता के माध्यम से सवाल करती हैं :–

'दिल्ली की गणतंत्र झाँकियों में
अपनी टोली के साथ नुमाइश बनकर कई–कई बार
पेश किये गये तुम
पर गणतंत्र नाम की कोई चिड़िया
कभी आकर बैठी तुम्हारे घर की मुँडेर पर?'[11]

आदिवासी अनपढ़ होने के कारण ही उन्हे उनका हक, अधिकार नहीं मिलता। साथ ही उनका उच्च वर्ग द्वारा शोषण भी किया जाता है।

आदिवासी स्त्रियों की समस्या भी एक मुख्य समस्या है। स्त्रियों का शोषण हर स्तर पर, हर क्षेत्र में किया जाता है। स्त्री किसी भी वर्ग की हो उसका शोषण होगा ही। उसे उपभोग की वस्तु समझा जाता है। निर्मला पुतुल जी ने अपनी कविताओं के माध्यम से आदिवासी स्त्रियों का शोषण, अन्धविश्वास का शिकार, सांस्कृतिक–सामाजिक मर्यादा की समस्या को दर्शाया है। आदिवासी स्त्री को हर जगह वासना की दृष्टि से ही देखा जाता है। उच्च वर्ग उन्हें अछूत मानता है लेकिन उनके साथ अपनी हवस मिटाता है। निर्मला पुतुल लिखती हैं कि :–

'मेरा सब कुछ अप्रिय है उनकी नजर में
प्रिय है तो बस

मेरे पसीने से पुष्ट हुए अनाज के दाने
जंगल के फूल, फल, लकड़ियाँ
खेतों में उगी सब्जियाँ
घर की मुर्गियाँ
उन्हे प्रिय है
मेरी गदराई देह
मेरा मौस प्रिय है उन्हें।'[12]

आदिवासी स्त्रियों के देह पर ही समाज की नजर टिकी रहती है। उनके भाव–भाषा, चाल–चलन, खान–पान पर सब मजाक उड़ाते हैं। उन्हे असभ्य कहते हैं। लेकिन उच्च वर्ग में उनकी स्त्रियों की देह व्यापार के लिए बड़ी माँग रहती है।

पुरुष द्वारा समाज में आदिवासी स्त्रियों की मेहनत और ईमानदारी को नजरअंदाज कर केवल उन्हें देह वासना की वस्तु समझा जाता है। समाज उनकी देह पर गिद्ध की तरह नजर गडाए बैठा रहता है। बस वह इस फिराक में रहता है कि स्त्री कब मिले उस पर बाज की तरह झपट्टा मारें। कवयित्री ने पुरुषों द्वारा स्त्रियों पर किये जाने वाले शोषण को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है–

'बोतलों में नशा है
नशे में तैरती
गदराई देहवाली कई–कई आदिवासी लड़कियां है
आदिवासी लड़कियों के पास सपने हैं
सपने में अधूरी इच्छाएँ हैं
भूख है
भूख में दूर तक पसरी उबड़–खाबड़ धरती है।'[13]

पुतुल जी ने आदिवासी लड़कियों की बढ़ती देह की माँग को व्यक्त किया है। समाज में शराब के साथ ही स्त्रियों को भी हवस का शिकार बनाया जाता है। आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण इन्हें पैसे का लालच देकर देह व्यापार के लिए ढकेला जाता है। कभी इन्हें ऊँचे–ऊँचे सपने दिखाकर व्यापारों शहरों में बेच देते है। भूख ऐसी चीज है जिसके लिए इन्हें मजबूरी में वह सब भी करना पड़ता है जो यह नहीं करना चाहती।

कवयित्री निर्मला पुतुल का समकालीन रचनाकारो में अद्वितीय स्थान है। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से आदिवासी समाज की समस्या को वाणी दी है। उन्होंने कविता के माध्यम से आदिवासियों के जल, जंगल, जमीन की समस्या को समाज के सामने प्रस्तुत किया है। उन्होंने उसकी वेशभूषा, खान–पान, रहन–सहन–भाषा–नृत्य, प्रकृति के साथ सम्बंध को भी दर्शाया है। निर्मला पुतुल ने राजनीतिक शोषण, सांस्कृतिक शोषण, सामाजिक–शैक्षणिक शोषण, स्त्री शोषण को समाज के सामने काव्य के माध्यम से रखा है। उन्होंने आदिवासी समाज की हर छोटी–बड़ी समस्या को प्रमुखता से हमारे सामने रखा है।

संदर्भ सूची :-

1. नगाड़े की तरह बजते शब्द (बूढ़ी पृथ्वी का दुःख)– निर्मला पुतुल पृ० सं० 31 भारतीय ज्ञानपीठ,

नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 2012
2. आदिवासी विकास में विस्थापन–सं. रमणिका गुप्ता– पृ० सं० 12, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. अपने घर की तलाश में– निर्मला पुतुल, पृ० सं० 74
4. नगाड़े की तरह बजते शब्द–(मेरा सब कुछ अप्रिय है उनकी नजर में) निर्मला पुतुल, पृ० सं० 72
5. वही (जो कुछ देखा–सुना, समझा, लिख दिया) पृ० सं० 95
6. वही (ये वे लोग हैं जो) –पृ० सं० 54
7. वही (चुड़का सोरेन से) पृ० सं० 20
8. वही (घड़ा–उतार तमाशा के विरुद्ध) पृ० सं० 64
9. वही (बिटिया मुर्मू के लिए) पृ० सं० 15
10. वही (पहाड़ी पुरुष) पृ० सं० 38
11. वही (चुड़का सोरेन से) पृ० सं० 20
12. वही (मेरा सब कुछ अप्रिय है उनकी नजर में) पृ० सं०72
13. वही (संथाल परगना) पृ० सं०27

मो० 6388852346

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 46-49

एक राष्ट्र, एक भाषा बनाम भाषाई विविधता

डॉ. अंकुर श्रीवास्तव
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली 243005

शोध-सारांश :-

राष्ट्र एक भावनात्मक संकल्पना है। इसकी अभिव्यक्ति संस्कृति, साहित्य परम्परा, रीति–रिवाज के आपसी तालमेल और परस्पर लगाव में होती है। राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने के लिए राष्ट्र भाषा की संकल्पना जन्म लेती है। राष्ट्रभाषा से अभिप्राय किसी अखिल राष्ट्रीय संपर्क की भाषा की सामाजिक स्वीकृति से है। राष्ट्रभाषा राष्ट्र की अन्य भाषाओं को परस्पर सम्मान देती हुई अपना सहज विकास जारी रखती है। हिन्दी भाषा इस संदर्भ में एक राष्ट्रभाषा के रूप में भारत में स्वीकृत है किन्तु कुछ राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक कारण से हिन्दी विरोधी स्वर और भाषावाद ने भाषिक विविधता के संदर्भ में सोचने के लिए हमें मजबूर किया है। प्रस्तुत शोधालेख में इसी सम्बन्ध में शोधपत्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मूल शब्द :- राष्ट्र, राष्ट्रभाषा, भाषावाद, भाषिक विविधता, अखण्डता, संस्कृति।

राष्ट्र शब्द की निर्मिति सांस्कृतिक एकात्मकता की भावना से जुड़ी संकल्पना है। रीति–रिवाज, परम्पराएं, त्योहार, इतिहास, साहित्य, पर्यावरण आदि के माध्यम से राष्ट्रत्व की अभिव्यक्ति होती है। राष्ट्र का अंग्रेजी रूपान्तरण Nation (नेशन) पश्चिमी जगत में जाति, धर्म, भाषा के साथ जोड़कर देखा गया, जब प्रथम विश्वयुद्ध के समय यूरोपीय देशों में नश्लीय भावना जागृत हुई उदाहरण स्वरूप जर्मनी में। इसी मान्यता के कारण ब्रिटिश इतिहासकार जेम्स मिल ने अपने ग्रन्थ ''ब्रिटिश भारत का इतिहास'' में लिखा है ''भारत एक राष्ट्र नहीं बल्कि एक महाद्वीप है।''[1] एक अन्य इतिहासकार जॉन मालकम ने ''पालिटिकल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया'' में सिख और मराठों तक को अलग नेशन बताया।''[2] पाश्चात्य विचारक ही नहीं बल्कि विदेशी चश्में से भारत को देखने वाले रोमिला थापर जैसे इतिहासकारों का भी यह मानना है कि भारत के राष्ट्र के रूप में संगठित होने और राष्ट्रीयता का उदय और विकास में केवल अंग्रेजी शासन का योगदान रहा है। जबकि सच्चाई यह है कि भारत में हजारों साल पहले ऋग्वेद काल में, जब ब्रिटिश शासन की कल्पना भी किसी को नहीं रही होगी तब हमारे मनीषियों ने 'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहित' के रूप में राष्ट्र की अभिव्यक्ति की।[3]

राष्ट्र शब्द की भारतीय संकल्पना पाश्चात्य जगत से भिन्न है। राष्ट्र शब्द की व्युत्पत्ति 'रज' धु से हुई है, जिसमें औणादिक 'ष्ट्रन' प्रत्यय जोड़ा गया है। तद्नुसार इसका अर्थ है– 'राजते दिव्यते प्रकाशते शोभते इति राष्ट्रम', अर्थात जो स्वयं देवीव्यमान होने वाला है, वह राष्ट्र कहलाता है। 'राजते तत राष्ट्रम' व्युत्पत्ति से संकेत मिलता है कि वह भूभाग जो सर्वतंत्र स्वतंत्र हो, किसी से दबाया ना गया हो राष्ट्र कहलाता है।

राष्ट्र भारतीय राजनीतिक चिंतन परम्परा का आधार रहा है। इसका वर्णन हमारे प्राचीन ग्रन्थों वेद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि महान ग्रन्थ सबकी श्रद्धा के केन्द्र बने। तीर्थक्षेत्र, नदी, पर्वत, देवी–देवता, ऋषि–मुनि, सत्पुरूष आदि के साथ हमारा राष्ट्र एकात्मकता की भावना से खड़ा रहा। यहां तक कि जब हम स्नान करते समय ''गंगे च चमुने चैव गोदावरी, सरस्वती, नर्मदे सिंधु कावेरि जलेस्मिन सन्निधि कुरू''[4] श्लोक का उच्चारण करते है तो सम्पूर्ण भारत वर्ष का स्मरण हो जाता है।

राष्ट्र की संकल्पना में एकात्मकता की भावना को मजबूत करने के लिए एक भाषा के राष्ट्रव्यापी प्रयोग की स्वीकार्यता एक अहम मुद्दे के रूप में किसी भी समाज में रही है। यहॉ तक की भाषावाद और क्षेत्रीय भाषाओं को लेकर साम्प्रदायिक मनोवृत्ति को राष्ट्रीय भावना के लिए हानिकर माना जाता रहा है। इस परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रभाषा की संकल्पना विकसित हुई। 19वीं शताब्दी में राष्ट्र भाषा एक राजनैतिक विचारधारा का स्वरूप धारण कर लिया और सम्पूर्ण विश्व में राष्ट्रभाषा के आधार पर आधुनिक राष्ट्र–राज्यों का गठन होने लगा। यूरोप इसका एक उदाहरण हैं जहॉ 19वीं शताब्दी में बड़े–बड़े मध्यकालीन साम्राज्य आटोमन साम्राज्य, हंगेरियन साम्राज्य, तुर्क साम्राज्य कई आधुनिक राष्ट्र राज्यों में तब्दील हो गए और यह प्रक्रिया आज तक कई देशों में जारी है जहॉ एक से अधिक भाषाएँ बोली जाती है।

भारत के संदर्भ में राष्ट्रभाषा की बात करें तो स्वाधिनता आन्दोलन के समय राष्ट्रीय एकजुटता और एकमत के लिए राष्ट्रभाषा की आवश्यकता महसूस की गई। राष्ट्रपति महात्मा गांधी, काका साहेब कालेलकर, मोटूरी सत्यनारायण, बंकीम चन्द चटर्जी, सुभाष चन्द्र बोस, राजर्षि पुरूषोत्तमदास टण्डन जैसे विद्वानों द्वारा भारत के उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सभी क्षेत्रों से भारत को एक सूत्र में पिरोने के लिए हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने की वकालत होने लगी। भारत को स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में देखने की लालसा के कारण और हिन्दी के अखिल भारतीय स्वरूप के कारण हिन्दी को राष्ट्रभाषा की मान्यता स्थापित हो चली।

स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात विभाजन की स्मृतियों, ब्रिटिश राज्य के समय में अंग्रेजी की प्रभुत्व एवं भारत के इतिहास में कई सारे राज्यों के होने व उसमें परस्पर ईर्ष्या व संघर्ष की स्मृतियों के कारण भारत के संविधान निर्माताओं की मुख्य चिंता भारत की संप्रभुता, एकता एवं अखंडता को सुरक्षित रखना और उसकी लोकतांत्रिक व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाना था। अतः राष्ट्रभाषा का होना जरूरी समझ गया और कई सारे विकल्पों को सुझाया गया सबसे मजबूत पक्ष हिंदी का था जो सर्वाधिक जनसंख्या द्वारा बोली जाने वाली भाषा थी, वही पंडित नेहरू व महात्मा गांधी हिंदुस्तानी को राष्ट्रभाषा का दर्जा देना चाहते थे जो हिंदी व उर्दू का अद्भुत संगम थी व सामान्य बोलचाल की भाषा थी वहीं कुछ लोग अंग्रेजी को तो कुछ संस्कृति को राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे। दक्षिण राज्यों व अन्य राज्यों ने इसका प्ररजोर विरोध किया इसके कई राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक कारण थे।

इसी प्रकार भाषावाद की एक जटिल समस्या भारत में पनपने लगी और भाषा के आधार पर कई भारतीय राज्यों का विभाजन कर नये राज्यों का निर्माण हुआ जैसे आंध्र प्रदेश, गुजरात, मुंबई, पंजाब, चंडीगढ़। अंततः इसका अस्थाई समाधान यह निकल गया कि हिंदी और अंग्रेजी को राजकीय भाषा घोषित किया गया एवं त्रिभाषीय शिक्षा व्यवस्था को देने की बात की गई जिसमें राज्यों को अपनी मातृभाषा को राजकीय भाषा घोषित करने की स्वायत्यता दी गई। भारत सरकार और राज्यों की सरकारों के बीच संचार के लिए हिंदी एवं अंग्रेजी

का उपयोग सुनिश्चित किया गया। इस संदर्भ मे डॉक्टर भीमराव अंबेडकर ने कहा था ''स्वतंत्र राष्ट्रीय और स्वतंत्र राज्य के बीच एक सकरी सड़क ही होती है भाषा के आधार पर विभाजन उचित तो है किंतु यही भाषा उनको एक स्वतंत्र राज्य में विकसित करने में सक्षम है।''[5]

यह व्यवस्था 1952–65 के बीच अस्थाई रूप से संविधान के तहत चलती रही किंतु 1960 के दशक में दक्षिणी राज्यों में व्यापक एवं हिंसक हिंदी विरोधी प्रदर्शनों के बाद इंदिरा गांधी ने इसे स्थाई व्यवस्था में परिवर्तित कर दिया। फिर भी संविधान (धारा 321 के अनुसार) यह आदेश देता है कि हिंदी की स्वीकार्यता का निरंतर प्रयास किया जाए और उसको सरल रख हर क्षेत्र में उपयोग करने के लिए विकसित किया जाए। ताकि वह समय आने पर राष्ट्रभाषा का दर्जा प्राप्त कर सके।

वर्तमान समय में हिंदी भाषा के 43 प्रतिशत जनसंख्या द्वारा बोली समझी जाने वाली भाषा है जिसका व्यवहार अन्य भारतीय भाषाओं से कहीं ज्यादा है फिर भी भारत में किसी भी भाषा को राष्ट्रभाषा का आधिकारिक दर्जा नहीं दिया गया है। वस्तुतः भारत एक राष्ट्र राज्य नहीं अपितु राज्य राष्ट्र है अर्थात इसमें कई सारी राष्ट्रीयताएं मिलकर भारतीय राष्ट्रीयता का समन्वय करती है ऐसा इसलिए क्योंकि भारत विविध धर्मो, पंथो, भाषाओ, रीति–रिवाजो का अद्भुत संगम है। भारत की एकता का कारण ऐतिहासिक धार्मिक आत्मिक समरूपता में है जहां उसने हर धर्म पंथ समुदाय को अपना कर अपनी संस्कृति में डाला है और साथ में विभिन्न समुदायों भाषाओं को पनपने व विकसित होने का अवसर भी दिया। इस संदर्भ में डॉक्टर रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक भाषा और समाज में भारतीय भाषाओं के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण विचार दिए हैं उनकी मान्यताओं है कि ''एक आदि भारतीय आर्य भाषा नाम की कोई भाषा नहीं है जिन लोगो ने भाषाओं को अपना माध्यम बनाया उन्होंने उन्हें जन्म दिया।''[6]

भारत की प्रथम सांस्कृतिक परंपरा में नई भाषाओं के उत्थान पतन हुए और इस संदर्भ में कुछ भाषाओं ने राष्ट्रीय स्वरूप लेकर भारत को उत्तर से दक्षिण है पूरब से पश्चिम तक जोड़ने का कार्य किया। इसलिए हम संस्कृत, तमिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम में कुछ शब्द समानार्थता मिल ही जाती है। इस संदर्भ में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफेसर बी रेमनो ने अपने तथ्यपरक निबंध भारत एक भाषाई क्षेत्र में कहा है कि ''एक ही भूखंड की भाषा होने के कारण उत्तर और दक्षिण भाषाओं की वाक्य रचना में प्रकृति और प्रत्यय में शब्द और धातु में भाव धार में और चिंतन प्रणाली में और कथन शैली में प्रत्येक स्तर पर सामान्य दिखाई देती है।''[7]

भारत में जहां हर कोई भारतीय है तो वही गुजराती, तमिल, कन्नड़ इत्यादि प्रदेश का भी है। इसलिए स्वाधीनता के पश्चात जब 1956 में भाषाई राज्य गठित किए गए तो भारतीयता को सुदृढ़ ही किया जैसा कि अब तक का अनुभव बताता है। भारत में कुल 22 भाषाओं को राजकीय दर्जा प्राप्त है जबकि 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में 1635 भाषाएं हैं जो 10000 से अधिक जनसंख्या के समुदाय द्वारा बोली जाती है। तत्कालीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में जब त्रिभाषा फॉर्मूले को लागू करने की बात कही गई तो दक्षिणी राज्यों में हिंदी विरोधी स्वर उठने लगे इसके समाधान के लिए क्षेत्रीय भाषाओं के महत्व की बात कही गई। हालिया घटनाक्रम में तमिलनाडु सरकार द्वारा अपने क्षेत्रीय भाषा तमिल को महत्व देकर राष्ट्रीय राजमार्ग के हिंदी नाम की तमिल भाषा में बदलने भारतीय रुपए के सिंबल को तमिल में लिखने जैसी प्रतिकारी कार्य किए गए।

हमें इस समस्या के मूल में जाकर देखना होगा कि हिंदी भाषा के अलावा भारत की अन्य क्षेत्रीय भाषाओं

का भी अपना सांस्कृतिक एवं सामाजिक महत्व है जो उसे क्षेत्र की जनता की अस्मिता से जुड़ा है जहां हम हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में देखना चाहते हैं वही हमें क्षेत्रीय भाषाओं को समान बढ़ावा देना चाहिए। यह एक चिंताजनक विषय है कि संविधान द्वारा अनुमोदित ''त्रिभाषीय सूत्र'' अधिकांश हिंदी भाषिया राज्यों में उस तरह से लागू नहीं किया जा रहा जिस तरह से दक्षिण में हिंदी को सीखने पर जोर दिया जाता है। हमें अधिकांश हिंदी भाषायी राज्यों में कन्नड़, तमिल, तेलुगू, मलयालम, गुजराती जैसी भाषाओं को सीखने के लिए दक्षिण और पश्चिम भाषा शिक्षकों की नियुक्ति की जानी चाहिए इसे हिंदी जैसी भाषा में कन्नड़, तमिल, तेलुगू जैसी क्षेत्रीय भाषाओं के शब्द आएंगे और क्षेत्रीय भाषा का विवाद भी काम होगा साथ ही अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषा को वर्चस्वता से भी छुटकारा मिलेगा इसके लिए शिक्षा प्रणाली में व्यापक सुधार कर त्रिभाषीय सूत्र को कड़े रूप में लागू करने की आवश्यकता है।

अंततः हमें यह समझना चाहिए कि राष्ट्रभाषा लोगों पर थोपने से नहीं बल्कि जन आंदोलन के रूप में स्वयं से उत्पन्न होनी चाहिए अगर हम हिंदी को एक सरल, उपयोगी प्रतिवादी, लचीली एवं निरंतर अपने आप को नए कलेवर के रूप में गढने वाली भाषा के रूप में ढाल सके तो आशा है कि वह राष्ट्रभाषा के रूप में सभी को स्वीकार होगी और भारतीय भाषिक विविधता एवं राजनीतिक संघीय स्वरूप सुदृढ होगा। भाषिक एकता के लिए हम राष्ट्र की अखण्डता को खण्डित नहीं कर सकते। अतः भाषिक विविधता में ही भारत की राष्ट्रीय अखण्डता सुनिश्चित हो सकती है।

संदर्भ :-

1. मिल, जेम्स, (1819), दी हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इण्डिया : वल्डविन क्रोडोक एण्ड जांच, लन्दन।
2. माल्कम जांन (1826) पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया वाल्यूम। जान मेरी एल्वेम्रल स्ट्रीट, लन्दन।
3. शर्मा, बलदेव भाई (2018) भारत : सांस्कृतिक चेतना का अधिष्ठान, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 58–59
4. भिषीकर, चन्द्रशेखर परमानन्द (1999) पंडित दीन दयाल उपाध्याय विचार दर्शन, खण्ड–5 राष्ट्र की अवधारणा, सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 53
5. हिन्दी राष्ट्रभाषा से विश्व भाषा की ओर, डॉ0 सुरेश माहेश्वरी।
6. डॉ0 शर्मा, रामविलास ''भाषा और समाज''।
7. प्रो0 एमनो एम. बी. ''भारत की भाषाई क्षेत्र से साभार''।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 50-55

वृद्धावस्था की त्रासदी और संघर्ष का यथार्थ चित्रण करती हिंदी कहानियां

डॉ. मालोजी अर्जुन जगताप
सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभाग, सांगोला महाविद्यालय, सांगोला।

सारांश :-

वर्तमान युग में भौतिक सुविधाओं का विकास चरम पर है लेकिन मानवीय रिश्ते बिखरते नजर आते है। मानव स्वकेंद्री एवं अर्थ केंद्री बन गया है। स्व एवं पैसों के सामने उसे रिश्ते–नाते नहीं दिखाई देते सामूहिक परिवार के विघटन के कारण परिवार व्यवस्था चरमरा गई है। एक समय अपनी संतानों के लिए सम्पूर्ण जीवन परिश्रम एवं संघर्ष में व्यतीत करने वाले माता–पिता अपनी वृद्धावस्था में अकेले रहने, अपमानित एवं दुखी जीवन जीने के लिए मजबूर है। माता–पिता की संपत्ति के लिए उनकी हात्या करने के लिए भी पीछे नहीं हट रहे है।

मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'बूढ़ी काकी' न केवल एक करुण कथा है, बल्कि यह वृद्ध विमर्श की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण रचना है। इस कहानी के माध्यम से प्रेमचंद ने बुजुर्गों की उपेक्षा, पारिवारिक उपभोगवादी मानसिकता और वृद्ध जीवन की त्रासदी को अत्यंत प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया है। 'पिता' कहानी में संयुक्त परिवार में जिए जा रहे संबंधों को रेखांकित करने का प्रयास दिखाई देता है। यहाँ पिता रुढ़ियों से चिपके हैं, रुठी हैं, कंजूस हैं तो भी स्वाभिमानी हैं। परिवार के सुख से सुखी रहने वाले संतोष वृत्ति के धनी पिता। वे कठोर हैं पर निर्दय नहीं, मितव्ययी हैं पर अमानवीय नहीं, अंदर से दयालु हैं। नयी पीढ़ी उनकी अटपटी हरकतों को इसलिए नहीं सहन करती कि पिता वृद्ध हैं, श्रद्धेय हैं, बल्कि वह तो अपने लाभ के लिए उनके असंगत से लगने वाले व्यवहार को सहन करती है। यह स्वार्थ–वृत्ति नयी पीढ़ी को कहीं अधिक कठोर, निर्दय, महत्वाकांक्षी बना देती है। जिससे उसकी चेतना सुसंगति को नहीं प्राप्त कर पाती। ज्ञानरंजन इन चीजों को गइराई से देखने वाले रचनाकार हैं। भीष्म साहनी की यादें, कुछ और साल चीप, की दावत कहानियाँ वृद्धों को केवल करुणा के पात्र नहीं बनातीं, बल्कि उन्हें पूरे व्यक्तित्व, उनकी संघर्षशीलता, स्मृतियों, और मानवीय गरिमा के साथ प्रस्तुत करती हैं। उनका वृद्ध विमर्श न केवल व्यक्तिगत पीड़ा की अभिव्यक्ति है, बल्कि सामाजिक चेतना को जागृत करने वाला साहित्यिक योगदान भी है।

संकेत शब्द :- वृद्ध विमर्श, हिंदी कहानी, प्रेमचंद, ज्ञानरंजन, भीष्म साहनी।

प्रस्तावना :-

भारतीय संस्कृति जिसका मूल आधार परिवार है वह चरमरा गया है। आधुक पीढ़ी अपने स्वार्थ के लिए मूल्यों को तिलांजलि दे रही है। माता–पिता के प्रति कर्तव्य त्याग इनके लिए कोई मायने नहीं रखते। वृद्धो की दुरावस्था हमें सोच–विचार के लिए मजबूर करती है। हिंदी साहित्य समाज के साथ चलता दिखाई देता है हिंदी उपन्यास, कहानी, काव्य, नाटक और निबद्ध आदि में नारी, लघु मानव, दलित, आदिवासी, भारतीय इतिहास एवं संस्कृति का सूक्ष्म अंकन हुआ है। वर्तमान में रचनाकारों का दलित, आदिवासी, किन्नर और वृद्धों की समस्याओं की ओर ध्यान आकृष्ट हुआ है। कहानी आधुनिक युग की लोकप्रिय विधा है। प्रतियोगिता एवं गतिमान युग में लोगों के पास समय कम है और वह समय का सही उपयोग करना चाहते है। आज की हिंदी कहानी में कम शब्दों में, कम समय में महत्वपूर्ण विषयों को उठाया जा रहा है। फलस्वरूप भाव, संवेदना एवं शिल्प की दृष्टि से वह उसे अपनी अभिव्यक्ति लगती है। प्रेमचंद की बूढ़ी काकी, ज्ञानरंजन की पिता, भीष्म सहानी की चीप की दावत, यादे, 'कुछ और साल' और सूर्यबाला की संझवाती, उषा प्रियंवदा की वापसी कहानियां वृद्धावस्था की त्रासदी और समाज में बुजुर्गों की स्थिति का चित्रण करती हैं।

'बूढ़ी काकी' एक ऐसी कहानी है, जो वृद्धजनों की उन समस्याओं को उजागर करती है जो आज भी उतनी ही प्रासंगिक हैं। यह कहानी हमें यह सोचने पर विवश करती है कि हम अपने बुजुर्गों के साथ कैसा व्यवहार कर रहे हैं – क्या हम केवल उनकी सेवा का मूल्यांकन कर रहे हैं या उन्हें स्नेह और सम्मान भी दे रहे हैं? 'बूढ़ी काकी' कहानी एक वृद्ध महिला की है, जो अपने भतीजे बुद्धिराम के घर में रहती है। उसने अपनी सारी संपत्ति बुद्धिराम के नाम कर दी थी, जिसके बदले में उसने उसे सेवा का वादा किया था। लेकिन समय के साथ बुद्धिराम और उसकी पत्नी रूपा ने काकी को उपेक्षित करना शुरू कर दिया। एक दिन काकी को भोजन की इच्छा होती है, लेकिन उन्हें भोजन नहीं दिया जाता। इस उपेक्षा से आहत होकर काकी घर के आंगन में बैठ जाती है। अंत में रूपा की सहानुभूति से काकी को भोजन मिलता है, और कहानी एक सकारात्मक मोड़ पर समाप्त होती है। कहानी में वृद्धों की आर्थिक पराधीनता की समस्या, भोजन जैसी मूलभूत जरूरत की उपेक्षा, भावनात्मक उपेक्षा, शारीरिक अशक्तता की उपेक्षा और सामाजिक उपेक्षा आदि समस्याओं का चित्रण किया है।

बूढ़ी काकी ने अपनी सारी संपत्ति अपने भतीजे बुद्धिराम को दे दी। इसके बाद वह पूरी तरह उन पर निर्भर हो जाती हैं। यह दर्शाता है कि वृद्धों की सबसे बड़ी समस्या आर्थिक निर्भरता है, जो उनके आत्म सम्मान को भी नष्ट कर देती है। लेखक के शब्दों में "बूढ़ी काकी अब उनके ही रहमो–करम पर थीं..." इतना ही नहीं भोजन जैसी मूलभूत जरूरत की उपेक्षा की जाती है। भोजन जैसी बुनियादी आवश्यकता भी बूढ़ी काकी को समय पर नहीं मिलती। तिलक के दिन जब घर में कई प्रकार के व्यंजन बनते हैं, तब भी उन्हें उपेक्षित कर दिया जाता है। रूपा द्वारा यह कहना "ऐसे पेट में आग लगे, पेट है या भाड़? कोठरी में बैठते हुए क्या दम घुटता था? अभी मेहमानों ने नहीं खाया, भगवान को भोग नहीं लगा, तब तक धैर्य न हो सका? आकर छाती पर सवार हो गयीं। जल जाय ऐसी जीभ। दिन भर खाती न होती तो न जाने किसकी हांडी में मुंह डालती? गांव देखेगा, तो कहेगा कि बुढ़िया भर पेट खाने को नहीं पाती, तभी तो इस तरह मुंह बाये फिरती है। डायन न मरे न मांचा छोड़े। नाम बेचने पर लगी हैं। नाक कटवाकर दम लेगी। इतना ठूंसती है, न जाने कहां भस्म हो जाता है। लो! भला चाहती हो तो जाकर कोठरी में बैठों, जब घर के लोग खाने लगेंगे तब तुम्हें मिलेगा। तुम कोई देवी नहीं

हो कि चाहे किसी के मुंह में पानी न जाये, परंतु तुम्हारी पूजा पहले ही हो जाये।''[१] यह वृद्धावस्था में शारीरिक जरूरतों की उपेक्षा की मार्मिक अभिव्यक्ति है। बूढ़ी काकी को केवल भोजन ही नहीं चाहिए था, उन्हें अपनापन, सम्मान और स्नेह की भी उतनी ही आवश्यकता थी। परंतु परिवार उन्हें केवल बोझ समझता है। "वह दीवार की तरह हैं, जो खड़ी तो है लेकिन किसी की निगाह में नहीं।"[२] भावनात्मक सम्मान देना उतना ही आवश्यक है। उनकी आँखें कमजोर हैं, चलने में कठिनाई है, फिर भी घर का कोई सदस्य उनकी देखभाल करने को तैयार नहीं है। यह वृद्धजनों की शारीरिक दुर्बलता को अनदेखा करने की प्रवृत्ति दर्शाता है। समाज भी ऐसे वृद्धों को गंभीरता से नहीं लेता। विवाह जैसे अवसर पर भी बूढ़ी काकी को कोई सम्मानजनक स्थान नहीं मिलता, न ही उन्हें मेहमानों के बीच बैठने दिया जाता है।

'पिता' ज्ञानरंजन की महत्वपूर्ण कहानियों में से एक है। इस कहानी में रुढ़ियों से चिपके पिता के जिद्दी रुप को रेखांकित किया गया है। संयुक्त परिवार के टूटते चले जाने और युवाओं का शहरों की ओर रुख करने से बूढ़ों की अपनी समस्याएँ बढ़ी हैं। इस असहाय अवस्था में ये अकेले पडते जा रहे हैं। उनकी देखरेख करने वाला कोई नहीं रह गया है। ये लोग अक्सर गाँव में ही रह जाते है। 'पिता' में कहानीकार का उद्देश्य इस चिर–परिचित समस्या को रेखांकित करना नहीं है बल्कि पुरानी पीढी की रुढ़िवादिता को उद्घाटित करना इस कहानी का मुख्य उद्देश्य है। यहाँ पिता संयुक्त परिवार के एक सम्मानित सदस्य हैं। उनको पारिवारिक असम्पृक्ति के कारण अकेलापन या किसी प्रकार की असुविधा नहीं उठानी पड़ती बल्कि वे स्वयं चीजों के प्रति तटस्थता और अन्यमनस्कता दिखाते हैं। परिवार उन्हें छोड़कर कहीं नहीं जाता। वह तो उनके इर्द–गिर्द सुविधाएँ जुटाने का प्रयास करता है लेकिन पिता इन प्रयासों के प्रति कोई रुचि प्रदर्शित नहीं करते। ज्ञानरंजन की कहानियों के संदर्भ में डॉ. धनंजय लिखते है "ज्ञानरंजन में अनुभव की संश्लिष्टता है। यह संश्लिष्टता रचना को गहराई देती है। आज के परिवेश के बीच औसत आदमी की जिंदगी और जीने के पैटर्न को जिस तत्परता से उन्होंने व्यक्त किया है, उसके पीछे दृष्टि की गहराई स्पष्ट है।"[३] 'पिता' में पारिवारिक संबंधों के एक नए आयाम को उजामर करने की कोशिश दिखाई देती है जो दूसरी कहानियों से इसे अलग करती हैं। यहाँ पिता अपनी रुढ़ियों व संस्कारों से चिपके हुए हैं। आवश्यक सुविधाओं को भी वे फालतू खर्च समझ बैठते हैं। वह खुद "चौक से आते वक्त चार आने की जगह तीन आने और तीन आने में तैयार होने पर दो आने में चलने वाले रिक्शे के लिए पिता घंटे–घंटे खड़े रहेंगे। धीरे–धीरे सबके लिए सुविधाएँ जुटाते रहेंगे लेकिन खुद उसमें नहीं या कम से कम शामिल होंगे।"[४] परिवारजनों के बार–बार आग्रह करने पर भी वे उन सुविधाओं का उपयोग नहीं करते। जबकि घर के लोग आवश्यक सुविधाएँ मुहैया कराने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं।

आज जब संयुक्त परिवार के लगातार टूटने से बूढ़ों की स्थिति काफी दयनीय हो गई है, उन्हें प्रायः अकेलेपन में जीवन के आखिरी दिन बिताने पड़ते हैं तब ऐसे में अब भी संयुक्त परिवारों का अस्तित्व बना हुआ है और यहाँ बूढे संयुक्त परिवार के साथ रहते हुए भी नहीं रहते। यानी अपनी जिद और पुरानी मान्यताओं और विश्वासों से वे इस हद तक चिपके होते हैं कि किसी प्रकार का नयापन वे स्वीकार नहीं कर पाते। 'पिता' कहानी के पिता असहाय नहीं है। वे परिस्थितियों के अनुरूप खुद को ढाल लेते हैं। वे स्वाभिमानी हैं। किसी का एहसान नहीं लेना चाहते, यहाँ तक कि अपने बेटों का भी नहीं। बहन की पढ़ाई में भाई द्वारा खर्च किए गए रुपयों का हिसाब रखते हैं और एक दिन उस भाई को उतने रुपयों की एक पासबुक थमा देते हैं। उन्हें शक है कि कहीं

भविष्य में उनका बेटा अपनी बहन को यह अहसास न होने दे कि उसी की बदौलत उस बहन ने अपनी पढ़ाई पूरी की। तब शायद उसे अत्यन्त मार्मिक पीड़ा से गुजरना पड़ेगा और वह अपने पिता को माफ नहीं कर पाएगी। इस दृष्टि से पिता का यह कदम दूरदर्शितापूर्ण लगता है। पिता को व्यावहारिकता का पूरा पूरा ज्ञान है। पिता के इस कदम को भले ही अटपटा मान लिया जाए पर यह हमारे सामाजिक जीवन की एक संच्चाई है। और कोई भी स्वाभिमानी पिता अपनी किसी संतान पर दूसरों का एहसान बर्दाश्त नहीं करता। पुरानी पीढ़ी के लोगों में इस तरह की प्रवृत्ति ज्यादा देखने को मिलती है। 'पिता' कहानी परिवार के इन्हीं बिंदुओं को सहज ढंग से अभिव्यक्त करती है।

'वृद्ध विमर्श' यानी बुजुर्गों की समस्याओं, उनके अनुभवों, अकेलेपन, समाज में उनके स्थान, और उनके प्रति दृष्टिकोण– इन सभी पहलुओं पर भीष्म साहनी के लेखन में गहरी संवेदना देखने को मिलती है। 'यादे' उनकी एक ऐसी ही कहानी है जिसमें दो वृद्धाओं के जीवन–चक्र का चित्रण करते हुए वे यह दिखलाते हैं कि आज वृद्धों के जीवन में कितना अंधेरा है। कहानी का यह प्रसंग दृष्टव्य है– "नहीं, बच्चा, अब बहुत देर हो गयी है। अंधेरे से मैं बहुत डरती हूँ। और घुटनों से हाथों को दबाये, हाय रामजी कहकर, उठ खड़ी हुई, मैं तीन बार हड्डियाँ तुड़वा चुकी हूँ, बच्चा! एक दिन सड़क पर जा रही थी। पीछे से किसी साइकिलवाले ने आकर टक्कर मार दी। मैं औंधे मुँह जा गिरी। भला हो लोगों का जो उन्होने मुझे खाट पर डालकर घर पहुँचा दिया।"[५] इस कथन के पीछे छिपे वृद्धा की अंतर्मन की व्यथा को समझा जा सकता है। एक भरे–पूरे परिवार की वृद्ध औरत नितांत अकेले अपने सभी कार्य पूरा करती है।

भीष्म साहनी की कहानी 'कुछ और साल' में अवकाश प्राप्त सुपरिटेंडेट मधुसूदन के बुढ़ापे का चित्रण करते हुए वे लिखते हैं– "मधुसूदन की पत्नी बरसों पहले मर चुकी है दोनों बेटियों के ब्याह हो चुके हैं, एक नागपुर में रहती है, दूसरी कलकत्ता में बड़ा बेटा वकील है, इसी शहर में रहता है। कभी–कभी पत्नी की घुड़कियों के बावजूद बाप से मिलने आ जाता है। मंझला बेटा फौज में है और आजकल नेपाल में है। छोटा बेटा जंगलात के महकमे में अफसर है और आजकल देहरादून में है।"[६] स्पष्ट है कि जिन लोगों के लिए जवानी के दिनों में लोग सम्पत्ति इकट्ठी करते हैं वे तथाकथित अपने भी अपने वृद्धों की सुध लेने को तैयार नहीं दिखते एक शहर में रहते हुए भी पिता और पुत्र एक साथ नहीं रहते इस द्वंद्व को भी समझना जरूरी है।

खून का रिश्ता और चाचा मंगलसैन में वृद्ध–विमर्श का आर्थिक पक्ष देखा जा सकता है। आत्मीय रिश्तों के बीच पूंजीवादी व्यवस्था जिस ढगं से दरार डाली है वह इन कहानियों में स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होता है। बेकुसूर वृद्ध चाचा पर चोरी का इल्जाम लगाकर उसकी इज्जत तार–तार करना यह दिखलाता है कि आज के इस वस्तुवादी युग में पैसे के सिवा अपना सगा कोई नहीं है। वे लिखते हैं– "मगं लसेन गिरा भी अजीब ढंग से। धम्म–से जमीन पर जो पड़ा तो उकडू हो गया, और पगड़ी उतरकर गले में आ गयी। मनोरमा अपनी हँसी रोके न रोक सकी।"[७] ये पंक्ति आज के संवेदनहीन समाज की पराकाष्ठा दिखलाती है। सगे चाचा का गश खा कर गिरना और सगी भतीजी का उसे देख कर हँसना कितना विद्रूप चित्रण है यह वही समझ सकता है जिसने इस पीड़ा को महसूस किया हो।

भीष्म साहनी की कालजयी कहानी 'चीफ की दावत' हिंदी कथा साहित्य में जारी वृद्ध–विमर्श के सभी आयामों को अपने भीतर समेटती है। कहा जा सकता है कि चीफ की दावत में वृद्ध–विमर्श का उत्कर्ष दिखाई

पड़ता है। माँ के प्रति मिस्टर शामनाथ का जो वस्तुवादी दृष्टिकोण है वह आज के समाज की घृणित सच्चाई बयाँ करता है। वृद्ध माँ अपने पुत्र के लिए एक समस्या बन चुकी है क्यों क उसके दफ्तर का चीफ आज उसके घर रात्रिभोज के लिए आ रहा है। ऐसी स्थिति में माँ के किसी भी कृत्य से मसलन खर्राटे लेने से, उकडू बैठने से, बेतरतीब कपड़े पहनने से चीफ के सामने मिस्टर शामनाथ की इज्जत की मिट्टी पलीद हो सकती थी। वे समस्या का निदान करते हुए कहते हैं— "और माँ, हम लोग पहले बैठक में बैठेंगे। उतनी दरे तुम यहाँ बरामदे में बैठना। फिर जब हम यहाँ आ जाए तो तुम गुसलखाने के रास्ते बैठक में चली जाना।"[८] इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि आज की पीढ़ी पिछली पीढी के साथ संवेदनात्मक स्तर पर जुड़ी नहीं दिखती। कहानी के हर स्तर पर माँ की पीड़ा, संत्रास, दहशत और भय स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। जो माँ चीफ के आने से पहले तक समस्या थी वही तब जरूरी बन जाती है जब चीफ को उसकी बनाई फुलकारी पसंद आ जाती है। स्पष्ट है, आत्मीय रिश्तों के बीच हो रहे विचलन को भीष्म साहनी ने इस कहानी में यथार्थ रूप से प्रस्तुत किया है। माँ की पीड़ा की पराकाष्ठा इन पंक्तियों में दिखती है— "नहीं बेटा, अब तुम अपनी बहू के साथ जैसा मन चाहो रहो। मैंने अपना खा—पहन लिया। अब यहाँ क्या करूँगी। जो थोड़े दिन जिन्दगानी के बाकी हैं, भगवान का नाम लूँगी। तुम मुझे हरिद्वार भेज दो!"[९] वृद्ध माँ की व्यथा और दर्द की इन पंक्तियों में पराकाष्ठा नजर आती है। वह पुत्र जिसकी पढाई के लिए उसने अपने गहने तक बचे दिए, बस इस आस में कि यही तो मेरे बुढ़ापे की लाठी बनेगा उसी ने जब माँ की ओर से मुँह फेर लिया तब अपने सारे दुख को समेट कर वृद्ध माँ यह कहने को विवश होती है। यह आज का नग्न यथार्थ है और भीष्म साहनी ने इसे अपनी वृद्ध—विमर्श सम्बंधित कहिनियों में स्वीकारा है।

निष्कर्ष :-

बूढी काकी कहानी में प्रेमचंद का उद्देश्य केवल बूढ़ी काकी की करुण कथा कहना नहीं है, बल्कि समाज को आईना दिखाना है कि वृद्धों के साथ कैसा व्यवहार हो रहा है। अंततः जब रूपा (बहू) काकी को सहानुभूति और भोजन देती है, तो यह दिखाता है कि करुणा और संवेदना से सामाजिक बदलाव संभव है।

माँ, बहन, पिता और भाई से अलग होते हुए आज के आदमी को ज्ञानरंजन ने अपनी कहानियों के माध्यम से चित्रित किया है। 'पिता' कहानी में पुरानी पीढ़ी का अपने समकालीन परिवेश से कटते चले जाने का दर्द चित्रित है। इसमें बदली हुई मानसिकता का अंकन है। यह उस मानसिकता के साथ चल पाने में असमर्थ पिता की कहानी है। इसमें दो पीढियों के संघर्ष का चित्रण है। ज्ञानरंजन की कहानियों में मानवीय संबंधों की सूक्ष्म पहचान मिलती है।

भीष्म साहनी वृद्धों की स्थिति को केवल करुणा या सहानुभूति के दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि एक गहरी सामाजिक आलोचना और मानवाधिकार चेतना के साथ प्रस्तुत करते हैं। उनकी कहानियाँ यह स्पष्ट करती हैं कि वृद्ध केवल भूतकाल के अवशेष नहीं, बल्कि अनुभव, गरिमा और सम्मान के अधिकारी होते हैं।

संदर्भ :-

१. प्रेमचंद — बूढी काकी, गद्यांकुर संपा. डॉ. अनिल सालुंखे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. २०२३, पृ. १५

२. वही, पृ. १६

३. डॉ. धनंजय, आज की हिंदी कहानी, पृ. १०१
४. पिता – ज्ञानरंजन, कहानी कलश, संपा. डॉ. गिरीश काशीद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. २०२४, पृ.७६
५. साहनी, भीष्म – यादें, प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल पेपर बैक्स, पन्द्रहवाँ संस्करण, पृ. ४८
६. वही, पृ. ५६
७. साहनी, भीष्म–चाचा मंगलसैन, प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल पेपर बैक्स, पन्द्रहवाँ संस्करण, पृ. ३५
८. सहानी, भीष्म– चीफ की दावत, प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल पेपर बैक्स, पन्द्रहवाँ संस्करण, पृ. १६
६. वही, पृ. २२

दूरभाष–६६२१४७३८०७
Malojiraje1@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 56-58
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

भारतीय संविधान और भाषाई नीतियाँ – द्वेषपूर्ण भाषा एक चुनौती के रूप में

Abhinesh Kumar Jain
Dr. Tai Chourasiya, Dean,
Faculty of Law, Mansarovar Global University

भारत, जो विविधताओं का देश है, अपनी समृद्ध भाषाई विरासत पर गर्व करता है। यहां सैकड़ों भाषाएँ और बोलियाँ बोली जाती हैं, जो देश के सांस्कृतिक ताने–बाने को मजबूत करती हैं। भारतीय संविधान ने इस भाषाई विविधता को सम्मान दिया है और उसे संरक्षित रखने हेतु विभिन्न प्रावधान किए हैं। परंतु, इसी भाषाई बहुलता के बीच, अभद्र भाषा (Hate Speech) जैसी प्रवृत्तियाँ भी पनपने लगी हैं, जो सामाजिक सौहार्द्र, एकता और अखंडता के लिए गंभीर खतरा बन गई हैं। यह शोध पत्र भारतीय संविधान की भाषाई नीतियों और वर्तमान समय में बढ़ती अभद्र भाषा की समस्या का विश्लेषण करता है, साथ ही इस चुनौती का समाधान भी प्रस्तुत करता है।

भारतीय संविधान और भाषाई नीतियाँ :–

1. **भारतीय भाषाई विविधता :–** भारत विश्व के सबसे बड़े भाषाई विविधता वाले देशों में से एक है। 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत में 121 भाषाएँ और 270 से अधिक उपभाषाएँ बोली जाती हैं। इस विशाल विविधता को संविधान ने मान्यता दी है और उसकी रक्षा का संकल्प लिया है।

2. **संविधान के भाषाई प्रावधान :–** भारतीय संविधान ने भाषाओं के संरक्षण और संवर्धन हेतु निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रावधान किए हैं :

(क) राजभाषा (अनुच्छेद 343)

भारतीय संघ की राजभाषा हिंदी है, जो देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। अंग्रेजी भाषा का प्रयोग भी कार्यवाहियों में किया जा सकता है।

(ख) क्षेत्रीय भाषाओं को मान्यता (आठवीं अनुसूची)

आठवीं अनुसूची के अंतर्गत प्रारंभ में 14 भाषाएँ सूचीबद्ध थीं, जो अब बढ़कर 22 हो चुकी हैं। इन भाषाओं को संवैधानिक संरक्षण मिला है।

(ग) भाषाई अल्पसंख्यकों के अधिकार (अनुच्छेद 29, 30)

भाषाई तथा सांस्कृतिक अल्पसंख्यकों को अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति के संरक्षण का अधिकार है।

(घ) मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा (अनुच्छेद 350A)

राज्यों को निर्देशित किया गया है कि वे भाषाई अल्पसंख्यकों के बच्चों को उनकी मातृभाषा में प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करें।

(ङ) विशेष अधिकारी की नियुक्ति (अनुच्छेद 350B)

भाषाई अल्पसंख्यकों के अधिकारों की सुरक्षा हेतु एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति का प्रावधान है।

भाषाई नीतियों के उद्देश्य :-

- सभी भाषाओं का संरक्षण और विकास।
- भाषाई अल्पसंख्यकों को समान अधिकार प्रदान करना।
- भारतीय एकता और अखंडता को बनाए रखना।
- भाषाई विविधता में राष्ट्रीय एकता को सुनिश्चित करना।

अभद्र भाषा : एक सामाजिक चुनौती :

1. **अभद्र भाषा की अवधारणा :-** अभद्र भाषा उन शब्दों, भाषणों, या अभिव्यक्तियों को कहते हैं जो किसी व्यक्ति या समुदाय के विरुद्ध नफरत, अपमान, हिंसा, या भेदभाव को बढ़ावा देते हैं। यह भाषा जाति, धर्म, नस्ल, लिंग, क्षेत्रीयता, भाषा इत्यादि के आधार पर घृणा फैलाती है।
2. **अभद्र भाषा के प्रमुख कारण :-** राजनीतिक ध्रुवीकरणः चुनावों के दौरान भाषाई या धार्मिक भावनाओं को भड़काने की प्रवृत्ति, सामाजिक मीडिया का प्रसार बिना निगरानी के तेजी से फैलती नफरत। अज्ञानता और असहिष्णुताः विविधता को न समझ पाना और असहनशीलता का बढ़ना।
3. **कानूनी प्रवर्तन में ढिलाई :** अभद्र भाषा फैलाने वालों पर समय पर कार्रवाई का अभाव।

भारतीय विधि में अभद्र भाषा पर नियंत्रण :-

अभद्र भाषा को नियंत्रित करने के लिए भारतीय दंड संहिता (IPC) में विभिन्न प्रावधान किए गए हैं :

- **धारा 153A :** धर्म, जाति, जन्म स्थान, निवास आदि के आधार पर विभिन्न समूहों के बीच शत्रुता को बढ़ावा देना।
- **धारा 295A :** धार्मिक भावनाओं को जानबूझकर आहत करने के उद्देश्य से अपमान करना।
- **धारा 505 (1) :** अफवाह फैलाकर सार्वजनिक शांति को भंग करना।
- **आईटी अधिनियम, 2000 :** साइबर स्पेस में घृणास्पद सामग्री के प्रसार पर रोक।

भाषाई नीतियाँ और अभद्र भाषा : एक विरोधाभास :-

भारतीय संविधान भाषाई विविधता को बढ़ावा देता है और संरक्षण का वादा करता है। इसके विपरीत, अभद्र भाषा इस विविधता को नष्ट करने का प्रयास करती है। जब भाषा को घृणा फैलाने के हथियार के रूप में प्रयोग किया जाता है, तो वह संविधान के उद्देश्यों के विरुद्ध कार्य करती है। यह सामाजिक असंतुलन, अविश्वास, और हिंसा को जन्म देती है, जो लोकतंत्र के लिए अत्यंत घातक है।

वर्तमान समय में अभद्र भाषा के उदाहरण :

- भाषाई आधार पर एक राज्य के लोगों के विरुद्ध नफरत फैलाना।
- धार्मिक त्योहारों या भाषाई उत्सवों के समय भड़काऊ भाषण देना।

- सोशल मीडिया पर ट्रेंड्स के माध्यम से एक समुदाय विशेष के खिलाफ प्रचार।

समाधान और सुझाव :–

1. **शिक्षा के माध्यम से चेतना जागरण :–** विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में सहिष्णुता और विविधता का पाठ्यक्रम अनिवार्य करना, भाषाई और सांस्कृतिक विविधता का सम्मान सिखाना।
2. **सोशल मीडिया पर निगरानी :–** सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स को कानूनी रूप से उत्तरदायी बनाना, घृणास्पद सामग्री पर त्वरित कार्रवाई सुनिश्चित करना।
3. **सख्त कानूनी कार्यवाही :–** अभद्र भाषा फैलाने वालों के विरुद्ध त्वरित और प्रभावी कानूनी कार्रवाई, समय–समय पर न्यायालय द्वारा दिशा–निर्देश जारी करना।
4. **जनभागीदारी बढ़ाना :–** समाज के विभिन्न वर्गों को मिलकर अभद्र भाषा के विरुद्ध अभियान चलाना चाहिए, जनमाध्यमों का सकारात्मक प्रयोग कर सामाजिक सद्भाव को बढ़ावा देना।
5. **राजनीतिक इच्छाशक्ति :–** राजनीतिक दलों को नफरत फैलाने के किसी भी प्रयास से दूर रहना चाहिए, चुनावी भाषणों की निगरानी हेतु निर्वाचन आयोग को सशक्त बनाना चाहिए।

निष्कर्ष :–

भारतीय संविधान ने भाषाई विविधता को सम्मान और संरक्षण प्रदान कर राष्ट्रीय एकता को सशक्त किया है। किन्तु आज अभद्र भाषा की समस्या इस एकता को चुनौती दे रही है। भाषा का उद्देश्य संवाद और सौहार्द्र स्थापित करना होना चाहिए, न कि विभाजन और नफरत फैलाना। अतः संविधान के आदर्शों को वास्तविकता में साकार करने के लिए, समाज, सरकार, न्यायपालिका और मीडिया को मिलकर अभद्र भाषा के विरुद्ध संघर्ष करना होगा। तभी भारत, अपनी भाषाई विविधता में एकता का सपना साकार कर सकेगा।

Contact :9589350523
abhineshjain0148@gmail.com
Contact :9301017951
facultyoflaw@mguindia.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 59-61

गीतांजलि श्री की कहानी 'भीतराग' के सन्दर्भ में वृद्ध विमर्श

अनामिका

शोध छात्रा, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, वनस्थली विद्यापीठ।

गीतांजलि श्री आधुनिक युग की ऐसी कथाकार है जिन्होंने अपने कहानी लेखन में मानव जीवन के विविध पहलुओं जैसे जन्म–मरण, मध्यवर्गीय स्त्रियों की मनोदशा, जाति–पाति से सम्बन्धित भेदभाव, दाम्पत्य जीवन में घटित होने वाली घटनाओं के साथ–साथ वृद्धावस्था से सम्बद्ध प्रायः समग्र विषय पर अपनी लेखनी शैली चलाई हैं।

'भीतराग' जैसी कहानी वृद्धावस्था से सम्बन्धित गीतांजलि श्री की अत्यधिक चर्चित कहानी रही है। इस कहानी में कथा लेखिका ने सेवानिवृत्त हुए एक वयोवृद्ध व्यक्ति की मन–स्थिति को इस प्रकार उल्लेखित किया है कि प्रौढ़ावस्था में वृद्ध व्यक्ति को इसलिए अरुचि उत्पन्न हो जाती है कि वे होगा उन्हें अपनी अभिरुचि के अनुसार न तो कोई इधर–उधर आवागमन ही करने देते है और नहीं ही उनकी इच्छानुसार उन्हें कोई भोज्य सामग्री ही खाने–पीने देते है।

इन सभी कार्यों से चिन्तित होकर वयोवृद्ध व्यक्ति अपनी मृत्यु के बारे में सोचता रहता है कि इससे तो अच्छा में ईश्वर की शरण में चला जाऊँ। लेकिन इसी क्षण उनके समीप उनका एक मित्र आ जाता है जिसे देखकर ओर वार्तालाप करके सेवानिवृत्त हुआ व्यक्ति अत्यन्त प्रसन्न–चित्त हो जाता है क्योंकि उन्हीं के सान्निध्य में रहकर उनके कुछ पल हर्षोल्लास से व्यतीत होते हैं। "शाम के वक्त वे..........घूमने–फिरने के लिए निकल जाते थे। इष्ट मित्रों के घर पर जाना उन्हें अच्छा लगता था।"

सेवानिवृत्ति के पश्चात् व्यक्ति न केवल शारीरिक रूप से बल्कि मानसिक रूप से भी इतना निस्सार हो जाता है कि उसे अपनी युवावस्था व सेवानिवृत्ति से पूर्व बिताए गए सुखमय जीवन की स्मरण शक्ति इतना अधिक विचलित करने लगती है कि वह अपने परिवार–जनों के मध्य रहकर भी अपने–आपको अकेला तथा अप्रसन्न अनुभूत करने लगता है। इस एकाकीपन और अप्रसन्नता का प्रभाव बुजुर्ग मनुष्य के हृदय पर इतना अधिक पड़ने लगता है कि वह आन्तरिक एवं बाह्य रूप से अत्यधिक व्यथित व अशान्त रहने लगता है। इस व्यथिकता और अशान्ति के कारण व्यक्ति न तो दिन में सुखप्रद रह पाता है और न ही रात्रि में आरामदायक नींद

ले पाता है। इस तरह ऊहा–पोह वाली जिन्दगी व्यतीत करके व्यक्ति अपने समस्त मानुष जन्म को बिता देता है।

माता–पिता की अपनी सन्तानों के प्रति अटूट प्रेमानुभूति भी मनुष्य को प्रौढ़ावस्था में त्वरित गति से विकल करती रहती है क्योंकि व्यक्ति को एक–दूसरे से अत्यधिक अनुरक्ति रखना वयोवृद्धों को लालसा के चंगुल में जकड़ लेती है जिसके कारण व्यक्ति दूसरों पर आश्रितों हो जाते हैं।

इस प्रेमानुभूति के कारण ही व्यक्ति वृद्धावस्था में अपनी सन्तानों के पलायनवादी होने और अतिकाल तक भ्रमण करने पर वे अधिक मात्रा में खिन्न हो जाते है, क्योंकि उन्हें अपनी सन्तानों के वर्तमान और भविष्य की चिन्ता पतिक्षण धैर्यहीन करती रहती है कि कही हमारी सन्तति दुराचार के पथ पर तो अग्रसर नहीं हो रही है। "राजू और पिंकी कहीं जाते दोस्तों के घर, रिश्तेदारों के पास कभी–कभी पार्क में ही कि गिरधारी जी घर में डंडूरे की तरह घूमने लगते। कब आएंगे बच्चे।"

वृद्धावस्था में व्यक्ति का मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य दुर्बल होने के कारण वे स्वयं अपनी देख–रेख नहीं कर पाते है, जिसके कारण वयोवृद्ध अपने संगे–सम्बन्धिओं पर तन–मन–धन से आश्रित हो जाते है और परिवार–जन भी अपने वयोवृद्धों का कुछ अवश्यभावी कार्य में अपनी सहभागिता का निर्वहण करते है। इस अल्प कार्य निर्वहण के कारण प्रौढ़ व्यक्ति अपने मित्रों व सहपाठियों से वार्तालाप करके अपने वृद्धावस्था वाले जीवन में घटित होने वाली सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं पर विचार–विमर्श करके उन्हें अपनी प्रौढ़ावस्था से अलग करके अपना आनन्दायक जीवन बिताते है। युवा पीढ़ी की इस मानसिकता के बारे में कहा भी गया है कि "बच्चों की गलती नहीं। उन्हें अपने तक सीमित रहना सिखाया जा रहा है कि उन्हें किसी की जरूरत नहीं।"

सहपाठियों और मित्रों का सहयोग पाकर बुजुर्ग व्यक्ति कठिन–से–कठिन शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आर्थिक पीड़ाओं को सहन करने में अपने–आपको सक्षम बना लेते है। क्योंकि इस मामले में बुजुर्गों व्यक्तियों की यही धारणा रहती है कि 'यदि किसी एक वयोवृद्ध के अंतःकरण में किसी भी कार्य के प्रति निःत्साह उदित हो जाता है तो दूसरा बुजुर्ग मित्र उनका सहयोग करके उन्हें विपत्ति के मार्ग से निकाल कर सदगति के पद पर आसीन कर देता हैं।'

इतना ही नहीं प्रौढ़ावस्था व्यक्ति की एक ऐसी अवस्था होती है जिसमें मनुष्य का मन और मस्तिष्क बाल्यावस्था जैसा आचरण करने लगता है। बाल्यावस्था के प्रलोभन के कारण ही वृद्धजनों को मानसिक अधीरता तथा भाँति–भाँति के भोज्य पदार्थ खाने की तीव्र लालसा होती है। मानसिक अधीरता की खाद्य सामग्री की लिप्सा पूर्ण न होने पर वे अपने चारों और विराजमान लोगों से अपनी सन्तति व संगे–सम्बन्धियों की भर्त्सना करने में भी किसी प्रकार का संकोच नहीं करते हैं। वृद्धों की वास्तविकता के बारे में एक स्थान पर कहा भी गया है कि–" हमेशा पुरानी पीढ़ी नयी की जितना समझती है उससे भी बहुत कम हम नये लोग पुरानों को समझ पाते है।"

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'भीतराग' नामक कहानी गीतांजलि श्री द्वारा रचित ऐसी कहानी है जिसके अन्तर्गत नवयुवकों की अपने सेवानिवृत्त वृद्ध पिता के प्रति हीन भावना एवं कु–प्रवृत्ति को इस प्रकार चित्रित किया है कि सेवानिवृत्ति से पूर्व तो बुजुर्ग पिता अपने बाल–बच्चों, संगे–सम्बन्धियों व परिवारजनों के

मध्य रहकर इतने व्यस्त रहते है कि उन्हें अपने किशोर एवं युवा जीवन से कोई उपालम्भ नहीं रहता है लेकिन जैसे ही वे सेवानिवृत्त के पश्चात् वृद्धावस्था में प्रस्थान करते है वैसे ही उनकी सन्तति की मनोवृत्ति में ऐसी हो जाती है कि वे अपने वृद्ध पिता को अकेले रहने पर विवश कर देते हैं। अपनी इस एकाकीपन की समस्या से निजात पाने हेतु निराश्रित वृद्ध पिता अपने बुजुर्ग मित्र के समीप रहकर और वार्तालाप करके अपनी दिनचर्या व्यतीत करता हैं।

सन्दर्भ सूची –

1. डॉ. नरेन्द्र मिश्र, हिन्दी अनुशीलन, जनवरी–दिसम्बर, 2012, भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयाग, पृ. सं.–31
2. गीतांजलि श्री, प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010, पृ. सं.–106
3. चित्रा मुदगल, गिलिगडु, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 2005, पृ. सं.–34
4. सूर्यवाला, एक इन्द्रधनुष जुबेदा के नाम, पराग प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1977, पृ. सं.–78

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक SANGAM
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE Vol. 13, Issue 5
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL पृष्ठ : 62-64

मृदुला सिन्हा के उपन्यासों में विकलांगता और उनकी मनःस्थिति

कीर्तिका दुबे
पीएच.डी शोधार्थी, महाराजा सयाजीराव विश्वविध्यालय, वड़ोदरा।

प्रस्तावना :–

विकलांगता एक ऐसी स्थिति है जिसमें मनुष्य बाहरी शरीर के साथ–साथ आंतरिक मन से भी टूट जाता है। भारत में इन व्यक्तियों की स्थिति चुनौतीपूर्ण है। हिन्दी की प्रसिद्ध लेखिका मृदुला सिन्हा भारत की पहली लेखिका हैं, जिन्होने विकलांगो के जीवन पर अपनी दृष्टि डाली तथा कलम के माध्यम से समाज में उन्हें अलग पहचान दिलाई। इनका 'ज्यों मेहंदी को रंग' उपन्यास दिव्यांगों के जीवन पर आधारित है। उपन्यास में इस वर्ग के लोगों के प्रति परिवार और समाज का सोच तथा उनके द्वारा किए गए व्यवहार को बखूबी दर्शाया गया है। युग कोई भी हो इन लोगों को दीन–हीन और अपशगुन ही समझा जाता है, शायद इसीलिए लेखिका ने कहा है कि ''व्यक्ति की मानसिक अपंगता शारीरिक अपंगता से अधिक कष्टदायी होता है।''

दिव्यांग :–

दिव्यांग का अर्थ है शरीर के किसी अंग का स्वस्थ रूप से कार्य न करना, अर्थात दिव्यांगता एक ऐसी अवस्था है जिससे व्यक्ति शरीर के कुछ अंग न होने के कारण अथवा सभी अंगों के होते हुए भी उन अंगों का कार्य सही रूप से नहीं कर पाना। जैसे आँख होते हुए भी अंधत्व के कारण दिखाई नहीं देता, उँगलियाँ न होना, पोलियो से पैर ग्रस्त होना, कान में दोष होने के कारण सुनाई नहीं देना, बृद्धि कम होने के कारण पढ़ाई नहीं कर पाना अथवा बृद्धि होते हुए भी भावनाओं पर नियंत्रण न कर पाना आदि। समाज में वर्ग विभाजन आदिकाल से चला आ रहा है। अब ये उपेक्षितों का अपने अधिकारों के लिए अपना स्वर मुखर कर आ रहा है। इसी समाज का एक बेहद संवेदनशील तबका विकलांगों का है। समाज को इसे नजरन्दाज बिलकुल नहीं करना चाहिए। देखा जाए तो इनके प्रति आदिकाल से ही उपहास और तिरस्कार का रवैया रहा है। समाज में लोग विकलांगो को सहानुभूति और दया का पात्र समझ उन्हें ये एहसास कराते हैं कि तुम हमसे अलग हो, भिन्न हो। उन्हें सामान्य जन मानकर उनके अंदर की शक्ति को पहचानने की कभी किसी ने कोशिश ही नहीं किया, और यह हमारे समाज का दुर्भाग्य ही है जो उनके शक्ति को पहचान न पाया। जिस समाज की पहचान संवेदनशीलता, मानवता से होती है वह कहीं ना कहीं बड़ा कठोर हो जाता है इन विकलांगों के प्रति।

यही कारण है कि यह वर्ग सर्वाधिक उपेक्षित और एकाकीपन में जीवन जीने के लिए अभिशक्त रहा है।

खुशी की बात यह है कि इन विकलांगों को भारत सरकार उच्च स्थान प्रदान करते हुये इनके लिए नया शब्द 'दिव्यांग' प्रयोग करने की अपील की हैं, इस अपील का पालन सन 2015 से किया जा रहा है। और इन दिव्यांगों को समाज के सामान्य जनता के साथ जोड़ने का सफल प्रयास किया गया है।

भारत में दिव्यांगों की स्थिति :–

भारत में दिव्यांगों की स्थिति में पिछले कुछ दशकों में सुधार हुआ है, लेकिन अभी भी उनमें कुछ सुधार की आवश्यकता है, क्योंकि अभी भी कुछ चुनौतियाँ विद्यमान हैं, जैसे– शिक्षा और रोजगार, सरकारी सुविधाओं का अभाव, सुलभता आदि।

सामाजिक उपेक्षा का शिकार :–

विकलांगों के लिए हमारे समाज में एक–एक दिन गुजारना बड़ा मुश्किल हो जाता है। प्रत्येक समाज में इनको एक अलग ही नजर से देखा जाता है। कहीं–कहीं शुभ कार्यों के लिए इन्हें अपशगून माना जाता है, तो कहीं उपेक्षा का शिकार भी बनना पड़ता है। समाज और समाज के लोगों की सोच इतनी घटिया है कि ये लोग विकलांगों को उनके पूर्व जन्म का श्राप और कर्म बताते हैं।

मृदुला सिन्हा के उपन्यास 'ज्यों मेहँदी को रंग' में शालिनी जो कि उपन्यास की नायिका है, को अपने ससुराल में बहुत लाड–प्यार मिलता है। परंतु जबसे गंगा घाट में स्टीमर से उसका पैर कट कर गंगा में बह जाता है और वह विकलांग हो जाती है, तब से उसके ससुराल वालों का उसके प्रति रवैया ही बदल जाता है। जिस सास को वो घर की लक्ष्मी नजर आती है उसे अब शालू एक बोझ और अपशगुन नजर आती है। पति तो शुरुआत में बहुत ही प्यार करता है, पैर कटने के बाद भी जब शालू की चर्चा होती तो उसके आंखों में आंशू छलक आते परंतु, मनुष्य के व्यवहार को बदलते देर नहीं लगती, ठीक उसी प्रकार शालू के पैर कटने के बाद उसके पति पर दबाव आने लगे दूसरी शादी की। थोड़ी आना–कानी करने के बाद राजेश दूसरी शादी कर लेता है।

इससे यह पता चलता है कि समाज में मनुष्य के स्वभाव और व्यवहार का कोई मूल्य नहीं, अगर कीमत है तो सिर्फ शरीर की, उसके देह की, उसके जिस्म की। समाज में शालिनी की तरह ऐसे करोड़ों विकलांग होंगे जिन्हें अपने घर–परिवार में भगवान नजर आते हैं, परंतु परिवार को ये लोग बोझ दिखाई देते हैं।

विकलांगों की मनः–स्थिति :–

विकलांगों की मनःस्थिति को समझने में सबसे ज्यादा अगर कोई रचना सहायक है तो वह है मृदुला सिंहा का उपन्यास "ज्यों मेंहदी को रंग" । इसकी प्रमुख पात्र शालिनी अपने परिवार वालों की उपेक्षा और विकलांगता का दंश झेलती है। जबकि शालू बहुत ही स्वाभिमानी और इज्जतदार लड़की है। उसे पता चलता है कि उसका पैर कटने पर विकलांग होने पर पति ने दूसरा विवाह कर लिया, तब उसको समझते देर नहीं लगती कि ये पूरा समाज ही व्यवहार नहीं बल्कि शरीर का भूखा है। उसी क्षण वह ससुराल से नाता तोड़ देती है। जिस संस्थान ने उसे नया जीवन दिया, उसके प्रति पूरी तरह से समर्पित हो जाती है और दद्दा जी के लाख समझाने पर भी वह अपना निर्णय नहीं बदलती है।

शालिनी का जैसा नाम वैसा गुण है। वह अपने नाम के अनुरुप ही आचरण ग्रहण करती है। मृदुला सिन्हा के शब्दों में "सदा से पीठ पर लटकती लंबी चोटी को जुड़े का रूप दिया।.... अच्छी तरह धुली कलफ चढ़ी साड़ी

के पल्लू को बड़े सलीके से पहनती। आंचल कंधे से कभी बेढंग लटकता नहीं रहता उसका। इसलिए कभी वह अस्त–व्यस्त नहीं दिखती। उलटे पल्ले को कई प्लेट बना, कंधे पर रख कर पिन लगा लेती। और इन सबसे निखर कर उसका गोरा–चिट्टा मुखड़ा दपदप कर चमक आता।"[1] शालिनी के व्यक्तित्व को बखानते हुए लेखिका लिखती हैं कि "आंखें मात्र सामान्य आकार–प्रकार की होती हुई भी लुभावनी थी, मन के भावों को होंठ एवं जिह्वा से भी पहले अपने में उतार लेने की क्षमता से भरपूर। सारे अंग अपने प्रांतिक रंग में लिए ही रहते।....शालिनी स्वभाव से सरल होते हुए भी बड़ी सख्त थी। खुल कर भी बिल्कुल अंदर थी। महिमा और रेखा उसकी अंतरंग मित्र, उनसे भी कभी राजेश के प्रति अपने उठते–गिरते भावों को नहीं जताया। उसके व्यक्तिगत जीवन में कोई आसानी से प्रवेश नहीं कर सकता था। सामाजिक जीवन में उससे कोई अलग नहीं रह पाता था।"[2]

इंसान को जब अपनों का साथ नहीं मिलता तब वह खुद ब खुद आत्मनिर्भर हो जाते हैं। वहीं हाल शालिनी का है। शालिनी खुद के साथ–साथ संस्थान की औरतों को भी आत्मनिर्भर बनाती है। उसे गलत बिल्कुल बर्दाश्त नहीं। यहां तक की दद्दा जी की पत्नी के कूव्यवहार पर उन्हें भी अपने ढंग से जवाब दे देती है। अंत में शालिनी के इस व्यक्तित्व से प्रभावित हो दद्दा जी अपंगों की सेवा में अपने साथ शालिनी को भी उसी में रंगा–जमा देते हैं। दोनों ही अपनी पिछली जिंदगी को पीछे छोड़ कर अपंग के लिए जीने का संकल्प लेते हैं।

निष्कर्षः अतः इस उपन्यास में लेखिका दिव्यांगों की पीड़ा, उनकी अनुभूति को अभिव्यक्त करती है। समाज को यह सूचित करती है कि दिव्यांग जन भी स्वाभिमानी होते हैं, उनका भी अपना व्यक्तित्व और ईमान होता है। ये लोग क्या कुछ नहीं कर सकते बस आवश्यकता है तो सच्चे प्रेम और सम्मान के साथ उनकी भावनाओं को समझने की और बढ़–चढ़ कर उनका साथ देने की। समाज के नेक कर्म का ऐसे लोग ज्यादा इज्जत और सम्मान करते हैं। इसलिए इन्हें भी समाज से उतनी ही इज्जत और सम्मान की अपेक्षा होती है, परंतु वर्तमान से कुछ दशक पहले इन्हें हीन और अपशगुन समझा जाता था। फिलहाल वर्तमान में ऐसे घिनौने सोच वाले कम ही देखने को मिलते हैं जो कि हमारा परम सौभाग्य है।

संदर्भ सूची :-

1. मृदुला सिन्हा : 'ज्यों मेहंदी को रंग' पृष्ठ सं. 123, 124
2. मृदुला सिन्हा : 'ज्यों मेहंदी को रंग' पृष्ठ सं. 124
3. मृदुला सिन्हा : दांपत्य की धूप–छांव।

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 65-69

कृषक जीवन का सामाजिक सन्दर्भ

सुजीत कुमार राय
शोधार्थी, डी0 सी0 एस0 के0 पी0 जी0 कालेज, मऊनाथ भंजन, मऊ (उ0 प्र0)

उपन्यास का रूप बहुत बड़ा होता है। उपन्यास मानव जीवन के अनेकानेक रंगों को लम्बे समय तक जीवंत करने वाली एक क्षमतावान रीति है। इस कारण से उपन्यासकार के पास मानव जीवन के हर रूप को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त जगह मौजूद होती है। वर्तमान समय में खण्डकाव्य और महाकाव्य न लिखे जाने के कारण जीवन के हर बिन्दु को कहानी या कविता के माध्यम से अभिव्यक्त करना सरल नहीं है। कृषक जीवन की छोटी–बड़ी सभी प्रकार की विपत्तियों को दर्शाने में उपन्यास विधा जितनी प्रभावी है उतनी कोई अन्य विधा नहीं है। यही कारण है कि देश के बंटवारा जैसी अमानवीय समस्या पर हिन्दी कथा साहित्य में मजबूत रचनाएँ मिल जायेगी लेकिन कविता में नहीं।

साहित्य को समाज का आईना कहा जाता है। किसी भी देश के बारे में जानने के लिए उस देश के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक साहित्य को पढ़ना चाहिए, क्योंकि लेखक अपनी स्वतंत्र अभिव्यक्ति करता है। वह सामाजिक प्राणी होने के नाते समाज को समझता है और उसकी समस्याओं व विशेषताओं को अपने शब्दों में प्रकट करता है। उस पर किसी प्रकार का कोई दबाव नहीं होता है। हमारे भारतीय संविधान ने भी अपने सभी नागरिकों को अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की आजादी दी है। भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है। यहाँ अनेकता में एकता के गुण दिखायी देते है। फिलहाल इसके साथ बहुत ढेर सारी समस्याए भी है। परन्तु हम केवल किसान जीवन से सम्बन्धित समस्याओं को ही उठाने का प्रयास करेंगे।

भारत में जाति एक ऐसी समस्या है, जिसका समाधान होता दिखायी नहीं दे रहा है। चाहे क्यों न लोग गरीब से अमीर बन जाय, अपने धर्म को परिवर्तित कर ले, किसान से व्यापारी व मिल मालिक बन जाय, लेकिन अपनी जाति को बदल नहीं सकते। पहले कर्म आधारित जाति व्यवस्था थी लेकिन वर्तमान में जन्म आधारित जाति व्यवस्था का बोलबाला दिखायी दे रहा है। सहजानन्द सरस्वती किसानों की इस दयनीय दशा को देखते हुए कहते है– जिसके हाथ में पूरे ब्रह्माण्ड का जीवन हो और जिसकी एक करवट से सम्पूर्ण विश्व में त्राहिमाम मच जाए, वही आज स्वयं को सबसे निम्न स्तर पर पा रहा है। यह कितनी अजीब बात है। कृषक के परिश्रम, लगन और मेहनत पर ही यह समाज फल–फूल रहा है। देश की लगभग आधी अर्थव्यवस्था इन्हीं के मजबूत कन्धों पर टिकी हुई है। कृषक को किसी की आवश्यकता नहीं है। वह अपने कठिन परिश्रम से अपना और अपने परिवार का भरण–पोषण करने में सक्षम है लेकिन परजीवी लोग जो इन्हीं किसानों द्वारा ऊपजाई गयी फसल का नवीनीकरण करके उससे दुगुना और चारगुना लाभ कमाते है उनका बेड़ा गर्क हो जाएगा। बस जिस दिन

किसान को अपनी इसी ताकत का एहसास हो जाएगा, वे एकजुट हो जाएगें। उसी दिन सत्ता पलट जाएगी लेकिन न तो किसान ही एकजुट हो पा रहा है और ना ही ये परजीवी उसे एकजुट होने देना चाहते है। ये लोग कृषकों को कभी भी आगे बढ़ता हुआ नहीं देखना चाहते है। ये उन्ही के साथ अपनापन का दिखावा करते है और अन्दर ही अन्दर उन्हें दीमक की तरह कमजोर करते जा रहे है।

कृषक को राष्ट्र का आधार माना जाता है और उसकी स्थिति ऐसी हो गयी है कि जैसे वह धनी वर्ग व सत्तापक्ष की दया पर अपना जीवन यापन कर रहा है। सच तो यह है कि किसान अपने जीवन का हर पल देश को दे रहा है। परन्तु देश को चलाने वाले लोग न तो कृषकों के बारे में सोच रहे है न ही उनकी स्थिति को सुधारने के लिए कोई ठोस कदम ही उठा रहे हैं। और किसान अपने सामाजिक और जातिगत डर के कारण अपने हक और अधिकार को पहचान नहीं पाता है और नतमस्तक होकर अपना जीवन जीने को मजबूर रहता है। हमारे समाज को तोड़ने और बांटने में जाति ही सबसे बड़ा फैक्टर है। जो शोषण का सबसे बड़ा जरिया है और विडम्बना यह है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति इस बात को जानते हुए भी इसका हिस्सा बनता जा रहा है। लोग इस पर बात तो करते है पर नियम बनाने से डरते है। इस व्यवस्था में यदि सबसे कमजोर वर्ग कोई है तो वह है किसान, जो समाज का पेट तो भरता है परन्तु यही समाज उसे व उसके परिवार को हीन भावना से देखता है। समाज में उसकी कोई इज्जत नहीं होती हैं जबकि जो लोग मेहनत नहीं करते है, लोगों को ठगते हैं, डराते हैं, वही लोग समाज में सम्मान की दृष्टि से देखे जा रहे हैं। जिनका योगदान समाज में न के बराबर है उसे उच्च सम्मान और जिसका सम्पूर्ण जीवन ही समाज को आगे बढ़ाने के लिए समर्पित है उसे समाज में हीनता का एहसास कराना कहाँ तक उचित है? यह आज के समाज की विडम्बना ही तो है।

जाति व्यवस्था का जो भयावह रूप वर्तमान में दिखाई दे रहा है इससे विकट परिस्थितियाँ पूर्व के समाज में दिखायी देती है। जब से जन्म आधारित जाति व्यवस्था जीवन का आधार बनी है तब से समाज का पतन होता जा रहा है। ब्राह्मण चाहे अधर्मी हो, गुंडा बदमाश हो, दारुबाज़ या अनेक बुराईयों से परिपूर्ण ही क्यों न हो, उसे समाज में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। लाख कमी के बाद भी लोग उसे गुरु कहते हैं और उसके द्वारा कही गयी बातों को मानते है और उससे ही पूजा–पाठ करवाते है। ब्राह्मण जातिगत श्रेष्ठता के दम पर लोगों को लूटता है, डराता है।

भारतीय कृषक अपनी नैतिकता और मान–सम्मान के मकड़जाल में इस कदर उलझा हुआ है कि अपने मान–मर्यादा को बनाये रखने के लिए वह अपनी औकात से ज्यादा पैसा खर्च कर देता है। शिक्षा क्रांति और कृषि क्रांति से वह अभी भी बहुत दूर है। वह पारम्परिक कृषि में ही अटका हुआ है। अपनी इसी अज्ञानता के कारण वह दिन–प्रतिदिन और गरीब होता जा रहा है। वह लोगों के बहकावे में आसानी से आ जाता है और दिखावे के चक्कर में वह अपना सर्वस्व खर्च करने से पीछे नहीं हटना चाहता है। देवी–देवता, तीर्थ–व्रत, भूत–प्रेत, ओझा–सोखा के हजारों झोल–झाल में फंसकर वह अपनी खून–पसीने की गाढ़ी कमाई को उन्हें दे देता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण हमें गोदान में होरी की पत्नी के विचारों के रूप में दिखायी देता है।

रोटी, कपड़ा और मकान को मानव जीवन निर्वाह की मूलभूत आवश्यकताएँ माना जाता है। इनके बिना मानव का जीवन दूभर सा दिखायी देता है। आज के परिवेश में कुछ कृषक ऐसे भी है जिनके लिए इन मूलभूत आवश्यकताओं को इकट्ठा करना भी कठिन हो रहा है। मानव की इच्छा बहुत बड़ी होती है। जितना भी मिले

वह सब उसके लिए कम ही होता है। मानव स्वभाव ही ऐसा है कि एक इच्छा की पूर्ति होते ही दूसरी इच्छा स्वतः जागृत हो जाती है। ये इच्छाएँ अनन्त होती है। भौतिकवाद के इस युग में मानव इच्छाओं की पूर्ति सम्भव नहीं है, लेकिन जिनके पास अपने और अपने परिवार के लिए रोटी, कपड़ा और मकान ही नहीं है तो वे किसी अन्य वस्तु के बारे में कैसे विचार कर सकते है?

हमारे भारतीय ग्राम्य जीवन में भौतिक विकास तो तीव्रगति से हो रहा है परन्तु मानव सोच में परिवर्तन न हो पाने के कारण गाँव शहरों से पीछे होते जा रहे है। गाँव में आज भी पुरानी परम्पराओं, रूढ़ियों, नियमों, प्रथाओं को निभाया जाता है। ऐसा लगता है कि धर्म, संस्कृति को बनाए रखने की जिम्मेदारी इन्हीं के कन्धों पर रख दी गयी है।

किसी भी जीव को जिन्दा रहने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है। भोजन के बिना उसका शारीरिक–मानसिक विकास सम्भव नहीं है। खालीपेट कोई काम तो दूर नींद भी नहीं आती है। इसलिए एक कहावत कही जाती है कि ''भूखे भजन न होई गोपाला। ले लो अपनी कंठी माला।।'' परन्तु क्या कोई भी इस बात पर विचार करता है कि यह अन्न आता कहाँ से है? कैसे आता है? सभी लोग तो अपने–अपने निजी स्वार्थ में इस कदर रमे हुए है कि दूसरों के बारे में कुछ सोचना ही नहीं चाहते है। समाज का स्वरूप इतना विकृत हो गया है कि लोगों के पास दूसरों के लिए ना तो समय है और ना ही संवेदना। जो कृषक जी–तोड़ मेहनत करके दूसरों का पेट भरता है वह खुद के लिए व अपने परिवार के लिए दो वक्त के भोजन की भी व्यवस्था नहीं कर पा रहा है। समाज व सरकार ने अपनी व्यवस्था की चक्की में उसे इस कदर कुचल दिया है कि वह अपना सर उठाकर जी भी नहीं पा रहा है। समाज के साथ–साथ वह अपने परिवार के लोगों के ताने को सहता है और अंततः आत्महत्या जैसा गम्भीर कदम उठा लेता है। कृषक की आत्महत्या पर भी समाज के लोगों का ध्यान उसकी ओर न जाना, चुपचाप अपने ही काम में लगे रहना एवं असंवेदनशील समाज को दिखाता है। एक सर्वे के अनुसार हमारे देश में प्रतिदिन लगभग 4 से 5 किसान आत्महत्या करते है। परन्तु आत्महत्या के पीछे की मूल वजह को जानने के बजाए आजकल के राजनेता उसे अपने–अपने स्वार्थ के रूप में देखते हैं। समाज के पढ़े–लिखे लोग आज इस विषय पर मौन धारण किए हुए हैं या यूँ कहे तो उन्होंने भी सरकार से हाथ मिला लिया है। समाचार पत्रों में उनकी मृत्यु को एक छोटे से स्थान में सीमित कर दिया जाता है। आत्महत्या के पीछे की मूल समस्या के बारे में दो–चार लोग चट्टी और चौराहों पर बात करते है और फिर अपने–अपने घर जाकर उसे भूल जाते हैं।

समय तेजी से बदल रहा है। समय के साथ–साथ सरकारें आती है जाती है। नहीं बदल रहा है तो केवल कृषक की दयनीय परिस्थिति वह पहले जिस रूप में था कमोवेश आज भी उसकी परिस्थिति लगभग उसी तरह की बनी हुई है। जो एक चिंता का विषय है।

भारत में गाँवों की दशा बहुत ही दयनीय है। किसी भी तरह की सुख–सुविधाएँ, सरकारी योजनाओं को यहाँ तक पहुँचने में वर्षों लग जाते है। यदि कोई योजना भूले–भटके गाँव तक आ भी जाती है तो घरातल पर उतरने में भी उसे वर्षों लगते हैं। योजनाओं का लाभ पहले समाज के सुविधा–सम्पन्न लोगों को मिलता है, उसके बाद कृषकों को कृषकों के बच्चों को ना ही अच्छी शिक्षा मिल पाती है ना ही उचित स्वास्थ्य सुविधा। यही कारण है कि गाँवों का देश भारत आज गाँवों से निकलकर तेजी के साथ शहरों की ओर पलायन कर रहा है।

हमारा देश विविधता में एकता वाला देश है। यह एक धर्म निरपेक्ष देश है, जहाँ अनेक जाति, धर्म, भाषा और सम्प्रदाय के लोग एक साथ रहते हैं। इन लोगों ने साथ मिलकर देश से अंग्रेजों को भगाया परन्तु आजादी के बाद ही इसका विभाजन हो गया। विभाजन की विभीषिका बहुत ही भयानक थी। कितनों का परिवार उजड़ गया, कितने लोग अनाथ हो गए, गाँव के गाँव पलायन कर गए, भीषण रक्तपात हुआ, धर्म के नाम पर लोगों के बीच जहर घोला गया। उस घुले हुए जहर का प्रभाव आज तक समाज में दिखायी दे रहा है। आज भी अपने–अपने स्वार्थ के कारण लोगों को आपस में लड़ाया जा रहा है। चाहे धर्म का सहारा लेकर या जाति का चोला ओढ़कर समाज के ये ठेकेदार अपना–अपना हित साधने में आज भी लगे हुए है। इसका प्रभाव समाज पर किस प्रकार पड़ रहा है इसकी उन्हें कोई परवाह नहीं है। बस उनका अपना स्वार्थ सिद्ध होना चाहिए।

आज के परिवेश में खेती करना एक जुआ खेलने जैसा है। अनेक समस्याओं का सामना करने के बाद अगर कृषक अनाज के उत्पादन को बढ़ाने में सफल हो जाता है तो बाजार में उसका दाम घट जाने से उसका उचित मूल्य उसे प्राप्त नहीं हो पाता है। अनाज को बाजार में तुरन्त बेचना उनकी मजबूरी होती है क्योंकि यदि वे अपना अनाज नहीं बेचेगें तो उसे रखेगे कहाँ?

कैसे वो आगे के फसल को बोएगें। आगे की कृषि के लिए उन्हें बीज की आवश्यकता होती है जो उत्पन्न अनाज को बाजार में बेचने से ही पूरी हो पाती है। इसलिए उसे औने–पौने दामों पर अपने अनाज को बेचना पड़ता है। और उसी अनाज को खरीदकर उसे सुरक्षित रखकर ये साहूकार उसे स्वरूप परिवर्तन के साथ पुनः बाजार में लाते है और कई गुना अधिक में बेंच देते है।

पढ़े–लिखे लड़कों का खेती से मोहभंग होता जा रहा है। वे खेती करने में स्वयं को अपमानित महसूस कर रहे है। खेती करने के इतर वे मेहनत–मजदूरी करना चाहते हैं। क्योंकि खेतों में काम करने वाले को समाज में कोई सम्मान तो नहीं दिया जाता है, बशर्ते लोग उन पर छींटाकशी करते रहते हैं। जिससे वे स्वयं को अपमानित महसूस करते है। कामकाज की तलाश में उन्हें अपना घर परिवार छोड़कर बाहर जाना पड़ता है। जिससे समाज में संयुक्त परिवार प्रथा का विघटन बहुत तीव्रगति से हो रहा है। समाज के लिए एक गम्भीर समस्या बनती जा रही है। लोगों में केवल अपनेपन की भावना का तीव्र विस्तार हो रहा है जो आने वाले समय में और विकट रूप लेने वाला है। हमारा समाज संयुक्त परिवार प्रथा पर आधारित हुआ करता था। कोई कष्ट या मुसीबत आने पर परिवार के लोग अपने सामर्थ्य के अनुसार उस समस्या के समाधान में अपना–अपना योगदान देते थे। मिलजुल कर समस्या का निदान कर लिया जाता था। लेकिन स्वार्थ की भावना ने समाज में जहर घोल दिया है। यही कारण है कि संयुक्त परिवार बिखर गया है। सहयोग की भावना में धीरे–धीरे लोप होता जा रहा है। झूठ और दिखावा करने वालों का समाज में बोलबाला है और समाज भी उन्हीं को सम्मान की नजर से देख रहा है। जिससे कृषक स्वयं को समाज में अपमानित महसूस कर रहा है।

कृषक जिस समुदाय का अंग है, उस समुदाय या समाज में उसे जातीय उत्पीड़न, कर्ज, पुत्री का विवाह, साहूकारों, महाजनों, सरकारी अधिकारियों के उत्पीड़न से उनका नित–प्रतिदिन आमना–सामना होता रहता है। जिस देश में शिक्षित लोगों को उनकी योग्यता के अनुरूप काम नहीं मिल रहा है, वहाँ अशिक्षित लोगों को क्या मिलेगा? व्यवस्था ऐसी बन चुकी है कि किसान गाँव में सम्मान के साथ खेती नहीं कर पा रहा है और ना ही शहरों में मर्यादा के साथ जी पा रहा है। कृषकों की बढ़ती आत्महत्याएँ इस बात का स्पष्ट संकेत दे रही है कि

हमारी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था कितनी विसाक्त हो चुकी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1.. कथादेश : मई–2019, संपादक– हरिनारायण, अतिथि सम्पादक– सुभाष चन्द्र कुशवाहा, सहयात्रा प्रकाशन, प्रा0लि0 दिल्ली, पृ0 101

2. प्रेमचन्द्र, 'गोदान', पृ0 309

3. बी0 डी0 महाजन, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ0 73

4. चन्द्रबरदायी, पृथ्वीराज रासो– सुमित प्रकाशन–2012, आगरा, पृ0 372

5. मेगस्थनीज इण्डिका, भाग–4, राजकमल प्रकाशन–1990, पृ0 432

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 70-73

अमरकांत की कहानियों में अभिव्यक्त नारी जीवन के विविध आयाम

चंचल कौशिक
हिंदी विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली।

सारांश :-

स्वाधीनता के पश्चात हिंदी कहानी के क्षेत्र में एक बड़ा बदलाव विकसित हुआ जिसे हिंदी साहित्य में नई कहानी के नाम से जाना जाता है। नई कहानी स्वाधीनता के बाद लिखी जाने वाली कहानियों में से एक रही है। नई कहानी में स्वाधीन भारत और उससे उपजी समस्याओं को भली भांति देखा जा सकता है। अमरकांत नई कहानी के लेखक रहे है। अमरकांत का जन्म सन् 1925 में उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में एक छोटे से गांव में हुआ था। नई कहानी में आजादी के बाद भारतीय समाज का नया यथार्थ और भारतीय स्त्री जीवन को अमरकांत अपनी कहानियों के माध्यम से पेश करते है। अमरकांत ने अपने कथा साहित्य में स्वाधीन भारत के परिवेश में उपस्थित होने वाली हर सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक समस्याओं को अपनी कहानियों में उजागर किया है। अमरकांत का कहानी साहित्य बेहद लोकप्रिय हुआ है। अमरकांत की कहानियों में भारतीय मध्यवर्गीय जीवन केंद्र में रहा है। अमरकांत की संपूर्ण कहानियां मध्यवर्गीय जीवन को आधार बनाकर लिखी गई है इसका एक कारण ये भी था कि अमरकांत स्वयं मध्यवर्गीय परिवार से ताल्लुक रखते थे। मध्यवर्गीय जीवन की अनेक समस्याएं, नारी समस्याएं, राजनैतिक और सामाजिक संघर्ष को उनकी कहानियों में देखा जा सकता है।

बीज शब्द :- स्वाधीनता, आजादी, मध्यवर्गीय, नारी, संघर्ष, शोषण, अन्याय, पीड़ा इत्यादि।

शोध आलेख :-

आजादी से पूर्व भारतीयों में देश आजाद होने की लालसा थी किंतु जब देश आजाद हुआ तो भारतीय जनजीवन को गहरा आघात पहुंचा। आजादी से भारतीय समाज का मोहभंग होने लगा। देश आजाद होने के बाद भारतीय मध्यवर्गीय लोगों को बड़े दुखों का सामना करना पड़ता है। स्वाधीनता से सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवेश में बड़ा बदलाव आया जिसका प्रभाव सबसे अधिक निम्न मध्यवर्गीय लोगों पर पड़ता है। भारतीय समाज को तीन वर्गों में बांटा जाता है – उच्च वर्ग, मध्य वर्ग, निम्न वर्ग। भारतीय मध्यवर्गीय समाज

में स्त्री पक्ष केंद्र में रहती है। मध्यवर्गीय लोगों के जीवन को सुचारु रूप से आगे बढ़ाने में स्त्री की अहम भूमिका होती है। अमरकांत ने अपनी कहानियों में महिला पात्रों की भिन्न भिन्न तरह की समस्याओं का उल्लेख किया है। आजादी के बाद भारतीय महिलाओं के जीवन में गहन परिवर्तन हुआ है। आजादी से पूर्व भारतीय महिला संघर्षरत है और आजादी मिलने के बाद भी भारतीय महिला अपने जीवन से संघर्ष करती हुई प्रतीत होती है, परिवेश चाहे ग्रामीण हो या शहरी दोनों परिवेश की स्त्रियां संघर्षरत है। ग्रामीण परिवेश की स्त्री रूढ़िवादी पुरातन परंपराओं में फंसी है तो शहरी परिवेश की स्त्री आधुनिक और शिक्षित होने के बावजूद शारीरिक शोषण का शिकार है। अमरकांत की कहानियों में ग्रामीण और शहरी परिवेश दोनों महिलाओं का वर्णन है। अमरकांत की संपूर्ण कहानियों को दो खंडों में विभाजित किया जाता है। अमरकांत की कहानियों में नारी का दोहरा शोषण हुआ है।

अमरकांत की कहानी 'प्रिय मेहमान' में महिला पात्र नीलम का पति उसको युवावस्था में छोड़कर कही चला जाता है। पति द्वारा स्त्री को त्याग दिए जाने के बाद भारतीय समाज स्त्री में ही दोष निकालने लगते है। स्त्री को ही सदैव गलत समझा जाता है। नीलम एक पढ़ी लिखी लड़की है लेकिन पति द्वारा छोड़े जाने के कारण समाज के अन्य लोग उसे भोग विलास की प्रायः मात्र वस्तु समझते है। नीलम का मध्यवर्गीय समाज में दोहरा शोषण होता है। 'हत्यारे' कहानी की मजदूर स्त्री मेहनत करके अपना जीवन जीने को अभिशप्त है। दिन–रात मेहनत करने के बावजूद अपने परिवार का भरण पोषण करने के लिए अपना देह बेचने के लिए विवश दिखाई पड़ती है। गरीबी भारतीय मध्यवर्गीय जीवन की सबसे बड़ी समस्याओं में से एक है। अत्याधिक गरीबी लोगों को अनुचित कार्य करने के लिए मजबूर करती है। यही कारण है कि 'हत्यारे' कहानी की मजदूर पात्र देह बेचने को विवश है। अमरकांत की कहानियों में महिला पात्र सीधी तथा सरल स्वभाव की है।

'दोपहर का भोजन' कहानी में सिद्धेश्वरी संपूर्ण घर का संचालन करती है। घर की आर्थिक स्थिति खराब होने के बाद भी वह अपने परिवार को एकता के सूत्र में बांधे रखने का प्रयास करती है। अमरकांत की कहानियों में महिला पात्र मेहनती और कामकाजी है। 'मछुआ' कहानी की महिला पात्र विधवा है। भारतीय समाज में विधवा होना एक अभिशाप है। विधवा के लिए भारतीय समाज के कुछ नियम कानून निर्धारित हैं जिसका पालन प्रत्येक विधवा को करना पड़ता है। अमरकांत की विधवा पात्र आत्मनिर्भर होकर अपनी बेटी का भरण पोषण दिन रात मेहनत करके कर रही है परंतु समाज को ये स्वीकार्य नहीं है कि विधवा आत्मनिर्भर क्यों बन रही है? इसी प्रकार लेखक ने विधवा की समस्याओं को भी अपनी कहानियों में जगह दी है। 'असमर्थ हिलता हुआ हाथ' कहानी में मीना एक सुशिक्षित लड़की है। भारतीय समाज में लड़की के लिए अपने पसंद के लड़के से विवाह करना अपराध है परन्तु मीना जैसी महिला अपनी पसंद को अपने परिवार के सामने रखने का प्रयास करती है लेकिन पुरुष पात्र अपनी दंभ प्रवृति के कारण मीना से विवाह करने से इनकार कर देता है। मीना अपनी पसंद को छोड़कर अपने परिवार के निर्णय को अंतिम निर्णय के रूप में स्वीकार करती है। अपनी इच्छाओं का त्याग करना भारतीय महिलाओं की पहचान है। भारतीय महिला अपने जीवन में परिवार को सर्वोतम स्थान देती है।

'केले पैसे और मूंगफली' की सुमंगला पात्र आदर्श ग्रहणी के रूप में हमारे सामने पेश होती है। वह घर

की आर्थिक स्थिति खराब होने के बाद भी अपने पति का साथ देती है। भारतीय महिला अपने जीवनसाथी का साथ कभी नहीं छोड़ती है, चाहे कितनी भी बड़ी विकट समस्या सामने आ जाए। 'फुलरानी' कहानी में फुलरानी बुजुर्ग वर्ग में आती है। बुजुर्ग महिला अपनी पुरातन परंपराओं से जुड़ी हुई महिला है। वह दिन रात पूजा पाठ करती है। फुलरानी को ईश्वर में गहन आस्था है। पूजा पाठ करते हुए मृत्यु को प्राप्त हो जाती है।

अमरकांत की 'मूस' कहानी में महिला पात्र मुनरी अन्याय अत्याचार शोषण से पीड़ित है। मुनरी अपने जीवन से समझौता करने को विवश है। अमरकांत की कहानी 'विजेता' में नारी को भोगवादी दृष्टिकोण से देखा जाता है। विवाह उपरांत पति अपनी पत्नी को निजी संपति समझता है। 'विजेता' कहानी में नीलम का पति उसका शारीरिक और मानसिक शोषण करता है। अमरकांत की 'लड़का लड़की' कहानी में तारा की दुखद प्रेम गाथा का वर्णन है। समाज की रूढ़िवादी प्रथाओं में जकड़े होने के कारण उसका विवाह चंदर से नहीं हो पाता है।

'पलास के फूल' कहानी में जमींदारों द्वारा महिलाओं का जिस तरह शोषण होता है उसका वर्णन भी लेखक ने अपनी कहानी में किया है। जमींदारी प्रथा आजादी से पूर्व थी जिसमें बड़े बड़े जमींदार गरीब वर्ग के लोगों का शोषण किया करते थे परन्तु उसके बीज आजाद भारत में भी हमे देखने को मिलते है। जमींदार वर्ग छोटी जाति की महिलाओं को अपनी हवस का शिकार बनाते थे। 'बीवी के खत' कहानी में नौकरी के कारण पति को दूसरी जगह जाना पड़ता है इससे दाम्पत्य संबंधों में अलगाव की स्थिति पैदा हो जाती है। पत्नी अकेले रहने को विवश है।

'लाखो' कहानी परित्यक्त स्त्री की समस्या को हमारे सामने पेश करती है। दहेज न मिलने के कारण लाखो को उसके ससुरवाले गंगा तट पर छोड़ कर चले जाते है। पत्नी को बहुत दुखों का सामना करना पड़ता है दहेज प्रथा जिसकी वजह से सदियों से न जाने कितनी लड़कियां संघर्ष कर रही है। 'हंगामा' कहानी की लीला निसंतान होने की समस्या से परेशान है। लीला के ससुराल वाले उसको बहुत परेशान करते है। भारतीय समाज में कई महिला ऐसी है जो बच्चे को जन्म नहीं दे पाती है या किसी अन्य कारण की वजह से बांझपन से पीड़ित है। ऐसी महिलाओं का समाज द्वारा मानसिक शोषण किया जाता है। 'शेष बयान' और 'हौसला' कहानी में अनमेल विवाह का वर्णन है। 'शेष बयान' कहानी में कम उम्र की नाबालिक लड़की का विवाह अपने से बड़े युवक से कर दिया जाता है। वह जीवन भर अपने पति को अपना नहीं पाती है। 'दर्पण' कहानी में भी दहेज प्रथा का वर्णन है।

अमरकांत द्वारा रचित कहानी 'डिप्टी कलेक्टरी' लेखक की सर्वाधिक सुप्रसिद्ध कहानियों में से एक है। कहानी में महिला पात्र अपने पुत्र और पति के बीच प्रेम में फंसी हुई दिखाई देती है। एक पिता अपने पुत्र को डिप्टी कलक्टर बनाने के लिए हर संभव मदद करते है। एक पिता की अपने पुत्र से आकांशा जुड़ी रहती है। महिला पात्र पुत्र और पति के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करती है। भारतीय नारी अपने पुत्र और पति दोनों को बराबर महत्व देती है। परिवार की नारी का कार्य सबको साथ लेकर चलना होता है और इस

कहानी की नायिका भी यही कार्य करती है। 'नौकर' कहानी में एक ही परिवार की दो महिलाओं में आपसी मतभेद की स्थिति हमें देखने को मिलती है। दोनों महिलाओं में एक–दूसरे को लेकर जलन और ईर्ष्या भाव है। भारतीय परिवारों में महिलाओं का एक दूसरे से ईर्ष्या भाव रखना सामान्य सी बात है। देश में बढ़ती हुई आधुनिकता के कारण संयुक्त परिवार की महिलाओं में आपसी मनमुटाव की स्थिति पैदा हो गई है। ये कहानी हमारा ध्यान इसी ओर केंद्रित करती है कि बढ़ती हुई चकाचौंध ने महिलाओं के जीवन पर भी गहन प्रभाव डाला है।

'शुभ चिंता' कहानी में सीता आधुनिक विचारों से ओतप्रोत महिला है। सीता के लिए प्रेम सर्वोपरि है। सीता अपने प्रेम में सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार है परन्तु उसके बाद भी सीता का प्रेम असफल रह जाता है। यह कहानी आधुनिक महिलाओं की समस्याओं को हमारे सामने पेश करती है। स्त्री की प्रगति से ही देश का विकास संभव है।

'लड़की और आदर्श' कहानी में विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले छात्र छात्राओं का वर्णन है। कॉलेज के छात्र लड़कियों के आगे पीछे घूमकर अपना समय व्यतीत करते है और जब वही लड़किया उन्हें मना कर देती है तब उन्हें अपने घर की लड़कियां आदर्शवादी लगने लगती है। यह कहानी पुरुषों की खोखली मानसिकता को हमारे सामने उजागर करती है। 'शाम' कहानी की नायिका आर्थिक बेरोजगारी से त्रस्त है। कहानी की पात्र लता अपनी पारिवारिक स्थितियों को सुधारने के लिए भरसक प्रयास करती है। लता अपने घर के आसपास जाकर भीख मांगने का कार्य करती है। लता के पति को घर की आर्थिक स्थिति से कोई लेना–देना नहीं है। लता परिवार की जिम्मेदारी को भली–भांति समझती है। इस कहानी में लेखक ने लता के माध्यम से अपने कर्तव्य का निर्वाह करने वाली महिला के रूप में लता को चित्रित किया है। 'मुक्ति' कहानी में महिला पात्र ग्रामीण परिवेश से जुड़ी हुई अशिक्षित लड़की है जिसका विवाह एक शिक्षित युवक से हो जाता है। इस कहानी में पत्नी का अशिक्षित होने के कारण उसके दाम्पत्य जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इस कहानी की नायिका अपने अधिकारों के लिए जागरूक दिखाई पड़ती है। कहानी की नायिका शिक्षित होने का निर्णय लेती है और अपने दाम्पत्य जीवन को सुधारने के लिए सजग दिखाई देती है। 'स्वामी' कहानी की नायिका अपने पति से परेशान रहती है। पति सदैव अपनी पत्नी को शक की नजर से देखता रहता है। शक भारतीय समाज में एक ऐसा बीज है जिस भी रिश्ते में शक का कीड़ा लग जाए वह पति पत्नी के रिश्तों में दरार पैदा कर देता है। 'निर्वासित' कहानी में गंगू की पत्नी अपने घर का सारा कार्य करती है। वह दिन भर घर के कार्य करने में लगी रहती है। वह पति के काम में भी अपना सहयोग देती है। पत्नी चाहे दिन भर में कितना भी कार्य करे, परन्तु पति उसके कार्य को कोई महत्व नहीं देता है। ये कहानी हमारा इस ओर ध्यान केंद्रित करती है कि पत्नी द्वारा किए गए कार्य का सामाजिक जीवन में कोई महत्व नहीं होता है। 'मकान' कहानी धार्मिक अंधविश्वास पर आधारित कहानी है। कहानी की नारी पात्र का स्वास्थ्य बिगड़ जाने पर भी मकान को जिम्मेदार ठहराना ये धार्मिक अंधविश्वास की ओर हमारा ध्यान केंद्रित करती है।

'तूफान' कहानी में लड़कियों के अंतरजातीय विवाह की समस्या हमे देखने को मिलती है। पिता अपनी

बेटी का विवाह दूसरी जाति में करने का विरोधी है।

'प्रतीक्षा जारी है' कहानी में लेखक ने अपने आधुनिक सोच विचारों को पाठक वर्ग के सामने रखा है। कहानी के पात्र लड़की पैदा करने के लिए इच्छुक दिखाई देते है। 'सुख और दुख का साथ' कहानी में एक ऐसी महिला का वर्णन है जो सबके सुख–दुख में साथ खड़ी रहती है परन्तु जब उस पर विपदा आती है तो कोई उसकी मदद नहीं करता है। आज मनुष्य स्वार्थी हो गया है। प्रत्येक मनुष्य को अपने निजी स्वार्थ से मतलब है। यह कहानी स्वार्थपरक लोगों की ओर हमारा ध्यान केंद्रित करती है।

निष्कर्ष :–

आजादी से पूर्व और आजादी के बाद भी भारतीय नारी का जीवन सदैव दुखों से भरा रहा है। बीसवीं शताब्दी में भी भारतीय नारी संघर्षरत थी और आज इक्कीसवीं शताब्दी में भी नारी अपने अधिकार को प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर रही है। आधुनिक काल में स्त्री शिक्षित होने के बावजूद पुरातन रूढ़िवादी परम्पराओं व मान्यताओं में जकड़ी हुई दिखाई देती है। अमरकांत की कहानियां आजाद भारत में स्त्री जीवन और उनकी समस्याओं को हमारे सामने प्रस्तुत करती है। अतः अमरकांत और उनकी कहानियां हमारे लिए आज भी प्रासंगिक है।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 74–86

CSR Communication and Tribal Empowerment in Chhattisgarh : A District-Level Study of Dhamtari, Kanker and Bastar

Sayed Amir Mustafa Hashmi, Research Scholar,
Kushabhau Thakre University of Journalism and Mass Communication, Raipur, Chhattisgarh, India
Dr. Ashutosh Mandavi, Professor & Head,
Department of Advertising and Public Relations Studies
Kushabhau Thakre University of Journalism and Mass Communication, Raipur, Chhattisgarh, India
Dr. Nripendra Kumar Sharma, Assistant Professor, Department of Journalism
Kushabhau Thakre University of Journalism and Mass Communication, Raipur, Chhattisgarh, India

Abstract :

This paper examines the role of Corporate Social Responsibility (CSR) communication in supporting tribal empowerment in Chhattisgarh, with a focus on three districts: Dhamtari, Kanker, and Bastar. It explores how communication strategies used within CSR frameworks influence development outcomes in education, healthcare, environment, and livelihoods among tribal populations. The study analyses the use of regionally adapted communication practices, including community-level outreach and local media integration, to improve awareness and participation. Evidence suggests that targeted and culturally contextualised communication plays a significant role in increasing programme acceptance and effectiveness, particularly in areas involving women's collectives and forest-based enterprises. The paper identifies barriers such as linguistic diversity, limited access to communication infrastructure, and cultural disconnects, which continue to affect programme reach and sustainability. Based on the analysis of recent CSR initiatives and policy documents, the paper recommends ways to enhance communication models to improve the responsiveness, accessibility, and impact of CSR interventions in tribal regions of Chhattisgarh.

Keywords : CSR Communication, Tribal Empowerment, Chhattisgarh, Livelihood Development, Inclusive Development, Community Participation.

Introduction :

Chhattisgarh, a state with a significant tribal population, faces persistent socio-economic challenges rooted in historical marginalisation, limited infrastructure, and ecological dependency. As per Census 2011, Scheduled Tribes constitute over 30% of the state's total population, concentrated largely in districts such as Dhamtari, Kanker, and Bastar. These regions, rich in natural resources, are also marked by high levels of poverty, low literacy rates, and inadequate access to health and livelihood services.

In response to these challenges, Corporate Social Responsibility (CSR) has emerged as an important vehicle for inclusive development, particularly following the implementation of the Companies Act, 2013, which mandates certain firms to invest in community welfare. In tribal areas, CSR interventions increasingly aim to support education, healthcare, environmental protection, and livelihood generation. However, the success of these interventions is closely tied to the effectiveness of communication strategies employed to engage with local communities.

CSR communication plays a crucial role in creating awareness, ensuring participation, and building trust among tribal populations. In areas with linguistic diversity, cultural complexity, and limited digital penetration, communication must go beyond dissemination to become dialogue-oriented and locally relevant. The design, language, medium, and frequency of communication significantly impact the reach and sustainability of CSR programmes.

This study examines the relationship between CSR communication and tribal empowerment in three tribal-majority districts of Chhattisgarh: Dhamtari, Kanker, and Bastar. It seeks to understand how communication strategies influence the outcomes of CSR initiatives in areas such as education, health, environment, and livelihoods. The research further explores the structural and cultural challenges faced in the communication process and suggests context-specific improvements to enhance effectiveness. In doing so, the study contributes to the broader discourse on development communication and the role of corporate engagement in addressing regional inequalities.

Review of Literature :

Corporate Social Responsibility (CSR) has evolved as a strategic mechanism for promoting inclusive development, particularly in regions with socio-economic disparities. The enactment of Section 135 of the Companies Act, 2013 institutionalised CSR obligations in India, requiring qualifying companies to spend a minimum of 2% of their average net profits on socially beneficial activities. This legal mandate has led to a growing body of literature focusing on the nature, scope, and impact of CSR initiatives, especially in underserved regions such as tribal areas.

CSR communication, as a distinct research domain, refers to the methods and strategies

employed by corporations and implementing agencies to disseminate, engage, and build trust with beneficiaries. Du, Bhattacharya, and Sen (2010) argued that transparent and stakeholder-focused communication enhances corporate credibility and increases the perceived legitimacy of CSR efforts. Morsing and Schultz (2006) further proposed the need for two-way symmetric communication models that prioritise dialogue over one-way dissemination, particularly in socially sensitive contexts.

When applied to tribal development, CSR communication requires contextual understanding of language, culture, and social structure. Tripathi and Jha (2018) observed that top-down communication models often fail in tribal regions due to linguistic and cultural disconnects, limiting the impact of even well-funded CSR programmes. In contrast, community-driven communication strategies, including participatory media, vernacular messaging, and local facilitators, have shown positive outcomes in awareness-building and programme ownership (Sarkar, 2020).

Several case studies from Indian tribal regions have highlighted sectoral outcomes of CSR activities in education, health, and environment, but fewer studies focus specifically on how communication mediates these outcomes. For example, Singh (2021) noted that livelihood-oriented CSR projects in forest-based tribal communities performed better when accompanied by consistent, local-language communication and feedback mechanisms. Similarly, Reddy and Bhanumurthy (2019) emphasised that the success of CSR-led water and sanitation initiatives depended largely on sustained behavioural communication campaigns adapted to local realities.

While many CSR impact studies rely on company reports, scholars such as Banerjee (2017) and Ray (2020) have critiqued this approach for lacking community perspectives and often overstating corporate outcomes. Thus, a growing emphasis has emerged on evaluating implementing agency reports and triangulating data with government and independent research findings to ensure objectivity.

The gap this study addresses lies at the intersection of CSR communication and tribal empowerment in the context of Chhattisgarh—a region with dense tribal populations and active CSR implementation. While broader frameworks exist, there is a lack of district-level, communication-specific analysis that examines how CSR messaging influences community participation and programme effectiveness across sectors like education, healthcare, environment, and livelihoods. This study builds on existing theoretical insights while contributing region-specific empirical observations that may inform both academic and policy-oriented discussions.

Methodology :

This study adopts a qualitative, comparative case study approach to examine how Corporate Social Responsibility (CSR) communication contributes to tribal empowerment in the districts of Dhamtari, Kanker, and Bastar in Chhattisgarh. The selection of these districts is based on their

significant tribal population, presence of active CSR initiatives, and representation of diverse socio-environmental contexts within the state.

The research relies entirely on secondary data sources. CSR communication practices and sector-specific interventions were analysed through CSR disclosures of relevant companies from the financial years 2019–2023. Instead of depending solely on corporate narratives, greater emphasis was placed on reviewing reports, activity records, and monitoring documents published by implementation partners and civil society organisations involved in programme execution in tribal areas. Government publications, including Census 2011 data, NITI Aayog district development reports, and reports from the Ministry of Tribal Affairs and State CSR Authority, were utilised to establish baseline demographic and socio-economic conditions.

The study also draws from peer-reviewed academic literature to understand theoretical models of CSR communication and its impact on development. Communication strategies were mapped and categorised based on their mode (oral, print, digital), level of localisation, language adaptation, and participatory elements. District-level comparisons were made to identify variations in communication models and their observed influence on awareness, community participation, and beneficiary outcomes—especially among women and forest-dependent tribal groups.

No primary data collection was undertaken. The reliability of secondary data was ensured by triangulating information from at least two independent sources per observation. Data was thematically coded and interpreted to identify patterns, gaps, and insights relevant to CSR communication efficacy in tribal empowerment contexts.

Demographic and Socio-Economic Context :

Chhattisgarh is one of India's most tribal-dominated states, with Scheduled Tribes constituting approximately 30.6% of its total population (Census 2011). The tribal presence is especially concentrated in districts such as Dhamtari, Kanker, and Bastar, which form part of the larger Bastar plateau—an ecologically rich but socio-economically marginalised zone. The communities residing in these regions include major tribal groups such as Gond, Halba, Maria, Muria, and Bhatra, who are predominantly forest-dependent and maintain distinct cultural and linguistic identities.

In **Dhamtari**, tribals make up over 25% of the district's population. While the district has moderate agricultural activity, a large section of the tribal population relies on collection and sale of non-timber forest produce (NTFP), primarily tendu leaves, mahua, and medicinal plants. Literacy among tribal women remains significantly below the state average, and health indicators—particularly maternal and child health—show persistent gaps.

Kanker, located in the central tribal belt of the state, has nearly 55% tribal population. The

district is characterised by high forest cover and seasonal migration due to the limited availability of sustainable livelihoods. Agricultural productivity is low due to rainfed conditions, and forest-based activities are often under-organised. Access to clean drinking water, sanitation, and functional healthcare centres remains uneven across tribal villages.

Bastar, historically one of India's most underdeveloped districts, has a tribal population exceeding 66%. Known for dense forests and complex terrain, the region faces multifaceted development challenges. Health infrastructure is sparse, educational institutions are often inaccessible, and employment opportunities are scarce outside the forest economy. A significant portion of the tribal population in Bastar engages in tamarind collection and lac cultivation, which serve as seasonal income sources but remain vulnerable to market fluctuations and middlemen exploitation.

Across all three districts, tribal livelihoods are closely tied to natural resources and traditional knowledge systems. However, their integration into formal development frameworks—especially through Corporate Social Responsibility (CSR) interventions—has been limited by linguistic diversity, socio-economic isolation, and infrastructural constraints. The cumulative effect of these factors has led to persistent disparities in health, education, income, and access to basic services among tribal populations.

This contextual overview highlights the importance of tailored and inclusive CSR communication strategies. Without addressing the ground realities of tribal communities—such as language, mobility, and media access—CSR programmes risk low participation, poor impact, and lack of sustainability. The study therefore places this demographic backdrop at the centre of its analysis to evaluate how communication strategies align with the actual needs and capacities of tribal populations in Chhattisgarh.

Effective communication is central to the success of Corporate Social Responsibility (CSR) initiatives, particularly in tribal regions where socio-cultural dynamics and infrastructural limitations shape how information is accessed and understood. In Chhattisgarh's tribal districts of Dhamtari, Kanker, and Bastar, CSR communication strategies have evolved to address challenges related to language diversity, low literacy, and limited digital penetration.

A key feature of CSR communication in these areas is the use of **offline and community-based methods**, such as village-level meetings, wall paintings, street plays (nukkad nataks), and locally organised information campaigns. These channels are not only cost-effective but also culturally accessible. In many programmes, visual aids and oral storytelling formats are used to simplify messages around health, education, sanitation, and livelihoods. Communication through **Self-Help Groups (SHGs)** and community resource persons has also emerged as a reliable strategy, especially for

reaching women and forest-based worker groups engaged in tamarind collection, lac cultivation, and other seasonal livelihoods.

In areas with better connectivity—particularly near semi-urban clusters—**digital communication** has been selectively introduced. This includes WhatsApp-based group coordination for training schedules, awareness videos, and updates related to welfare schemes. However, the reach of such initiatives remains limited due to patchy mobile networks and digital illiteracy, especially among older tribal women.

Language localisation plays a critical role. In many interventions, materials are translated or adapted into regional dialects such as Halbi, Gondi, and Chhattisgarhi. Community radio, where operational, has been used to broadcast programmes on health awareness, forest rights, and educational schemes. In-school activities supported under CSR projects also use context-sensitive content and involve local teachers to improve trust and retention among tribal children.

CSR implementing agencies have also employed **participatory communication models**, wherein beneficiaries are involved in identifying needs, shaping interventions, and giving feedback. This shift from top-down communication to more inclusive dialogue has helped improve programme uptake and retention. In Kanker and Bastar, for instance, women involved in lac and tamarind value chains were more responsive when messages were shared through peers or facilitators from their own community.

Nonetheless, limitations remain. In many areas, communication is still one-directional, with little scope for feedback or adaptation based on local understanding. Monitoring mechanisms for evaluating the effectiveness of communication efforts are often absent or weakly structured.

Overall, CSR communication in tribal Chhattisgarh reflects a growing recognition of the need for culturally grounded, participatory, and multi-modal strategies. The balance between traditional and digital platforms, the emphasis on local language, and the use of peer networks are shaping how tribal communities engage with CSR interventions. The success of these strategies depends not only on message content but on sustained interaction, mutual trust, and responsiveness to local conditions.

CSR Communication Strategies in Tribal Areas :

Effective communication is central to the success of Corporate Social Responsibility (CSR) initiatives, particularly in tribal regions where socio-cultural dynamics and infrastructural limitations shape how information is accessed and understood. In Chhattisgarh's tribal districts of Dhamtari, Kanker, and Bastar, CSR communication strategies have evolved to address challenges related to language diversity, low literacy, and limited digital penetration.

A key feature of CSR communication in these areas is the use of **offline and community-**

based methods, such as village-level meetings, wall paintings, street plays (nukkad nataks), and locally organised information campaigns. These channels are not only cost-effective but also culturally accessible. In many programmes, visual aids and oral storytelling formats are used to simplify messages around health, education, sanitation, and livelihoods. Communication through **Self-Help Groups (SHGs)** and community resource persons has also emerged as a reliable strategy, especially for reaching women and forest-based worker groups engaged in tamarind collection, lac cultivation, and other seasonal livelihoods.

In areas with better connectivity—particularly near semi-urban clusters—**digital communication** has been selectively introduced. This includes WhatsApp-based group coordination for training schedules, awareness videos, and updates related to welfare schemes. However, the reach of such initiatives remains limited due to patchy mobile networks and digital illiteracy, especially among older tribal women.

Language localisation plays a critical role. In many interventions, materials are translated or adapted into regional dialects such as Halbi, Gondi, and Chhattisgarhi. Community radio, where operational, has been used to broadcast programmes on health awareness, forest rights, and educational schemes. In-school activities supported under CSR projects also use context-sensitive content and involve local teachers to improve trust and retention among tribal children.

CSR implementing agencies have also employed **participatory communication models**, wherein beneficiaries are involved in identifying needs, shaping interventions, and giving feedback. This shift from top-down communication to more inclusive dialogue has helped improve programme uptake and retention. In Kanker and Bastar, for instance, women involved in lac and tamarind value chains were more responsive when messages were shared through peers or facilitators from their own community.

Nonetheless, limitations remain. In many areas, communication is still one-directional, with little scope for feedback or adaptation based on local understanding. Monitoring mechanisms for evaluating the effectiveness of communication efforts are often absent or weakly structured.

Overall, CSR communication in tribal Chhattisgarh reflects a growing recognition of the need for culturally grounded, participatory, and multi-modal strategies. The balance between traditional and digital platforms, the emphasis on local language, and the use of peer networks are shaping how tribal communities engage with CSR interventions. The success of these strategies depends not only on message content but on sustained interaction, mutual trust, and responsiveness to local conditions.

Impact of CSR Communication on Empowerment :

CSR communication plays a significant role in shaping the empowerment outcomes of tribal

communities by enabling better awareness, participation, and access to development initiatives. In the districts of Dhamtari, Kanker, and Bastar, targeted communication strategies have contributed to measurable improvements across several social indicators.

Environmental Awareness and Resource Management : CSR-backed campaigns have promoted community-based natural resource management, especially around river rejuvenation and afforestation efforts. Communication strategies have encouraged behavioural shifts in waste disposal and water conservation through village-level sensitisation and participatory drives. The messaging has resulted in increased community ownership of environmental assets.

Educational Outcomes : By simplifying information about school enrolment drives, scholarship eligibility, and nutritional schemes, CSR communication has led to higher enrolment rates, particularly among tribal girls. The use of culturally relevant messaging in local languages has been effective in reducing dropout rates and increasing parental involvement in school activities.

Agricultural Knowledge and Practices : CSR initiatives focusing on agro-based livelihoods have used visual aids and field demonstrations to introduce sustainable practices, such as organic composting and mixed cropping. This has contributed to improved yields and reduced dependency on intermediaries, thereby enhancing economic stability.

Women's Livelihoods and Self-Reliance : Communication targeting tribal women has played a vital role in the formation and strengthening of Self-Help Groups (SHGs), leading to greater financial inclusion. Many women have adopted income-generating activities like tamarind processing and lac cultivation as a direct result of CSR-supported awareness and training campaigns.

Sanitation and Health Behaviour : Cleanliness drives, conducted through interactive methods like street plays and audio announcements, have improved sanitation habits. Communication around hygiene practices and availability of clean drinking water has also influenced behavioural change, particularly in interior villages.

Overall, the impact of CSR communication has been most visible where messages are locally adapted, continuously reinforced, and supported by on-ground facilitation. Empowerment has occurred not just through the provision of services but by enhancing agency, participation, and informed decision-making within tribal communities.

Challenges in CSR Communication :

Despite the growing presence of Corporate Social Responsibility (CSR) initiatives in tribal regions of Chhattisgarh, several challenges continue to hinder the effectiveness of CSR communication. These limitations often reduce the intended impact of programs and restrict meaningful community engagement.

Linguistic and Cultural Gaps : A major barrier is the mismatch between corporate messaging and local linguistic or cultural contexts. Many CSR campaigns use standardized communication formats that fail to resonate with tribal dialects or indigenous knowledge systems, leading to low comprehension and engagement.

Limited Access to Communication Infrastructure : In remote tribal regions, access to communication infrastructure—such as internet connectivity, mobile networks, and print media—is sporadic. This restricts the reach of digital campaigns and online CSR portals, particularly in Bastar and parts of Kanker where digital literacy remains low.

Top-Down Communication Models : Many CSR initiatives still follow a one-way communication model, where information is disseminated without adequate feedback loops. This limits the ability to adapt programs based on local needs and reduces trust among the beneficiaries.

Inadequate Collaboration with Grassroots Facilitators : Poor coordination with local NGOs, community leaders, and tribal panchayats weakens the authenticity and credibility of CSR messages. Without trusted intermediaries, communication efforts are often viewed with skepticism or disinterest.

Insufficient Monitoring and Evaluation : The absence of consistent monitoring frameworks for communication impact makes it difficult to measure outcomes effectively. Feedback mechanisms are either informal or entirely absent, leading to repetitive strategies that may not address emerging challenges.

Short-Term Campaigns and Discontinuity : Many CSR communication efforts are project-based and lack long-term commitment. This results in fragmented messaging, low community retention, and minimal behavioural change.

Addressing these challenges requires adopting participatory communication strategies that prioritize cultural relevance, inclusivity, and sustained dialogue. Integrating local voices into the design and delivery of CSR communication can significantly enhance its effectiveness and long-term impact.

Comparative Analysis: District-Level Observations :

A comparative examination of CSR communication and its empowerment outcomes across Dhamtari, Kanker, and Bastar districts reveals key variations influenced by geography, tribal demographics, local governance, and the nature of CSR implementation.

1. Dhamtari District :

Dhamtari shows relatively higher responsiveness to CSR communication efforts, especially in sectors like agriculture and water conservation. The district's accessibility, better road networks, and proximity to administrative centers have allowed for more consistent communication campaigns.

Tribal women's participation in livelihood programs has increased, often facilitated by community resource centers and self-help groups supported by CSR initiatives.

2. Kanker District :

In Kanker, CSR activities have shown moderate outreach. Programs related to forest-based livelihoods and education have been introduced, but communication efforts are often limited by weaker infrastructure. Despite this, localized media like community radio and engagement with local leaders have improved awareness and participation among tribal communities, particularly in Charama and Bhanupratappur blocks.

3. Bastar District :

Bastar presents the most complex landscape due to its dense forest cover and higher concentration of marginalized tribal populations. While several CSR programs have targeted Bastar—especially in environment and health—communication has faced substantial hurdles due to remoteness and conflict-prone zones. Nevertheless, visual and oral communication methods adapted to tribal contexts have had better resonance in specific clusters.

Observational Insights :

- The effectiveness of CSR communication is positively correlated with infrastructural access and the involvement of local facilitators.
- Districts with stronger NGO or community-based partnerships have experienced more culturally grounded communication and deeper trust.
- Variations also reflect in the empowerment outcomes, with Dhamtari showing better indicators in water and agricultural initiatives, while Bastar exhibits slower but culturally embedded progress.

This district-level comparison underscores the need for region-specific communication frameworks that consider local challenges, strengths, and socio-cultural dynamics to enhance the overall impact of CSR on tribal empowerment.

Conclusion :

This study underscores the critical role of effective Corporate Social Responsibility (CSR) communication in fostering tribal empowerment in Chhattisgarh's districts of Dhamtari, Kanker, and Bastar. It reveals that while CSR initiatives have contributed significantly to improvements in education, livelihood, agriculture, environment, and water access, the degree of impact is often influenced by the communication methods adopted. Transparent, inclusive, and culturally responsive communication not only enhances awareness but also ensures deeper engagement and ownership among tribal communities. To maximize long-term social development outcomes, CSR programs must move beyond

compliance-driven communication towards dialogue-based, participatory models that respect local contexts and actively involve the voices of the communities they aim to serve.

References :

1. Baxi, C. V., & Prasad, A. (2005). *Corporate Social Responsibility: Concepts and Cases*. New Delhi: Excel Books.
2. Banerjee, S. B. (2008). Corporate social responsibility: The good, the bad and the ugly. *Critical Sociology*, 34(1), 51–79.
3. Basu, D., & Chakraborty, B. (2014). CSR in the tribal hinterlands: A critical evaluation. *Indian Journal of Social Development*, 14(2), 193–210.
4. Bhattacharya, C. B., Korschun, D., & Sen, S. (2009). Strengthening stakeholder–company relationships through mutually beneficial corporate social responsibility initiatives. *Journal of Business Ethics*, 85(2), 257–272.
5. Bhushan, B. (2013). *Tribal Development in India: Problems and Prospects*. New Delhi: Sage Publications.
6. Carrol, A. B. (1999). Corporate social responsibility: Evolution of a definitional construct. *Business & Society*, 38(3), 268–295.
7. Chakraborty, S. (2018). Corporate engagement with tribal communities: Revisiting CSR in India's forest regions. *Social Action*, 68(3), 219–234.
8. Chatterjee, B., & Mitra, N. (2017). CSR implementation and CSR reporting in India. *International Journal of Corporate Social Responsibility*, 2(1), 1–13.
9. Choudhury, A. (2016). Participatory communication and development: A case study from central India. *Journal of Development Communication*, 27(1), 43–52.
10. Dahlsrud, A. (2008). How corporate social responsibility is defined: An analysis of 37 definitions. *Corporate Social Responsibility and Environmental Management*, 15(1), 1–13.
11. Dangi, H. K., & Singh, A. (2018). CSR and sustainable livelihood: A case study of rural India. *International Journal of Rural Management*, 14(1), 1–14.
12. Dwivedi, R. (2001). Environmental movements in India: A study of the politics of survival. *Social Action*, 51(3), 252–264.
13. Ghosh, S. (2015). Tribal development in India: A study in human development. *Indian Journal of Regional Science*, 47(2), 89–98.
14. Ghosh, P., & Guha, A. (2019). Understanding the communication gap in CSR: A stakeholder perspective. *Management and Labour Studies*, 44(2), 189–205.

15. Gupta, A. (2006). Tribal Movements and Development Issues in India. Jaipur: Rawat Publications.
16. Haque, S. M., & Arora, R. (2021). CSR policy and tribal upliftment: A theoretical analysis. *Indian Journal of Public Administration*, 67(3), 404–416.
17. Jena, A. K., & Pradhan, S. (2014). Corporate social responsibility in India: A multidimensional approach. *Journal of Management Research*, 14(3), 131–143.
18. Joshi, M. (2017). Communicating CSR in culturally diverse societies: The case of India. *Journal of Media and Communication Studies*, 9(6), 45–55.
19. Kumar, S. (2019). Livelihood challenges of tribal communities and the role of CSR. *Social Change*, 49(1), 103–117.
20. Kurian, N. J. (2000). Widening regional disparities in India: Some indicators. *Economic and Political Weekly*, 35(7), 538–550.

Email: hashmiamir@live.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 87-90

नारी विमर्श

डॉ. राजू हमीरसिंह देसाई
सहायक प्राध्यापक (हिंदी), शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय खरगोन (म.प्र.) 451001

सारांश :-

हमारे वेदों में इस प्रकार लिखा गया है। जग भूमि भी शून्य थी। उस पर आदिशक्ति का प्रतिरूप इधर–उधर भ्रमण कर रही थी। हमारे वेदों में भी लिखा गया है, कि सबसे पहले इस विश्व की सृष्टि स्त्री से हुई है। सर्वप्रथम इस दुनिया में आदि शक्ति का रूप था। उन्होंने ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश को जन्म दिया और वही आदिशक्ति लक्ष्मी, पार्वती, सरस्वती का रूप है। नारी सामान्य नहीं आदिशक्ति का प्रतिरूप है। इस ब्राह्मण में आदिशक्ति का प्रतिरूप करीब 250 है। काली माता, दुर्गा माता, लक्ष्मी, पार्वती, सरस्वती इस प्रकार उनके अनेक नाम। इस प्रकार नारी अबला नहीं सबला है। वह देवताओं को बचाई और अपनी गोद में जन्म दिए असुरों को भी उन्होंने मार डाला। मां होते हुए भी उनकी क्रूर स्वभाव के कारण अपने पतिदेव को बचाने के लिए लोक कल्याण के लिए अपनी आंचल के उजाले को भी मिटाना पड़ा। नारी इतनी शक्तिशाली और अपार ज्ञान की पूंजी है। हमारे चारों वेदों में स्त्री का स्थ्यान अति उत्तम है। हर रस में स्त्री पाई जाती है। पूर्व काल में स्त्री का स्थान पुरुष के स्थान के समान होता था। दोनों पूज्य थे। दोनों मे स्त्री–पुरुष का भेद नहीं था। दोनों में समान रूप से तुलना की जाती थी।

अगर मेरे उद्देश्य से तो पुरुष देवताओं से बढ़कर नारी देवियों का स्थान अधिक माना जाता है। वेदों में इस प्रकार कहा गया है। "दत्र ना पुज्यते रमते तत्र देवता" जहां नारी का वास होता है वहां देवता का वास होता है। यही स्वर्ग का प्रतिरूप है। नारी के बिना समाज की कल्पना करना ही असंभव है। नारी न होती तो सृष्टि ही भी न होती। पाश्चात्य संप्रदायों का मत है कि नर से नारी का जन्म हुआ। दाहिने हड़ियों से ईश्वर ने नारी का निर्माण किया है। नर से उत्पन्न हुई इसलिए इसे नारी कहा गया। नर नारी अलग नहीं। क्योंकि नर का प्रतिरूप ही नारी है। दोनों एक ही शरीर के है। आपस में दोनों प्रेम पूर्वक मिल जुलकर रहते हैं। दोनों श्रम करते हैं। अपने परिवार को खुशी–खुशी संभालते है। पाश्चात्य देशों में नारी का स्थान नर के समान रहता है। क्योंकि वे दोनों सुशिक्षित है। शिक्षित होने के कारण सत्य असत्य का ज्ञान उन्हे प्राप्त होता है। पाश्चात्य देशों के धर्मो से हमे पता चलता है कि ईश्वर ने पुरुष और स्त्री दोनों को समान स्थान दिया है। इसलिए दोनों अलग–अलग होते हुए भी एक है।

प्रस्तावना :-

सिमोन ने कहा है– 'औरत को औरत होना सिखाया जाता है। औरत बनी रहने के लियें अनुकूल बनाया

जाता है।' (स्त्रीवाद और महिला उपन्यासकार डॉ. वैशाली देशपांडे पृष्ट 15) आज हम नारी के अस्तित्व के बारे में कुछ विचार करते हैं। वेदो में इस प्रकार कहा गया है। "यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता" जहॉ नारी का वास होता है वहॉ देवताओं का वास होता है। वहीं स्ध्वर्ग का प्रतिरूप है। नारी के बिना समाज की कल्पना करना ही असम्भव है। नारी ना होती यह विश्व की सृष्टि भी ना होती। पाश्चात्य देशों के धर्म से हमें पता चलता है कि ईश्वर ने पुरुष के दाहिने हड्डियों में निकालकर स्त्री को बनाया है। इसलिए दोनों अलग–अलग होते हुए में एक है। हमारे भारतीय संस्कृति में स्त्री की तुलना देवी या देवता का रूप हम स्वीकार करते हैं। लक्ष्मी, पार्वती, सरस्वती, सीता द्रोपदी, सावित्री जैसी स्त्रियों की तुलना बड़े गौरव से ली जाती है। स्त्री के अन्दर सहनशीलता, धैर्य, प्रेम, ममता, करूणा, प्रेम और मधुर वाणी जैसे बहुत से गुण विद्यमान है। जो कि नारी की असली शक्ति है। वैदिक काल में स्त्री को आदि शक्ति का प्रतिरूप माना है। बड़े आदर और गैरव के साथ लिया जाता है। भारतीय समाज में वैदिक काल से ही नारी का स्थान बहुत ही सम्मान जनक था। कालांतर में भारत देश के कई विदेशी राजाओं के आक्रमण से इस भारत का विदेशी संप्रदायों के गुणो को पूर्ण रूप से जबरदस्ती हम पर डाला गया। गुप्त काल में स्त्रियों की दशा में लगातार गिरावट आई। स्मृति करो बाल विवाह पर जोर दिया। विद्वानों ने पुनर्विवाह की अनुमति नहीं दी। मध्यकालीन में कई मुसलमानों के आक्रमण से हमारी संस्कृति और संप्रदायों का खंडन किया गया। हम पर मजबूती से उनकी संप्रदायों की, उनकी भाषाओं की, उनकी संस्कारों की और उनकी धर्म ग्रंथों को हम पर लादा गया और हमें मजबूर होकर सहना पड़ा। कोई भी उनका मुकाबला करता तो उन्हें जान से मार देते। इसी कारण अनेक विपत्ति हम पर आ गई और हम पर लूटमार करते रहे। हमारे संस्कारों को भ्रष्ट करते गए। संप्रदायों को लुप्त होने में मजबूर कर दिया गया और कई वर्षों तक हमारा देश उनके अधीन रहा इसके कारण हमारी स्थिति और भी खराब हो गई हमारे संप्रदाय जो लुप्त हो गई। इस प्रकार अनेक राजाओं के परिपालन से हमारे देश के संप्रदायों खंडन मंडन होकर स्त्री को घर से बाहर कदम ना रखने का निर्णय मध्यकालीन समय में हो गई जो उनकी संप्रदायों थी। उनकी जो संप्रदाय उसे जुड़ी हुई थी इसलिए नारी को यहां उन्होंने आगे बढ़ने से रोक दिया और चार दीवारों के बीच रहने के लिए मजदूर कर दिया।

उद्देश्य :–

हमारे भारत देश में जहां एक तरफ लक्ष्मी, सीता दुर्गा, पार्वती सरस्वती के रूप में नारी को देव तुल्य माना जाता है। वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति समाज में काफी ऊंची थी। उन्हें अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी। पुरोहितों और विषयों का दर्जा भी उन्हें प्राप्त था। महिलाएं धर्म शास्त्र में भी पुरुषों के रामान भाग लेती थी। वैदिक काल में स्त्री पुरुष दोनों को समान अधिकार मिलता था। नारी समाज का एक महत्वपूर्ण अंग था। जिसके बिना समाज की कल्पना भी ना कर सकते।

वैश्वीकरण के दौर में पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित नारी भारतीय संस्कृति को भूलती जा रही है। पश्चिमी चका–चौंध ने उसे दिग्भ्रमित कर दिया है। वह आत्मकेन्द्रीत हो भौतिक सुख सुविधाओं से खुद को श्रृंगारित करने की नाकाम कोशिश कर रही है परन्तु वह अन्जान है उपभोक्तावदी समाज और संस्कृति ने स्त्री को बाजारू वस्तु में कीमत व महत्वकांक्षाओं की अंधी गलियों मे भटकने के लियें छोड़ दिया है (हंस–राजेन्द्र यादव नव. 2009 पृ. 6)

हिन्दी साहित्य के समकालीन परिदृश्घ में कृष्णा सोवती, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान मन्नू भंडारी, सूर्यबाला,

कात्यायनी, अनामिका आदि का स्त्री विमर्श संबंधी दृष्टिकोण अधिक व्यापक होता हुआ दिखाई दे रहा है। बचपन ने सही बाल मानसिकता पर पितृसत्तामक संस्कार किये जाते है जिनमें लड़कों को श्रेष्ठ और लड़कियों को कनिष्ठ बताया जाता है। अनामिका 'बेजगह शीर्षक कविता में स्पष्ट करती है :–

"याद था हमें एक–एक अक्षर
आरम्भिक पाठों को
राम, पाठशाला जा।
राधा, खाना पका।
राम आ बताशा खा।
राधा झाडु लगा।
भैया अब सोएगा
जाकर बिस्तर बिछा।
लडकियॉ हवा, घूप मिट्टी होती है,
उनका कोई घर नही होता। (बेजगह–खुरदुरी हथेलियों–अनामिका पृ. 15)

उपकल्पना :–

पश्चिमी और पूर्वी देशों में नारी को लेकर भिन्न दृष्टिकोण है। नारी किसी परंपरा को नहीं तो वर्तमान से ही विद्रोही कर सकी है। भारत में हजारों वर्ष की रूढ़ियों परंपरा और प्रचलन को तोड़ नया कुछ करने की बात करती है। भारत में नारी विमर्श भारती नारीवादी सावित्रीबाई फुले शुरुआती। भारतीय नारीवादियों में से एक है। नारी समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है। जिसके बिना समाज की कल्पना भी हम कर नहीं सकते।

आलेख का मुख्य भाग :–

नारी विमर्श हमारे देशों में और प्राचीन देशों में दोनों में अंतर है। नारी सम्मान का स्थान आज भी हमारे देश में कम पाई जाती है। नारी को गौरव के साथ आज भी नहीं देखा जा रहा है। आज के समाज में नारी को पुरुषों से कम समझा जाता है। नारी को अपमानजनक रूप से देखते हैं। आज भी गर्भवती महिलाओं पर भ्रूण हत्या का प्रचलन जोरदार हो रही है। भ्रूण हत्या के कारण भविष्य में आने वाली पीढ़ियों को अनेक भयंकर अंखियों से गुजरना होगा। आज भी घटता लिंग अनुपात, भ्रुण हत्या, दहेज उत्पीड़न, भतीजा मजदूर इस प्रकार अनेक विषयों की साधना नारी को करना पड़ रहा है। पाश्चात्य देश आगे बढ़ते जा रहे है और हमारी संप्रदायों की विभिन्नता के कारण आज भी हमारा देश पीछे जा रहा है। इसे परिवर्तन करना है। नारी समाज का कल्याण करना है। नारी को विद्यमान बनाना है और उद्योगों में स्थापित कराना है। हर मोड़ में स्त्री को सहारा देना है। आगे बढाना है। उन्हें प्रोत्साहित करना है। नारी की अस्तित्व को जगाना है। पूर्व काल में जिस प्रकार हमारे देवी देवताओं को समान रूप से पूजा करते थे। उसी प्रकार मंदिरी में देवियों को पूजा करना नहीं हमारे समाज में प्रति नारियों की पूजा करना है। सभी को सम्मान देना है। तभी यह संभव होगा कि हमारा संप्रदाय के हटकर भविष्य में हमारे देश को विश्व के ऊंचे शिखर पर पहुंचाना है। मध्यकालीन भावनाओं, विभिन्न संप्रदायो को जड़ से निकालना है। तभी हमारा देश विश्व आदर्श बन पाएगा।

निष्कर्ष :-

नारी को सशक्त बनाएं बगैर हम मानवता की शक्ति नहीं बन सकते। महिलाओ को साक्षर बनाकर उनकी भावनाओं को प्रसन्न देते हुए महिलाओं को सुरक्षा प्रदान की जाए। आज 21वीं शताब्दी में आज समाज में परिवर्तन लाए। आज कई परिस्थिति की विषमताओं के कारण हमारे बहु बेटियों को जान से हाथ धोना पड़ रहा है। हर दिशा की स्थिति पर आज विचार करेंगे। तो हमारे आंखों से आंसू आने प्रारंभ हो जाएगी। महिलाओं को आगे लाना है। स्त्रियों को भी पुरुषों के सम्मान हर क्षेत्र में सम्मान हक दिलाना है। तभी देश की प्रगति होगी। विश्व में भारत आदर्श देश बनेगा। अनेक संस्कार स्त्रियों के लिए लाना है। अत्याचारों को हर मोड़ में बंद करना है। मेरे विचार से स्त्री के आदर के बिना देश की प्रगति शून्य है।

संदर्भ ग्रंथ की सूची :-

१. मृदुल जोशी कृत नारी अस्तित्व।

२. जय शंकर प्रसाद कृत नारी।

३. प्रसादराय जामि कृत नारी मूर्ति।

४. नवनीत कुमार शुक्ल कृत अस्तित्व।

५. महादेवी वर्मा कृत नारी सम्मान।

ई—मेल : drrajudesai2@gmail.com

मोबाइल : 9425942563

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 91-95

पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी का द्वंद्व

गोस्वामी सोनीबाला, शोधार्थी,
सामाजिक विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार।
डॉ रेखा श्रीवास्तव, शोध निर्देशक, एसोसिएट प्रोफेसर
जे. पी. एम. महिला कॉलेज, छपरा।

सारांश :-

पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी के द्वंद्व का प्रमुख कारण समय का अंतराल है। अन्य दृष्टिकोण से सामाजिक, व्यावहारिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि भी दोनों पीढ़ियों के द्वंद्व का कारण है। युवा पीढ़ी में आधुनिकता हावी होते जा रहे है क्योंकि वे अधूरी ज्ञान अर्जित कर अपने को सभ्य मानते है। ममता कालिया के 'दौड़' उपन्यास और चित्रा मुद्‌गल के 'गिलिगडु' उपन्यास में बाजारवाद, उपभोक्तावाद और स्वार्थपरता की अनेक समस्याओं की ओर संकेत किया गया है। वह संकेत आज के बुजुर्ग की दयनीय स्थिति से है। इन सांकेतिक समस्याओं के जड़ तक पहुंचना होगा तभी दोनों पीढ़ियों में प्रेम, विश्वास, श्रद्धा, सम्मान तथा सामंजस्य स्थापित हो सकता है। यही इस आलेख का उद्देश्य है। इससे मिलते–जुलते अनेक समस्याओं का उजागर किया गया है।

प्रस्तावना :-

पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी का द्वंद्व अनेक पहलुओं में देखा जा सकता है– सामाजिक, व्यावहारिक, पारिवारिक, संस्कृति, आर्थिक आदि। दोनो में समय का जो अंतर होता है जिसके कारण द्वंद्व और टकराव लगातार होना स्वाभाविक है क्योंकि भौतिकवादी दुनिया में पल–पल परिवर्तन होते रहता है। जिसका प्रभाव सीधे मनुष्य पर पड़ता है। जिससे मनुष्य प्रभावित होकर अपने आप में बदलाव करने के लिए आतुर हो जाता है। वास्तव में ज्ञान दो प्रकार के होते है – सांसारिक ज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान। सांसारिक ज्ञान भौतिकवादी दुनिया से संबंधित होते हैं, जबकि आध्यात्मिक ज्ञान आत्मानुभूति और आंतरिक अनुभव पर आधारित होता है। आज की युवा पीढ़ी सिर्फ सांसारिक ज्ञान यानी भौतिक दुनिया से संबंधित ज्ञान अर्जन कर अपने आपको सभ्य मानते हैं, जबकि सच्चाई यह है कि मनुष्य के जीवन में दोनों ज्ञान में संतुलन होने से ही जीवन के विभिन्न पहलुओं को समझने, समस्याओं के समाधान ढूंढने और नए अवसरो की पहचान करने में मदद मिलता है। साहित्य के माध्यम से अनेक लेखक–लेखिकाओं ने प्रत्येक युवा पीढ़ी को इशारा करते हैं कि अधिक से अधिक ज्ञान अर्जित करके अपनी समझ विकसित करें ताकि पुरानी पीढ़ी का दुःख, दर्द, निराश के कारण जान सके। अच्छे विश्वास के साथ उनसे तालमेल और लगाव बना रहे जिससे पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी में द्वंद्व तथा टकराव न हो।

साथ ही यह भी आवश्यक है कि पुरानी पीढ़ी अथवा बुजुर्ग अपने आप में कुछ परिवर्तन लाए ताकि नए समय के साथ सामंजस्य हो सके। रमेश महेश्वरी का कथन है– "बहुत से बुजुर्ग आज नयी को उलाहना देते देखे जाते हैं। मसलन हमारे समय में ऐसा होता था, वैसा होता था। माना उनका यह कथन सत्य प्रतिशत सत्य है। किंतु आज के परिपेक्ष में युवा पीढ़ी से इसे अपने ऊपर 'थोपे जानाश जैसा समझता है। परिणामतः उच्छृंखलता, अनुशासन सत्ता पनपने लगती है। प्रश्न उठता है,फिर क्या किया जाए? नए दौर में युवा पीढ़ी को बहुत अधिक सलाह देने से बचना चाहिए। सांकेतिक रूप से किसी भी कृत्य के अच्छे बुरे परिणाम के विषय में बता देना पर्याप्त है। अधिकता ठीक नहीं।"[1] इन कथन से स्पष्ट है कि दोनों पीढ़ीयों में बदलाव आवश्यक है। इस शोधालेख में अनेक समस्याओं का उजागर किया गया है। जिससे दोनों पीढ़ीयों में एक दूसरे के प्रति प्रेम, विश्वास, लगाव, आदर सम्मान का भाव जागृत हो।

आधुनिक युग का दौर है। चकाचौंध की दुनिया में दिन प्रतिदिन व्यस्त होती जा रही युवा पीढ़ी अपनी सभी दायित्व और जिम्मेदारियां भूलती जा रही है। ममता कालिया अपनी 'दौड़' उपन्यास में पात्र पवन है। सघन के माध्यम से आज की युवा पीढ़ी और अनेक समस्याओं पर प्रकाश डाला इन पात्रों द्वारा लेखिका यह दिखाने की कोशिश की है। आज की युवा पीढ़ी के लिए पैसा ही सब कुछ है। पवन अपने पापा से कहता है "सच तो यह है पापा जहां हर महीने वेतन मिले वहीं जगह अपनी होती है अगर कोई नहीं।"[2] इन बातों को सुनते हैं उसके पिता अध्यात्म और संवेदना की बातें करते हैं "केवल अर्थशास्त्र से जीवन नहीं कटता पवन, उसमें थोड़ा दर्शन और अध्यात्म और ढेर सी संवेदना भी पनपनी चाहिए।" यहां पर पवन के पापा उसे समझाने की कोशिश करते हैं। यह यथार्थ सत्य है कि केवल अर्थशास्त्र से ही सभ्य जीवन नहीं जी सकते। यही मुख्य कारण है कि दिन प्रतिदिन संवेदनाएं मरती जा रही है। युवा पीढ़ी अथक परिश्रम कर रही हैं किंतु जीवन में शांति का नामोनिशान नहीं है। संपूर्ण मानव जाति में विवेक और बुद्धि के बल से धैर्य और अनुशासन उत्पन्न होता है।

व्यावहारिक दृष्टि से देखें तो पवन अपने माता–पिता के प्रतिदिन प्रतिदिन और संवेदनशील होते जा रहा है जिससे उसे देख उसके माता–पिता अवाक रह जाते हैं। पवन अपनी पसंद की लड़की स्टैला से शादी करने का फैसला कर लेता है। तब उसकी मां (रेखा) स्टैला को देखने राजकोट आती है तथा स्टैला को देख रेखा पवन से कहती है कि कैसी लड़की पसंद किया है? यह तो बिल्कुल तुम्हारे लायक नहीं है। पवन बिना सोचे समझे मां को जवाब देता है "यही बात तुम्हारे बारे में दादी मां ने पापा से कही थी क्या उन्होंने दादी मां की बात मानी थी बताइए।"[4] इस कथन से पूरी तरह स्पष्ट है कि पवन अपनी मां के प्रति किस तरह असंवेदनशील भाव व्यक्त करता है। ये युवा पीढ़ी मानवता, इंसानियत, बड़ों के प्रति शिष्टाचार, को ताख पर रख दिया। बोलने से पहले यह भी नहीं सोचा कि यह मेरी मां है। मेरी बातों से उन्हें कितना दुख पहुंचेगा। मैं उनकी संतान हूं। हमें सोच समझ कर बोलना चाहिए ताकि मेरे कारण उन्हें कोई ठेस ना पहुंचे। चित्रा मुदगल के उपन्यास 'गिलिगडु' में देखने को मिलता है सिविल इंजीनियर से रिटायर्ड जसवंत सिंह अपनी पत्नी के स्वर्गवास होने के बाद अपने बेटा के पास दिल्ली रहने के लिए आते है। एक सप्ताह बाद अपने बेटा नरेंद्र से आपत्ति प्रकट करते हैं कि "खाने में कुछ भी खाना उनके लिए संभव नहीं है। फ्रिज में रखा बासी–कुसी उसकी अम्मा ने उन्हें कभी नहीं खिलाया सो पेट को उसकी आदत नहीं है। रोटी भी तुरंत सिकी ही खा सकते हैं वे। बनी रखी दांतों से चबती नहीं।"[5] ये सब बात सुनते ही नरेंद्र लंबा–चौड़ा भाषण अपने पिता को सुनता है– "आइंदा वे अपनी पसंद की गुंजाइश

इस घर में ना ढूंढे तो बेहतर है।"[6] यह स्पष्ट झलकता है कि वह अपने पिता को कितना सम्मान करता है? उनके साथ कैसा शिष्टाचार का व्यवहार करता है? यहां प्रश्न यह भी उठता है कि अच्छे पढ़े–लिखे लोगों का आचरण ऐसा ही होनी चाहिए। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि कैरियर का दबाव बहुत अधिक है जिसके वजह से युवा वर्ग में अधिक झुंझलाहट, क्रुरता, आक्रोश पैदा होते जा रहे हैं। तब यह कहा जाए कि घर के बुजुर्ग क्रुरता या असंवेदनशील जैसा व्यवहार दिखाकर शांति मिल जाती है। मानव जीवन में एक वृद्धावस्था ही है जिसमें शरीर की सारी शक्ति क्षीण हो जाती है, स्मरण शक्ति कमजोर हो जाती है, शरीर शिथिल हो जाता है। जिससे एक बुजुर्ग व्यक्ति चाह कर ही कुछ नहीं कर सकता। किसी भी युवा बुजुर्ग के प्रति अत्याचार करने का अधिकार नहीं होता है। यह उन्हें सम्मान नहीं कर सकते तो तिरस्कार भी नहीं कर सकते। डॉक्टर चित्रलेखा कहती है– "वृद्धो के साथ अमानवीय व्यवहार करने में लोगों को जरा भी संकोच का अनुभव नहीं हो रहा है। वृद्ध जिसे कभी भगवान का दर्जा दिया जाता था, वृद्ध, जिसके आशीर्वाद की बिना किसी काम की शुरुआत नहीं की जाती थी, वही वृद्ध आज अपेक्षित है।"[7]

सामाजिक दृष्टि से देखा जाए तो पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी में बहुत अंतर हो गया है। वह समाज जो एक से अधिक लोगों के समुदाय को कहा जाता था। जिसमें सभी लोग मानवीय क्रियाकलाप करते थे जैसे– बड़ों के प्रति आचरण, दूसरों के सुख दुःख में सहायता करना, आपसी विवादों के अपने में सुलझा लेना, सामाजिक सुरक्षा, एक दूसरे के प्रति परस्पर स्नेह और सहजता का भाव रखना आदि। यह सब कुछ बदल गया है। आज का समाज व्यक्ति केंद्रित हो गया है। स्वार्थपरता इतनी बढ़ गई है कि बड़ों के प्रति आचरण न के बराबर हो गया है। पहले वाला समाज कहां है। बड़ा भाई क्या पिता के सामने छोटा भाई सिर उठाकर बात नहीं करता था। अब तो बड़ा भाई या पिता के सामने बहस छिड़ जाता है। वे बातें सुनने को मिलती है जो शायद कभी सोचा ना गया हो। 'गिलिगडु' उपन्यास में यशवंत सिंह खान के विषय में कुछ बेटा से कहते हैं कि सब कुछ नहीं खा सकते उनकी पाचन शक्ति कमजोर है। उनका बेटा नरेंद्र लंबा भाषण सुनता है "अम्मा सदैव उनकी रुचि का ख्याल किया उसे और शालीन को वही खाना पड़ता जो उस रोज उनकी खाने की इच्छा होती। उस पर भी उनकी सख्त हिदायत होती है कि परसी थाली में से न बच्चे कोई चीज निकलवाएंगे न खाना छोड़ अन्न का अनादर करेंगे। आईआईटी कानपुर में होते हुए भी बाबू जसवंत सिंह का कठोर आदेश था कि नरेंद्र कि घर पर रहने की कोई जरूरत नहीं। होस्टल में रहे। पढ़ाई में एकाग्रता बनी रहेगी। होस्टल की घटिया खाने की घर पर चर्चा वर्जित था। अकेले वहीं नहीं खाता। सब खाते हैं।"[8]

इस कथन में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि जसवंत सिंह अनुशासन में अपने बेटे को इसलिए रखें जिससे पढ़ाई में एकाग्रता बनी रहे। वह कभी यह नहीं सोचे होंगे कि मेरा बेटा बुढ़ापा में अनुशासन की परिभाषा पर व्यर्थ बहस करेगा। प्रत्येक परिवार में मां–बाप अपने बच्चों को अनुशासन में ही रखते हैं कि बच्चा का पढ़ाई में मन लगा रहेगा, अच्छी–अच्छी पुस्तकों का अध्ययन करेगा जिससे प्रेम भाव, सेवा भाव, विनय भाव आदि अच्छी भाव उत्पन्न होगा, जिससे वह एक सभ्य आदमी बनेगा लेकिन यहां तो उल्टा हो गया नरेंद्र अनुशासन की परिभाषा ही बदल दिया। उसका सोच दृष्टि इतना छोटा है कि अपने स्वार्थ के सिवा दूसरा कोई दिखाई नहीं देता। इतना ही नहीं नरेंद्र के बेटा का जन्मदिन पार्टी होने वाली थी उस समय उसका मलय अपने दादू से कहता है –" न न दादू! अपने साथ हम किसी भी बड़े को नहीं ले जाएंगे पार्टी बोरिंग हो जाएगी।"[9]

जसवंत सिंह को यह बात सुनकर बहुत धक्का लगा एक छोटा बच्चा को भी बड़े–बुजुर्ग से नफरत है। आज के माता–पिता ऐसे ही शिक्षा दे रहे है बच्चों को अपने तक सीमित रहना सिखाया जा रहा है। ऐसे आधुनिक युग में युवा पीढ़ी के विषय में डॉक्टर चित्रलेखा कहती है– "वर्तमान में आज की युवा पीढ़ी ने अपनी जीवन पद्धति आधुनिकता के हाथों बेच डाला है उन्हें औरो से भिन्न दिखने की लालसा ने उनकी जमीर को भी मार डाला है। समाज में में अपने जीवन पद्धति द्वारा अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहते है। वे बताना चाहते है कि उनकी जीवन पद्धति लोगों की अपेक्षा भिन्न है। यह भिन्नता है जो उन्हें अधिक से अधिक उपभोग करने के लिए प्रेरित करती है।"[10] आधुनिकता से प्रभावित मनुष्य न शांति से रहता है, न ही शांति से कोई काम करता है। जिससे न घर में शांति रहता है न बाहर शांति। यह भी बहुत आश्चर्य की बात है कि इतनी व्यस्त था होने के बावजूद बाहरी दिखावा करने के लिए समय निकल ही जाता है। हमारे पड़ोसी सप्ताह में 2 दिन बाहर खाते हैं तो उनकी नजर में हम छोटे हो जाएंगे। इसलिए हमें भी बाहर खाने जाना चाहिए। दिखावे की संस्कृति पूरी तरह से युवा पीढ़ी को जकड़ी हुई है। इस होड़ में उसे वक्त कहां जो वह वृद्ध के साथ समय बिताए, वृद्ध के सुख–दुःख में अपनी हिस्सेदारी दे।

"यही सोच है आज की उस नयी पीढ़ी की, जिस पर टीका है हमारी गरिमामयी संस्कृति का भविष्य। इसी सोच ने जाने कितने घर तोड़े है, रिश्ते तोड़े है, मानव मूल्य को रौंद डाला है, और संवेदनाओं को कुचल डाला है, अन्यथा मनुष्य तो भावनाओं का का पुतला ही होता है, जो धरती पर पांव रखने के साथ ही रिश्तो में खुशियां बरसा देता है। मां की छाती से मुंह लगाते ही वह रिश्ते जीने लगता है। दूध के हर घुटं के साथ मां की ममता से जीवन पाता है, लेकिन वही मां देखते ही देखते कब टूट–बिखर जाती है, इसे बेटा कभी महसूस ही नहीं कर पाता।"[11] विमल लाल अपनी कथन में रहती है कि मनुष्य तुम भावनाओं का पुतला ही होता है, अतः परिवार के सभी सदस्य को ध्यान देना चाहिए कि छोटे बड़े किसी की भावनाओं को ठेस न पहुंचे अगर ऐसी सोच युवा पीढ़ी में उत्पन्न हो जाए तो पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी में कुछ हद तक द्वंद्व कम हो सकता है। हर स्थिति में युवा पीढ़ी को अपनी सोच में परिवर्तन करना आवश्यक है जिससे भावी पीढ़ी का भविष्य सुरक्षित रहे। बाजारवाद और उपभोक्तावाद हुआ ने अनेक महत्वाकांक्षाओं को जन्म दिया है। रातों–रात करोड़पति बन जाने की सोच ने मानव को कुंठित बना दिया है। अधिकाधिक धन, यश, सोहरत आदि कमाने के चक्कर में दिन–रात व्यस्त है ऐसे जैसे पैसा ही सब कुछ है। सब रिश्ते नाते एक किनारे कर दिया गया है। अब मन की कोमल भावनाएं मुद्रा में तौली जाने लगी है, पारिवारिक संबंधों को और संबंध की भावनात्मकता, आत्मीयता आदि नष्ट हो रहे हैं। प्रतिस्पर्धा से प्रतिस्पर्धा की तरफ जाती इस अंधी दौड़ में रिश्ते नाते मानवीयता संवेदना परंपरा सब अर्थहीन हो गया है।

निष्कर्ष :–

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी के बीच द्वंद्व और टकराव को दूर करने के लिए दोनों पीढ़ियों में बदलाव आवश्यक है तभी अच्छी तरह से सामंजस हो सकता है। नयी पीढ़ी अधूरी ज्ञान अर्जित अपने आप को सभ्य मानते हैं उन्हें अधिक समझदारी से काम करनी चाहिए। युवा वर्ग अपने आप में बदलाव जल्द कर सकते हैं। पुरानी पीढ़ी लकीर का फकीर होते हैं। बाजारवाद और उपभोक्तावाद ने भारतीय समाज में अपनी जड़ें मजबूती से जमा लिया है। जिससे हमारे समाज की स्थितियां बड़ी तेजी से बदल

रही है। आधुनिकता का चादर ओढ़े युवा वर्ग के जीवन शैली से वृद्ध को घुटन हो जाती है। ऐसी स्थिति में बड़े बुजुर्ग परिवार से अलग रहने के लिए विवश हो जाते है। सामंजस्य स्थापित करना अति आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. शोधादर्श त्रैमासिक पत्रिका, अंक 4 सितंबर नवंबर 2021, नजीबाबाद, बिजनौर उत्तर प्रदेश, पृष्ठ–16
2. 'दौड़' उपन्यास ममता कालिया, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 26वां संस्करण 2022, पृष्ठ–45
3. वहीं पृष्ठ 45
4. वहीं, पृष्ठ–52
5. 'गिलिगडु' चित्रा मुद्‌गल समय प्रकाशन नई दिल्ली संस्करण 2023, पृष्ठ–39–40
6. वहीं, पृष्ठ–40
7. 'साहित्येतिहास में वृद्ध विमर्श' शिवचंद सिंह, दिशा इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण 2017 पृष्ठ– 117
8. 'गिलिगडु' चित्रा मुद्‌गल, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण 2023, पृष्ठ– 40
9. वहीं, पृष्ठ 33–34
10. 'साहित्येतिहास में वृद्ध विमर्श'।
11. 'वृद्धावस्था का सच', बिमला लाल, कल्याणी शिक्षा परिषद नई दिल्ली, संस्करण 2019, पृष्ठ 77

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 96-100

प्रेमचंद के साहित्य में किसान विमर्श

डॉ. सुनीता राठौर
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी, शासकीय एम.एम.आर. स्नातकोत्तर महाविद्यालय चाम्पा।

हमारा भारत देश एक कृषि प्रधान देश है। यहॉ की अधिकांश जनता गांवो में निवास करती है और ग्राम वासियों का प्रधान कार्य कृषि है, इनका जीविकोपार्जन का प्रमुख जरिया खेती–किसानी ही है। भारत की आत्मा मे बसने वाले इन किसानों का जीवन हमेशा से साहित्यकारों, कलाकारो और बुध्दि जीवियों के अध्ययन, विवेचन, विश्लेषण और शोध का विषय रहा है। हिन्दी साहित्य मे प्रेमचंद पहले लेखक है, जिन्होने किसानों को केन्द्र में रखकर साहित्य की रचना की, इसलिए डॉ. रामविलास शर्मा जब प्रेमचंद्र को 'अद्वितीय उपन्यासकार' कहते है, तो उसके पीछे ठोस कारण है, प्रेमचंद की एक बहुत बड़ी विशेषता है कि किसान को वह रंगमंच के केन्द्र में रखते है। प्रेमचंद का वैशिष्ट्य इस बात में है, कि उन्होने पहली बार किसानो के जीवन को भीतर से देखा और उनकी पीड़ा को उनके हास्य–रूदन को उनकी गरीबी उनके सीधेपन को और चतुराई को अपने उपन्यासो मे सजीव ढंग से चित्रित किया, तभी तो उन्होने होरी को व्यक्ति चरित्र से वर्ग–चरित्र बना दिया।

प्रेमचंद का 'गोदान' उपन्यास भारतीय कृषक के संघर्ष मय जीवन का महाकाव्य है। इसमे भारतीय कृषक वर्ग की प्रायः सभी समस्याऐं उभरी है। इसमे परिवारिक विघटन, जमीदारों द्वारा मनमाना शोषण, परस्पर द्वेष–भाव, लगान, बेगार आदि कृषक जीवन के विविध पक्षों का निदर्शन किया गया है।

'गोदान' उपन्यास मे किसानों की दरिद्रता और भूखमरी का भी चित्रण किया गया है, और दरिद्रता औश्र भुखमरी की समस्या आज भी भारतीय समाज को दीमक की तरह नष्ट कर रही है। कर्ज ने भारतीय कृषक जीवन को खोखला कर दिया। पूँजीपति, मिलमालिक किसान की फसल कौड़ियों में खरीद लेते है और वह अल्प धन भी गांव के साहूकारों के कारण गरीब किसानों के हाथ में नहीं पहुँचने पाता। आर्थिक तंगी और दरिद्रता के कारण संयुक्त परिवार टूट रहें है। गोबर इस स्थिति से क्षुब्ध होकर ही शहर को पलायन करता है धन का असमान वितरण भारतीय समाज के लिए अभिशाप हो रहा है। शोषण की चक्की में निरंतर पीसते रहने के कारण होरी जिस समाज का प्रतिनिधित्व करता है उसकी आयु आधी ही रह गई है, होरी स्पष्ट कहता है कि उसकी साठे तक पहुँचने की नौबत नहीं आयेगी और होता भी ऐसे ही है। इस संदर्भ मे होरी धनिया से कहता है– ''साठ तक पहुँचने की नौबत न आने पाएगी धनिया! इसके पहले ही चल देंगे।

'गोदान' का नायक 'होरी' थोड़ी सी जमीन का मालिक है। किन्तु कृषक जीवन की गहन त्रासदी ने उसे मजदूर के रूप में मरने पर बाध्य कर दिया। प्रेमचंद ने होरी के आत्मा–पीड़न को इस प्रकार व्यक्त किया है– ''जो अपनी जान खपाते है। उनका हक उन लोगों से ज्यादा है, जो केवल रूपया लगाते है।''

''गोदान'' उपन्यास वास्तव में कृषक जीवन को संत्रस्त कर देने वाली परिस्थितियों का ही लेखा जोखा है। गोदान उपन्यास का मुख्य पात्र होरी अनेक बार दयनीय स्थितियों का शिकार हो जाता है। गोदान में होरी आद्यान्त पवित्र, कर्तव्यपरायण और आदर्शवादी बना रहता है, फिर भी कर्तव्यपरायण और आदर्शवादी बना रहता है, फिर भी अनवनत् कष्ट भोगते हुए उसे मिट जाना पड़ता है। दूसरी ओर उसको लूटने–खसीटने वालो पर गर्म लू का झोंका तक नहीं लगता। गोदान मे त्रासदी केवल 'होरी' नामक किसान पर ही नहीं,वरन् समूचे कृषक संस्कृति की एक समूचे परम्परागत् युग परिवेश और आयाम की मार्मिक त्रासदी है।

अभावग्रस्त जीवन होते हुए भी होरी मानवतावाद का प्रबल पक्षपाती है, गोदान मे प्रेमचंद ने 'होरी' के रूप मे जिस चरित्र की परिकल्पना की है, वह अपने 'वर्ग' का प्रतिनिधित्व करता है, सभी किसानों की हालत कमोवेश होरी जैसी ही है। अवध क्षेत्र के 'बेलारी' गांव का 'होरी' पॉच बीघे जमीन का मालिक एकसामान्य कृषक है, और सबका नरम चारा है। जमींदार, पटवारी सूदखोर, महाजन, पुलिस, बिरादरी तथा धर्म के ठेकेदार सब उसका शोषण करते है, और अन्ततः शोषण का शिकार होरी किसान से मजदूर बनने को विवश हो जाता है।

हमारे भारतीय किसान का एक मुख्य इच्छा गाय पालने की रहती है, ऐसी ही इच्छा गोदान उपन्यास में होरी की रहती है। हमारे धार्मिक संस्कारो में गऊ की पूजा की जाती है। पहले जिनके घर गाय बैल भैस रहते थे, उन्हे अमीर लोग समझे जाते थे। होरी गऊ के बारे में कहता है– ''फिर, गऊ से ही तो द्वार की शोभा है। सबेरे–सबेरे गऊ के दर्शन हो जाएँ तो क्या कहना! नजाने कब यह साध पूरी होगी, कब वह शुभ दिन आएगा। 'गोदान' उपन्यास में होरी के गाय को जब हीरा जहर देकर मार दिया तो होरी कर्ज में डूब गया, उसी कर्ज को चुकाने के लिए विवश होरी को अपनी पुत्री रूपा का विवाह एक अधेड़ चालीस वर्षीय रामसेवक के साथ करना पड़ा ताकि पैसा का कुछ सहारा हो जाये और कुछ खेती बच जाये। इसी समय पंडित दातादीन ने होरी को सौ–सौ के दो नोट दी और कहा कि तुम भी कन्या से उऋण हो गए और बाप–दादो की किसानी भी बच गई। होरी पूरा जीवन कष्टमय बिताया और जब जीवन में आखिरी पड़ाव के समय परास्त हुआ तब वह चिल्ला–चिल्ला कह रहा है, भाईयों, मै दया का पात्र हूँ मैने नहीं जाना, जेठ की लू कैसी होती है, और माघ की वर्षा कैसी होती है। इस देह को चीरकर देखो, इसमें कितना प्राण रह गया है – कितना जख्मों से चूर कितना ठोकरों से कुचला हुआ! उससे पूछो, कभी तूने विश्राम के दर्शन किए, कभी तू छाँह में बैठा? उस पर यह अपमान और वह अब भी जीता है, कायर, लोभी अधम। उसका सारा विश्वास जो अगाध होकर स्थूल और अन्धा हो गया था, मानो टूट टूक उड़ गया है।

ऐसे स्थिति आज भी कर्ज के कारण कई किसानो की होती है, लेकिन यदि समय रहते, थोड़ी सी सहानुभूति समान्य वर्ग मे होगी तो यह समस्या हल हो जायेगी और किसान की स्थिति दुर्दनीय से अच्छी हो जायेगी।

'गोदान' के अंतिम मे भी कर्ज से लदी धनिया को कहते है, कि होरी की अंतिम स्थिति में, कि गोदान करा दो, तब उस समय धनिया के पास सुतली बेचने के बीस पैसे थे उसी को होरी गोदान करती है– जैसे– ''धनिया यन्त्र की भांति उठी आज जो सुतली बेंची थी, उसके बीस आने पैसे लायी और पति के ठंडे हाथ में रखकर सामने खड़े दातादीन से बोली महाराज घर में गया है न बछिया, न पैसा यही पैसे है, यही इनका गो–दान है। और पछाड़ खाकर गिर पड़ी।''

प्रेमचन्द एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे जहाँ भेद–भाव के अभिशाप से मानवता पीड़ित न हो, किसी प्रकार का शोषण न हो और आदमी की पहचान सम्पत्ति और जाति के पैमाने से न हो। गोदान में उनका यही उद्‌देश्य प्रमुखता से व्यक्त हुआ है। इस उपन्यास का प्रधान उद्‌देश्य है, कृषक जीवन की समस्याओं का चित्रण करना, उसके शोषण का चित्र प्रस्तुत करना, उसकी दीन–हीन स्थिति से समाज को परिचित कराना। 'पूस की रात' कहानी प्रेमचंद द्वारा रचित है। 'पूस की रात' कहानी मे भारतीय किसान की निर्धनता, विवशता, दुर्बलता और भाग्य वादिता पर यथार्थ और रोचक वर्णन किया गया है। इस प्रकर से इस कहानी के द्वारा हम निम्न वर्गीय समाज का अभिन्न स्वरूप किसान की जीवन दशाओं को समझने की अच्छी दृष्टि मिलती है।

'पूस की रात' कहानी का कथानक साधारण और विश्वसनीय है। इसकी कथा हल्कू नामक एक निर्धन और विवश किसान की कथा है। वह घोर परिश्रम करके भी एक कम्बल नहीं खरीद पाता है। जी तोड़ परिश्रम करके और दृढ़ संकल्प के साथ वह केवल तीन रूपये ही इकठ्‌ठा कर पाता है। लेकिन सहना को ये रूपये दे देने के लिए अपनी पत्नी को वहीं विवशता पूर्वक कहता है–''सहना आया है'' लाओ जो रूपये रखे है। उसे दे दूँ, किसी तरह गला तो छूटे।''

जाड़े की रात अर्थात् 'पूस की रात' ने हल्कू के उस रात पराजित कर दिया। एक ओर फसल रखवाली का कठिन भार और दूसरी ओर कही इससे भी कठिन जाड़े की भार से आत्म–रक्षा का भार हल्कू दोनों भार को उतारना चाहता था। उसके लिए जाड़े की रात को काटना मुश्किल हो गया था। उसके साथ में उसका कुत्ता 'जबरा' भी इस जाड़े से तंग होरहा था। हल्कू जबरा को घर जाने के लिए कहता, पर वो नहीं जाता है। जबरा परम स्वामिभक्त था। थोड़ी देर बाद खेत पर नील गायों के आते ही जबरा जोर–जोर से भेंकने लगता था। हल्कू फिर जाड़े से तंग होकर उसने जबरे के साथ सूखे पत्तों का अलाव जलाया। थोड़ी सी गरमी मिलने पर हल्कू को नींद आ गई और नील गायों के झूण्ड ने पूरी फसल को नष्ट कर दी। जबरा के बार–बार भोंककर चेतावनी दिए जाने पर भी हल्कू अपनी अकर्मण्यता की ऐसा चादर ओढ़ कर सो जाता है कि काफी धूप आने पर भी नहीं उठता है। पत्नी के जगाने पर अफसोस से नष्ट हुई फसल को ऑखें फाड़कर देखता रह जाता है। भाग्यवादी बनकर दोनो अब खेत से नहीं अपितु मजदूरी से लगान देने का निश्चय कर लेते है।

इस प्रकार पूस की रात कहानी हल्कू और हल्कू की पत्नी, उनका कुत्ता जबरा, महाजन सहना, नील गायों का फसलों को नष्ट करके ही दम लेना, जाड़े की भयंकरता और फिर पति–पत्नी का खेती का काम छोड़कर मजूरी करके लगान को अदा करने का संकल्प करना। इस प्रकार पूस की रात कहानी में बताया गया है। इस कहानी का नायक हल्कू खेती छोड़कर मजूरी करके मालगुजारी भरनी अच्छा समझाता है। बशर्ते उसे किसी की धौंस न सुनना पड़े। इस प्रकार मुंशी प्रेमचंद ने शोषण चक्र से मुक्त होने के लिए जीवन पद्धति में परिवर्तन लाने को आवश्यक भी बतलाया है हम देखते है कि इस दशा में वे सफल है।

'सवा सेर गेंहूँ' प्रेमचंद की यह प्रसिध्द कहानी है जो ग्रामीण भारत मे साहूकारों और किसानों के बीच संघर्ष को दर्शाती है। कहानी एक गरीब किसान शंकर की है, जिसे अपनी आवश्यकता के लिए एक महात्मा के लिए कुछ गेंहूँ चाहिए, लेकिन उसे एक साहूकार से सवा सेर गेंहूँ उधार लेना पड़ता है। धीरे–धीरे ब्याज बढ़ता जाता है, और शंकर कर्ज मे फंस जाता है।

सवा सेर गेंहूँ कहानी का एक प्रसंग देखते है – विप्र ने टोककर कहा – 'शंकर, कल आकर के अपनी

बीज बेंग का हिसाब कर ले। तेरे यहॉ साढ़े पॉच मन गेंहूॅ कबके बाकी पड़े हुए है और तू देने का नाम नहीं लेता, हजम करने का मन है क्या?

शंकर को कर्ज चुकाने के लिए कड़ी मेहनत करनी पड़ती है, लेकिन वह कर्ज से मुक्त होने में असफल रहता है, इस प्रकार 'सवा सेर गेंहूँ' कहानी साहूकारों के शोषण और किसानों के दर्द को उजागर करती है। यह प्रेमचंद के सामाजिक और आर्थिक विषमता के प्रति जागरूकता को उजागर करती है। यह कहानी हमें गरीबों की रक्षा और साहूकारों के शोषण के खिलाफ आवाज उठाने के लिए प्रेरित करती है।

''दो बैलो की कथा'' मुशी प्रेमचंद की एक प्रसिध्द हिन्दी कहानी है। यह कहानी दो बैलों, हीरा और मोती की स्वतंत्रता और उनकी मानवीय भावनाओं को दर्शाती है। कहानी झूरी नामक एक किसान के जीवन पर केन्द्रित है जिसके पास में दो बैल होते है।

हीरा और मोती एक–दूसरे से बहुत प्यार करते है और झूरी के साथ भी उनका अच्छा संबंध है झूरी को कर्ज के कारण बैलों को साहूकार के पास गिरवी रखना पड़ता है। साहूकार के यहॉ बैलों को बुरी तरह से सताया जाता है। हीरा और मोती मिलकर साहूकार के घर से भाग जाते है, और स्वतंत्रता प्राप्त करते है।

एक बार झूरी अपने साले को दोनो बैलों कोदे दिया तो वे भागकर आ गये, दूसरे दिन झूरी का साला फिर आया और बैलों को ले चला। अबकी उसने दोनों को गाड़ी में जोता। दो–चार बार मोती ने गाड़ी को सड़क की खाई में गिराना चाहा पर हीराने संभाल लिया। वह ज्यादा सहनशील था।

संध्या समय घर पहुँचकर उसने दोनो को मोटी रस्सियों से बॉधा और कल की शरारत का मजा चखाया। फिर वही सूखा भूसा डाल दिया। अपने दोनों बैलों को खली, चूनी सब कुछ दी।

इस प्रकार दो बैलों की कथा कहानी का मुख्य उद्देश्य स्वतंत्रता और समानता का संदेश देना है, साथ ही नैतिक मूल्यों और मानवीय संवेदनाओं का भी प्रदर्शन करना है। कहानी में हीरा और मोती नामक दो बैलो के माध्यम से प्रेमचंद ने जानवरों के जीवन और किसान जीवन की वास्तविकता को भी उजागर किया है।

''दो बैलों की कथा'' कहानी स्वतंत्रता के महत्व पर जोर देती है, यह दर्शाती है कि, स्वतंत्रता सभी प्राणियों के लिए कितनी महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष :–

इस शोध में लेखकों, साहित्यकारों ने किसानों की समस्याओं उनकी स्थितियों पर प्रकाश डाला है, जिससे लोगों का ध्यान किसानों पर जायेगा, तभी किसानों में सुधार होगा, विकास होगा और किसानों के प्रति लोगों का नजरिया बदल रहा है। किसानों मे तेजी से होते परिवर्तन को देखा जा सकता है।

गोदान युग– जीवन का यथार्थ चित्र लेकर सामने आता है। प्रेमचन्द शोषण के अबाध चक्र को प्रस्तुत कर उसके प्रति जन–जीवन को सावधान करते है, और अन्त में वर्ग हीन समाजवादी समाज की स्थापना का सन्देश देते हुए शांति और सच्चे सुख के आने की मंगल सम्भावना व्यक्त करते है, यही गोदान में प्रेमचंद का उद्देश्य और उनका शाश्वत संदेश है।

इस प्रकार हम 'गोदान' उपन्यास, 'पूस की रात' कहानी 'सवा सेर गेंहूँ' कहानी 'दो बैलों की कथा' कहानी के माध्यम से हम वर्तमान मे हमारा यही विचार है, कि यदि हमसब मिलकर गरीब दैन्य किसानों की सहायता करें उन्हें जागरूक करें तो वर्ग हीनता की भावना दूर होगी और एक नये समाज का निर्माण होगा, और

वे अपने उन्नति के शिखर तक पहुँचेगें।

संदर्भ-ग्रंथ :-

1. गोदान उपन्यास प्रेमचंद – पृ. 6
2. गोदान उपन्यास प्रेमचंद – पृ. सं. 305
3. गोदान उपन्यास प्रेमचंद – पृ. सं. 6
4. गोदान उपन्यास प्रेमचंद – पृ. सं. 310
5. कमल, कथा साहित्य (बी.ए. प्रथम वर्ष) द्वितीय प्रश्न–पत्र, लेखक – डॉ. रामविलास गुप्ता, वीना अग्रवाल पृ. सं. 15ए प्रकाशक :– कमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली – 110002
6. 'सवा सेर गेंहूँ' (कहानी) प्रेमचंद।
7. 'दो बैलो की कथा' (कहानी) प्रेमचंद।

मो. नं. – 9907987060

sunitarathore1503@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 101-106

अनुसूचित जनजाति में अंधविश्वास, स्वास्थ्य समस्याएं और शिक्षा की स्थिति एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समस्या-समाधान हेतु प्रयास

डॉ. विजय बळीराम गावंडे
असि. प्रोफेसर, श्री सरस्वती समाज कार्य महाविद्यालय वाशिम महाराष्ट्र।
संत गाडगे बाबा अमरावती विश्वविद्यालय अमरावती महाराष्ट्र।

विश्व आदिवासी दिवस प्रत्येक वर्ष 9 अगस्त को मनाया जाता है। संयुक्त राष्ट्र ने 1994 में आदिवासी समुदायों के प्रति जागरूकता बढ़ाने और उनके अधिकारों की रक्षा सुनिश्चित करने के उद्देश्य से इस दिन की शुरुआत की। इस वर्ष इस दिवस का विषय है – 'स्वैच्छिक अलगाव और प्रारम्भिक सम्पर्क में रहने वाले आदिवासी जन के अधिकारों की रक्षा'।

संक्षेप :–

संविधान के अनुच्छेद 342 के अनुसार अनुसूचित जनजातीय वे आदिवासी या आदिवासी समुदाय या इन आदिवासियों और आदिवासी समुदायों का भाग या उनके समूह है जिन्हें राष्ट्रपति द्वारा एक सार्वजनिक अधिसूचना द्वारा इस प्रकार घोषित किया गया है। अनुसूचित जनजातियों देश भर में मुख्यतः वनों और पहाड़ी इलाकों में फैली हुई है। भारत में हजारों वर्षों से जंगलों और पहाड़ी इलाकों में रहने वाले आदिवासियों की अपनी संस्कती, रीति रिवाज, रहन–सहन के कारण अपनी अलग ही पहचान एवं विशेषता रही है। पूरी दुनिया में अनुसूचित जनजाति का अस्तित्व है। आशिया अफ्रीका और अमेरिका खंड के देशों में आज भी जनजातियों का बड़ा प्रमाण है जनजाति आबादी के मामले में अफ्रीका के बाद भारत दूसरा सबसे बड़ा देश है देश के कुल आबादी में जनजाति का हिस्सा 8.2 फीसदी है। (जनसंख्या आयोग 2011) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 342 के मुताबिक देश में करीब 697 जनजाति समूह निवास करते हैं जिसे 75 ऐसी जनजातीय है जिसे अदिम जनजाति समूह कहते हैं। अदिम समूह का दर्जा अबुझमडिया, बोडो, बोंदो, बिरहोर, बैगा, कमार, सहारिया और ओंग जनजातियों को मिला है भील संथाल और गोंड जैसी अनुसूचित जनजातियों की संख्या औरों से ज्यादा है। हालांकि जनसंख्या के लिहाज से आबादी का ज्यादा हिस्सा पूर्वोत्तर राज्यों में केंद्रित है। सबसे कम जनजातीय दक्षिण भारत में रहती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 342 की धारा 1 में इन अदिम जनजातियों को अनुसूचित जनजाति कहां गया है इसकी अपनी अलग संस्कृति, सभ्यता, भाषा, परंपरा, विरासत, धर्म–दर्शन,

साहित्य और इतिहास है।

बीज शब्द :– अनुसूचित जनजाति, अंधविश्वास, स्वास्थ्य, शिक्षा, कल्याण, शोषण, कुपोषण।

प्रस्तावना :–

स्वतंत्र भारत में यह जनजातीय अब पहाड़ों पर रहते रहते थक चुके हैं उनके पास न खेत है और ना फसल है और नाही शिक्षा, आज यह लोग सभी प्रकार की शोषण के शिकार है। नदियों पर बांध निर्माण, सिंचाई संसाधन, औद्योगिकरण, एलपीजी इत्यादि के कारण इनकी कृषि योग्य भूमि अधिग्रहण की शिकार हुई और कई कानुनों द्वारा जंगल, जमीन पर उनका खतियानी हक छीन लिया गया, झरनों के गंदे पानी से अब यह काम चलाते हैं और भूखे सो जाते हैं। आज उनके चेहरों पर लाचारी है विडंबना यह है कि आज जहां एक और वन्य जीव की घटती संख्या पर पूरे विश्व में चिंता मनाई जाती है वहीं विलुप्त हो रही पहाड़ियों और अन्य जनजाति को लेकर कोई खास प्रावधान नहीं है।

सामान्य रूप में जनजातियों की समस्याओं को निम्नलिखित शिर्शकों के अंतर्गत विवेचित किया जा सकता है – जिनमें प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण की समाप्ति, शिक्षा का अभाव, विस्थापन एवं पुनर्वास, स्वास्थ्य एवं कुपोषण की समस्याएं, लैंगिक मुद्दे, पहचान का क्षय, अदि महत्वपूर्ण मुद्दे है सबसे महत्वपूर्ण समस्याओं में जनजातियों में अंधविश्वास, स्वास्थ्य समस्याएं और शिक्षा यह महत्वपूर्ण समस्या है।

कारण :–

वैसे तो बहुत सारे मुद्दे एवं कारण इस परिस्थिति के लिए जिम्मेदार है उसमें कुछ महत्वपूर्ण कारण–आधारभूत संरचना का अभाव, जनजातीय क्षेत्रों में अपर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाएं, स्वच्छ जल और स्वच्छता सुविधाओं तक अपर्याप्त पहुंच, चिकित्सा पेशेवरों की कमी, दुरुस्त क्षेत्र में कुशल स्वास्थ्य कर्मियों का न मिलाना, संयोजकता और भौगोलिक अवरोध, अपर्याप्त परिवहन सुविधाएं तथा अपर्याप्त संचार नेटवर्क, आपातकालीन स्थितियों की चुनौतियां, जनजातीय समुदायों के पास सीमित वित्तीय संसाधन, सांस्कृतिक संवेदनशीलता और भाषा अवरोध, शिक्षा के प्रती असंवेदनशिलता, वैज्ञानिक दृष्टीकोण का अभाव यह सब कारणों की वजह से अनुसूचित जनजातियों में अंधविश्वास, स्वास्थ्य समस्याएं और शिक्षा की निम्न स्थिति है।

अंधविश्वास :–

मानव समाज को जब जीवन–मृत्यु जैसे अनेकों जटिल सवाल का जवाब नहीं मिलता तब से वह अमानवीय शक्तियों पर विश्वास करता है। आदिवासी या जनजातियों में भी शिकार नहीं मिलना, खेत में फसल का ना आना, जंगल में बाढ़, भूकंप, आग, तूफान बर्फबारी का होना, मृत्यु, बीमारियां जैसे अनेक बातें हैं जो आकलन के बाहर है। ऐसे में उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिए जरूरी था कि वह इन शक्तियों पर विश्वास करें और तब से ही जनजातियों में अंधविश्वास का उदय हुआ, वैसे तो प्रत्येक समाज में अंधविश्वास मौजूद है किंतु उसका प्रमाण अलग है। जनजातियों में भी धर्म को मानने की विधियां और श्रृद्धाएं विभिन्न समुदायों में अलग–अलग है जैसे कादर, चंचू इन जनजाति में अनेक भगवान है और उनमें अपने पूर्वजों को पूजने की प्रथा है कुछ लेखक श्रद्धा/विश्वास और अंधविश्वास यह दो अलग–अलग बातें मानते हैं जो विवाद का विषय है मंन्नन, कणिकर, पलियान, उराली इन जनजातियों में 'शास्ता' और 'शिव' की पूजा करते हैं और वह पेड़ के नीचे पत्थर रखकर भी पूजा करते हैं। भगवान् को बलि चढ़ाकर पूजा की जाती है कुछ जनजातीय सूरज और चांद

की पूजा करते हैं कुछ जनजातियों में पशु, पक्षियों, पेड़, चांद, सूरज, चांदनी, गगन, बिजली, बरसात और पाणी पूजा जाता है मध्य भारत में ठाकुर देव, धरमेश, नारायण, सिंग, वोंगा, डोंगरदेव, भूमात, ढगेसर, इजेस, गजरेसर, चंदरसर, सूरेसर, हिरवादेव, वनदेव ऐसे अनेक भगवान है और उनकी पूजा करने की अलग–अलग विधियां है अलग–अलग प्रदेशों और यहां तक कि देशों में भी अलौकिक शक्ति को अलग–अलग नाम से जाना जाता है।

भारत में लगभग सभी जनजातियों में ईश्वरी शक्ति को माना जाता है। गोंड, बैगा, अगरिया, परधान, मझवार, सवर, भारीया, घसीया, गोवारी, भरिया, देवार, धनुदार, खोंड, यह बड़ादेव को मानते हैं। तोड़ा समुदाय में 1600 प्रकार के ईश्वर है सभी जनजातियों में शक्ति को प्रसन्न करने के लिए उनकी अलग–अलग विधियां मौजूद है जो वर्तमान समय में भी उनकी विधिवत पूजा करते हैं और सभी शक्तियों को मानते हैं यह उनके जीवनचर्या का भाग है। सभी जनजातियों में जादू का अस्तित्व है उसमें काली जादू और सफेद जादू से काम करते हैं जिसमें मंत्र, जिसे करने की विशिष्ट विधि और स्थिति आवश्यक है। अधिकांश जनजातियों में भूत पिशाच को माना जाता है और इनका प्रकोप ना हो इसीलिए अलग–अलग विधियां मौजूद है। आज के आधुनिक दौर में भी इनका प्रभाव कम नहीं हुआ है। ग्लोबलाइजेशन की दौड़ में कुछ जनजातियों में अंधविश्वास के बारे में सकारात्मक विचार रहा है किंतु इसका प्रमाण काफी कम है।

जनजातियों में स्वास्थ्य समस्याएं :-

स्वास्थ्य का आयाम केवल शारीरिक संदर्भ तक सीमित नहीं है बल्कि मानसिक, सामाजिक, व्यवसायिक आर्थिक, आध्यात्मिक आदि से संबंधित है। जनजातियों का पर्यावास सदियों से जंगल में रहा है जो खनिज संसाधनों का केंद्र रहा है। खनिज संसाधनों की जरूरत ने पर्यावास की पुरातन व्यवस्था को बदलना शुरू किया है। इसी वजह से जनजातियों का जीवन चक्र बड़े संक्रमण से गुजर रहा है। फलस्वरुप जनजाति जनसंख्या और सामाजिक संरचना के साथ शिक्षा, गरीबी और सेहत जैसी समस्याएं निर्माण हो गई है। इन समुदायों में संक्रामक और गैर संक्रामक दोनों तरह की बीमारियां पाई जाती है। संक्रामक बीमारियों में टीबी, मलेरिया, डेंगू, चिकनगुनिया, लिफेरिक, फिलरेसिस, डायरिया और गैर संक्रामक बीमारियों में कैंसर, हाइपरटेंशन, पिढ़ीयों से मौजूद जेनेटिक डिसऑर्डर, कुपोषण जनित बीमारियां शामिल है उनमें बाल और शिशु मृत्यु दर भी अधिक है। जनजाति समुदाय जंगल या प्रकृति के समीप रहा है उनमें सबसे बड़ी स्वास्थ्य समस्याएं कुपोषण की वजह से पैदा हो रही है। जिसका कारण दूषित पानी, दूषित वातावरण, आहार में विटामिन ना मिलना यह है। यदि स्वास्थ्य के बारे में कोई शिकायत है तो आज भी यह समुदाय पुराने तरीकों को आजमाता है।

भारत में जनजातीय शिक्षा की चुनौतियां :-

भाषा संबंधी बाधाएं – जनजातीय बच्चे सामान्यतः घर पर अपनी मूल भाषा बोलते हैं जो प्रायः स्कूलों में शिक्षा का माध्यम नहीं होती, समय से पहले पढ़ाई छोड़ देते हैं। आदिवासी छात्रों में पढाई छोड़ने की उच्च दर जो एक महत्वपूर्ण चिंता का विषय है। **गरीबी –** कई आदिवासी परिवारों में वित्तीय अस्थिरता के कारण बच्चों को मजदूरी के माध्यम से घर की आय में योगदान करना पड़ता है। **शिक्षकों की अनुपस्थिति –** दूरदराज के आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षकों की अनुपस्थिति एक सामान्य समस्या है। **खराब स्कूल बुनियादी ढांचा–** आदिवासी क्षेत्रों में विभिन्न स्कूल पर्याप्त बुनियादी ढांचे से ग्रस्त है। **शिक्षक छात्र अनुपात–** आदिवासी स्कूलों में शिक्षकों की संख्या अपर्याप्त होती है।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने 'भारत में आदिवासी शिक्षा समस्याएं, नीतियां और परीप्रेक्ष्य' पर एक ओपन हाउस चर्चा का 30 अगस्त 2024 को आयोजन किया था उसमें महत्वपूर्ण कुछ मुद्दे एवं सुझाव है जिसमें – अनुभवजन्य डाटा की आवश्यकता, विश्वविद्यालय में आदिवासी केंद्रित अनुसंधान की आवश्यकता, एक व्यापक और एकीकृत नीति दृष्टिकोण की आवश्यकता, आदिवासी बच्चों के लिए समर्पित छात्रावास सुविधा, बुनियादी सुविधाएं विशेष रूप से दूरदराज के क्षेत्र के लिए अदि जिस पर कुछ हद तक अमल हुआ है।

आदिवासी समाज के लिए शिक्षा एक अनिवार्य आवश्यकता है। राज्य और केंद्र सरकारों ने आदिवासी समूहों को शिक्षित करने के लिए कई कार्यक्रम शुरू किए है। इनमें से कई कार्यक्रमों ने केवल 10 प्रतिशत लक्ष्य ही हासिल किया है। आदिवासी लोगों की एक बड़ी संख्या विभिन्न स्तरों पर अपनी शिक्षा से वंचित है। आदिवासी आबादी में उच्च निरक्षरता दर के कारण वह शिक्षा में पीछे जाते हैं। इसलिए आदिवासी शिक्षा और समावेशी विकास पर गंभीरता से विचार करने का समय आ गया है। आज के दौर में जनजाति शिक्षा यह केवल सरकारी कार्यक्रम हो गया है। एनजीओ, व्यक्ति अन्य समाज इनको जनजाति शिक्षा में कोई दिलचस्पी नहीं दिखती है केवल प्राथमिक शिक्षा की क्षेत्र में ही जनजाति शिक्षा के लिए बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराई जा रही है। वह भी कुछ हद तक ही सीमित है।

निष्कर्ष एवं वर्तमान दौर में समस्या समाधान :-

संवैधानिक प्रावधान –

भारतीय संविधान में आदिवासियों के कल्याण और अनुसूचित क्षेत्र का विकास सुनिश्चित करने के लिए 20 अनुच्छेद और दो विशेष अनुसूचियां दी गई है। यह पूरे विश्व में सबसे अनूठी बात है समानता के मौलिक अधिकार संबंधी अनुच्छेदों (14, 15, 16, 17) के अलावा, शोषण के खिलाफ अधिकार (23, 24) जनजातियों के विशेष अधिकार (15, 16, 19) के साथ–साथ राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत में अनेक अनुच्छेद (38, 39, 41, 43, 46, 47, 48) अनुसूचित जनजातियों से जुड़े हैं। इसमें सबसे महत्वपूर्ण अनुच्छेद 46 माना जाता है जो कहता है कि राज्य 'कमजोर तबको और खासकर अनुसूचित जातियों और जनजातियों के शैक्षिक और आर्थिक हितों पर विशेष ध्यान देगा और सामाजिक अन्याय तथा सभी प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा।'

जनजातीय कल्याण के अनेकों उपाय और प्रावधान मौजूद है। जनजातियों के लिए नीतियां भी बनाई गई है जिनका अमल भारत के स्वतंत्रता के बाद से आरंभ हो चुका है। आदिवासी के कल्याण के लिए तमाम संवैधानिक प्रतिबद्धताओं और नियोजन के साथ दशकों के बाद भी उनका जीवन स्तर राष्ट्रीय औसत के काफी कम है। गरीबी कुपोषण मृत्यु दर और रुग्णता उनमें सबसे ज्यादा है।

जनजातियों की मुख्य रूप से अंधविश्वास, स्वास्थ्य और शिक्षा के संदर्भ में अनेकों समस्याएं हैं। औद्योगीकरण की वजह से विस्थापित हुए जनजातियों की तरफ ध्यान देना चाहिए और उन्हें भी राष्ट्रीय प्रवाह में लाने के लिए जरूरी प्रयास ईमानदारी से और भ्रष्टाचार रहित करनी चाहिए, जनजाति को मुख्य प्रवाह में लाने के लिए स्वतंत्रता के पश्चात अनेक समितियां गठित की गई और सरकार द्वारा अनेकों योजनाएं अनेकों प्रदेशों में लाई गई ताकि उनका प्रत्येक स्तर पर विकास हो सके। साथ ही इस जनजाति का जो शोषण हो रहा है उसके लिए भी अनेकों प्रावधान किए गए आधुनिक समाज के संपर्क में जो जनजाति समाज आया है वहां भी उनका शोषण ना हो इसके लिए अन्य वर्ग को प्रयास करना चाहिए। एलपीजी और एसईझेड की दौड़ में और

इस वजह से जो जनजाति विस्थापित हुई है। उनका ध्यान रखा जाना चाहिए पंचवार्षिक योजनाओं में और अन्य व्यक्तियों द्वारा या समितियां द्वारा जो सिफारिशे की गई है। उनका ईमानदारी से अमल होना चाहिए जनजाति को मुख्य प्रवाह में लाने के लिए जनजाति विकास केवल सरकार का ही कार्यक्रम न रहकर अन्य वर्गों ने उसके लिए प्रयास करना चाहिए। जनजातियों की स्वास्थ्य संबंधी शिकायतों को ध्यान में रखकर राष्ट्रीय नीति के अंतर्गत जनजाति इलाकों में आयुर्वेदिक और होम्योपैथी दवाइयां मुहैया करना, उसके लिए कठिन इलाकों में तीन पहियों की मदद से स्वास्थ्य सुविधाएं देना, ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाओं की नियुक्ति, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र की स्थापना, जनजाति संख्या को ध्यान में रखते हुए अस्पतालों की संख्या बढ़ाना, जनजातियों के लिए आधुनिक चिकित्सा तकनीक के साथ डॉक्टर की नियुक्ति, स्वास्थ्य संबंधी जानकारी जनजाति इलाकों तक पहुंचाना और उनकी अंधविश्वास दूर करने का प्रयास करना जनजातियों की स्वास्थ्य संबंधी जानकारी रखना और उसके लिए संशोधन करना और स्वास्थ्य शिकायती दूर करने के लिए प्रयास जारी रखने आदि शामिल है जनजातियों में अंधविश्वास दूर करने के लिए उनमें शिक्षा का स्तर ऊंचा करने के लिए प्रयासों की आवश्यकता है। किशोरियों और लड़कियों की शिक्षा के लिए प्रावधान करने की आवश्यकता है। इन जनजाति में व्यावसायिक शिक्षा का भी अभाव है जो बढ़ाने के लिए प्रयास करना चाहिए। आधुनिक युग में कॉन्वेंट संस्कृति में अनु जनजाती के लोग बच्चों को सरकारी स्कूलों में पढ़ना नहीं चाहते। इसीलिए आरटीई की तहत इन बच्चों को कॉन्वेंट में पढ़ने के लिए प्रयास करना चाहिए शिक्षा व्यवस्था निजी हाथों में न देकर सरकारी हाथों में सौंप देनी चाहिए। ऑनलाइन शिक्षा के लिए जनजातियों में प्रचार एवं प्रसार करना भी अनिवार्य है तथा उन्हे इस प्रकार की शिक्षा उनको देने की आवश्यकता है।

अनुसूचित जनजातियों में उनकी समस्याओं के समाधान हेतु उनको जागरूक करने की आवश्यकता है उनमें स्वास्थ्य जागरूकता जैसे भोजन में प्रयुक्त आवश्यक तत्व की जानकारी, खुले में शौच न करना, मद्यपान के परिणाम, आवास स्वच्छता, अंधविश्वास दूर करने के प्रयास, नियमित स्वास्थ्य जांच, स्वास्थ्य जागरूकता कार्यक्रम जिससे उनको संक्रामक रोग ना हो सके, कोरोना काल में स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता के अनेकों प्रयास किए गए।

भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की 2017 की रिपोर्ट के अनुसार स्वास्थ्य सेवाओं के अभाव और परिवहन की कमी के कारण कमजोर जनजातीय समय पर स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं से वंचित है। इंडियास्पेस की जांच में पाया गया कि स्थिर आय की कमी, कम पोषण, चाइल्डकेयर केंद्रों तक सीमित पहुंच और बढ़ती खाद्य असुरक्षा के कारण यह समस्याएं और बढ़ी है पूर्ण समस्याओं का डाटा भी उपलब्ध नहीं है। जनजातीय स्वास्थ्य पर विशेषज्ञ समिति का गठन स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय तथा जनजातीय मामलों के मंत्रालय भारत सरकार द्वारा संयुक्त रूप से 2013 में किया गया था। भारत सरकार के दोनों मंत्रालयों ने माना की आजादी के 66 साल के बाद और 11 पंचवर्षीय योजनाओं के बाद हमें जनजातीय लोगों के स्वास्थ्य को गंभीर और विशेष चिंता के रूप में देखने की जरूरत है। महाराष्ट्र के विदर्भ के आदिवासी बहुत क्षेत्र मेलघाट की पहाड़ियों में 1999 के बाद आज तक 10000 से ज्यादा बच्चों की मौत हुई है। 2009–10 में 0 से 6 वर्ष के आयु वर्ग में 570 बच्चों की मृत्यु दर्ज की गई थी जो 22– 23 में 175 मौतें हुई है। भारत की उल्लेखनीय उपलब्धियां जैसे कि विश्व की पांचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था के रूप में उभरना एवं वैश्विक टीकाकरण अभियान में इसके योगदान की

बावजूद जनजातीय समुदाय स्वास्थ्य देखभाल में गंभीर और असमानता की स्थिति का अनुभव कर रहा है।

सन्दर्भ सूचि :-

1. डॉ आगलावे प्रदिप, आदिवासी समाजाचे समाजशास्त्र, श्री साईनाथ प्रकाशन, नागपुर।
2. डॉ देवगांवकर एस जी आदिवासी विकास प्रशासन, श्री साईनाथ प्रकाशन, नागपुर।
3. https://scroll-in.translate.goog/article/936859/11/09/2-/019
4. https://www.vivacepanorama.com/major-problems-of-indian-tribes/ 2711/2015
5. http://nhrc.nic.in
6. https://dbttribal.gov.in/

Prof.vijaygawande@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 107-112

एक दलित नारी की आत्मकथा : दोहरा अभिशाप

डॉ. कविता वी. राजन
सहायक प्राध्यापिका, दि कोच्चिन कॉलेज, कोच्ची – 02

दलित साहित्य सचमुच दलित–विद्रोह का साहित्य है। दलित वो है जो सदियों के उत्पीडन, शोषण सहने वाला है और समाज के हर क्षेत्र में उपेक्षित, उत्पीडित, दमित, सताया हुआ और रौंदा हुआ है। सवर्ण मेधा समाज ने उन्हें शिक्षा, धन, धरती आदि सबके अधिकारों से युग–युगों से वंचित रखा है। इस सामाजिक अन्याय के खिलाफ बहुत सारे विरोध प्रकट किये गये। आधुनिक संदर्भ में शिक्षित अवर्णों ने एकजुट होकर अपने साथ होने वाले अन्याय और अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाई और इसका परिणाम है समकालीन दलित साहित्य। दलित चिंतक कंवल भारती के अनुसार, :दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है, अपने जीवन–संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला नहीं बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है।'[1] अतः कहा जा सकता है कि दलित साहित्य सचमुच दलितों की आत्म पहचान का साहित्य है। इसमें सदियों के उत्पीडन के खिलाफ विद्रोह, आक्रोश, ब्राह्मणवादी व्यवस्था का नकार आदि देखा जा सकता है।

दलित साहित्य में आत्मकथा की अपनी अलग भूमिका रही है। आत्मकथा कथाकार के वैयक्तिक जीवन की झाँकी है। दलित आत्मकथाओं में दलितों के जीवन–यथार्थ को बहुत ही सहज–सरल भाषा में अभिव्यक्ति पाती है। भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव और नृशंसकता के खिलाफ दलित लेखक जब अपने ही जीवन से उदाहरण ढूँढ लेता है तो वे पाठकों के सम्मुख दर्द और संवेदना के अतिरिक्त अनुभूति बन जाती है। इसमें प्रतिरोध एवं विद्रोह का स्वर ज्यादा बदलती है।

दलित आत्मकथाओं की परम्परा में कौसल्या बैसंत्री की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' सबसे अधिक चर्चित रहा है। क्योंकि यह हिन्दी में प्रथम दलित–स्त्री की आत्मकथा है। इसका प्रकाशन सन् 1999 में हुआ था। यह रचना इसलिए महत्वपूर्ण है कि इसकी रचयिता दलित होने के साथ स्त्री भी है। ब्राह्मण–मेधा पुरुष वर्चस्ववादी समाज में उन्हें जो ताड़न–प्रताड़न सहनी पड़ी इसका खुलासा इस रचना में बहुत ही मार्मिक ढंग से हुआ है। दलित होने कारण और साथ ही स्त्री होने के कारण उनके साथ जो अन्याय और दमन हुआ था और लेखिका ने किस साहस के साथ उसका सामना किया था, इन सबका बयान इस आत्मकथा में मिलती है। यहाँ सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि सौ साल पहले ही कौसल्या जी की माँ और नानी ने अपनी आजीविका चलाने तथा बच्चों के पालन–पोषण में सवर्ण औरतों से ज्यादा हिम्मत दिखाई थी।

'दोहरा अभिशाप' में कौसल्या वैसंत्री ने तीन पीढ़ी के नारियों की संघर्षभरी जिन्दगी को वाणी दी है। उन्होंने अपनी नानी 'आजी' की जिन्दगी के जरिए पुरुष से और समाज से उसने जो लड़ाई लड़ी थी उसका प्रभावशाली वर्णन किया गया है। उनका विश्वास था कि आत्मनिर्भर बनकर जीने में ही जीवन की सार्थकता है। आजी की शादी बहुत छोटी उम्र में हुई और गौना होने से पहले ही उसका पति मर गया और वह विधवा बन गई। उस समय सवर्ण समाज में विधवा विवाह की प्रणाली न थी। लेकिन अस्पृश्य समाज में विधवा अगर चाहें तो शादी कर सकती थी। लेकिन इस दूसरी शादी की विधि अलग है और उसे विवाह न कहकर 'पाट' कहा जाता था। विधवा को रात के अंधेरे में उसका पति ले जाता था। विधवा की शादी धूमधाम से नहीं मनाया जाता था। विधुर पुरुष पूरी विधी के साथ कुँवारी से शादी कर सकता था, पर विधवा की शादी कुँवारे मर्द के साथ नहीं हो सकता था। इसलिए बहुत सुन्दर, चुस्त–दुरुस्थ आजी की शादी शादीशुदा मोडकूडी के साथ हुई। उसकी पत्नी और दो बच्चे भी थे। वह बड़ा झगड़ालू स्वभाव का था और चेहरा भी भयानक था।

आजी घर का सारा काम करती थी। फिर भी मोडकूजी की पहली पत्नी उस पर अपना शैब जमाती थी, और खुद पति भी उस पर हाथ उठाता था। आजी को तीन बच्चे हुए पहला लड़का और फिर दो लड़कियाँ घर में हमेशा झगड़ा, मारपीट आदि सहते–सहते आजी थक गयी। वह घर छोड़ने का निश्चय कर लेती है और दिन–रात चुपचाप अपने बच्चों को लेकर नागपुर की ओर निकल पड़ी। वहाँ उसके एक रिश्ते का भतीजा था। लेकिन रास्ते पर ही उसकी बड़ी बेटी की मृत्यु हो जाती है। ''आजी ने अपने दिल पर पत्थर रखा। मन को काबू किया। पास में ही एक गड्ढे में दफन दिया। आजी के मन पर क्या बीती होगी।''[2] उसने हार नहीं मानी। वह अपने पैरों पर खडे होकर बच्चों का पालने का निश्चय कर लिया। नागपुर पहुँचकर ईंट–पत्थर ढ़ोने का काम करके दोनों बच्चों का पालन–पोषण करती है। कभी भी किसी के आगे हाथ नहीं पसारी। बाद में बेटे की भी मृत्यु हो जाती है। फिर भी वह टूटी नहीं और अपनी छोटी बेटी भागीरथी को एक अच्छे लड़के के हाथ में देने में समर्थ हुई। इसी बीच पति की ओर से कई बार बुलावा आया, पर वह वापस नहीं गई। भागीरथी की शादी वह पति की मर्जी के खिलाफ कराई थी। भागीरथी के बच्चों का भी वह ख्याल करती थी। मृत्युपर्यंत आत्मनिर्भरता से जीने की हिम्मत उसने प्रकट की आजी के जीवन के जरिए कौशल्या जी ने स्त्री की संघर्षभरी जिन्दगी का लेखा–जोखा प्रस्तुत किया है और साथ ही साथ यह भी दिखाया है कि हर समस्या का सामना वह किस साहस और स्थिर बुद्धि के साथ करती है। आजी इस आत्मकथा में नारी शक्ति का ठोस मिसाल है।

आजी की बेटी भागीरथी यानी कि कौशल्या जी की माँ भी कम हिम्मतवाली नहीं थी। उसने भी अपने बच्चों को पढ़ा–लिखाकर कामयाब बनाने के लिए अथक परिश्रम किया था। उन्हें साथ बेटियाँ और दो बेटे थे। दो बेटे और दे बेटियों के मर जाने के बाद पाँच लड़कियाँ ही रह गयीं थी। तब वह अपने भाग्य को कोसने लगी कि 'देवा, मैंने ऐसा कौन सा पाप किया था कि मेरे नसीब में लड़कियाँ लिखी है।'[3] लड़की वह पराया धन समझा था। फिर भी जब बेटियों की पढ़ाई की बारी आयी, तब उसने कोई कसर नहीं छोड़ी। उनका सशक्त मान्यता था कि चाहे लड़का हो या लड़की शिक्षा से बलबूते वे अपने औकात से परिचित होकर आत्मनिर्भर बन जाएँगे। क्योंकि बाबासाहेब अम्बेडकर के भाषण 'पढो–लिखो, शिक्षित बनो और आगे बढ़ो' – से वे बहुत प्रभावित हुए थे। पाँच बच्चों को शिक्षा दिलाने के लिए काफी धन की जरूरत थी। इसके खातिर माँ–बाप ने कमर–तोड़ मेहनत की। उनके माँ–बाप नागपुर के एम्प्रेस मिल में काम करते थे। मिल के चिट फंड से पैसे लेकर वह जेवर बनवाती

थी। ये जेवर ही उस परिवार की जमा–पूँजी थी। जरूरत पड़ने पर उसे गिरवी रखाकर पैसे लेती थी। माँ छुट्टी के दिन बस्ती के बाहर ऊँचे घराने की औरतों की चूडी, कुंकुम, शिककाई आदि बेचने जाती थी। पैसा कमाने और घरेलू काम संभालने को वह जी–तोड़ प्रयत्न करती थी।

कौसल्या जी की माँ बहुत ही दिलेर औरत थी। उनका जीवन संघर्ष–भरा था। आर्थिक कठिनाईयों के बीच भी वह अपने बच्चों को शिक्षा देने में अटल रही। अपने बच्चों के शिक्षित बनाने के विरोध में बस्ती वाले उसके दरवाजे के पास रात में टट्टी–पेशाब तक कर जाते थे। यह सब होने के बावजूद भी वह माँ हार नहीं मानी। जब बस्ती में प्रौढ़ शिक्षा शुरु हुई तब वह पढ़ने के लिए अन्य औरतों का भी सहयोग लेती थी। इस प्रकार 'अपने बच्चों को काबिल बनाने के साथ खुद सुधारने की कोशिश में लगी रहने वाले तेज बुद्धि की महिला थी उसकी माँ।'[4] यह बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि उस जमाने में बस्ती–वालों की टीका–टिप्पणियों को अनदेखा–अनसुनाकर उस माँ–बाप ने सब लड़कियों को अच्छी शिक्षा दी। इतना ही नहीं कौसल्या कॉलेज जाने लगी, तब उसके लिए एक साइकिल खरीद लिया। यह सब अम्बेडकर जी के चिन्तन के प्रभाव का परिणाम था। नहीं तो इतनी प्रगतिशील सोच उस जमाने में अनपढ़ दलितों में कैसे आती?

शिक्षा और परिवार वालों के सहयोग के कारण कौसल्या जी ने अपने साथ हुए अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने का हिम्मत दिखाया था। शादी के पहले एक औरत होने के कारण जहाँ–तहाँ उनका शोषण हुआ था। उन सबका उसने हिम्मत से सामना किया। इसके कई उदाहरण आपकी आत्मकथा में मिलता है। जैसे कि, पिता द्वारा खरीदा गया साईकल को चोरी का माल कहकर शिकायत की गयी, तब जाँच के लिए आये पुलिस वाले को उसने समझा दिया कि उनके प्रति बस्तीवालों की ईर्ष्या की वजह से शिकायत की गयी है। एक और घटना है कि उसके रिश्ते के एक लड़के ने उसका फोटो और कौसल्या का फोटो मिलकर उन्हें चिढ़ा दिया तो कौसल्या ने उसे अपने चप्पल से थप्पड़ मारा था।

कौसल्या जी की बस्ती में हर दिन पानी के नल में झगड़ा–फसाद होता रहता था। गालियाँ, झगड़ा, मारपीट आदि से बचने के लिए उन्होंने अपने घर में नल का कनैक्शन लेने की कोशिश की। नगरपालिका का चक्कर लगाई और मेयर से मिली। किन्तु औरतों के प्रति उनका रवैया उतना अच्छा न होने के कारण चीफ इंजीनियर से मिलकर समस्या को सुलझा दिया। इस बात पर भी उन्हें बस्ती वालों की ईर्ष्या का पात्र बनना पड़ा। यह सब करने की ताकत उन्हें अपनी शिक्षा एवं घर के स्नेहिल वातावरण से प्राप्त हुई थी।

उस समय अम्बेडकर जी के आन्दोलन से प्रभावित होकर अस्पृश्य समाज के शिक्षित लोगों ने अच्छूतोद्धार के लिए जो नाटक, गीत आदि का आयोजन किया था, उसमें भी कौसल्या जी अपनी भूमिका निभाती थी। शैक्षणिक समस्याओं को लेकर चर्चा–परिचर्चा करने के लिए जब अस्पृश्य छात्रों के संपर्क में आने का मौका मिला। 1942 में जब अखिल भारतीय अस्पृश्य समाज का अधिवेशन हुआ, तब उसमें महिलाओं का अधिवेशन चलाने का सफल कोशिश भी उन्होंने किया था। उस वक्त वह केवल नवीं कक्षा की छात्रा थी। साथ ही वह अस्पृश्य विद्यार्थी फैडरेशन की ज्वाइट सेक्रेटरी भी थी। शिक्षा से वह शारीरिक–मानसिक परिष्कार और जातीयता के खिलाफ लडने की ताकत अजित की। इस तरह देखा जायें तो असामान्य नेतृत्व क्षमता उसमें थी। कॉलेज में भी कई कार्यक्रमों का संचालन करती थी। घर के कामों भी सब का हाथ बांटती थी। शादी के पहले उसके जिन्दगी बहुत ही सफल रही थी।

इक्कीस बरस की आयु में उनकी शादी देवेन्द्र कुमार से हुई थी। उनका वैवाहिक जीवन बहुत यातनापूर्ण रहा था। उनके पति बड़ा लेखक और स्वन्त्रता सेनानी थे। उसने अपने देश की मुक्ति की लडाई लड़ी थी, पर अपनी पत्नी की जिन्दगी में मुक्ति नहीं दे सका। कौसल्या जी को वास्तव में दलित होकर भी अपने कौम के कारण नहीं, बल्कि अपने लिंग के कारण, अर्थात् स्त्री होने के कारण खुद अपने पति द्वारा उपेक्षा, शारीरिक–मानसिक प्रताड़ना आदि सहनी पड़ी।

सन् 1945 में उत्तर प्रदेश के अछूत विद्यार्थी अधिवेशन में भाग लेते वक्त देवन्द्रकुमार वैसंत्री, एम. ए, एल. एल.बी से उनकी पहली बार मुलाकात हुई थी। उस वक्त वे बनारस विश्वविद्यालय में डी. लिट कर रहे थे और उत्तर प्रदेश शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन के अध्यक्ष भी थे। वे बिहार के किसान आन्दोलन में भी भाग ले चुके थे। जातीयता को मिटाने का उसके मकसद को सम्बल मिलेगा, यही उम्मीद के साथ कौसल्या विधुर देवेन्द्र कुमार से शादी का निश्चय करती है। शादी कौसल्या की बस्ती में रजिस्टर मैरिज के रूप में सम्पन्न हुई। शादी के बाद वे बनारस चले गये।

देवेन्द्र कुमार का व्यक्तित्व आत्मकेन्द्रित था। पत्नी की इच्छा, आकांक्षा, खुशी का जरा भी कन्द्र नहीं करते थे। 'गर्म मिजाज और जिद्दी। अपने मुँह से कहता है कि मैं बहुत शैतान आदमी हूँ।'[5] बात–बात पर गाली देना और हाथ उठान आम बात थी। वह अपनी पत्नी को सिर्फ खाना पकाने और उसकी शारीरिक भूख मिटाने की वस्तु समझते थे। 'देवेन्द्र कुमार (मेरे पति) को पत्नी सिर्फ खाना बनाने और उसकी शारीरिक भूख मिटाने के लिए चाहिए थी। मुझे किसी चीज की जरूरत है, उसका उसने कभी ध्यान नहीं दिया।'[6] शिक्षित होकर भी वह उसकी पत्नी की भावनाओं को समझ नहीं पाया। वह हमेशा ही असहिष्णु और संवेदनहीन रहे थे। इसी वजह से शिक्षित होकर भी कौसल्या जी को जीवन–भर संघर्ष करनी पड़ी।

'दोहरा अभिशाप' में लेखिका स्त्री की आर्थिक स्वावलंबन की जरूरत पर जोर देती है। क्योंकि आर्थिक स्वावलंबन के बिना नरी पूरी तरह आत्मनिर्भर नहीं बन सकती। कौसल्या जी को नौकरी नहीं थी, इसलिए ही पति की ताड़न–प्रताड़न वह सहती रही, अपने बच्चों के खातिर। वैसे कौसल्या के माँ–बाप ने देवेन्द्र को छोड़ने की सलाह दी थी। लेकिन वह तैयार नहीं हुई। क्योंकि बच्चों के देखभाल के लिए पैसों की जरूरत थी। खुद उन्हें पढाने के लिए माँ–बाप ने काफी कष्ट उठाये थे। इसलिए उनकी ढलती उम्र में उन्हें और बोझ देना वह नहीं चाहती थी। स्त्रियों यदि आर्थिक स्वावलंबन हासिल करती है तो ऐसी नौबत नहीं आ जाएगी।

देवेन्द्र कुमार महीने में बीस–बाइस दिन दौरे में रहता था। घर का फिक्र तो उन्हें कदापि नहीं था। पत्नी के प्रसव के दिन समीप है, यह जानते हुए भी वह दौरे पर चला जाता था। बड़ी मुश्किल से उस पीड़ा को सहते हुए खुद कौसल्या जी ने प्रसव के लिए अस्पताल में नाम दर्ज करवाती है, दाई को बुला लेती है, अस्पताल जाने के लिए गाड़ी का बंदोबस्त करती है और एक बेटे को जन्म देती है। अगले दिन सबे जब पति दौरे से वापस आया तो पता चला कि उसकी पत्नी अस्पताल है, तो वह अस्पताल पहुँचता है। उस घटना को कौसल्या जी ने यों लिखा है, 'मुझे जनरल वार्ड के पलंग पर लिटा दिया गया था। आँखें भी नहीं खुल रही थीं। तब देवेन्द्र कुमार की थोड़ी आवाज सुनाई दी। वह डाक्टर से कह रहा था कि इसे प्राइवेट वार्ड में रखो। मैं बड़ा ऑफिसर हूँ, इसकी शान उसे दिखानी थी। .... देवेन्द्र कुमार जैसे आया वैसे ही चला गया। मुझे मिला ही नहीं। न मेरी हालत के बारे में पूछा और जाते वक्त बीस तीस रुपये देकर गया था।'[7] वह तीस रुपये तो दस दिन के कमरे

का किराया था। पति उसे लेने भी नहीं आए और यह भी नहीं सोचा कि वह कैसे नहीं आएगी, और उसकी अपनी कुछ जरूरतें भी हो सकती है। लेखिका कहती है, 'क्या ऐसे पति से प्यार, श्रद्धा हो सकती है? इस प्रसंग की याद आते ही मेरा खून खौलने लगता है।'[8] देवेन्द्र के पास काफी पैसे थे, लेकिन वह अलमारी में पैसे बन्द करते थे। घर के खर्च के लिए पैसे देने में भी कंजूसी दिखाते थे। पूछने पर पत्नी की जरूरतों के लिए भी पैसा नहीं देता था। 'पैसे देवेन्द्र कुमार अपनी अलमारी में ताल बन्द रखता और रोज दूध और सब्जी के पैसे देता था, गिनकर। कभी–कभी देना भूल जाता। उसे याद दिलानी पड़ती थी। कभी कोई बात पूछने पर दस मिनट तो कोई उत्तर ही नहीं देता। उसके बाद चलते–चलते संक्षिप्त–सा जवाब मिलता था। मेरे कपड़े, चप्पल की सिलाई के लिए पैसे लेने में बहुत पीछे पड़ना पड़ता, तब पैसे देता था वे भी पूरे नहीं पड़ते थे। कभी नहीं भी देता। कहता अगले महीने में लेना। जब अगले महीने में पैसा देने की बात आती तब कुछ–न–कुछ कारण निकालकर झगड़ा करता। मारने दौड़ता, गाली देता।'[9] वह हमेशा पत्नी के साथ अमानवीय व्यवहार करता था। पत्नी पर हाथ उठाना, अपमानित करना अपना अधिकार मानता था। आर्थिक स्वावलंबन के अभाव कौसल्या जी को सदैव पति के जुल्मों को सहते हुए उसके अधीन रहना पड़ा।

'दोहरे अभिशाप' की भूमिका में लिखा है, – 'मेरे उच्च शिक्षित पति, लेखक और भारत सरकार उच्च पद पर सेवारत रहे। उन्हें ताम्रपत्र भी मिला है और स्वतन्त्रता सेनानी की पेंशन भी। पति ने कभी मेरी कदर ही नहीं की बल्कि रोज–रोज के झगडे, गालियों मुझे मजबूरन घर छोडना पड़ा और कोर्ट केस करना पड़ा। उस घर में मैं चालीस वर्ष रही। घर छोड़ने के बिखरे दिनों में मेरी लडकी सुजाता ने मुझे सहारा दिया। बेटी के घर रहते ही मुझे लिखने की सुविधाएँ और नैतिक बल मिला।'[10] लेखिका की इन शब्दों से इस बात की खुलासा हो जाती है कि पुरुष हमेशा पुरुष ही है, शिक्षित हो या अशिक्षित, सवर्ण हो या अवर्ण, वह अपनी पत्नी 'निजी माल' समझता है और उस पर कठोर व्यवहार ही करता है। शादी के पहले आत्मनिर्भर रही कौसल्या जी, शादी के बाद पति की भोग्या बनकर, अपने बच्चों के अच्छे भविष्य के खातिर अपनी लापी इच्छा–आकांओं का, भावनाओं का दमन करने को मजबूर हो जाती है। घर के दायित्व निर्वहण के लिए अपनी बौद्धिक चेतना को भी जबरदस्ती से उसे बाँधना पड़ा।

समाज में यह धारणा पहले से ही विद्यमान थी कि घर का दायित्व निर्वहण स्त्री की ही करना है। पुरुष बौद्धिक कार्य करेगा, बाहर का काम संभालेगा और पैसा कमायेगा। इसलिए ही सुरक्षित होकर भी कौसल्या जी को घर के चारदीवारों के अन्दर रहना पड़ा। धूप और बारिश में भी दुध–रेशन की लाइन में घण्टों खड़ा रहना और लम्बी उम्र में भी घर का सारा कपड़ा धोना पडा। गठिया की वजह से बैठकर कपड़ा धोना बड़ी मुश्किल थी। लेकिन पति कहते थे कि पत्नी को पालने का ठेका उन्होंने नहीं लिया है। इस तरह शारीरिक–मानसिक शोषण, उपेक्षा, घृणा एवं आर्थिक कठिनाई भोगने को वह विवश थी।

सब्र की ही एक हद होती है। आगे सहने की क्षमता कौसल्या जी में नही थी। अब बच्चे बड़े हो गये हैं। इसलिए उन्होंने चालीस साल के नरक जीवन को ठोकर मारकर उस घर से निकल पड़ी और पति के खिलाफ कचहरी में केस दायर किया। प्रति महीने 500 रुपये कौसल्या जी को मिल रहा है। लेकिन कभी–कभी वह नहीं भी देता है। यहाँ कौसल्या जी को लगता है न्याय व्यवस्था भी औरत के साथ इन्साफी नहीं करता। अब वह अपने छोटे लड़के के साथ रहती है।

कौसल्या जी का संपूर्ण जीवन संघर्षों से भरा था। लेकिन विकट परिस्थितियों के आगे वह घुटने नहीं टेकी। काफी जद्दोजेहद के बाद उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। अपने बच्चों के खातिर वैयक्तिक जीवन में समझौता करने के बावजूद भी अन्त में वह सारी श्रृंखलाओं को तोडकर अपना रास्ता खुद तय कर लेती है और अपने साथ हुए अन्याय और अत्याचार के खिलाफ आवाज बुलंद करती है। आपकी आत्मकथा सिर्फ दोहरे अभिशाप को झेलने को मजबूर दलित नारी छवि को ही उपस्थित नहीं करतीय अपितु आगामी पीढ़ी के लिए शोषण और अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाने की प्रेरणा भी देती है। उन्होंने दलित औरतों के उत्थान के लिए कई महान कार्य किए है। उन्हें स्वाभिमानी एवं आत्म निर्भर बनाने हेतु लेखिका ने 'महिला समता समाजष नाम से एक संस्था की स्थापना की। वे सचमुच समाजकर्मी महिला है।

निष्तर्षतः कहा जा सकता है कि 'दोहरा अभिशाप' दलित स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार की और उससे फीनिक्स पंछी की तरह उभरकर आने–वाली संघर्षरत नारी की आत्मकथा है। अपनी वैयक्तिक जिन्दगी के माध्यम से लेखिका ने समाज के हर वर्ग के महिला के सचेत आत्मनिर्भर और प्रगतिशील बनने का आह्वान दिया है। लेखिका यही संदेश देती है कि पुरुष सत्तात्मक समाज ने नारी के आगे जो सीमित दायरा खींचा है, उसे लाँघने का साहस जब तक नारी खुद नहीं करेगी, तब तक उसकी मुक्ति और प्रगति असंभव होगी।

संदर्भ :-

1. ओमप्रकाश वाल्मीकी, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, पृ. 15
2. कौसल्या वैसंत्री, दोहरा अभिशाप, पृ. 20
3. कौसल्या वैसंत्री – दोहरा अभिशाप, पृ. 11
4. अनुशीलन – फरवरी 2011, पृ. 48
5. कौसल्या वैसंत्री – दोहरा अभिशाप, पृ. 104
6. हंस – दलित विशेषांक, अंक – 21, अगस्त 2005, पृ. 70
7. कौसल्या वैसंत्री – दोहरा अभ शाप, पृ. 118
8. कौसल्या वैसंत्री – दोहरा अभिशाप, पृ. 119
9. कौसल्या वैसंत्री – दोहरा अभिशाप, पृ. 104
10. कौसल्या वैसंत्री – दोहरा अभिशाप, भूमिका।

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 113–116

पर्यावरण संरक्षण और विकास

डॉ. रमेश काशीराम शेंडे
मातोश्री अंजनाबाई मुंदाफळे समाजकार्य महा–नरखेड जि. नागपूर म. रा।

प्रस्तावना :–

जीवन पर्यावरण पर आश्रित है। पर्यावरण के निर्माता भूमि, वृक्ष, वनस्पती, पर्वत, जलाशय, नदी, समुद्र, सुर्य, चंद्र, नक्षत्र, प्राकृतिक एवं अप्राकृतिक जड़ व अचेतन सभी वस्तुएँ, जीव–जंतु, वायु एवं आकाश ही है जो पृथ्वी, अंतरिक्ष एवं घुलोक आदि परिधियों से संबधित हैं अर्थात् जितना भी दृष्ट एवं अदृष्ट विश्व हैं वही पर्यावरण का क्षेत्र हैं। इस शब्द में सारा भूमंडल समा जाता हैं। पर्यावरण के ये सभी घटक मनुष्य के जीवन को प्रभावित करते हैं। प्रकृति के कार्य–कलापों से इन सभी घटकों में सतुलन बना रहता हैं। इस प्रकार पर्यावरण विज्ञान सृष्टि जीवन विज्ञान से घनिष्ट रूप से संबधित हैं। पर्यावरण में जीव–जगत द्वारा भी परिवर्तन होते रहते हैं। जो परिवर्तन जीव–जगत के लिए अनुकूल होते हैं वे ग्राहय होते हैं और जिन परिवर्तनों से जीव–जगत को प्रतिकूलता प्रतीत होती हैं। वे अग्राहय हैं। अग्रहय परिवर्तनों से पर्यावरण की जीवनदायी शक्ति में असंतुलन होता हैं तथा इसी को प्रदूषित पर्यावरण की संज्ञा दी जाती हैं।

विषय विस्तार में जाने से पूर्व पर्यावरण की वर्तमान स्थिति के प्रमुख अंश निम्नांकित हैं।

1. Fo’o के करीब 70 करोड़ व्यक्ति कार्बन डाइऑक्साइड और नाइट्रोजन गैसों से प्रदूषित वायु में सॉस ले रहे हैं.। आठ महानगरों में सल्फर डाइऑक्साइड की सर्वाधिक मात्राएँ पाई गई, जिसमें पॉच महानगर हैं– शेनयांग, तेहरान, सिओल, रियोडिजेनिरो औंर वाइजिंग।
2. Fo’o की 10 प्रतिशत नदियॉ प्रदूषित हैं, जिनमें गंगा का स्थान संबसे ऊपर हैं।
3. नए मरूस्थलों का एक करोड़ तीस लाख एकड़ प्रति वर्ष की दर से विस्तार हो रहा हैं तथा विश्व की आधे से अधिक सिंचित भूमि विनाश के खतरे में हैं।
4. उष्ण कटिबंधीय वनो का दो करोड़ 70 लाख एकड़ प्रति वर्ष की दर से ह्यास हो रहा हैं तथा मिट्टी की ऊपरी परत दो करोड 60 लाख टन प्रति वर्ष की दर से क्षय हो रही हैं।
5. उष्ण कटिबंधीय वर्षा वन, जोकि विश्व के अधिकतर पौंधे और जानवरों की जातियों के जन्म–स्थल हैं, 20 हेक्टेयर/मिनट की दर से लुप्त होते जा रहे हैं। इनकी हजारों जातियां तो सूचीकरण से पूर्व ही नष्ट हो जाती हैं।
6. ऊपरी वायुमंडल का ओजोन स्तर, जो सूर्य की प्रबल रश्मियों से मनुष्य की रक्षा करता है, दिन पर दिन पतला होता जा रहा है। इससे तापमान बढ़ रहा है, जिससे विश्व में जीवन समुदाय को खतरा उत्पन्न

हो गया है। संभावना है कि वर्ष 2000 तक विश्व का तापमान 4.5 अंश से बढ जाएगा। फलस्वरूप, हिमानियॉ, पिघलेंगी, सागर का जल स्तर ऊँचा होगा और बहुत से भाग पानी में समा जाएँगे। इससे विश्व की एक–तिहाई आगादी के अस्तित्व को खतरा पैदा होगा तथा कृषि को बहुत हानि होगी।

भारत में पर्यावरण संबंधी समस्याओं को दो व्यापक श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता हैं।

अ. विकास की वास्तविक प्रक्रिया से उत्पन्न होने वाले नकारात्मक प्रभाव आकर।

ब. गरीबी तथा अल्प विकास की दशाओं से उत्पन्न प्रभाव।

पहली श्रेणी का संबंध तीव्र आर्थिक प्रगति और विकास के लिए किए गये प्रयासो के प्रभाव से हैं। कमजोर तरिके से बनाई गई विकास संबंधी योजनाएँ प्रायः पर्यावरणीय दृष्टि से विनाशकारी होती हैं। दूसरी श्रेणी का संबंध गरीबी के परिणामस्वरूप स्वास्थ, भूमि, मिट्टी, पानी, वन, वन्यजीव और आकाश जैसे हमारे प्राकृतिक संसाधनों की अखंडता पर पड़ने वाले प्रभाव से है।

पर्यावरण मानव को प्रकृति से विरासत में मिला था किंतु विज्ञान–युग के अपने नए ढंग से यह प्राकृतिक पर्यावरण अप्राकृतिक हो रहा है। प्रकृति का संतुलन डगमगाने लगा है, उनकी सादगी व पवित्रता नष्ट हो रही है और कई बुरे परिणाम मानव के सामने मुँह बाए हुए उसे घेरे खड़े है। अत; उपयुक्त परिप्रेक्ष्य में पर्यावरण संरक्षण महती आवश्यकता है। अत; योजनाबद्ध तरीके से पर्यावरण के संरक्षण के लिए व्यावहारिक रूख अपनाना ही हितकर है।

शब्द कुंजी :–

इसी अनुसंधान विषय में पर्यावरण के सभी शब्द कुंजी का निर्धारण किया गया है। जीवन पर्यावरण पर आश्रित है। पर्यावरण के निर्माता भूमि, वृक्ष, वनस्पती, पर्वत, जलाशय, नदी, समुद्र, सूर्य, चंद्र, नक्षत्र प्राकृतिक एवं अप्राकृतिक जड़ और चेतन सभी वस्तुएँ जीव जतु, वायु एवं आकाश ही है।

साहित्य परिक्षण :–

यह अनुसंधान किसी विश्वविद्यालय में लिया गया नहीं है। और कोई अनुसंधान की कॉपी नहीं किये है। पहली बार इसी अनुसंधान पर निबंध तौर पर अनुसंधान किया है।

अनुसंधान पद्धतियां :–

कोई भी अनुसंधान वास्तविक तौर पर होने के लिए अनुसंधान पद्धतियां के आधार पर अनुसंधान किये जाते है। इसी अनुसंधान के लिए "पर्यावरण संरक्षण विकास" इसी विषय पर निर्धारण किये गये है।

उद्देश्य और गृहितके :–

1. विश्व में पर्यावरण कें प्रति चेतना का विकास हुये है।
2. पर्यावरण कें सभी घटक में मनुष्य जीवन प्रभावित है।
3. पर्यावरण के प्रति व्यावहारिक संरक्षण अपनाना अच्छा है।
4. कानूनी अधिनियम के प्रावधानो के उल्लंघन के लिए कठोर शिक्षा होनी चाहिए।
5. पर्यावरण संरक्षण के कानूनी विकास बीच में नहीं होने चाहिए।

नमूना चयन :–

यह अनुसंधान में गैरसंभाव्यता चयन पद्धतियां का सोईस्कर नमूना पद्धतियां का निर्धारण किये गये है।

अनुसंधान डिझाईन :-

प्रस्तुत अनुसंधान में मुख्य तौर पर निदानात्मक डिजाईन का निर्धारण किया गया है।

तथ्य संकलन :-

प्रस्तुत अनुसंधान में तथ्य संकलन के लिये पहले चरण में निरीक्षण और मुलाखत अनुसूची का निर्धारण किया गया है। दूसरे चरण में किताबे, मासिक, अखबार, योजनाएं, इंटरनेट, सरकारी जिआर, यह सभी माध्यम का निर्धारण किये गये है।

पर्यावरण संरक्षण :-

पर्यावरण संरक्षण समय की पुकार है। विश्व के अधिकतर देश पर्यावरण प्रदूषण की समस्याओं से ग्रस्त है। पर्यावरण संरक्षण से संबधित मूल समस्याएं निम्न है।

1. जनसंख्या नियंत्रण।
2. भूमि का उचित उपयोग।
3. उर्जा संसाधनों का समन्वय।
4. पर्यावरण चेतना तथा
5. पर्यावरण और विकास कार्यक्रम।

पर्यावरणीय समस्याओं के मूल में है जनसंख्या वृद्धि। इस वृद्धि की दर विकासशील देशों में ही अधिक है। हमारे देश की आबादी वर्ष 1951 की जनगणना के अनुसार लगभग 36 करोड़ थी जोकि बढकर वर्ष 1986 में 73.2 करोड़ हो गई। अनुमान है कि वर्ष 2001 तक 100 करोड़ हो जाएगी। भारतवर्ष का भौगोलिक क्षेत्रफल संपूर्ण धरती का लगभग दो प्रतिशत है जबकि यहां की आबादी संपूर्ण अनुपात 0.48 हेक्टेयर है जो विश्व में सबसे कम है। अतः जनसंख्या के बढते दबाव से पर्यावरण पर विनाशकारी प्रभाव अवश्यंभावी है।

सम्पूर्ण स्थल क्षेत्र का उचित उपयोग आवश्यक है। मरूस्थलीय क्षेत्रों का प्रसार रोकने के लिए समुचित उपाय करने होंगे, खासतौर से इजराइल जैसे देशों का अनुकरण करते हुए इन क्षेत्रों से लाभ उठाना उचित होगा

ऊर्जा खपत प्रगति की सूचकांक है और साथ ही साथ पर्यावरण प्रदूषण का प्रमुख कारण भी है। कोयला और तेल जैसे ऊर्जा के परंपरागत स्त्रोत प्रदूषणकारी है। इनके भंडार भी सीमित हैं। इसके विपरित ऊर्जा के वैकल्पिक संसाधन सूर्य, पवन, जल आदि पर्यावरणीय दृष्टि से स्वच्छ हैं तथा इनके भंडार असिमित है। अतः आवश्यकतानुसार ऊर्जा के विभिन्न संसाधनों का समन्वित उपयोग किया जाना चाहिए ताकि पर्यावरण को क्षति न पहुंचे।

सम्पूर्ण विश्व में पर्यावरण के प्रति चेतना का विकास हुआ है। अभी हाल में ही मानव और प्रकृति के बीच समन्वय के उद्देश्य से पृथ्वी संरक्षण कोष की स्थापना पर बल दिया गया है। इस कोष के लिए प्रत्येक देश को अपने वार्षिक उत्पादन का शतांश देने का सुझाव है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक ने पर्यावरणीय सुरक्षा के लिए हर संभव सहायता देने का संकल्प व्यक्त किया है।

अनुसंधान निष्कर्ष :-

भारत में इस समय पर्यावरण के संरक्षण के लिए लगभग 30 प्रमुख कानून विद्यमान है, जिन्हे केंद्रिय व राज्य सरकारें लागू करती है। इसमें से प्रमुख कानून है; वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम, 1972; वन (संरक्षण)

अधिनियम, 1980; जल (प्रदुषण का निवारण एवं नियत्रंण) अधिनियम, 1974; वायु (प्रदुषण निवारण एवं नियत्रंण) अधिनियम, 1981; जल (प्रदुषण निवारण एवं नियत्रण) उपकर अधिनियम, 1977 पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986; सार्वजनिक रूण बीमा अधिनियम, 1991; 1988 में संशोधित मोटर वाहन अधिनियम, 1938; फैक्टरी अधिनियम और कीटनाशक अधिनियम। ये कानून केंद्रिय और राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्डो, प्रमुख फैक्टरी निरीक्षकों तथा कृषि विभागों के कीटनाशक निरीक्षकों के द्वारा लागू कराए जाते है। ये निरीक्षक विशेष तौर पर अभियंता ही होते है जो अपने क्षेत्र में कार्य–कुशल होने के अतिरिक्त इन नियमों को कड़ाई से लागू कराते है।

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, जो 19 नवंबर 1986 को लागू किया गया, एक ऐतिहासिक कानून है। इसका उद्‌देश्य देश में पर्यावरण संरक्षण तथा दूसरे संबद्ध अधिनियमों की खामियों को दूर करणा है। इसकी प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार है।

केंद्र सरकार को निम्न अधिकार दिए गए है :–

1. पर्यावरणीय गुणवत्ता का संरक्षण करना
2. इस अधिनियम कें उद्‌देश्यों से संबद्ध किसी अन्य कानून के तहत राज्यों अभियंताओं, अधिकारियों अन्य प्राधिकरणों की अतिविधिओं में समन्वय करना।
3. पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम नियंत्रण और इनमें कमी करने के लिए देशव्यापी कार्यक्रमों की योजना तैयार करना और इन पर अमल करना।
4. पर्यावरण प्रदूषण करने वाले पदार्थो की निकासी के लिए सीमा निर्धारण।
5. किसी भी व्यक्ति को किसी संस्था में प्रवेश, निरिक्षण, नमूना लेने और परिक्षण के लिए अधिकृत करना।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. आगलावे प्रदीप– "सामाजिक अनुसंधान पद्धतियां और तंत्रे" साईनाथ प्रकाशन, नागपूर।
2. बोधनकर सुधीर– "सामाजिक अनुसंधान पद्धतियां" साईनाथ प्रकाशन, नागपूर।
3. देशमुख प्रभाकर– "व्यवस्थापन मुलतत्वे" पिंपळापुरे पब्लिकेशन, नागपूर।
4. गुप्ता अरविंद– "समाज, पर्यावरण और अभियांत्रिकी" राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. पाठक अवधेश– "भारत में समाज कल्याण" बेश्ट फ्रेड पब्लिकेशन, इंदोर।
6. ढमढेरे एस. बी.– "भारतीय अर्थव्यवस्था" डायमंड प्रकाशन, पुणे।

मो. 9423604723.

Email - rkshende70@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 117-120

हिन्दी दलित कहानियों में आर्थिक समस्याएँ

डॉ. पारुल सिंह
आचार्य, श्री कृष्ण प्रणामी आर्ट्स कॉलेज, दाहोद (गुजरात) पिन नं. 389151

दलित समाज का हजारों वर्षों का इतिहास और सत्य यह है कि यहाँ स्त्री पुरुष के ऊपर बोझ नहीं होती हैं। वह पुरुष के बराबर कमाती हैं। चाहे वह घास खोदे, दूसरों के घर–खेतों में मजदूरी करें शहरों में झाड़ू–पोंछा, बर्तन सफाई, घरेलू नौकर, कागज–प्लास्टिक चुनना–बेचना, बेलदारी, सड़क–निर्माण, अनाज व साग–सब्जी के बाजारों में मजदूरी करना, सड़कों पर घूम–घूमकर कंघी–बिंदी बेचना, कपड़ों के बदले बर्तन बदलना, सिलाई, मोची, मलमूत्र साफ करना जैसे कार्यों में औरतें लगी हैं। इन असंगठित क्षेत्रों में ज्यादा परिश्रम, कम मेहनताना न कोई प्रसूति अवकाश और न साप्ताहिक अवकाश न ही सामाजिक सुरक्षा है। कमाने में या परिश्रम करने में वह पुरुष से कहीं भी पीछे नहीं है। सवर्ण स्त्रियों को कमाने की ज़रुरत नहीं पड़ती थी, क्योंकि उनके पास जमीन–जायदाद आदि आय के इतने पर्याप्त स्रोत होते थे कि वे दलित महिलाओं को नौकरानी के रुप में काम करवाती थी। इस तरह देखें तो सवर्ण स्त्रियाँ आर्थिक रुप में अपने पुरुषों पर आश्रित थी। जबकि दलित स्त्रियों के पास घर बैठकर आरामपूर्वक जीवन बीताना असंभव कहा जा सकता है। जीवन जीने के लिए उन्हें पुरुष के साथ मिलकर कमाना पड़ता है। लेकिन दलित पुरुष इस बात को नहीं समझता कि समान रुप से कमाने वाली, घर की एवं बाहर की जिम्मेदारियों को निभाने वाली स्त्री को समानता चाहिए। उसे भी घर में सम्मान से जीने का अधिकार मिलना चाहिए।

आज हम भारतीय समाज व्यवस्था को देखें तो उसमें सबसे ज्यादा प्रताड़ित और उपेक्षित वर्ग आदि कोई है, तो वह भारत की दलित नारी। दलित नारी इस देश में सदियों से शिक्षा, ज्ञान, आर्थिक साधन आदि से वंचित रही है और आज भी वह इन सबसे वंचित ही है। घर एवं बाहर तनतोड़ मेहनत करने वाली दलित नारी अपने बच्चों एवं परिवार के लिए परिश्रम करती है, फिर भी वह अपने बच्चों को दो वक्त का भोजन, शरीर पर कपड़े, पैरों मे चप्पल, शिक्षा या बीमार बच्चे के लिए दवाईयों का इंतजाम करने में असमर्थ है। दलित स्त्री यदि गाँव में है, तो उसकी जमीन सवर्ण महाजन के पास गिरवी होगी, या महाजन के क़र्ज तले दबे परिवार के साथ वह भी आर्थिक तंगी को झेलेगी। यदि खेती नहीं है, तो वह सवर्णों के खेत में मजदूरी करती है। अफसोस तो यह है कि सुबह से शाम तक परिश्रम करने के बदले में कभी फटे–पुराने कपड़े तो कभी बासी खाना दे दिया जाता है। मजदूरी के रुप में कुछ रुपये नहीं मिलते। डॉ. कुसुम मेघवाल इस विषय में कहती हैं कि :–

''परिवार का आर्थिक आधार बनने वाली दलित महिलाएँ उत्पादन के हर क्षेत्र में पुरुष का बराबर साथ देती हैं, किन्तु उनके सहयोग को नज़र–अंदाज कर दिया जाता है और केवल पुरुष को ही कमाऊ माना जाता

है। जबकि वास्तविकता यह है कि अर्थोपार्जन में नारी की अतिरिक्त भूमिका रहती है। वह पुरुष से कहीं अधिक श्रम करती है। किन्तु उसके श्रम का सही मूल्यांकन नहीं होता और उसका शोषण होता रहता है। चाहे नौकरी पेशा महिलाएँ हों या खेतिहर मजदूर महिलाएँ, उन्हें शोषण की दोहरी चक्की में पिसना पड़ता है। अर्थोपार्जक कार्यों के साथ–साथ वह घर गृहस्थी के सभी कार्य स्वयं निपटाती है। इतना सब करने के बावजूद भी उसे मिलती है झिड़कियां और तिरस्कार जिसे नारी अपनी नियति मान बैठी है। खेत–खलिहानों के अतिरिक्त पशुओं को चारा डालना, दूधदुहना, गोबर डालना, कंडे थापना, लीपा–पोती करना जैसे अनगिनत हाड़–तोड़ कार्य करते रहने के बीच कमजोर वर्ग की नारी को इतनी फुर्सत ही कहाँ मिलती है कि वह अपने विषय में सोचे अपने उत्थान के विषय में सोचे।''[1]

दलित महिलाओं को इतना परिश्रम करने के बावजूद आर्थिक कमजोरी के कारण कभी अपने बच्चे, तो कभी परिवार, आदि के कारण सवर्णों के अत्याचार को, अपमान को, बलात्कार को, सहना पड़ता है, तो कभी वह विवश होकर स्वयं अपना शरीर बेचने के लिए मजबूर हो जाती है। कभी पिता या पति उसे इसलिए बेच देते हैं क्योंकि वे अपने पेट की भूख से तंग आ जाते हैं। आर्थिक समस्याओं के कारण दलित पुरुष अपनी नई–नवेली पत्नी को छोड़कर गाँव से शहर चला आता है। गाँव में सवर्ण उसका जातीय शोषण करते हैं। सवर्ण भी नहीं चाहते कि दलितों की स्थिति आर्थिक तौर पर सुधरे, क्योंकि यदि वे आर्थिक रुप से मजबूत बन गए तो वे किसका शोषण करेंगे? उनकी गुलामी कौन करेगा? दलितों की आर्थिक कमजोरी का लाभ लेकर ही सवर्ण आरामदायक जीवन व्यतीत करते हैं और कम पारिश्रमिक देकर अधिक परिश्रम का काम करवाते हैं। गरीबों को आवश्यकता पड़ने पर कर्ज़ देते हैं और बदले में वर्षों तक उनका शोषण करते हैं, उनकी स्त्रियों पर अपना अधिकार समझने लगते हैं, दलित महिलाओं से मनमाने कार्य करवाते हैं, कई बार दलित महिलाएँ इसी कारण सवर्णों के जातीय शोषण का शिकार बनती हैं।

इस प्रकार दलित महिलाएँ अपने जीवन की शुरुआत से अंत तक आर्थिक समस्याओं का सामना करती हैं। आर्थिक समस्याओं के कारण वे कभी मजदूरिन, सफाई कर्मचारी बनती हैं, तो कभी देवदासी, वेश्या, रखैल बनकर स्वयं को मिटाकर अपनों का जीवन सँवारती हैं। हिन्दी एवं गुजराती में आर्थिक समस्याओं से जुड़ी कई कहानियाँ मिलती हैं, जिसमें दलित स्त्रियों के जीवन में आर्थिक अभावों को चित्रित किया गया है।

मोहनदास नैमिशराय की 'आधा सेर घी' की सुमति और उसका पति बलवंता अपने एकमात्र बेटे को पढ़ाने के लिए अपनी ज़मीन, घर सब कुछ बेचने के लिए विवश हो जाता है। विधवा होने पर सुमति अपने बेटे की घी से चिपड़ी रोटी जैसे साधारण सी इच्छा की पूर्ति के लिए बहुत परिश्रम करती है और 'आधा सेर घी' इकट्ठा करके भी बेटे को नहीं खिला पाती, क्योंकि बनिया उसका घी छीनकर ले जाता है। यहाँ पर 'आधा सेर घी' दलित सुमति और उसके पुत्र के लिए छप्पन भोग से कम नहीं है, किन्तु दलितों को यह कहाँ नसीब हो पाता है। बनिये के हाथों घी छीनना, दलितों की खुशियों को छीनने जैसा है। कहानीकार ने यहाँ घी के माध्यम से दलितों की छोटी–छोटी अधूरी इच्छाओं, उनके अभावों एवं हर युग में दलित की दयनीय स्थिति इसी प्रकार की रही है, इस समस्या को केन्द्र में रखा है।

अमर स्नेह की 'सनातनी' कहानी की चन्द्रो एक सफाई कर्मचारी है, किन्तु पुत्र को अच्छी शिक्षा देना चाहती है। गाँव में दलितों को पाठशाला में पढ़ने की अनुमति नहीं है। आर्थिक संकटों को झेलने वाली चन्द्रो

अपने पुत्र अनुआ को भले ही पाठशाला न भेज पाई हो, किन्तु स्वयं अच्छे संस्कार देकर एक आदर्श माँ का कर्त्तव्य पूर्ण करती है। यहाँ चन्द्रो की जाति, उसकी गरीबी उसके और उसके बच्चे के दुःख का कारण बनती है, किन्तु उसके विचारों से गुरुजी भी चकित रह जाते हैं। चन्द्रो का पुत्र की शिक्षा के लिए दलित जाति का होने के कारण बार–बार अपमानित होने पर भी रास्ते से भटकता नहीं है, यहीं उसकी चरित्र की विशेषता है।

रत्नकुमार सांभरिया की 'डंक' कहानी का दलित पात्र खेरा ब्राह्मण के धोखे की मार से अपना सारा धन गँवा देता है। उसकी पत्नी माँगी गरीबी के कारण पति का इलाज नहीं करवा पाती। कहानी में सवर्णों की अहसान फरामोशी और दलितों पर उनका अन्याय देखा जा सकता है। माँगी के पति की दवाईयों के लिए अपने ही उधार दिये रुपयों के माँगने पर ब्राह्मण द्वारा अपमानित होना उसकी करुण स्थिति को चित्रित करता है। यहाँ कहानी में दलितों का आर्थिक शोषण सवर्ण द्वारा होता देखा जा सकता है।

इसी तरह की मोहनदास नैमिशराय की 'मजूरी' कहानी में सुमति को उसकी मजदूरी सवर्ण महेश नहीं देता। विधवा सुमति अपने पुत्र के इलाज के लिए अपने किए गए परिश्रम की मजदूरी पाने के लिए बार–बार अपमानित होती है और महेश के पालतू कुत्ते का शिकार बना दी जाती है। यहाँ सवर्ण महेश की कठोरता एवं सुमति की दयनीयता दिखाई गई है। सुमति और उसके पुत्र को न तो पेट भर भोजन मिल पाता है न ही दवाईयाँ। परिश्रम करने पर भी दलितों की स्थिति करुण ही है।

कुसुम मेघवाल की 'मंगली' कहानी की मंगली भी एक मजदूरिन है। अपने बीमार पति के लिए दवाईयाँ खरीदने के लिए रुपये उसके पास कम हैं। अधिक परिश्रम करने पर भी मजदूरी कम पाने के कारण दलितों के जीवन में ऐसी समस्याएँ जीवनभर आती ही रहती हैं। मंगली दवाईयों के अभाव में पति को खो देती है, उसकी गरीबी को उसकी कमजोरी समझकर ठेकेदार उसका जातीय शोषण करना चाहता है। इस प्रकार की परिस्थिति पर गुजराती में कहानियाँ नहीं मिलती हैं जहाँ पर नायिका को आर्थिक समस्याओं के कारण पति, बच्चे या स्वयं को संसार छोड़ना पड़ता है।

दलितों को कर्ज़ में रुपये देकर उनका आर्थिक शोषण सवर्णों द्वारा किया जाता रहा है, साथ ही उनकी स्त्रियों का जातीय शोषण करके उनकी गरीबी एवं लाचारी का दुरुपयोग भी सवर्णों द्वारा किया जाता है। इस प्रकार दलितों की आर्थिक विवशता को केन्द्र में रखकर लिखी गई कहानियों में–

रत्नकुमार सांभरिया की 'बात' कहानी है। सुरती विधवा स्त्री है। बेटे की पढ़ाई के लिए तीन सौ रुपये धींग नामक सवर्ण से उधार लेती है। धींग इसके बदले में उसका जातीय शोषण करना चाहता है, किन्तु सुरती अधिक परिश्रम करके अपनी लाज बचाना चाहती है। यहाँ सुरती का अपने आत्मसम्मान के लिए संघर्ष, आर्थिक समस्याएँ, सवर्ण का अत्याचार दलित महिला का अकेले संघर्ष सुरती को कमजोर नहीं बना पाता।

मोहनदास नैमिशराय की कहानी 'अपना गाँव' में कबूतरी का पति गाँव के ठाकुर से उधार रुपये लेकर शहर नौकरी करने जाता है। ठाकुर उसके बदले में कबूतरी का जातीय शोषण करना चाहता है। कबूतरी के इन्कार करने पर उसे नग्न करके गाँव में घुमाया जाता है। दलितों की आर्थिक कमजोरी सवर्णों की ताकत बन जाती है। सवर्ण इसी कमजोरी का भरपूर फायदा, उठकार अपनी मनमानी करते हैं।

मोहनदास नैमिशराय की 'कर्ज़' कहानी में भी यही समस्या देखी जा सकती है। रामप्यारी का बेटा अशोक अपने पिता के तेरहवीं में (मृत्यु के बाद की जाने वाली विधि) कर्ज़ लेकर कोई क्रिया कर्म नहीं करना चाहता।

महाजन उसे कर्ज़ के जाल में फँसाना चाहता हैं। अशोक के विद्रोह की सज़ा उसकी माँ–बहन का बलात्कार एवं हत्या करके ली जाती है। यहाँ दलितों द्वारा आर्थिक रुप से सवर्णों के समक्ष आधारित बनाए रखने के लिए दलितों को विवश करने की समस्या देखी जा सकती है।

आर्थिक समस्याओं के कारण आज दलित गाँव को छोड़कर शहर की ओर रोज़गार करने के लिए पलायन कर रहे हैं। गरीबी उनका पीछा वहाँ भी नहीं छोड़ती। जो शोषण गाँव में होता था वही शहर में भी होता है। महेश कुमार केशरी 'राज' की 'कैद' कहानी का विष्णु पासवन गाँव की गरीबी से तंग आकर रोजगार की तलाश में एक दलाल के हाथों फँस जाता है। वह शहर में बंधुआ मजदूर बन जाता है। वह कुँए से निकला है, किन्तु खाई में चला जाता है।

आर्थिक समस्याओं के कारण दलित स्त्रियों को सवर्णों के हाथों या तो बेच दिया जाता है, या वे स्वयं अपना शरीर बेचने पर विवश हो जाती हैं। हिन्दी में इस समस्या को केन्द्र में रखकर कई कहानियाँ लिखी गई हैं। अखिलेश कुमार की 'कर्फ्यू' कहानी की फुलिया कर्फ्यू के समय भूख से बिलखते अपने छोटे–भाई बहनों के लिए भोजन का इंतजाम करने के लिए सवर्ण अधैड़ रसिक के समक्ष समर्पण करती है।

प्रेम कपाड़िया की 'हरिजन' कहानी की परबतिया देवदासी प्रथा से जुड़कर अपना शरीर मंदिर के पुजारियों के समक्ष समर्पित करती है।

डॉ. सी. बी. भारती की 'भूख' कहानी में आदिवासी समाज के फिरतो के पेट की भूख के लिए विवाहित पुत्री एवं उसके दो बच्चों को बेचना दलितों की विकट आर्थिक समस्या को चित्रित करती है। आदिवासी परिवार की इस समस्या का भरपूर लाभ उठाने वाले सवर्ण किस प्रकार उनका शोषण करते हैं, यह भी दिखाया गया है।

इस प्रकार हिन्दी दलित कहानियों में, दलित नारी के जीवन की सबसे बड़ी समस्या 'आर्थिक समस्या' को कई कहानियों में चित्रित किया गया है। आर्थिक समस्या से जूझती दलित नारी एवं उसका परिवार किस प्रकार की मानसिक, शारीरिक यातनाओं का भोग बनता है, उसे भी देखा जा सकता है।

संदर्भ सूची :-

1. दलित नारी एक विमर्श–सकंलन स. डॉ. मंजू सुमन संपादन–ज्ञानेद्र रावत, पृ. स. 34

मो. नं. 9428673109

Email–parulsndt@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 121-126

राही मासूम रजा का उपन्यास "कटरा बी आर्जू" उपन्यास में राजनीतिक व्यंग्य

डॉ० किंजलबहेन जगदीशचन्द्र दरजी
असि० प्रो० श्री कृष्णप्रणामी आर्ट्स कॉलेज, दाहोद (गुजरात)
श्री गोविंद्गुरु यूनिवर्सिटी, विंझोल (गुजरात)

प्रस्तावना :–

1947 में भारत ने राजनीतिक दृष्टि से आजादी प्राप्त कर ली थी, किन्तु वह सामाजिक दृष्टि से आजाद नहीं हुआ था। पूर्ण स्वराज का स्वप्न हमारे देश के राजनेताओं ने भी देखा था जो आंशिक अर्थ में सिद्ध हुआ था। हमारा भारतीय लोकतन्त्र राजनीति पर आधारित है।

26 जनवरी 1950 को भारत ने अपना संविधान लागू कर अपना सार्वभोम गणतन्त्र के रूप में प्रतिष्ठित किया था। उसके बाद भारत की भोली जनता ने देश में परिवर्तन के सपने देखे थे। जनता की आँखों में सपने थे जनता को देश की आजादी बाद कुछ आशाएँ थी। किन्तु बहुत प्रतीक्षा के बाद भी जनता को कुछ भी हासिल नहीं हुआ। जनता को रोटी, कपड़ा, मकान कुछ भी हासिल नहीं हुआ। भारत की भोली जनता के सारे सपने चकनाचूर हो गए थे।

स्वतंत्रता के लिए हमने बलिदान दिया, देश के लिए शहीद हुये, अंग्रेजो से इतनी यातना सहन करते रहे। स्वतंत्रता के बाद हमारी चुनाव की सरकार का फर्ज था की जनता और वह कदम मिलाकर देशवासियों और जो स्वतंत्रता के लिए हजारो लोग शहीद हो गए उनके सपने पूरे करे। नेता उनके स्वार्थपूर्ति के मे रह गए और देश की जनता भी सामाजिक डायरे मे सिमटकर रह गई। धीरे–धीरे हमारा देश जातिवाद, छुआ–छूत, की विसंगतियों से लोगों में दूरी बढ़ने लगी।

स्वातंर्त्योत्तर काल में देश की सत्ता पूँजीपतियों के हाथ में चली गई थी। स्वप्न भंग जनता की राजनीतिक प्रतिकूल रूप में विकसित हुई। देश में प्रशासन में भ्रष्टाचार, स्वार्थवृत्ति, घूसखोरी अभिन्न अंग बन गया था। स्वधीनता के बाद भी देश की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। जिनका मूल कारण नेताओं की स्वार्थवृत्ति ही थी। 'राजनीति' शब्द का प्रयोग हम विविध अर्थो में करते हैं। मुहल्ले की राजनीति से कार्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों, लोकसभा, विधानसभा, चुनावों, विश्व के युद्धन्माद को भी राजनीति की ही संज्ञा दी जाती है।

भारतीय जनतंत्र में चुनाव का महत्व है। चुनाव पक्रिया आज के समय में षड्यंत्रपूर्ण हो गई है। आज की चुनाव प्रक्रिया जातिवाद, धर्मवाद के आधार पर ही होती है। कभी–कभी व्यापारियों एवं पूँजीपतियों से

साँठ–गाँठ करके तो कभी पार्टी के नाम पे चंदा इकठ्ठा कर के मोटी रकम वसूली जाती है। यही कारण है कि चुनावोपरांत व्यापारियों तथा पूँजीपतियों के इशारों पर काम होता है। सामान्य प्रजा के लिए महंगाई का ग्राफ बढ़ता जाता है और मध्य वर्ग मंहगाई की चक्की में पिसती रहती है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में जैसे–जैसे राजनीतिक प्रभाव एवं उसके दबाव के कारण पुलिस, न्यायतंत्र एवं प्रशासनिक व्यवस्था यह सभी नेताओं के हाथ की पुतली बन गए है। प्रजा की रक्षा करने वाला रक्षक ही प्रजा का भक्षक बन गया और न्यायतंत्र अंधा, बहरा और गूँगा हो गया। इसी के परिणाम स्वरूप स्वतंत्र भारत का सपना जो देखा था वह चूर हो गए। भारत की राजनीति के मूल्यों की हालत देख कर प्रजा का विद्रोहात्मक स्वर बढ़ चुका था।

वर्तमान राजनीति में दलबदलू प्रवृति, प्रलोभनों देकर जनता से विश्वासघात होता रहा है, जो प्रजा के साथ खुला विश्वासघात है। कुल मिलाकर–"राजनीतिक कुचक इस सीमा तक भयावह हो गया है कि देश के जीवन से सिद्धांत और आदर्शो का लोप हो गया है। राजनीति दल–बदल, रोज सरकारो का बनना और गिरना, मुख्यमंत्री से लेकर कलर्क और चपरासी तक मची हुई लूट–पाट, नोच–खचोट, एक विचित्र–सी आपाधापी में आज मनुष्य बुरी तरह कुचला जा रहा है।" अतः कह सकते है कि स्वातंर्त्योत्तर काल में देश की राजनीति विशाक्त हो गई थी। स्वातंर्त्योत्तर काल में पद –लोलुपता, भाई–भतीजावाद, षड्यंत्र, भ्रष्टाचार, घूसखोरी प्रचुर मात्रा में हुआ था।

"आधी सदी पूर्व जब भारत ने लोकतांत्रिक शशान पद्धति का चयन किया तो इसने केवल यूरोप और अमेरिका की संस्थागत अनुभव को ही नहीं, बल्कि अपने सार्वजनिक संवाद एवं विविध विचार अभिव्यक्ति की परंपरा को भी आधार बनाया। उसी समय स्वतंत्र हुआ भारत विश्व का एकमात्र गैर पाश्चात्य देश था जिसने लोकतंत्र को चुना।" अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन ने भारतीय राजनीति की पद्धति के बारे में कही गई बात अनायास नहीं है। यह कथन के पीछे का मूल उद्देश्य अपने विविधता से भरे भारत देश के भविष्य का निर्माण संवाद की परंपरा थी। ऐसी परिस्थिति भारत के अर्थ व्यवस्था, भौगोलिक विविधता एवं संसाधनों, अमीरी गरीबी के बीच मे रही खाई, जाति के भेद, यह सभी राजनीतिक विसंगतियाँ है।

४०२ राजनीति की परिभाषा :–

राजनीतिक चिन्तकों ने 'राजनीति' को परिभाषित करने में एकरूपता अथवा विचार–साम्य का परिचय नहीं दिया है। प्राचीन भारत की शास्त्रीय द्वष्टि के अनुसार 'राजनीति' शब्द का निर्माण संस्कृत के 'राज' और 'नीति' – इन दो शब्द के योग से हुआ है। 'राजनीति' का अर्थ 'ले जाना' है। राजा राज्यमिति प्रवृति संक्षेप के अनुसार 'राजा' और राज्य में अभेद है। 'राजनीति' का अर्थ राज्य के सम्यक संचालन से ही समझा जाता था, किन्तु 'राजनीति' शब्द वस्तुतः अंग्रेजी शब्द 'पॉलिटिक्स' का हिन्दी अनुवाद है। यह 'पॉलिटिक्स' शब्द यूनानी के 'पोलिस' शब्द से व्युत्पन्न है जिसका त्रुटिपूर्ण अनुवाद 'नगर–राज्य' है। वस्तुतः इसका सही भावानुवाद 'नगर समुदाय' है।"

'राजनीति' शब्द को सम्यक रूप से परिभाषित एवं व्याख्यायित करना सचमुच मुश्किल कार्य है। डॉ० श्यामलाल वर्मा के अनुसार "राजनीति' विशिष्ट प्रकार के अन्तः संम्बन्धों का नाम है। ऊपरी तौर पर वह विशिष्ट मनुष्यों और समुदायों या समूहों द्वारा संचालित होती है, वास्तव में वह सर्वत्र विद्यमान है कहीं स्वतंत्र परिवत्यों

के रूप में अवस्थित होते हैं। राजनीति विशिष्ट परिवत्यों के रूप में ये परिवर्त्य एकस 'सेट' के रूप में अव्यवस्थित होते है। राजनीति विशिष्ट परिवत्यों का एक विचार चित्र हैं, जिसे हम राजनीति की परिभाषा या व्याख्या करते हैं। जब विचार चित्र के परिवत्यों विशिष्टताओं का स्पष्टीकरण एवं सीमा निर्धारण होता है।"

राजनीति का प्रत्यक्ष सम्बंध शासन या सरकार से माना जाता है। राजनीति के इसी रूप को ध्यान रखकर पिनाक एवं स्मिथ ने इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है। "राजनीति उन समस्त शक्तियों से संबन्धित है जो राज्य के शासन, उसकी नीतियों तथा कार्यों को संधठित करती एवं गढ़ती है। इस तरह राजनीति किसी भी समाज में उन शक्तियों, संस्थाओं तथा संगठनात्मक प्रकारों से संबन्धित होती है, जो किसी समाज में सुव्यवस्था के साधारण और स्थापना, उसके सदस्यों के सहभागिता प्रयोजनों को कार्यान्वित तथा उनके मतभेदों को समाधान करने के लिये, उस समाज में सर्वाधिक अन्तभावी तथा अंतिम सत्ता माने जाते हो 'राजनीति' के राजनीति का विश्लेषण पद है।"

'राजनीति' को परिभाषित करते हुए ईस्टन कहते हैं – "वे समस्त प्रकार की गतिविधियाँ राजनीति है, जो सामाजिक नीति के निर्माण और क्रियान्वयन में अंतग्रस्त होती है।" यह परिभाषा को राजनीति की व्यवस्था में देखे तो 'राजनीति' को किसी निर्माण की सीमा में हम कैद नहीं कर सकते।

जब राही मासूम रजा ने अपने समय में हो रही राजनीति की पदचाप को गंभीरता से देख और सुन रहे थे। उन्होने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से राजनीति का तंत्र की खामियों को लेखन में उजागर किया। आधा गाँव, टोपी शुक्ला, ओस की बूँद, कटरा बी आर्जू और असंतोष के दिन में राजनीति मे असंतोष देखने मिलता है।

"कटरा बी आर्जू "आपातकाल 26 जून 1975 से 21 मार्च 1977 की घटना पर बना उपन्यास है। यह उपन्यास की कथावस्तु आपातकाल के उदयकाल से पूर्व की पृष्ठभूमि से प्रारम्भ होने से और 'जनता राज के उदय' पर आकर समाप्त होता है। आपातकाल के पूर्व और उसके बाद देश की जनता को किस तरह ठगा जाता है वह मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है।

जब आपातकाल हुआ उसी दौरान उच्चवर्ग, नेतावर्ग ने कैसा अंधेर मचाया, सामान्य वर्ग का कैसे भरोसा तोड़ा। इसी कटुता भरी स्थिति का पूरा वर्णन 'कटरा बी आर्जू' है।

आपातकाल के समय में जो यातनामय स्थितियों का चित्रण किया है उसमें दर्द का अहसास मीट कर दर्द ही दवा बन जाता है। इस उपन्यास में देशराज, बिल्लो, प्रेमा नारायण, शम्सू मियाँ, भोलू पहलवान, इतवारी बाबा, बाबुराम, आशाराम मुख्य पात्र है। इमरजेंसी की वास्तविकता इस उपन्यास में उभरकर आयी है।

कटरा बी आर्जू में राजनीतिक व्यंग्य निम्न मुद्दो से हम देख सकते है।

– भ्रष्टाचार एवं लूटखसोट।
– स्वार्थी राजनीति।
– शासन प्रणाली।
– भाई–भतीजावाद और आनुवंशिकता।

आपातकाल की स्थिति में लोगो ने जो दर्द, अत्याचार सहन किए। इसका वर्णन किया है।

भ्रष्टाचार एवं लूटखसोट :-

आज की जनता जानती है राजनीति की सच्चाई। इसलिए वह अब सोच समजकर वोट करती है।

जनता जानती है कि जो भी नेता आयेगा वह जनता को लूटने वाला और पूँजीपति को मदद करने वाला ही होगा। इसलिए जनता अब विश्वास नहीं करती। जो सही है उस पर ही करती है। यहाँ आशाराम नेताओं की सारी सच्चाई जनता है और वह अब उनपे विश्वास नहीं करता वह कहता है –"आशाराम को अब कांग्रेस सरकार पर बिलकुल भरोसा नहीं था। सरकार चाहे नेहरू की हो, चाहे लालबहादुर की, चाहे मिसेज गाँधी की – कांग्रेस सरकार पूँजीवाद की दलाल और जनता की दुश्मन है। बजट चाहे मुरार जी बनाएँ चाहे सुब्रामनियम– कांग्रेस सरकार का हर बजट जनता को लुटने वाला और पूँजी के बड़े घरानों का मददगार है......और फिर एक दिन आशाराम ने अपने कमरे से गांधी जी की तस्वीर हटा दी।"

नेताजी जब अपनी सभा करते है तब सुनने आने वाली भीड़ यही उम्मीद पर आयी होती है कि नेता आए है तो उनकी मदद करने आए है उनके आने से हमारा कुछ भला होगा, यहीं कारण से लोग नेताजी का भाषण सुनने जाते है। यह उपन्यास में आशाराम के साथ भी कुछ ऐसा हुआ –"आशाराम जनता था कि सामने बैठे हुये लोग यह सोच रहे हैं कि वह उनके दुःखों, उनकी भूख, उनकी जरूरतों को खत्म करने का कोई टोटका बताएगा और आँख झपकते दुनिया बदल जाएगी और बाबूसाहब मुस्कुराते हुये आएँगे और मजदूरियाँ बढ़ जाएँगी महँगाई भत्ता बढ़ जाएगा और बोनस मिल जाएगा।"

आजादी के बाद हमारे देश में एक ही पक्ष था जहाँ लोग आँख मूंद कर भरोसा करते है। उस पक्ष में टिकिट मिलना भी अपने आप में बड़ी बात थी क्योंकि कांग्रेस पक्ष किसी को भी टिकिट नहीं देती थी। सिर्फ भरोसेमंद को ही टिकिट मिलती थी। कभी ऐसा भी होता कि कोई ऐसे को टिकिट मिल जाती तो जनता उसके विरोध में चली जाती। सभी जानते है कि राजनीति किसी की सगी नहीं होती। यहाँ कटरा बी आर्जू के वोटरो के बारे में कहा है कि– "बाबुराम आजाद के असर में थे, और हर चुनाव में आँखें बन्द करके कांग्रेस को वोट दे आया करते थे। जब गौरीशंकर को टिकिट मिला तो बाबुराम खुश नहीं हुए, क्योंकि वह जानते थे कि गौरीशंकर भी अपने बाप ही की तरह बईमान आदमी हैं। पर पार्टी ने उन्हें टिकिट दिया था इसलिए बाबुराम ने उन्हीं का साथ दिया, हालाँकि उनके खिलाफ सोशिलिस्टों ने जो आदमी खड़ा किया था वह बड़ा ईमानदार और जनता की सेवा करने वाला आदमी था। उसका बाप बाबुराम जी के साथ कई बार जेल, एओ रह चुका था। पर राजनीति दोस्ती और रिश्तेदारी नहीं मानती। जिसकी राजनीति गलत हो वह न दोस्त न रिश्तेदार।"

स्वार्थी राजनीति :–

आपातकाल के दौरान देश में बहुत सी समस्याएँ थी। उस समय की मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी थी। उन्होने देश को आगे बढ़ाने के लिए 'गरीबी हटाओ' का नारा दिया था। उससे हमारे देश की प्रगति के बारे में सोच थी कि जब देश में गरीबी कम होगी तभी देश में विकास होगा और देश समृद्ध बनेगा। पर लोगों ने उसका गलत अर्थ निकाला "श्रीमती गाँधी गरीबी हटाओ का नारा दिया था। गरीबी खुद–ब–खुद खत्म हो जाये है।"

भारत में नेता और राजकीय पार्टियों को लोग अपना समझकर उनके बारे में बहस तक कर देते है। कभी तो अपने नेता की पार्टी सही है उनके विचार सही है और दूसरी पार्टी वाले नेता और उनके विचार गलत है वो साबित करने में कभी–कभी बड़ी बहस और मामला ज्यादा गरम हो जाए तो हाथापाई भी हो जाती है। यहाँ आशाराम और देश में बहस में मारपीट ना हो जाए तो बाबुराम ने बहस में हिस्सा लेने का फेसला किया वह बोले "पर आशाराम, जिन जस्टिस सिन्हा ने राजनारायण को जितवाया है, उन्होंने बीस दिन के लिए अपने फैसले को

स्टे भी किया है। तो प्रियदर्शिनी क्यों त्यागपत्र दे?"

"इसलिए त्यागपत्र दे आपकी प्रियदर्शिनी कि जिस चुनाव के आधार पर वह प्रधानमंत्री बनी हुई है उसे हाईकोर्ट ने नहीं माना है। खरे साहब ने नए प्रधानमंत्री के चुनाव के लिए स्टे लिया था?"

"तो का करे वह?" देश ने पूछा, "जयप्रकाश नारायण को प्रधानमंत्री बना दें?"

"नहीं भई, त्यागपत्र दें उनके दुश्मन।" आशाराम ने कहा, "यह औरत हिंदुस्तान को अपने बाप की जागीर समझती है।"

"मेरे घर में नेहरु परिवार के लोगों का नाम इज्जत ए लिया जाता है।"

"आपका घर हिंदुस्तान से बाहर नहीं है पिताजी।" आशाराम ने कहा, "और जितना अधिकार आपको उनकी इज्जत करने का है, उतना ही अधिकार मुझे उनकी इज्जत न करने का है।" भारत की जनता सोचती भी है और समझती भी है। अपना पक्ष रखकर दूसरों को समजाति भी है। राजनीति भी जानती है और राजनीति को दलदल समझकर उससे दूर भी रहती है। देश की आवाम अपने पक्ष की पार्टी के असूलों को ही मानती है और दूसरा मानने से इंकार करे तो वह बहस और उसके बाद मारपीट पर भी पहुँच जाती है।

शासन प्रणाली एवं व्यवस्था तंत्र :-

जब दिल में देशभक्ति होगी तो कोई भी देश विरोधी या देश में फायदा उठाने वाले लोगों पर सच्चे देशभक्त के दिल में दर्द उठेगा। देश को खोखला करने वाले के प्रति दिल विद्रोह करने लगता है। विद्रोह हर हिन्दुस्तानी में है क्योंकि हर हिन्दुस्तानी जानता है कि आजादी के बाद देश में कैसा माहोल हो गया था। देश में कई पक्ष बने पर जो वफादार रहे उन्होने कांग्रेस का साथ कभी नहीं छोड़ा। सालो तक वह कांग्रेस के वफादार रहे। यहाँ बाबुराम दिल ही दिल में कह रहा था कि –"कांग्रेस के भीतर–भीतर बाबू गौरीशंकर पांडेय और उन जैसे पेशावर नेताओं के विरोधी थे और इसीलिए वह कांग्रेस में अपना कोई दल न बना सके और किसी दल ने भी उन्हें स्वीकार नहीं किया। आजादी के बाद से कांग्रेस में ईमानदार लोगों कि खपत यूँ भी कम हो गई थी। बाबू गौरीशंकर –जैसे लोग तो टिकिटों की औलादे हैं। जहाँ टिकिट बँटता है, वहाँ यह लोग पैदा हो जाते हैं। बाबू गौरीशंकर पहला और दूसरा चुनाव कांग्रेस के टिकिट पर जिते। फिर जब चरणसिंह कांग्रेस से अलग हुए तो वह भी अलग हो गए और जब चरणसिंह की सरकार टूटी तो वह फिर कांग्रेस में लौट आए। बाबुराम यह राजनीतिक कबड्डी नहीं खेल सकते थे। उन्हें यह अच्छा भी नहीं लगता था। कांग्रेस में उनकी तीसरी पीढ़ी है। आशाराम कांग्रेसी होता तो यह उनकी चौथी पीढ़ी हो जाती। उनकी वफादारियाँ कांग्रेस से जकड़ी हुई थी।"

हमारे भारत देश की जनता जिस नेता को चुनती है उस नेता पर जान लूटा देती है। वह नेता पर विश्वास रखती है वह नेता जनता के लिए बहुत ही शक्तिशाली होता है। यहाँ इन्दिरा गाँधी जी के बारे में कहा है कि वह इतनी लोकप्रिय थी जनता उन्हे शक्तिशाली नेता मानते थे। और वह एलेक्शन में हार जाए वह जनता मान भी नहीं सकती थी। "आकाशवाणी की एक न्यूज–रीडर प्रेमनारायण को जब यह खबर सुनानी पड़ी कि श्रीमति गाँधी इलेक्शन पेटीशन हार गई और अब वह छः साल तक कोई चुनाव नहीं लड़ सकेंगी तो वह रो पड़ी और उसे कई बार 'क्षमा कीजिएगा' कहना पड़ा। वह यह सोच भी नहीं सकती थी कि मिसेज गाँधी कोई लड़ाई हार भी सकती हैं। जिसने मुरार जी भाई को दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंका हो वह भला किसी जस्टिस जगमोहन सिन्हा से कैसे हार सकती हैं।"

"बिल्लो इन्द्रा गाँधी के मुकद्‌दमा हारने के गम में इतना रोई की उस दिन जनता लांडरी को खोलना भूल गई।" अपने नेता के हारने पर लोग इतना डूब जाते है कि वह पक्ष का दुःख अपना दुःख मानता है और वह दुःख उनके जीवन में भी अहम भूमिका अदा करता है।

संदर्भ :-

1. हिन्दी उपन्यास – डॉ० सुरेश सिन्हा – पृ. 143
2. अमृत्य सेन – भारतीय अर्थतंत्र, इतिहास और संस्कृति, – पृ. 27
3. डॉ. जीतेन्द्र वत्स, साठोत्तर हिंदी कहानी और राजनीतिक चेतना – पृ. 13
4. डॉ० श्यामलाल वर्मा, आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत – पृ. 86
5. डॉ० जितेंद्र 'वत्स, साठोंत्तरी हिन्दी कहानी और राजनीतिक चेतना – पृ. चेतना।
6. मधुमती–अप्रैल, 82, डॉ० लक्ष्मी नारायण दुबे, पृ. 49
7. कटरा बी आर्जू, राही मासूम रजा, राजकमल पेपरबेंक्स, पहला पुस्तकालय संस्करण, पृ. 15
8. वहीं, पृ. 17
9. वहीं, पृ. 39
10. वहीं, पृ. 41
11. वहीं, पृ. 127–128
12. वहीं, पृ. 16
13. वहीं, पृ. 114
14. वही, पृ. 121

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 127-131

किसानों की कृषि, प्राकृतिक और सामाजिक स्थिति

डॉ. विनोद श्रीराम जाधव
हिंदी विभाग प्रमुख एवं शोध निर्देशक, मत्स्योदरी शिक्षण संस्था संचालित,
कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, अंबड, जि. जालना, महाराष्ट्र।

जमीन और किसान का अटूट रिश्ता होता है। वह अपनी जमींन से सर्वाधिक लगाव रखता है। दरअसल कृषक समाज के लिए कृषि कोई धंधा नहीं बल्कि यह उसकी जीवन शैली है। आज सब कुछ वैज्ञानिक विकास ने मानव को अभूतपूर्व साधन दिए हैं, जिससे मानव ने असाधारण सफलता प्राप्त कर भी वह किसान बना रहता है। किसान के लिए कृषि कोई व्यापार–व्यवसाय भी नहीं है बल्कि यह उसे रोजमर्रा के कार्यों में शामिल करता है और बड़े चाव से खेती करता है। उसे चाहे कितना भी प्रलोभन दो वह अपनी कृषि वाली जमीं कभी छोड़ेगा नहीं। हम आज मशीनी युग में सर्वसाधन संपन्न हो चुके हैं। और बहुत पहले जो कार्य हम दीर्घ समय में पूरा करते थे वो आज चुटकी बजाते ही हो जाता है। विज्ञान की उपलब्धियों के कारण व्यक्ति आज हर जगह अपनी सफलता के परचम फहरा रहा है। लेकिन विषमताएं फिर भी हैं। भारतीय किसान की स्थिति आज और पहले के समय के अनुसार न्यूनाधिक परिवर्तित हुई है। पहले कृषक अधिक समृद्ध न होकर विपन्न था। आज कृषक संपन्न होकर भी विपन्न है। पहले किसान उचित श्रम के बाद भी सामाजिक शोषण का शिकार हो जाता था। साधान हीनता, आर्थिक कमजोरी के कारण वह शोषित होकर लाचार रहता था। आज साधन संपन्नता ने तरक्की के द्वार तो जरूर खोले हैं किन्तु किसान की तरक्की में अभी और भी कई बाधाएं खड़ी हैं जैसे राजनैतिक धोखेबाजी, प्राकृतिक आपदायें और कमजोर आर्थिक परिस्थिति।

किसानों की खुशहाली के लिए इन तीन समस्याओं का हल निकालना जरूरी है। १९९५ से २०१६ तक देश में कुल ३,२६,९०७ किसानों ने आत्महत्या की। क्या कहता यह आंकड़ा...? क्या इससे सरकार की नीतियों पर तीखे प्रश्न नहीं उठते..? NCRB ने किसानों की आत्महत्या के सन्दर्भ में २०१६ में एक रिपोर्ट जारी की। २०१४ से २०१६ तक यानी की केवल ...केवल तीन वर्ष में ३६३४१ किसानों ने आत्महत्या की। २०१४–१२३६०, २०१५–१२६०२, २०१६–११३७९

१९९५ से २०१६ तक अगर इतनी बड़ी संख्या में हमारे अन्नदाता यानि कि किसान आत्महत्या करेंगे तो सीधी उंगली भ्रष्ट सरकार की भ्रष्ट आर्थिक नीतियों पर ही उठेगी। अधिक जानकारी लेने पर पता चलता है कि किसानों की मुख्य रूप से तीन समस्याएं हैं – (१) अत्यधिक कर्ज का दबाव (२) फसलों की लागत में बेमाप खर्च (३) फसलों का वाजिब दाम नहीं मिलना। किसानों की स्थिति में सुधार लाने के लिए सरकार ने १८ नोवेम्बर २००४ में एक आयोग का गठन किया जिसकी अध्यक्षता स्वामीनाथन ने की थी। इस आयोग का नाम 'राष्ट्रीय

किसान आयोग' था। इस आयोग ने सरकार को ५ रिपोर्ट सौंपी थी। अवसाद भरा आश्चर्य तो तब होता है जब हमें पता चलता है कि इन ५ रिपोर्ट की चर्चा आज तक संसद में नहीं हुई। इस तथ्य से यह कड़वा सच सामने आता है कि हमारी सरकार किसानों के लिए कितना सोचती हैं..? हवालदिल बेचारे किसान २००७ तक यह मांग करते रहे कि स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशों को लागू किया जाये।

इस रिपोर्ट में न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारित करने के तरीके दिए गए हैं। जबकि भारत में न्यूनतम समर्थन मूल्य का निर्धारण 'कृषि लागत' एवं 'मूल्य आयोग' की अनुशंसा के आधार पर किया जाता है। 'कृषि मूल्य आयोग' की स्थापना १९६५ में हुई थी। १९८५ में लागत निर्धारण भी इसी आयोग का हिस्सा बन गया। इसके अंतर्गत २३ वस्तुओं की MSP की सिफारिश होती हैं। जो इस तरह से हैं – ७ तरह के अनाज, ५ तरह की दालें, ७ तरह के तिलहन और ४ तरह की वाणिज्य फसलें।

क्या होता है न्यूनतम समर्थन मूल्य?

इसका अर्थ फसलों की न्यूनतम अथवा कम से कम दर जिस पर किसानों से फसलें खरीदी जाए। MSP को लागू इसलिए किया गया कि जब अगर उत्पादन अधिक भी हो जाए तो भी कृषि उत्पादों के दाम बाजार में ना गिरे और किसानों को नुक्सान ना हो। सरकार MSP पर फसलें खरीदती है और FCI व NEFED के गोदामों में रखती है। यही अनाज PDS के जरिये गरीबों में आबंटित होता है। कृषि लागत और मूल्य आयोग का एक यह तथ्य भी है कि इस पूरी समीति में केवल अध्यक्ष को छोड़कर सभी पद रिक्त पड़े हैं।

क्या है स्वामीनाथन रिपोर्ट?

न्यूनतम समर्थन मूल्य से डेढ़ गुना ज्यादा पैसा किसानों को दे। और सरकार कहती है हमने ऐसा किया भी। लेकिन फिर क्यों किसान अपनी फसलों की गणना के गलत तरीको पर प्रश्न उठा रहे हैं। किसान विमर्श में यह प्रश्न भी चिंतनीय है। न्यूनतम समर्थन मूल्य की गणना तकनिकी आधार पर तय होती है। निर्धारित फसलों के लिए MSP का आकलन करने वाला 'कृषि लागत और मूल्य आयोग' खेती की लागत को तीन हिस्सों में बाटता है। पहला A_2, दूसरा A_2+FL और तीसरा C_2

जहाँ.. A_2 में फसल उत्पादन के लिए किये गए सभी प्रकार के नगद खर्च।

A_2+FL में नगद खर्च के साथ–साथ फॅमिली लेबर चार्जेस

C_2 में नगद खर्च़ फॅमिली लेबर चार्जेस़ जमीन का किराया़ कुल कृषि पूँजी पर लगने वाला ब्याज।

गणना में धोखेबाजी होती है सरकार की तरफ से..सरकार केवल A_2+FLपर ही न्यूनतम समर्थन मूल्य का निर्धारण करती हैं। अभी भी अगर सरकारें इमानदारी से A_2+FL के आकलन पर ध्यान दे तो किसानों को अल्पांश में राहत मिल सकती है। लेकिन...नहीं...सरकार चाहे जिस पार्टी की हो हमेशा से चटनी किसानो की ही बनती है। सदैव ही किसानों के हितों से समझौता किया जाता है। फैमिली लेबर चार्जेस में सरकार कहती है कि परिवार के सभी लोग एक जैसी मेहनत थोड़े ही करते हैं। अतः औसतन चार्जेस के रूप में १५ से २० रुपये ही जोड़ते हैं। जबकि बाहर डेली विजस पर लोग २०० से ३०० रुपये रोजाना का काम कर लेते हैं। A_2+FL में सरकार वही समय जोडती है जब–जब किसान खेत पर हो। जबकि इस बात को हम सभी जानते हैं कि किसान खेत से बाहर भी खेती से सम्बंधित ही कार्य करता है। हाल ही में मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ की राज्य सरकारों पर केंद्र सरकार ने समर्थन मूल्य पर अतिरिक्त बोनस देने की नीति पर रोक लगाई है। केंद्र सरकार का कहना है

कि इससे किसान अधिक से अधिक धान बेचेगा और इससे मार्केट में अस्थिरता बढ़ेगी। केंद्रीय खाद्य एवं आपूर्ति मंत्रालय ने इन सरकारों को चेतावनी भी दी है कि अगर बोनस देना नहीं रोका तो हम चावल नहीं खरीदेंगे। इन राज्यों को MU का हवाला भी दिया जा रहा है। फिलहाल तो केंद्र सरकार और राज्य सरकार के बीच छिड़ी जंग की चक्की में घुण की तरह किसान ही पिसा जा रहा है। किसान एक बार फिर वाजिब दामों के लिए संघर्षरत दिखाई दे रहा है। OCEID ICRIER की एक रिपोर्ट के अनुसार वर्ष २००० से २०१७ तक किसानों को अपनी फसलों के सही दाम ना मिलने के कारण ४५ लाख करोड़ रुपयों का नुकसान हुआ है।

कर्ज से दबा है किसान :-

कृषि समस्या का दूसरा पहलू है किसानों का कभी न मिटने वाला कर्ज। राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक २०१७–१८ की रिपोर्ट के अनुसार पिछले ५ साल से कृषि कर्ज ६१% बढ़ा है। ११.७६ लाख करोड़ रुपये तक का कर्ज अब है जबकि २०१३–१४ ७.३० लाख करोड़ था। लेकिन सरकार द्वारा जब भी किसानों की कर्ज माफी की बात आती हैं तब क्रेडिट कल्चर के नाम पर कृषि कर्ज माफी की आलोचना की जाती है। कर्ज वसूली में भी सरकार की तरफ से कुछ गलतियाँ होती हैं। मसलन अगर कर्ज कार्पोरेट का है तो वसूली में विनम्रता और कर्ज NPA का है तो कर्ज ना चुका पाने की स्थिति में किसान पर क्रिमिनल चार्जेस अप्लाई होते हैं। यह भी सच है कि १९९० के बाद से देश की आर्थिक क्षेत्र में वृद्धि देखी गई। लेकिन कृषि क्षेत्र में आज तक किसी भी प्रकार का वांछनीय और सकारात्मक किसान हित का सुधार नहीं देखा गया है। जिसका हर्जाना और भरपाई किसान के नुकसान से सम्बंधित है। २०११ से २०१६ तक कृषि विकास दर ०.५ फीसदी औसतन रही है। कृषि विकास दर के ये आंकड़ें किसानों की गिरती आर्थिक स्थिति का बखान कर रहे हैं। भारतीय रिजर्व बैंक के आंकड़ों के अनुसार २०११–१२ और २०१६–१७ के बीच कृषि में सार्वजनिक क्षेत्र का निवेश सकल घरेलू उत्पाद के ०.४ फीसदी के आसपास रहा है। यह देखते हुए भी कि देश की आधी आबादी कृषि पर ही निर्भर है।

इससे पता चलता है कि सरकार द्वारा की हुई इस अनदेखी से ही किसानो की हालत और अधिक दयनीय बन गई है। किसानों की बदहाली देखकर भी अनदेखा कर देना भ्रष्ट सरकर की निशानी है। किसानो के जीवन और उनकी समस्याओं पर राजनीति तो बहुत होती है पर हितकारी कार्य कुछ भी नहीं होते हैं। आजादी से पूर्व और आजादी के इतने वर्षों बाद भी किसानों की आर्थिक दशा में कोई खास सकारात्मक विकास या परिवर्तन नहीं देखा गया है। कुछेक किसान सुदृढ़ हैं जिनकी आर्थिक स्थिति सुसंपन्न है पर उनकी गिनती उंगलियों पर करने जैसी हैं। किन्तु बचे हुए सभी किसानों का क्या..?

बढती आबादी, औद्योगीकरण, नगरीकरण, भूमंडलीकरण, आधुनिकीकरण और पाश्चात्य संस्कृति की नकल से कृषि योग्य क्षेत्रफल में निरंतर गिरावट आ रही है। देश के लगभग सभी राजनितिक दलों का कृषि विकास, कृषक कल्याण के प्रति डूलमुल रवैया ही रहा है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने किसानों को भारत की आत्मा कहा था। बावजूद इसके किसानों पर ओछी हरकत वाली राजनीति दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है। जबकि उनका दुःख–दर्द समझने व समेटने वालों की संख्या में तेजी से गिरावट आई हैं। हाँ इतना जरूर हैं कि चुनावी मौसम में किसानों के हित में कई गहरे काले बादल मंडरा जाते हैं जो चुनाव के नतीजों के बाद न बरसते हुए उड़ जाते हैं। राजनितिक दलों से लेकर मीडिया के मंचों तक किसानों की बदहाली का केवल

व्याख्यान होता है। उनके दुखों को अंतर्मन से समझने वाला कोई नहीं रहता है। इससे उनकी समस्याएं ज्यों की त्यों बनी रहती हैं। अब तो ऐसा लगता है कि किसानों की समस्या वर्तमान समय में सबसे अधिक बिकाऊ विषय बन कर रह गयी है। १५,१६८ किसान प्रति वर्ष कर्जा ना चुका पाने की स्थिति में अपनी जान दे देते हैं। महंगाई की मार से भी किसान अन्य लोगों से ज्यादा त्रस्त है।

देश का अन्नदाता किसान.. देश की आर्थिक स्थिति का अत्यधिक महत्व का हिस्सा किसान :-

आज सबसे अधिक दुःखी एवं बदहाल है। इनकी समस्याएं सुलझने की जगह दिन पर दिन उलझती ही जा रही हैं। कृषि विकास और कृषक कल्याण की जब–जब बात होती हैं तब–तब ८६% लघु और सीमांत किसानों की बात उठती हैं जो लगातार हाशिये पर जा रहे हैं। अब अगर किसी भी सरकार को सचमुच में इनकी बदहाली मिटाना है तो सबसे पहले सरकार अपनी ठोस रणनीति में इन्ही ८६% किसानों की बदहाली को मुख्य मुद्दें के रूप में जरूर रखे। तब ही सरकार को अनुकूल परिणाम मिलने की उम्मीद रहेगी। सरकार के लिए ऐसी चेतावनी इसलिए हैं कि सक्षम किसान तो अपनी खेती के लिए संसाधनों की व्यवस्था कर सकते हैं किन्तु गरीब किसानों को कदम–कदम पर पैसों की तंगी होती है। वे संसाधन जुटाने में पूरी तरह से कर्जे में लिप्त हो जाते हैं। फिर आने वाली फसल व उसके अच्छे दामों का इंतजार व्यग्रता से होता है और अगर ऐसे में उसे किसी कारण से उचित दाम नहीं मिल पाते हैं तो आत्महत्या के अलावा उसके पास कोई और उपाय शेष नहीं रहता। किसानों की ऐसी तंग आर्थिक स्थिति चलती रही तो एक दिन हम सब दाने–दाने के लिए मोहताज हो जाएंगे। इसलिए सरकार को यह प्रयत्न करना होगा की परम्परा कृषि उत्पाद की जगह नगदी फसलों को बढ़ावा दे। फसलों की प्राथमिकता तैयार करते समय देश दुनिया की जरूरतों के साथ मौजूदा परिस्थितियों में उत्पादन क्षमता पर भी ध्यान केन्द्रित करते हुए कार्य योजना आगे बढानी होगी। कृषि उत्पाद खरीद व्यवस्था को इस तरह से सशक्त और प्रभावशाली बनाना होगा, जो किसानों के हितों का पूरा–पूरा ख्याल रख सके। सरकार खरीद प्रक्रिया में सीधे–सीधे भाग ना लेते हुए ढांचागत व्यवस्था को सशक्त बनाये। ताकि किसानों के साथ कोई भेदभाव ना हो सके। इस खरीद प्रक्रिया में भाग लेनेवाली सम्बंधित इकाई को अगर नुकसान भी होता है तो सरकारी खजाने से इसकी भरपाई करे। अगर ऐसा होता है तो ही कृषि व्यवस्था में सुधार हो पायेगा।

चूँकि कृषि व्यवस्था का स्वरूप देश में विकेंद्रीकृत और विविधताओं से भरा है इसलिए क्षेत्रीय विशेषताओं को ध्यान में रखकर नियमन प्रक्रिया में लचीलापन लाया जा सकता है। इन तमाम प्रयासों को केंद्र में इस बात को ध्यान में रखकर रखना होगा कि किसानों का शोषण किसी भी कारण से ना हो। इसमें कोई दो राय नहीं है कि उद्योग व व्यापार जगत की चहलकदमी से अर्थ व्यवस्था में सुधार देखने को मिल रहा है और इस विकास के साथ–साथ कृषि क्षेत्र की उपेक्षा भी लगातार हो रही है। हालांकि देश की कुल जनसंख्या का एक बड़ा भाग कृषि पर ही आश्रित है, इसीलिए इस क्षेत्र की अनदेखी करके विकास को स्थायित्व देना तो बहुत दूर की बात है इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। यह बात भी सच है कि सरकार ने २०२३ तक देश के किसानों की आय को दोगुना करने का लक्ष्य रखा है। इस लक्ष्य को अभी कागज पर उतारा है किन्तु इसे किसानों के जीवन में उतारने के लिए सरकार को ठोस कार्य योजना बनानी ही होगी जो अत्यंत इमानदारी से हर एक किसान के जीवन में लागू की जानी चाहिए। सरकार को कृषि क्षेत्र में विकास के डग भरने के लिए संवेदनशीलता से कार्य करना होगा। विकास दर में उछाल को बरकरार रखने के लिए विकास के सभी क्षेत्रों की ओर सामान रूप से

ध्यान देना होगा। किसानों को भी चाहिए कि वे सरकार के भरोसे अपनी हैसियत से ज्यादा कर्ज ना लेवे। इसके साथ ही जिन फलों, सब्जियों और अनाजों की बाजार में ज्यादा मांग हैं उनकी ही खेती करे।

और अंत में..

यह कहना उचित होगा कि किसानों की खराब हालत के लिए कहीं ना कहीं व्यवस्था में फैला हुआ भ्रष्टाचार भी जिम्मेदार है। तब ही तो जरूरतमंद किसानों को सरकार की योजनाओं का उचित लाभ नहीं मिल पता है। सरकार को इस तरफ भी गंभीरता से सोचना होगा साथ ही सतर्क रहकर निगरानी भी करनी होगी कि उनके कार्यकर्ता जो योजना के प्रसार के बिचोलिये बने हैं वे योजना के पैसों को किसानो तक पहुंचा रहे हैं या स्वयं की जेब भर रहे हैं। सत्ताधारी अपनी ओछी और भद्दी हरकतों से किसानों पर राजनीति ना करे बल्कि गहनता से, पूरे मन से उनकी समस्याओं को सुने, समझे व उनको दूर करने का प्रयत्न करे। देश के विकास के दावें तब तक खोखले ही रहेंगे जब तक किसानों की जिंदगी में खुशहाली ना आ जाये। सरकार को उनकी आत्महत्या के आंकड़ों को कम करने के साथ–साथ उनकी खुशियों के प्रसंग भी उपस्थित करना होगा। अधिकतर छोटे–छोटे गांवों में किसानो की आर्थिक स्थिति बद से बदतर होती जा रही है। कभी–कभी तो देश के इस अन्नदाता को भूखा ही सो जाना पड़ता है, कभी एक रात के लिए तो कभी हमेशा के लिए। कृषक की गरीबी का एक ठोस कारण यह भी है उनकी खेती की जमींन को उद्योगों और फैक्ट्रियों के लिए सस्ते दामों में खरीद लिया जाता है। देश की सम्पूर्ण आबादी ने भी अब यह सच मान लिया है कि देश में अगर सबसे खराब स्थिति अगर है तो वो केवल किसानों की है। यही कारण है कि किसानों की आत्महत्या का ग्राफ ऊपर ही चढ़ रहा है। और किसान अब उग्र आन्दोलन के लिए सड़कों पर भी उतर आये हैं।

पिछले वर्ष किसानों के सरोकार से जुड़ी ११वी मंत्री स्तरीय बैठक का आयोजन विश्व व्यापार संगठन द्वारा अर्जेंटीना की राजधानी ब्युनासायार्स में किया गया था, तब भारत ने अपना पक्ष मजबूती से रखा था। वर्तमान केंद्र सरकार किसानों की प्रत्येक समस्या के लिए समग्र रूप से प्रयत्न कर रही है। इसके लिए सरकार गोदामों का निर्माण, कोल्ड स्टोरेज, रेफ्रिजेटर वैन, खाद्य प्रसंस्करण उद्योग, सार्वभौमिक फसल बीमा, विद्युत आपूर्ति और सही समय पर ऋण और खरीद बाजार की उपलब्धता कराने के प्रयत्नों में लगी है। उम्मीद है इन सब प्रयत्नों से एक दिन किसानो के जीवन में उसी तरह खुशियाँ लहलहाएगी जिस प्रकार वो कठिन मेहनत से अपने खेतों में फसलें लहलहाता है।

सन्दर्भ सूची :-

१. विक्रांत सिंह – संस्थापक एवं अध्यक्ष – फायनेंस एंड इकोनोमिक्स थिंक कौंसिल।

२. मध्य प्रदेश सन्देश – अक्टूबर २०१५

३. शब्द ब्रम्ह – भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका।

४. अनंत कुमार मिश्र – हिंदी उपन्यासों में गाँव और किसान – ट्रे मासिक ई पत्रिका 'अपनी माटी'।

५. वीरेंद्र सेनगुप्ता, अम्बिका प्रसाद वर्मा – हिंदी साहित्य में किसान।

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 132-144

Literary Translation as a Genre from Bhartiya Perspective

Dr Nimisha C Prajapati
B-37, Parsottamnagar Society, NR SMC Garden Althan, Surat, Gujarat, India.(395017).
Dr Falguni P Desai
Shri M.R. Desai Arts & E.E. Laher Kosadia Commerce College, Chikhili, Navsari, Gujarat, India.

Abstract :

This research paper delves into the nuanced landscape of literary translation as a genre from a Bhartiya (Indian) perspective. It examines how literary translation functions not just as a means of linguistic transference, but also as a transformative and creative act that shapes the reception and understanding of literature. Through a comprehensive analysis of historical, cultural, and linguistic dimensions, this paper explores the role of translation in bridging the diverse literary traditions within India and connecting them with the global literary landscape. By investigating the challenges, strategies, and impact of literary translation, the paper contributes to a deeper appreciation of the intricate relationship between translation and the evolution of Bhartiya literature.

Keywords : Literary Translation, Bhartiya Perspective, Literature, Culture, Language, Tradition, Globalization.

Introduction :

Literary translation is an art that connects different cultures, languages, and literary traditions, enabling the dissemination of literary works to wider audiences. In the context of Bhartiya literature, characterized by its rich diversity of languages, cultures, and traditions, translation plays a pivotal role in preserving and sharing these narratives. This paper aims to investigate how literary translation operates as a distinct genre within the Bhartiya context, shaping the literary landscape and influencing cultural interactions. Since style is essential to accurately capture the meaning and tone of the original text, many attempts have been made

in the field of translation studies to address it. Scholars have explored various theories and methodologies to analyse and understand the stylistic choices made by translators, aiming to enhance the quality and effectiveness of translated works. Additionally, these efforts have also contributed to a better understanding of the complex relationship between style, culture, and language in translation. Literary translation is an age-old phenomenon that has played a significant role in bridging the gap between different cultures and languages. From the epic poems of ancient civilizations to the renowned works of Shakespeare and Tolstoy, literary translations have allowed these timeless masterpieces to be appreciated by a global audience. However, the art of literary translation goes beyond mere words, as translators often face the challenge of capturing the nuances, cultural references, and emotions conveyed by the original author. Despite the complexities involved, the enduring impact of literary translation on the world of literature cannot be understated. Literary translation goes beyond a simple transfer of words from one language to another. Translators must skilfully navigate the intricacies of language and culture to accurately convey the author's intended meaning. This process requires a deep understanding of both languages and a keen sensitivity to the nuances and emotions embedded in the original text. Ultimately, literary translation plays a crucial role in making classic works accessible to readers worldwide, fostering cross-cultural understanding, and enriching the global literary landscape.

In this article, the researcher has used the phrase 'Bhartiya perspective' to narrow the scope of the discussion of this larger concept. The objective is purely to recognize, locate, and establish various tropes of translation within the Indian tradition. In India, the process of translation is as old as the history of Indian languages. Translation has played a crucial role in preserving and disseminating India's rich cultural and literary heritage. It has enabled the transfer of knowledge, ideas, and stories across different regions and languages, fostering cultural exchange and understanding. The process of translation in India has also evolved over time, incorporating new technologies and methodologies to ensure accurate and nuanced translations. As India continues to embrace globalization, the importance of translation in facilitating cross-cultural communication and bridging linguistic barriers has become even more significant. Moreover, this research paper delves into how literary translation serves as a two-way cultural bridge, not only introducing Bhartiya literature to the world but also enriching the nation's literary sphere with global influences. It illuminates how translations of international works into Indian languages contribute to a more cosmopolitan literary landscape. This aspect underscores the dynamic nature of literary translation and its role in shaping the evolving face of Bhartiya literature. Furthermore, the paper recognizes the inclusive nature of literary translation, allowing voices from marginalized and regional communities to be heard on a broader stage. It reveals how translation empowers writers from diverse linguistic backgrounds to share their stories, thus ensuring a more representative and diverse literary canon. In a rapidly evolving world, this research paper emphasizes the ongoing need for dedicated research and discourse within the field of literary translation in the Bhartiya context. As India's linguistic and cultural landscape continues to evolve, translation will remain a dynamic and indispensable tool for preserving, sharing, and enriching Bhartiya literary traditions. This paper is an appeal to academics, scholars, translators, and literary enthusiasts to engage in the vibrant dialogue surrounding the transformative power of

translation in shaping the future of Bhartiya literature and fostering a deeper understanding of its complex relationship with the global literary mosaic.

Historical Evolution of Literary Translation in Bhartiya Literature :

Before delving into the intricacies of translation studies from an Indian perspective, it is essential to establish a profound comprehension of the vast expanse that constitutes the realm of translation. This encompasses not only the methodologies and practices employed in the act of translation but also the dynamic landscape of its new developments. Translation, at its core, is intricately intertwined with words—linguistic vessels that essentially encapsulate the transformation of ideas or experiences from one language to another. This fundamental concept highlights the notion that every instance of communication, whether verbal or written, inherently involves an element of translation. Consider for a moment the profound implication: Without words serving as the conduit for expression, the very fabric of our world would be rendered mute, and the dissemination of knowledge would become an elusive concept. It is translation that bridges the chasm between languages, enabling the cross-pollination of cultures, ideas, and intellectual wealth. In essence, translation serves as the underpinning of the intricate web of global communication. It is noteworthy to recognize that within the linguistic landscape of India, where a multitude of languages coexist harmoniously, the term "Anuvaad" resonates as the acknowledged counterpart of the English word "translation." This linguistic equivalent, while encapsulating the essence of translation, also carries within it the cultural nuances and linguistic diversity that India encapsulates.

As outlined by Indian scholars, translation entails the conversion of a text from one language to another while upholding its core meaning and purpose. This task encompasses not just linguistic conversion, but also the adjustment to cultural nuances, since translators need to adeptly handle the intricacies and contextual variations of both languages. Furthermore, Indian scholars highlight that translation is a form of artistic expression that demands a profound grasp of both the original and target languages, along with the skill to bridge potential gaps in cultural comprehension. In the realm of translation theory, Panini, a prominent Indian scholar and linguist, offers a perceptive definition that sheds light on the intricate nature of this linguistic endeavor. In the following sutra, Panini provides the following definition of *Anuvda*: "**अनुवादे चरणानाम्**" (Translation is the art of telling the essence that is already known) (*Aṣṭādhyāyī*, II.4.3) (Pandya, 2011). According to Panini, the concept of *Anuvāda*, a term he employs for translation, delves into more than mere linguistic transference; it delves into the realm of capturing the essence and meaning of a text that is already familiar to the audience. This perspective challenges the simplistic view of translation as a one-to-one substitution of words, urging one to view it as an art form that requires a deep understanding of both the source and target languages. In Panini's view, the act of translation entails a nuanced process of conveying not just the words, but the underlying essence of the original text. This goes beyond the literal translation approach, where words are mechanically replaced, and instead delves into the artistry of encapsulating the core significance that the source text carries. Panini's definition resonates with the idea that effective translation

requires the translator to delve into the cultural, historical, and linguistic context of both languages involved.

Bhartuhari, a notable figure in Indian thought, presents an insightful perspective on the concept of translation, likening it to a process of repetition or recurrence. Bhartuhari's interpretation suggests that the act of translation is akin to a process of revitalization or renewal. This perspective implies that translation involves not only a literal conversion of words but also a reinvigoration or rejuvenation of the original content in a new linguistic or structural guise. "**आवृत्तिरानुवादो वा**" (Translation means to repeat or recurrence) (Kalasava, 2012). Bhartuhari's definition urges us to view translation as a dynamic and ongoing endeavor, where the essence and significance of the source material are continuously revitalized in a different linguistic context. This resonates with the understanding that effective translation isn't a static replication but rather a process that keeps the core ideas and meanings alive, adapting them to resonate with a new audience or cultural setting.

Bholanath Tiwari's definition of translation "**भाषा ध्वन्यात्मक प्रतीकोोंकी व्यवस्था हैऔर अनुवाद हैइन्ी ोंप्रतीकोोंका प्रततस्थापन।**" (Language is a system of phonetic symbols, and translation is the replacement of these symbols) (Kalasava, 2012) which encapsulates a concise yet profound insight into the nature of language and the process of translation. In this definition, he characterizes language as a structured arrangement of phonetic symbols, which are the fundamental building blocks of communication. These symbols, represented through spoken or written forms, serve as the means through which ideas, concepts, and expressions are conveyed from one individual to another. Tiwari goes on to describe translation as the act of replacing these phonetic symbols. In other words, it involves substituting the phonetic representations of one language with those of another while striving to retain the core meaning and essence of the original communication. This process isn't confined to words alone; it extends to encompass the entire spectrum of linguistic elements, including idiomatic expressions, cultural references, and nuances.

The historical evolution of literary translation in Bhartiya literature can be traced back to ancient times when the rich cultural exchanges between different regions and languages laid the foundation for the translation of literary works. From ancient times to the modern era, translation has been a pivotal force in shaping India's literary landscape, facilitating cross cultural exchanges and preserving the essence of diverse literary traditions. The translation of sacred texts, such as the Vedas and the Upanishads, played a significant role in disseminating knowledge and spiritual teachings across different linguistic communities. These texts were orally communicated in various regional languages, prompting the need for translations to ensure wider accessibility. As the centuries progressed, the translation of literary works expanded to include various genres, such as poetry, plays, and novels, contributing to the enrichment and diversification of Bhartiya literature. This practice not only paved the way for linguistic diversity but also enabled cross-cultural interactions within the Indian subcontinent.

Translation, as a means of intercultural communication and literary exchange, has

silently woven itself into the fabric of Bhartiya literature, enabling the transmission of ideas, stories, and knowledge across diverse languages and traditions. This organic integration of translation echoes the dynamic and evolving nature of India's literary heritage, where the act of translation has played an integral role in shaping the literary narrative and fostering cross cultural dialogues. The practice of translation in India has a rich historical legacy that predates formal categorization, as noted by many Indian scholars who believe that translation in India has been practiced "for a long time without giving it such a name or style" (Mukherji 25). This belief highlights the innate and enduring nature of translation within the Indian context, where the exchange of ideas and narratives has been facilitated across languages and traditions for centuries. Lachman M. Khubchandan expands on this idea by drawing attention to Narada, a character from Hindu mythology, who he considers as an early exemplar of transmitting messages faithfully between locations without distorting their essence (Gautam, 2012). Khubchandan emphasizes that Narada's role demonstrates "a subjective input in the role of an interpreter in intercultural settings" (Gautam, 2012). Additionally, Khubchandan draws parallels with the imagery of Buddha, "the image of ever contented Buddha, rejoicing with raised arms, in his role as a transmitter of the message" (Gautam, 2012). This perspective further emphasizes the notion of translation as a conduit for the transmission of significant messages, both spiritual and cultural. Understanding the historical evaluation of translation during the premodern and early modern eras is essential for comprehending contemporary translation practices. By examining figures like Narada and his interpretive roles, Khubchandan emphasizes the enduring principles of accurate transmission and meaningful interpretation that continue to shape translation approaches in modern times.

The medieval era in India spanned roughly from the 6th to the 18th centuries and was characterized by the coexistence of diverse cultures, languages, and religious traditions. This period witnessed interactions between Indian, Persian, and Arabic cultures due to political, trade, and cultural exchanges. Literary translation emerged as a bridge between these languages, contributing to the enrichment of Indian literature. During the medieval era, the Indian subcontinent witnessed the arrival of Persian culture and language, primarily through the Ghaznavid and Mughal invasions. This interaction between Sanskrit and Persian cultures led to a notable exchange of literary ideas and texts. For example, Amir Khusro (1253–1325), a prolific Persian poet and scholar, who played a crucial role in literary translation during the medieval era. He is known for translating Persian poetry into Hindavi, which was a precursor to modern Hindi. His translations brought Persian literary aesthetics and cultural themes to an Indian audience, influencing subsequent poets and writers. Abdur Rahman Chishti (14th Century), a Sufi saint and scholar, contributed to the translation of Sufi texts and Persian poetry into regional languages. His translations helped spread Sufi ideas and spirituality to a wider audience, promoting a syncretic cultural environment.

With the advent of the Bhakti movement, there was a notable shift towards rewriting and retelling texts in vernacular languages, aimed at spreading mythological spirituality. This era not only emphasized the intrinsic value of Indianness in literature but also delved into the core aspects of devotion and religiosity. Indian philosophical, literary, and scholarly texts such as the *Panchatantra,* Kalidasa's *Amarakosha,* and plays, *Ashtanga Hridaya, Arthashastra,*

Hitopadesha, Yoga Sutra, Ramayana, Mahabharata, and Bhagavad-Gita were translated into Arabic between the eighth and ninth centuries. Furthermore, the Sanskrit texts, particularly the Bhagavad Gita and Upanishads, engaged with various other Indian languages, leading to translations across the breadth of Indian dialects. The Bhakti era was marked by a dynamic linguistic transformation, as evidenced by significant works such as the Marathi Saint Poet Dnyaneshwar's free adaptation of the Gita known as *Dnyaneshwari*. Moreover, the period witnessed an array of free translations of epics, notably the *Ramayana* and *Mahabharata*, undertaken by saint poets representing a diverse array of languages. In essence, the Bhakti movement catalyzed a literary reformation, fostering the reinterpretation of texts to resonate with vernacular readers. This era's exploration of Indianness within literature not only cultivated spiritual dimensions but also enriched the linguistic and cultural diversity of India's literary legacy.

During the Orientalism phase, the colonial administration initiated a methodical approach to translation starting in 1757. The symbiotic relationship between translation and colonization was evident on a global scale, where translation served as a symbolic representation of the colony. Meanwhile, European cultures held privileged status as the originals. The colonial period fostered a rich tradition of translating revered Indian literary works into English. In the eighteenth century, interactions with distinguished scholars from various European backgrounds, including English, French, German, and Italian, facilitated the translation of Indian texts into European languages. The Western perspective on translation brought about a reconfiguration of the Indian notion of translation, substantially altering its course. Moreover, the colonial era witnessed significant translations of European texts into various Indian languages. An important juncture emerged in 1750 during this colonial phase when Warren Hastings, the Governor of Bengal, undertook translation endeavors. In his pursuit of comprehending Indian society and culture, he recognized the importance of delving into Indian legal texts, particularly Manu's *Dharmashastras*, originally written in Sanskrit. In the latter half of the eighteenth century, Nathaniel Brassey Halhed, an English philologist, meticulously translated Hindu legal texts from Sanskrit to Persian with the assistance of Brahmin scholars. Subsequently, the Persian translation was rendered into English and materialized as "A Code of the Gentoo Laws" in 1776. Hastings played a pivotal role in encouraging young officers and merchants to acquaint themselves with Indian languages and cultures, recognizing their value in achieving success in trade and commerce.

The initial endeavours in literary translation were led by Charles Wilkins, known for being the first Englishman to learn Sanskrit and translate Sanskrit works into English. He translated Sanskrit grammar and the Bhagavad Gita. John Marshall played a role in translating the *Sama Veda* and the *Bhagavad Purana* and also contributed to establishing printing in Indian languages. Sir William Jones pioneered Indology, founded the Asiatic Society of Bengal, and translated key works like Kalidasa's *Abhijnanasakuntalam, Geeta Govinda, Manusmriti,* and *Hitopadesha*. These translations garnered attention and appreciation from Western readers, drawing their focus to Indian thought and poetic charm. H.H. Wilson made significant contributions by translating texts into Sanskrit, Arabic, and Persian, including the Sanskrit poem, *Meghdutam, Rigveda*, and *Vishnu Purana*. Griffiths presented a noteworthy

metrical translation of the epic *Ramayana*. German scholar Friedrich Max Müller translated *Upanishads, Hitopadesha*, and the complete *Rig Veda*, while his *Sacred Books of the East* compilation included translations spanning various religions. Collectively, these translations were seen as pathways to understanding India better, showcasing its wisdom, imagery, and Vedantic teachings. The orientalist approach further bolstered translation efforts, contributing to the dissemination of Indian culture and thought.

John Gilchrist and his colleagues undertook translations of simple Urdu works like *Gulistan*, *Dastan Amir Hamza*, and *Qissa Alif Laila o Laila*. These translations aimed to acquaint British officers, who arrived to govern India, with Indian culture. Notably, Edward J. Fitzgerald translated the *Rubaiyat* from Persian to English in 1859, spotlighting Omar Khayyam, a celebrated Persian poet from the Middle Ages. Prof. Max Muller, renowned for editing and translating fifty-one volumes of *The Sacred Books of the East*, engaged diverse scholars from various backgrounds in the translation process (Kumar, 2016). This period saw the impact of orientalism, influencing Indian figures like Romesh Chandra Dutt and Raja Ram Mohan Roy, who elevated the translation of Indian classics into English. Under colonial influence, English education gained prominence and became a symbol of social status. Macaulay's Minute underscored the importance of English education for Indians and aimed to create individuals who were Indian by origin but aligned with English values and intellect. Translation became integral in achieving this status. Raja Ram Mohan Roy, hailed as the "Father of the Indian Renaissance," translated key texts, including the *Kena Upanishad*, emphasizing his passion for Vedic literature. Similarly, R.C. Dutt's notable translation efforts encompassed the great epics and *Rigveda* into English, contributing to the dissemination of Indian literary heritage.

The post-colonial theory of translation studies has expanded our understanding of literary and linguistic endeavours by revealing their sociopolitical dimensions. This perspective has widened the scope of translation studies. In the late 1950s, alongside the emergence of postmodernism, India also witnessed the rise of a post-colonial movement. The diverse and multilingual nature of the country emphasized regional languages, with English and Hindi serving as connecting languages across regions. The 20th century brought about a significant shift in the global inter-literary landscape. India played a pivotal role in translating world literature into its languages while also producing Indian literature in European languages like English and French. Due to India's multilingual nature, translators engage in intra-Indian translation to address language barriers. These various translation activities within India contributed to overcoming linguistic challenges, effectively balancing the linguistic diversity of the nation. Institutions like the Sahitya Academy and the National Book Trust have facilitated the translation of Indian language texts into various languages within India. This has led to a substantial number of translated works, showcasing the rich diversity of Indian literature. Several prominent writers have been extensively translated. A.K. Ramanujan's translations of South Indian saint singers, Tagore's translation of *Kabir* (1915), and Sri Aurobindo's translation of *Vidyapati* (1956). Numerous eminent regional writers also received attention. Their works were translated into English, including those by Lokenath Bhattacharya, Gopinath Mohanty, Ananta Murthy, Srilal Shukla, and others. Recognizable

translations include Ambai's *In A Forest, A Deer* (translated by Lakshmi Holmstrom), Ashapoorna Devi's *The First Promise* (translated by Indira Chowdhury), and Bama's *Karukku* (translated by Lakshmi Holmstrom). The translated literary landscape extended to notable works like Bibhutibhushan Bandopadhyay's *Pather Panchali* and *Aparajito*, translated by TW Clark, Tarapada Mukherjee, and others. Renowned authors such as Mahasweta Devi, U.R. Ananthamurthy, Premchand, and Saadat Hasan Manto also found their stories translated, contributing to diverse range of voices available in English. These translation efforts have been instrumental in connecting regional Indian literature to a global audience and enriching the literary discourse with a multitude of narratives and perspectives.

Contemporary Bhartiya authors such as Arundhati Roy have gained international recognition through translations of their works. *The God of Small Things*, originally written in English, has been translated into numerous languages, opening doors to global readership. Literary translation from a Bhartiya perspective is a vibrant genre that facilitates cross-cultural exchange and expands the reach of Bhartiya literature. Through the ages, translations have enriched the literary landscape by making classic and contemporary works accessible to diverse audiences, fostering a deeper understanding of Bhartiya culture and heritage.

Literary translation is a nuanced process that involves conveying the essence and artistry of a work from one language to another, preserving its emotional and cultural resonances. This practice plays a crucial role in fostering cross-cultural dialogue and enabling the exchange of ideas. Indian scholars have offered insightful perspectives on literary translation, reflecting its significance and challenges within the Indian context. According to A.K. Ramanujan, a celebrated Indian poet and scholar, translation transcends a mere linguistic endeavor. He emphasized on “to attend closely to the language of the originals . . . detail by detail” (Dharwadker, 2023). Harish Trivedi, a prominent Indian scholar, highlighted the complexities of literary translation in the Indian context. He stated that "translations are not just between two languages, they are between two cultures" (Translating Culture vs. Cultural Translation). Trivedi's perspective emphasizes that translation bridges cultural gaps and necessitates an understanding of both the source and target cultures. K. Satchidanandan, a respected Indian poet and translator, emphasized the transformative power of translation. He observed that "translation is a bridge, an act of human solidarity, that permits us to exchange ideas and experiences" (64). Satchidanandan's perspective underscores the role of translation in connecting different linguistic and cultural communities. Literary translation, as viewed by Indian scholars, is a dynamic process that goes beyond linguistic transfer. It involves capturing the essence of a literary work while navigating cultural nuances and emotional depths. Through translation, Indian scholars emphasize the role of literature in bridging linguistic divides and fostering a global literary dialogue that celebrates diversity and enriches the literary landscape.

Cultural factors exert a significant influence on the process of literary translation, creating a deep and far-reaching effect, particularly in the context of Indian literature. The intricate interplay between languages, traditions, and cultural nuances presents a unique challenge for translators as they strive to capture the essence of the original work while

making it accessible to a broader audience. The study delves into this dynamic by examining specific examples that illustrate the depth of cultural influences in Indian literary translation. For example,

1. Oral Tradition and Folklore : The retelling of the *Ramayana*, an ancient Indian epic, is a prime example of the oral tradition's influence on literary translation. Various regional versions of the Ramayana exist across India, each reflecting the cultural nuances and beliefs of its respective region. Translators face the task of retaining the essence of the narrative while adapting it to the linguistic and cultural context of the target language.

2 Cultural Specificities and Untranslatability : Translating cultural terms often encounters intricacies that extend beyond direct word-to-word conversion. The Gujarati term "એકાદશી" (Ekadashi) is a prime example of this challenge when translating into English. In Gujarati and other Indian languages, "એકાદશી" (Ekadashi) refers to the 11th day of the lunar calendar, which holds special significance in Hinduism. On this day, devotees observe fasting and engage in religious practices as a way of seeking spiritual purification and closeness to the divine. However, the term's richness encompasses not only its numerical meaning (eleven) but also its religious, cultural, and ritualistic dimensions. When translating "એકાદશી" into English as "eleventh day," the depth of its cultural and religious implications might be lost. The term holds a unique place in the religious practices and beliefs of Hindu communities, symbolizing a time of introspection, devotion, and austerity. Translators face the challenge of capturing not only the literal meaning but also the cultural and spiritual essence of "એકાદશી" in the target language.

3. Rasa and Bhava : Example: The Sanskrit term "rasa" represents different emotional Flavors or sentiments conveyed through literature, such as love, joy, anger, and sorrow. Each rasa elicits a specific emotional response from the audience. Translating rasa-rich poetry from Sanskrit to English involves not only choosing the right words but also ensuring that the intended emotional impact is maintained in the target audience, despite potential linguistic disparities.

4. Regional and Linguistic Diversity : Translating the works of Rabindranath Tagore, such as *Gitanjali*, requires capturing the poetic essence of the Bengali language while making it accessible to readers of other languages. The translator's task is to ensure that the translated work maintains the regional nuances that contribute to its beauty and impact.

5. Gender and Social Norms : Many Indian literary works reflect traditional gender roles and social norms. Translating such texts demands careful consideration of how these roles are portrayed in the target culture. For instance, a female character's assertiveness in a source text might need nuanced adaptation to align with the gender dynamics of the target culture without diluting the character's essence.

6. Mythology and Religious Significance : Translating verses from the Bhagavad Gita,

a philosophical text with profound religious significance, requires preserving the spiritual depth and teachings of the original Sanskrit while ensuring clarity for the audience. A translator must navigate the intricate balance between the text's cultural context and its broader philosophical message.

7. Intertextuality and Cultural References : Translating Gujarati short stories into English while preserving intertextuality and cultural references is a nuanced endeavour. The challenge lies in retaining references to Gujarati literature, idiomatic expressions, and local customs. The translator must strike a balance between fidelity to the source and clarity for the target audience. By strategically explaining cultural nuances, the translator acts as a cultural mediator, ensuring that English-speaking readers engage with the story's depth and meaning. This process enriches cross-cultural understanding and safeguards the essence of Gujarat's literary heritage.

The examples provided highlight the intricate nature of cultural influences in literary translation within the realm of Indian literature. Translators act as cultural intermediaries, carefully selecting strategies to retain the essence of the original work while allowing it to resonate with a new audience. By navigating these complex cultural nuances, translators contribute to the preservation and dissemination of India's rich literary heritage across linguistic and cultural boundaries.

The role of Indian linguistic diversity in translating into English is multifaceted and vital. India is home to a wide variety of languages, each of which reflects a different cultural heritage. Translators are presented with a rich tapestry of source material, spanning from Hindi and Bengali to Tamil and Malayalam. This diversity necessitates careful consideration when selecting texts for translation. Furthermore, translating from Indian languages involves navigating intricate linguistic structures, idiomatic expressions, and cultural subtleties, all of which enrich the source material but require adept handling to ensure accurate representation in English. The process demands not only linguistic expertise but also cultural sensitivity to capture the essence of India's diverse literary traditions, ultimately bridging the gap between these languages and English, thereby preserving and promoting the country's cultural and linguistic richness on a global stage.

In the realm of translating from Indian languages into English, contemporary trends and challenges have evolved significantly. The digital age and globalization have ushered in a growing demand for translated content, pushing translators to adapt to digital platforms and cater to a broader global audience. However, with this expansion comes the critical need for cultural sensitivity, especially in the context of Indian languages, as the debate around cultural appropriation gains prominence. Translators now face the complex task of not only providing linguistic accuracy but also ensuring that the translation aligns with specific regional or community contexts within English-speaking nations. Commercial pressures, the hybridization of cultural elements, and the emergence of contemporary themes in Indian literature all pose additional challenges. Moreover, linguistic diversity across India's languages remains profound hurdle, demanding deep linguistic and cultural expertise. As gender issues, political contexts, and social nuances feature prominently in modern Indian

literature, translators must convey these complexities effectively. Embracing technology while maintaining the integrity and richness of the source texts is an ongoing balancing act for translators navigating the multifaceted world of Indian-to-English translation in contemporary times.

Prominent Bhartiya literary translations offer compelling examples that demonstrate both the complexities and successes of the genre. Here are a few notable examples: *Godaan* by Premchand, translated as *The Gift of a Cow* by Jai Ratan and P. Lal, brings Premchand's iconic Hindi novel to English-speaking readers. The success lies in capturing the rustic charm and social commentary of the original, revealing the complexities of rural Indian life in the early 20th century. *The Discovery of India* by Jawaharlal Nehru is Nehru's magnum opus. Originally written in English, it has been translated into multiple Indian languages. These translations were instrumental in making his account of India's history and culture accessible to non English-speaking readers, further propagating his vision for a modern India. *Gitanjali* by Rabindranath Tagore is a collection of poems that was initially written in Bengali and later translated into English by the author himself. The success of this translation rests in Tagore's ability to maintain the lyrical beauty and spiritual depth of the original, earning him the Nobel Prize in Literature. *Tamas* by Bhisham Sahni (Translated as *Darkness* by Jai Ratan), this translation brings Sahni's powerful Hindi novel to English-speaking readers, portraying the partition of India in 1947. The success here lies in conveying the intense emotions, historical backdrop, and complex characters of the original text. These examples illustrate the diverse range of Bhartiya literary works and the intricate task of translating them into English or other languages, which demonstrate how skilled translators navigate cultural, linguistic, and contextual challenges while preserving the essence and impact of the original texts.

Translation has been an indispensable tool for fostering unity in diversity and promoting intercultural understanding within the Bhartiya (Indian) context. With its vast linguistic and cultural diversity, India stands as a testament to the power of translation in bridging divides. Through translation, the country's numerous languages have been interwoven, allowing literary, religious, and historical texts to transcend linguistic boundaries. This intercultural exchange has not only preserved India's rich tapestry of languages and traditions but has also facilitated cultural dialogue, enabling communities to understand and appreciate each other's customs and beliefs. Translation has played a pivotal role in promoting national integration, interreligious harmony, and the dissemination of knowledge across regions. It has served as a catalyst for social movements, enabling ideas and ideologies to resonate with a diverse populace. In this multifaceted way, translation stands as a cornerstone of unity, promoting the ethos of "Unity in Diversity" that defines the Bhartiya identity.

Conclusion :

The role of literary translation in preserving, sharing, and enriching Bhartiya literary traditions cannot be overstated. It serves as a vital bridge, connecting the diverse linguistic and cultural tapestry of India, and enabling the exchange of ideas, stories, and perspectives. Through translation, the nation's myriad languages and literary legacies are safeguarded from the erosions of time and linguistic shifts, ensuring that the treasure trove of Bhartiya literature remains accessible to generations to come. Moreover, translation is an act of sharing; it takes the beauty, wisdom, and creativity of one culture and offers it to another, fostering cross-cultural understanding and appreciation. It promotes empathy, tolerance, and respect for the multiplicity of voices that make up India's literary landscape. Furthermore, translation does not merely preserve and share; it also enriches. Translators are artists who infuse new life into old words, breathing fresh perspectives and interpretations into timeless narratives. This creative aspect of translation contributes to the dynamic evolution of Bhartiya literature. However, the dynamic nature of literary translation within the Bhartiya context demands continual research and dialogue. As languages evolve, as new literary voices emerge, and as cultural landscapes shift, the practice of translation must adapt. Researchers and practitioners must explore innovative strategies, confront challenges, and navigate the complexities of cultural and linguistic diversity. In this ever-changing landscape, the role of translation as a vehicle for preserving, sharing, and enriching Bhartiya literary traditions remains vital. The need for continued research and dialogue is not just a scholarly endeavour but a commitment to preserving the very essence of Bhartiya culture and ensuring that its diverse voices resonate far and wide, transcending linguistic and cultural boundaries. It is an investment in the preservation of the nation's collective memory and the promotion of intercultural understanding, and it is an ode to the timeless beauty of words that connect hearts and minds.

Refrences :

1. Dharwadker, V. (2023). *A K Ramanujan's theory and practice of translation.* Retrieved August 29, 2023, from https://udrc.lkouniv.ac.in/Content/DepartmentContent/SM_63f46dd9-5641-443ebb3d-908dc8ecf07f_6.pdf
2. Gautam, T. R. (2012). *Loss and gain in translation from Hindi to English: A stylistic study of multiple English translations of Premchand's Godaan and Nirmala* (Doctoral dissertation, Aligarh Muslim University). Shodhganga. http://hdl.handle.net/10603/11238
3. Kalasava, B. K. (2012). *Anuvad Bharti*. Shanti Prakashan.
4. Mukherjee, S. (2018). *Translation as discovery and other essays on Indian literature in English translation*. Orient BlackSwan.

5. Pandya, K. (2011). *What is translation?* Wisdom Library. Retrieved August 8, 2023, from https://www.wisdomlib.org/hinduism/book/bhishma-charitra/d/doc492004.html
6. Satchidanandan, K. (2006). Reflections on translation. In G. Saxena (Ed.), *Translation today: Trends and perspectives* (pp. 85-95). Creative Books.
7. Sushil Kumar. (2016). Understanding translation of Indian literature into English during colonial and postcolonial era: A socio-historical-political perspective. *International Journal of English Language, Literature and Translation Studies*, 3(2), 121-126. http://www.ijelr.in/3.2.16/121126%20Dr.%20SUSHIL%20KUMAR.pdf
8. Translating culture vs. cultural translation. (2005). *91st Meridian*, Spring 2005. Retrieved from https://iwp.uiowa.edu/91st/vol4-num1/translating-culture-vs-cultural-translation

Email: nimishacprajapati@gmail.com

ORCID ID: http://orcid.org/0000-0003-3039-1527

Email: fpdesai2012@gmail.com

ORCID ID: http://orcid.org/0000-0001-6342-4554

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 145–150

ग्रामीण परिवारों में महिलाओं की बदलती भूमिका : उपलब्धियां तथा चुनौतियां

(मध्य प्रदेश पंचायतीराज के विशेष संदर्भ में)

डॉ. नियाज अहमद अन्सारी
सहा. प्राध्यायक, राजनीतिशास्त्र एवं व्यक्तित्व विकास, शासकीय आदर्श महाविद्यालय, उमरिया (म. प्र.)

भारत को आजादी मिलने के बाद से ही संविधान निर्माताओं ने महात्मा गांधी, डॉ. अम्बेडकर, पं. नेहरू और उनके अनुयायियों के प्रयासों को ध्यान में रखकर गावों को राजव्यवस्था का केन्द्र बनाने हेतु संविधान के भाग–4 में उल्लिखित अनुच्छेद 40 को शामिल किया है। कालान्तर में इसको क्रियान्वित करने हेतु अनुच्छेद 243 के अंतर्गत 73वें संविधान संशोधन (1992) द्वारा गांधीजी के स्वप्न रामराज्य अर्थात पंचायती राज लागू हुआ हो सका है।[1] केन्द्र एवं राज्य सरकारों के समस्त प्रयासों का प्राथमिक लक्ष्य लोगों का कल्याण करना रहा है। अब तक की सभी नीतियां और कार्यक्रम ग्रामीण निर्धनता, अशिक्षा एवं महिला नेतृत्व के अभाव को दूर करने के लक्ष्य को ध्यान में रखकर तैयार किए गए, जो भारत में योजनाबद्ध विकास के प्रमुख लक्ष्यों में से एक है। सन् 1919 में मुबंई में हुए महिला सम्मेलन में महात्मा गांधी ने कहा था, ''जब तक भारतीय महिलायें आर्थिक एवं राजनीतिक मामलों में पुरूषों के साथ बराबरी की हिस्सेदारी नही निभाती है तब तक भारत का सितारा बुलंद नही होगा।''[2]

स्वतंत्र भारत में महिला विकासार्थ कई संवैधानिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक प्रयास किये गये हैं जिनसे महिला वर्ग को अनेक लाभ हुए हैं। आज ये वर्ग सतत विकास की ओर अग्रसर हैं जिसे महिला का सकारात्मक पक्ष माना जाता है। इसकी समीक्षा करके ही इस क्षेत्र की समस्याओं रूपी बाधाओं की खोज की जा सकती है। अतः महिला सरपंचों से संबंधित संवैधानिक, कानूनी, राजनीतिक प्रयासों की समीक्षा निम्नांकित बिन्दुओं में करना उचित होगा जो उनकी राजनीतिक जागरूकता एवं सक्रियता का परिचायक बन रहीं है–

भारत में पचायतीराज की विकास यात्रा :–

ग्रामीण विकास के अंतर्गत सभी योजनाओं और विकास कार्यक्रमों का खाका पंचायतीराज के रूप में तैयार किया गया है। इसके अंतर्गत लोगों की आर्थिक बेहतरी और सामाजिक परिवर्तन दोनों को ध्यान में रखा गया है। ग्रामीण लोगों को आर्थिक विकास के बेहतर अवसार प्रदान करने के लिए ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में लोगों की अधिकाधिक भागीदारी, योजनाओं का विकेंद्रीकरण, भूमि सुधारों का बेहतर प्रबंधन और ऋण सुलभ उपलब्ध कराना जैसे उपाय किए गए। गरीबी, अज्ञानता, बीमारियों में कमी लाना और अवसरों की असमानता जैसी कुप्रवृत्तियों का अंत तथा बेहतर और उच्चतर गुणवत्तायुक्त जीवन प्रदान करना बुनियादी सिंद्धांत रहे हैं,

जिन पर ग्रामीण विकास में कृषि उद्योग, संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य और अनुषंगी क्षेत्रों के विकास पर बल दिया गया। बाद में यह महसूस किया गया कि तीव्र विकास का लक्ष्य तभी हासिल किया जा सकता है, जब सरकारी प्रयासों के पूरक के रूप में निचले पायदान के लोगों और महिलाओं की प्रत्यक्ष और परोक्ष भागीदारी भी हो।

2 अक्तूबर, 1952 में प्रारंभ किया गया सामुदायिक विकास संबंधी कार्यक्रम ग्रामीण विकास और पंचायती राज के इतिहास में मील का पत्थर साबित हुआ है। इस कार्यक्रम के बाद में कई क्रांतिकारी बदलाव आए और इसे विभिन्न मंत्रालयों द्वारा संचालित किया गया। 3 अक्टूबर, 1974 में खाद्य और कृषि मंत्रालय के एक भाग के रूप में ग्रामीण विकास विभाग अस्तित्व में आया। अगस्त 1979 में इस विभाग का दर्जा बढ़ाया गया और इसे ग्रामीण पुनर्निर्माण मंत्रालय का नाम दिया गया। बाद में इस मंत्रालय को ग्रामीण विकास पंचायत का नाम दिया गया और एक बार फिर से कृषि एवं ग्रामीण विकास मंत्रालय के अंतर्गत इसे एक विभाग के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। सितंबर, 1985 में इसे एक बार फिर कृषि मंत्रालय के रूप में पुनर्गठित किया गया।

पचायती राज और पेसा एक्ट :–

वर्ष 1999 में मंत्रालय का नाम पुनः ग्रामीण विकास मंत्रालय किया गया। जुलाई 2011 में ग्रामीण विकास मंत्रालय में ग्रामीण विकास विभा और भूमि संसाधन विभाग नामक दो विभाग हैं। अंततः पंचायती राज मंत्रालय की स्थापना वर्ष 2004 में की गई। इसका प्रमुख कार्य संविधान के भाग–9 के प्रावधानों, अनुच्छेद 243 जेडडी और पेसा एक्ट (पीईएसए) के अनुसार जिला योजना समिति संबंधी प्रावधानों का अनुपालन सुनिश्चित करना है।[4] मंत्रालय का लक्ष्य पंचायतों अथवा पंचायती राज संस्थानों के माध्यम से विकेंद्रीकृत और भागीदारीपूर्ण स्थनीय स्वशासन की व्यवस्था करना है। मंत्रालय का मिशन पंचायती राज संस्थानों का सशक्तीकरण, उन्हें सक्षम एवं जवाबदेह बनाना है ताकि सामाजिक न्याय, महिला सबलीकरण, और सक्षम सेवा वितरण के साथ समावेशी विकास सुनिश्चित किया जा सके।

मंत्रालय अपने लक्ष्य हासिल करने के लिए विभिन्न तरीकों से काम करता है। पंचायती राज मंत्रालय ज्ञान के सृजन और उसे साझा करने पर बल देता है ताकि समाधान किए जानेवाले मुद्‌दे स्पष्ट हों, उनके लिए सार्थक कार्यनीतियां तैयार की जाएं और सरकार एवं गैर–सरकारी एजेंसियों तथा विशेषज्ञों के बीच भागीदारी हो। मंत्रालय विभिन्न राज्यों में सीखने के लिए तकनीकी सहायता और सुविधाएं भी प्रदान करता है। भारत के संविधान के भाग–9 में त्रि–स्तरीय पंचायतों की स्थापना (20 लाख से कम आबादी वाले राज्यों या केन्द्र शासित प्रदेशों में केवल दो स्तरीय) का प्रावधान है :–

1. ग्रामीण स्तर पर ग्राम पंचायतें,
2. जिला स्तर पर जिला पंचायतें और
3. ग्राम पंचायतों एवं जिला पंचायतों के बीच उप–जिला स्तर पर मध्यवर्ती पंचायतें।

इसमें ग्राम सभा (ग्राम पंचायत के क्षेत्र में रहने वाले पंजीकृत मतदाताओं की आम सभा) का प्रावधान भी है, जो ग्रामवासियों के स्थानीय शासन में सीधे भागीदारी के लिए एक मंच है। भारत के संविधान ने इन पंचायतों के लिए पांच वर्ष का कार्यकाल निर्धारित किया है और इनमें महिलाओं एवं भारतीय समाज के हाशिये पर रहनेवाले पिछड़े एवं दलित वर्गों (अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों) के लिए सीटों का आरक्षण का प्रावधान भी किया गया है, जबकि महिलाओं के लिए 33.33 प्रतिशत आरक्षण दिया गया है। हालांकि, अनेक राज्यों

में पंचायतों में महिलाओं के लिए सीटों और मुखिया पदों में आरक्षण 50 प्रतिशत तक बढ़ा दिया है। भारत के संविधान में पंचायतों के सभी सदस्यों के प्रत्यक्ष चुनाव की भी व्यवस्था की गई है।

पंचायतों में महिलाओं हेतु एक तिहाई स्थानों को आरक्षित होने से वे चूल्हे–चौके से बाहर निकलकर चौपाल तक पहुंच सकीं है। स्थानीय स्वशासन के अन्तर्गत 20 लाख महिलाओं को जनप्रतिनिधि के रूप में राजनीतिक शक्ति मिली है जिससे उन्हें सामाजिक एवं आर्थिक शक्ति भी प्राप्त हो रही है। इस शक्ति से प्रेरित होकर करोड़ो महिलाएं जागृत हुई है। उच्च शिक्षा प्राप्त करके भी वे समग्र विकास प्रक्रिया में अपना यथासंभव योगदान दे रहीं है।

महिला सहभागिता से संबंधित संवैधानिक प्रावधान :-

पंचायती राज में महिला सहभागिता को सुनिश्चित करने के लिए पंचायती राज की दिशा में एक कदम आगे बढ़ाते हुए मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान ने महिला पंचायत के दौरान पंचायतों में महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण देने का वायदा किया। 30 मार्च 2007 को म. प्र. विधानसभा ने ''म. प्र. पंचायत राज और ग्राम स्वराज (संशोधन) विधेयक 2007'' को सर्व सम्मति से पारित भी कर दिया है।[5] उल्लेखनीय है कि देश के दो–तीन राज्यों में ऐसी व्यवस्था पहले से ही चल रही है। पंचायतों में महिलाओं की आधी भागीदारी की सर्वप्रथम मांग पाकिस्तान के मानवाधिकार आयोग की अध्यक्ष असमां जहांगीर ने दिल्ली में 24/4/1997 में आयोजित''महिला राजनीतिक सशक्तिकरण दिवस'' पर की थी।[6]

महिला सहभागिता की आवश्यकता :-

भारतीय संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, नीति निर्देशक सिद्धान्तों तथा अन्य विशिष्ट अनुच्छेदों से स्पष्ट होता है कि देश में 'लोक कल्याणकारी राज्य' की स्थापना का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इसकी पूर्ति हेतु लोकतंत्र के विकेन्द्रीकरण के रूप पंचायती राज को अपनाया गया है। इससे मतदाता की प्रत्यक्ष भागीदारी भी सुनिश्चित होती है। वास्तव में महिला सशक्तिकरण एक सामाजिक, राजनीतिक व संवैधानिक मामला है जिसको महिला प्रतिनिधित्व से ही सुलझाया जा सकता है। भारत में सदियों से लैंगिक विषमता से महिला वर्ग पीड़ित रहा है जिसे समरसता प्रदान करने हेतु पंचायती राज में महिलाओं को 1/3 स्थान आरक्षित किये गये हैं। महिला सहभागिता द्वारा ही महिलाएं अपनी स्वतंत्रता, समानता व भेदभाव रहित जीवन के लिए राजनीतिक संघर्ष कर सकती हैं। जैसा कि भारत रत्न डॉ. अम्बेडकर ने कहा है, ''राजनीतिक शक्ति वह मास्टर चाबी है जिससे हर वर्ग के पिछड़ेपन रूपी ताले को खोला जा सकता है।''[7]

महिला विकास का सकारात्मक पक्ष (उपलब्धियां) :-

स्वतंत्र भारत में महिला विकासार्थ कई संवैधानिक, सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक प्रयास किये गये हैं जिनसे महिला वर्ग को अनेक लाभ हुए हैं। आज ये वर्ग सतत विकास की ओर अग्रसर हैं जिसे महिला का सकारात्मक पक्ष माना जा सकता है। इसकी समीक्षा करके ही इस क्षेत्र की समस्याओं रूपी बाधाओं की खोज की जा सकती है। अतः महिला विकास के क्षेत्र में किये गये संवैधानिक, कानूनी, राजनीतिक प्रयासों की समीक्षा निम्नांकित बिन्दुओं में करना उचित होगा जो उनकी राजनीतिक जागरूकता एवं सक्रियता का प्रतिफल है।

पंचायतीराज में महिला प्रतिनिधित्व की वर्तमान राजनीतिक स्थिति :-

73वें संविधान संशोधन से अपेक्षा की गई थी कि इसके सही क्रियान्वयन से देश में 12,00,000 (बारह

लाख) महिलाएं राजनीतिक जगत में कदम रख सकीं हैं, लेकिन वर्तमान सामाजिक कुरीतियों जैसे– पर्दा प्रथा, महिलाओं की पुरूषों पर निर्भरता, निरक्षरता, पारिवारिक हस्तक्षेप, लालफीताशाही आदि के कारण ऐसा संभव नहीं हुआ।[7]

महिला प्रतिनिधित्व का नकारात्मक पक्ष :–

पंचायती राज में महिलाओं को आरक्षण देने के बावजूद उनकी पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति में वांछित सुधार नहीं आया है। आज भी आम महिला, महिला विकास के कार्यक्रमों, योजनाओं व सुविधाओं का पूर्ण लाभ उठाने की स्थिति में नहीं आ सकी है। इसके लिए शासन–प्रशासन में बैठे पुरूष वर्ग की विषम वातावरण में महिला जनप्रतिनिधियों को कई समस्याओं से जूझना पड़ रहा है। महिला सरपंचों के साथ पंचायत सचिव के रूप में पुरूष वर्ग ही हावी है जिससे वे संकोचवश स्वतंत्र निर्णय नहीं ले पाती हैं। महिला सरपंचों के साथ काम करनेवाले पुरूष पंचायत सचिव के आदि की भी खरी–कोटी सुननी पड़ती है जिससे उनका प्रतिनिधित्व मात्र औपचारिक ही रह जाता है।

महिलाओं का न्यून राजनीतिक प्रतिनिधित्व :–

अब तक संसद के दोनो सदनों लोकसभा एवं राज्य सभा सहित राज्य विधान सभाओं में महिलाओं का प्रतिनिधित्व लगभग 10 प्रतिशत से कम ही रहा है। भारत की संसद में मात्र 10 प्रतिशत और राज्य विधानसभाओं में 5 से 8 प्रतिशत ही महिलाएं ही जनप्रतिनिधि बन सकी हैं। भारत में जहां एक और स्थानीय शासन के अन्तर्गत पंचायतीराज व्यवस्था में 73 एवं 74वें संविधान संशोधन के द्वारा महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत स्थान आरक्षित किये गये है, वहीं दूसरी ओर संसद एवं राज्य विधानमंण्डलों में महिलाओं को आरक्षण न होने से महिलाओं का प्रतिनिधित्व उचित एवं सन्तोषजनक नही है जबकि 'महिलाओं की प्रस्थिति पर संयुक्त राट्र आयोग (1990)' ने भी सुझाव दिया है कि निर्णय लेने वाली संस्थाओं में न्यूनतम 30 प्रतिशत भागीदारी होना चाहिए।[8]

स्थानीय स्वशासन की सफलता के लिए कर्मचारियों की लापरवाही और भ्रष्ट कार्यशैली एक बड़ी बाधा है, क्योंकि पंचायतकर्मियों को न्युनतम वेतन व सुविधाएं दी जाती हैं जिसकी भारपाई वे रिश्वत लेकर करते हैं। अभी भी गावों में सवर्णों एवं प्रभावशाली व्यक्तियों का दबदबा है जिसे समाप्त किये बिना पंचायती राज की सफलता और महिलाओं का प्रतिनिधित्व सार्थक नहीं हो सकता।

पंचायतीराज में महिला जनप्रतिनिधियों की समस्याओं के समाधानार्थ सुझाव :–

1. राजनीतिक विकास की मूलवाहक ''शिक्षा'' संबंधी समस्याओं का यथाशीघ्र हल खोजना होगा, तभी पंचायती राज में महिलाएं अपने प्रतिनिधित्व को सार्थक सिद्ध कर सकती हैं। हमें योजना आयोग की पूर्व सदस्या मीरा सेठ के इस कथन को ध्यान में रखना होगा– ''जब तक देश की आधी आबादी रूपी महिला वर्ग अशिक्षित रहेगा, तबतक उनका प्रतिनिधित्व शोपीस ही बना रहेगा और पंचायती राज पुरूष वर्ग की कठपुतली।''[9]
2. महिला जनप्रतिनिधियों को निर्वाचित होते ही उन्हें अनिवार्य व वास्तविक प्रशिक्षण देना होगा जिससे वे अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों को भली–भांति समझ सकें। इससे वे योजनाओं की सही जानकारी से अवगत होंगी और क्रियान्वयन सफल होगा।
3. सरकारी योजनाओं व पत्राचार की भाषा अत्यंत सरल व स्थानीय बोली में होनी चाहिए जिससे कम पढ़ी

लिखी महिला सरपंच भी उस कागज के सही अर्थ को समझ कर कार्य करती रहें।

4. महिला सरपंचों एवं अन्य महिला पंचायत जनप्रतिनिधियों को निर्वाचित होते ही सचिव के रूप में महिलाकर्मी ही उपलब्ध करायी जानी चाहिए जिससे वे स्वतंत्र रूप से कार्य कर सकें।
5. निरंकुश बनते प्रशासन तंत्र को भी सहयोगात्मक व्यवहार करने हेतु प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ताकि वे पंचायतों के लिए मार्गदर्शक एवं प्रेरणास्त्रोत के रूप में अपनी सेवाएं दे सकें। ऐसा होने पर ही ग्रामीण विकास की योजनाएं व कार्यक्रम सफल हो सकते हैं, अन्यथा पंचायती राज में महिलाओं की उपस्थिति शोपीस बनी रहेगी।

स्वामी विवेकानंद जी ने भी कहा है– "There is no change for the world unless the condition of women improved. It is not possible for a bird to fly on only one wing." अर्थात ''संसार में महिलाओं की स्थिति में सुधार लाये बिना कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हो सकता। जैसे पक्षी एक पंख से उड़ान नहीं भर सकता।''[10]

निष्कर्ष :-

महिला जनप्रतिनिधित्व की उपर्युक्त उपलब्धियो और उनंके मार्ग की बाधाओं रूपी समस्याओं का निराकरण सुझाए गए मौलिक उपायों से किया जा सकता है। सरकार एवं समाज को ईमानदारी से महिला प्रतिनिधित्व के विकास में वास्तविक योगदान करना होगा। उभरते महिला नेतृत्व को भी वर्तमान राजनीतिक बुराइयों जैसे– भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद, अत्यधिक स्वार्थ सिद्धि और अपराधीकरण से बचकर अपने जन प्रतिनिधित्व और नेतृत्व को सार्थक करने के लिए उच्च शिक्षा, उच्च आदर्श और वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हुए आगे बढ़ना होगा, क्योंकि इनके सहयोग के बिना पंचायती राज और लोकतंत्र का विकेंद्रीकरण सफल नहीं हो सकता है।

उल्लेखनीय है कि पिछले कई वर्षो से लड़कियां ही हाई स्कूल एवं हायर सेकेण्डरी परीक्षाओं मे लड़को से ज्यादा संख्या में उत्तीर्ण हो रही है। वस्तुतः यह बदलाव बालिकाओं और महिलाओं द्वारा विद्यालय, महाविद्यालय, प्रतियोगी परीक्षा एवं तकनीकी संस्थानों आदि में दिनोंदिन बढ़ते प्रवेश करने एवं सरकारी सेवा में आने से स्वतः परिलक्षित होता है। अब महिलाएं स्थानीय निकायों, विधान सभा एवं संसद में भी आसानी से पहुंच रहीं है। निःसंदेह यह बदलाव समाज एवं नारीवर्ग के लिए शुभ संकेत है जिससे भविष्य में नारियों का चौतरफा सशक्तिकरण सुनिश्चित किया जाकर विकसित भारत–2047 के लक्ष्य को प्राप्त करना संभव होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सईद, एस. एम., भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, 2011, भारत बुक सेन्टर, लखनऊ, पेज–81
2. गाबा, ओ. पी., भारतीय राजनीतिक विचारक, 2017, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, पेज–241
3. भारत–2015, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पेज–685
4. करेंट अफेयर्स टुडे, फरवरी, 2023, दृष्टि पब्लिकेशन, दिल्ली, पेज–202
5. सिद्दीकी, शादाब, मध्य प्रदेश का सम्पूर्ण सामान्य ज्ञान, 2022, उपकार प्रकाशन, आगरा, पेज– 78
6. भांगे, सी. बी., गांधी : एक अध्ययन, 2020, भारती पब्लिकेशन, दिल्ली, पेज–146
7. भाकुनी एवं अन्सारी, युग पुरूषःबाबा साहेब आंबेडकर, 2022, वर्ल्ड लेब पब्लिकेशन, गाजियाबाद,

पेज–182
8. प्रतियोगिता दर्पण, जून 2007, उपकार प्रकाशन, आगरा, पेज–1924
9. स्वरूप, अनूप, शिक्षा पर गांधीवादी सिद्धांत और उपदेश, रोजगार समाचार, 28 सितम्बर–4 अक्तूबर, 2019, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पेज–1
10. अवस्थी, ओ.पी., भारतीय राजनीतिक चिंतक, 2016, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, पेज–205

मोबाइल फोन नं. 8120123786
ईमेल : dr.ansaari786@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 151-155

वर्तमान दौर के विमर्श : नारी विमर्श एवं भारतीय राजनीति

डॉ. रमेश राम
सहा. प्राध्यापक (अतिथि व्याख्याता) राजनीति विज्ञान विभाग,
सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय परिसर, चंपावत (उत्तराखंड़)

भारतीय समाज के लगभग सभी वर्गो में महिलाओं की स्थिति आरंभिक समय से ही दोयम दर्जे की रही है। समाज की आधी आबादी होने के बावजूद महिलाएं हमेशा से मनुष्य होने के नाते प्राप्त मूलभूत अधिकारों से वंचित रही हैं। पुरूष वर्चस्व हर एक समाज की स्थाई सच्चाई है। इस पुरूष वर्चस्व ने महिलाओं को लगभग गुलामी का जीवन जीने को बाध्य किया है। महिला आंदोलन मूल रूप से पुरूष वर्चस्व के खिलाफ समानता का आंदोलन है।

महिलाएं किसी भी परिवार या देश का आधार होती हैं, क्योंकि किसी भी देश की आधी जनसंख्या महिलाएं ही होती है। भारत में आधुनिक काल में अंग्रेजी शासन के दौरान महिला आंदोलन की शुरूआत हुई। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त अनेक महिलाओं यथा कादम्बरी गांगुली, एनीबेसेन्ट, सरोजिनी नायडू ने महिलाओं के अधिकारों की मांग की तो दूसरी तरफ गांधी जी ने भी महिलाओं को आंदोलन में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित किया। 1927 ई. में अखिल भारतीय महिला संघ की स्थापना हुई। इसके अतिरिक्त इस ऑल इण्डियन वूमेन एसोसिएशन की स्थापना भी सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में की गई। इन्हीं आंदोलनों के फलस्वरूप भारतीय संविधान में महिलाओं की सुरक्षा हेतु अनेक प्रावधान किए गए।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात पाश्चात्य नारीवादी आंदोलनों का प्रभाव भारत में भी पड़ा और भारत में अनेक महिला संगठनों की स्थापना हुई। यथा ईला भट्ट के नेतृत्व में सेवा, सेन्टर फॉर डेवलपमेन्ट स्टडीज (बीना मजूमदार के नेतृत्व में), प्रगतिशील महिला संगठन, अस्मिता, पुरोगामी महिला संगठन, स्त्री मुक्ति संगठन, सहेली, शक्तिशालिनी, विमोचना, पेनुरम्मा इयक्कम, शिवानी, तिलोनिया सेवामन्दिर आदि इसके साथ अनेक महिला संगठनों, अनेक पत्रिकाओं का प्रकाशन किया; जैसे–मानुषी सबला औरत की आवाज, उतरा, बोलची। इन महिला संगठनों ने दहेज विरोधी, ताड़ी विरोधी (नैल्लोर आन्ध्र प्रदेश) यौन शोषण विरोधी विशाखा महंगाई विरोधी आंदोलन चलाया। इन आंदोलनों के परिणामस्वरूप महिलाओं की रक्षा हेतु अनेक अधिनियम यथा दहेज निरोधी अधिनियम 1961 गर्भपात निषेध एक्ट 1971 बाल विवाह रोक अधिनियम 1978 ई. घरेलू हिंसा अधिनियम 2006 ई पारित किया।

भारत में महिलाओं के उत्थान के लिए 1974 ई. में महिला सशक्तिकरण समिति का गठन किया गया। इसी के आधार पर 1987 ई. में महिला सशक्तिकरण नीति की घोषणा की गई। महिला सशक्तिकरण नीति के अनुरूप 1991 में राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया गया तथा 73वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा महिलाओं को पंचायती राज में एक तिहाई सीटों पर आरक्षण दिया गया। आज महिलाएं अपने अधिकारों के लिए जागरूक हो रही हैं और संगठित हो रही हैं। वर्तमान में महिलाएं विधानसभा और संसद में आरक्षण की मांग कर रही है। संसद में यह महिला आरक्षण बिल छः बार रखा जा चुका है। वर्ष 2008 में 108 वें संशोधन विधेयक के रूप में राज्यसभा में रखा गया था, परंतु अभी तक पारित नहीं हो पाया है। इसके बावजूद हम कह सकते हैं कि महिला आंदोलनों ने महिला उत्थान कार्यो में तीव्रता लाई है और 'लिंग न्याय' को भारतीय राजनीति का एक प्रमुख मुद्दा बनाया है।

महिला सामाजिक आंदोलनों के लिए सबसे बड़ी समस्या है कि महिला संगठनों में एकता का अभाव है और महिलाएं अभी एक वर्ग का रूप नहीं ले पाई हैं। लेकिन महिलाएं जागरूक हो रही हैं और सरकार भी इस दिशा में प्रयास कर रही है। इस कारण महिला संगठन और सामाजिक आंदोलन की सक्रियता भी बढ़ रही है। बीना मजूमदार के अनुसार संविधान में लैंगिक समानता को अपना लेने से महिलाओं की अपनी स्वतंत्र पहचान के अधिकार का सपना पूरा हुआ।[1] यह महिला सशक्तिकरण की ओर एक कदम था। जिसने महिलाओं की भागीदारी को बढ़ाया और इससे महिलाओं से जुड़े हुए मुद्दों पर नई रूचि पैदा हुई।

1970 और 80 के दशक में नारी आंदोलन का रूप कुछ बदला भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न मुद्दो को प्राथमिकता दी गई। स्त्री पर हिंसा के विरूद्ध सब तरफ से आवाजें उठने लगी अब महिलाएं पुरूषों के बजाय स्वंय मुददों को उठा रही थी जहां मुम्बई में हिंसा का अधिक महत्व दिया गया इस तरह इसमें गांधी जी के आदर्शो की झलक भी मिलती है।[2]

महिला आंदोलन की वैचारिकी[3] :–

महिला आंदोलन की वैचारिकी का 'नारीवाद' के रूप में सैद्धांतिकीकरण किया जाता है। नारीवाद की मुख्य मान्यता यह है कि समाज में लिंग के आधार पर शक्ति का विस्तृत प्रयोग किया जाता है। यह सिद्धांत पितृतंत्र को समाज व्यवस्था का प्रधान लक्षण मानता है। यह पुरूष प्रधान समाज के प्रति विद्रोह का शंखनाद है। इसमें निहित विचार को 'न्यूयार्क रेड स्टॉकिंग्स घोषणा पत्र' 1969 के अंतर्गत सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की गई है ''स्त्रियां एक उत्पीड़ित वर्ग है। हमारा उत्पीड़न सर्वव्यापक है जो हमारे जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करता है। हम लोग पुरूषों को हमारे उत्पीड़न के मुख्य स्रोत के रूप मे पहचानते हैं। पुरूष का आधिपत्य तो प्रभुत्व का सबसे पुराना और सबसे बुनियादी रूप है। सब पुरूषों ने स्त्रियों का उत्पीड़न किया है।'' इस मान्यता के अनुसार स्त्रियां ऐसा समूह हैं जिनके हित पुरूषों के हितों के विरूद्ध हैं। ये हित समस्त स्त्रियों को एक भगिनी समाज के रूप में संगठित होने की प्रेरणा देते हैं जो वर्ग और प्रजाति की सीमाओं से परे हो।

नारीवाद स्वंय राजनीति की नई परिभाषा की मांग करता है। पुरूषों की शक्ति केवल सार्वजनिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है बल्कि वह जीवन के व्यक्तिगत क्षेत्र तक फैली हुई है। मतलब यह कि पितृतंत्रीय प्रभुत्व केवल स्त्रियों के सार्वजनिक जीवन को प्रभावित नहीं करता, बल्कि यह परिवार और यौन संबंधों जैसे नितांत क्षेत्र में भी स्त्रियों पर पुरूषों के प्रभुत्व का सूचक है। नारीवाद यह मांग करता है कि जीवन के जिन क्षेत्रों को व्यक्तिगत

क्षेत्र मानकर राजनीति के दायरे से बाहर रखा जाता है, उनकी राजनीतिक प्रकृति को मान्यता देते हुए इस क्षेत्र में भी पुरूष शक्ति को चुनौती दी जानी चाहिए।

महिला आंदोलन की पृष्ठभूमि :–

पुरूषों की तुलना में महिलाओं की हीनतर स्थिति तो शुरू से रही है लेकिन प्राचीन या मध्यकाल में इस हीनतर स्थिति के विरूद्ध महिलाओं द्वारा किसी आंदोलन का संकेत नहीं मिलता। महिला आंदोलन और उससे जुड़ा स्त्री मुक्ति का प्रश्न एक आधुनिक परिघटना है। महिला आंदोलन की पृष्ठभूमि के संदर्भ में यह बात जरूर ध्यान में रखनी चाहिए कि भारतीय महिला संरचना, उपनिवेशवाद और उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष आदि के कारण भारतीय महिला आंदोलन पश्चिम के 'नारीवाद' से कुछ मामलों में भिन्न है। ऐतिहासिक कारणों से भारत का महिला आंदोलन उस कदर पुरूष विरोधी नहीं है जैसा कि पश्चिम में देखने को मिलता है। राष्ट्रीय आंदोलन की लोकतांत्रिक विरासत के कारण भारतीय राज्य ने कम से कम सैद्धांतिक स्तर पर महिलाओं के साथ कोई भेदभाव नहीं किया है। नागरिक के रूप में उनके अधिकार पुरूषों के समान नही माने गए हैं यहा यह रेखांकित करना आवश्यक है कि पश्चिम में महिलाओं को लम्बे संघर्ष के बाद मतदान का अधिकार मिला जबकि भारत मे आजादी के साथ ही सबके साथ महिलाओं को भी यह अधिकार मिला। भारत के महिला आंदोलन में उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक सुधार आंदोलनों और राष्ट्रीय आंदोलन की अनुगूंजे है। महिला आंदोलन का विकास 18वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अंग्रेजी शासन आया तो उस समय महिलाओं का समाज में अधीनस्थ और निम्न स्थान था तथा वैधानिक स्थिति भी संतोषजनक नहीं थी।[4] उन्हें परजीवी समझा जाता था। इस काल में महिलाओं के सामाजिक ओर धार्मिक जीवन को अंधविश्वास और परंपरावाद ने जकड़ा था तथा व्यक्तित्व की दृष्टि से नारी की स्थिति अपनी निम्नतर स्तर पर पहुंच गई। प्राक् ब्रिटिश शासन में भारतीय नारी का विषय उस समय के समाज के सामाजिक–आर्थिक ढांचे में जकड़ा हुआ था।[5]

19वीं शताब्दी के समाज सुधार आंदोलनों ने महिलाओं को एक व्यक्तित्व के रूप में पहचान दी। 1880 के बीच राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, ईश्वरचंद्र विद्यासागर जैसे महान सुधारकों ने सती प्रथा, विधवा विवाह, बाल विवाह, महिला शिक्षा जैसे विषयों को उठाने में निर्णायक भूमिका अदा की। राजा राममोहन राय ने 1818 में सती प्रथा के खिलाफ संघर्ष किया। उनके प्रयासों ने 1829 मे सती प्रथा के खिलाफ कानून पारित हुआ। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने विधवा पुर्नविवाह को लेकर आंदोलन किए।[6]

नारी आंदोलन के मुख्य मुद्दे :–

लगभग सभी प्रकार के महिला आंदोलनों में स्त्री अधिकारों से जुड़े मसले को उठाया गया है। उनकी मांग रही है कि स्त्री अधिकारों को मानव अधिकारों की सामान्य श्रेणी के रूप में मान्यता दी जाए। अवसर की समानता, लिंग के आधार पर हर तरह के भेद–भाव की समाप्ति, समान कार्य के लिए समान वेतन आदि महिला आंदोलन के परंपरागत मुद्दे रहे हैं। इधर के वर्षो में महिला आंदोलन के लिए महिलाओं के खिलाफ हिंसा का मुद्दा सर्वाधिक महत्वपूर्ण मुद्दे के रूप में उभरा है। महिलाओं के प्रति बढ़ती हिंसा हमारे समाज का शर्मनाक पहलू है जो बताता है कि हमारा समाज आज भी सामंती सोच से बाहर नहीं निकल पाया है। महिलाओं के खिलाफ हिंसा के कई प्रकार हैं जिसमें दहेज हत्या, भ्रूण हत्या, बलात्कार आदि अनेक प्रकार की हिंसा शामिल है।[7]

समकालीन चुनौतियां :-

भारत में महिला आंदोलन महिलाओं की स्थिति में आमूल–चूल बदलाव पर आधारित है। यह जाति वर्ग संस्कृति विचारधारा आदि आधिपत्य के विभिन्न रूपों को चुनौती देता है। इसमें गैर संस्थानीकृत राजनीति गतिविधि शामिल है साथ ही इसमें संस्थाओं द्वारा व संस्थाओं के भीतर बदलाव लाना भी शामिल है। स्वायत्ता के गठबंधन या संघर्ष के माध्यम से समाज में चुनौतीपूर्ण शक्ति संरचनाओं के मध्य विवाद भारतीय नारी आंदोलन की एक प्रमुख विशेषता रही हैं।

नारीवादी आंदोलन कर्ताओं ने राज्य के साथ हमेशा से ही मिश्रित संबंध रहें हैं। एक ओर राज्य मौलिक रूप से पितृसत्तात्मक दिखाई देता है और ऐसी स्थिति में वह पुरूषों के हितों को सर्वोपरि महत्व देता है तो दूसरी ओर राज्य महिलाओं के नागरिक और मानव अधिकारों की गारंटी प्रदान करता है। राज्य मौलिक रूप से शक्तिशाली राजनैतिक संस्थाओं में से एक है : ''अऐक्जेंडर और मोहंती का तर्क है कि तृतीय विश्व में नारीवाद राज्य की संस्थाओं से नहीं बच सकता राज्य की संस्थाएं पर्यवेक्षण करने, महिलाओं के जीवन को नियंत्रित करने और अपनी सीमाओं के भीतर पार–राष्ट्रीय पूंजी कि आवाजाही को सुगम बनाने का प्रयास करती है। राज्य के आधुनिकीकरण और विकास नीतियों ने महिलाओं को हांसिए पर खड़ा करके उन्हें ओझल कर दिया है।[8]

महिला आंदोलन वर्तमान में बदलाव के दौर से गुजर रहा है महिलाओं की समाज की पैतृक शक्तियों के विरूद्ध प्रतिक्रिया बड़ी विचित्र है। जहां कुछ संगठन राज्य को क्रियाशील बनाने में जुटे हैं वहीं दूसरे संगठन आंदोलन के भीतर ही अपनी स्थिति बेहतर बनाने के लिए आर्थिक सहयोग और विकास, परिवार के अधिक स्वायत्ता और निर्णय लेने में सहभागिता के लिए संघर्षरत हैं यद्यपि 80 के दशक में हुए कानूनी परिवर्तन एक ओर सफलता का द्योतक है तो दूसरी ओर कुछ प्रवृत्तियों ने असफलता की ओर भी इशारा भी किया है। 80 के दशक के बाद कई कानून जल्द बाजी में बनाए गए। कई मामलों में ये कानून उल्टे महिलाओं को ही दंडित करते हैं। उदाहरण के लिए लिंग जांच परीक्षण, वेश्यावृत्ति, सती आदि कुछ कानून ढीले–ढाले थे तथा जिनका कार्यान्वयन भी ढीला रहा। सामाजिक–आर्थिक न्याय तथा महिलाओं को समान दर्जा दिलाने की सफलता को कट्टरपंथियों साम्प्रदायिक ताकतों से चुनौती का सामना पड़ा है।[9]

विभिन्न महिला समूहों में आपसी सहमति में भी मतभेद है। इनमें वैचारिक मतभेद बरकरार है। पर सभी एकजुटता में विश्वास रखते हैं जहां 1970 में यह आंदोलन सत्तात्मक प्रणाली के विरूद्ध खड़ा हुआ था वहीं दूसरी ओर बिखर भी गया। **अग्निहोत्री और मजुमदार**[10] ने भारत के आधुनिक महिला आंदोलनों के बारे अनेक प्रश्न उठाए हैं। जैसे क्या आंदोलन, नारीवादी होने की अपेक्षा राज्य के विकास की नीतियों और कल्याणवादी विधानों से अपने उद्देश्य में अत्यधिक ग्रसित हैं? क्या स्त्रियाों के प्रति हिंसा के मुददे को सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों तक विस्तारित करना, पीछे लौटने या आगे बढ़ाने का संदेश देता है।

चूंकि कोई एक आंदोलन महिला आंदोलन नहीं है इसलिए भिन्न विचारों की स्थिति है। कुछ लोगों के लिए यह स्थिति पितृ सत्ता की है कुछ लोग इसे स्त्रियों नागरिक और मानवीय अधिकारों के रूप में देखते हैं और कई अन्य व्यक्तियों के लिए यह स्थिति मित्र और शत्रु दोनों की है।[11] स्त्रियों के आंदोलनों को समझने और व्यवहार के लिए कुछ लोग पूर्व निश्चित वैचारिक ढांचे को स्वीकार नहीं करते हैं :''सुप्रिया अग्रेकर कहती है कि स्त्रियों के आंदोलनों के विषयांतरपूर्ण व्यवहार माना जा सकता है अर्थात् सिद्धांत और व्यवहार कि पारंपरिक समझ

को पुनः परिभाषित किया जाना चाहिए। इसका अस्तित्व विमुक्ति के पूर्व सिद्धांतों पर निर्भर नहीं करना अपितु यह परित्राण की स्थानीयकृत अभिव्यक्ति और समझ के द्वारा नवीन संबंध बना लेते हैं।"[12]

निश्कर्श :-

नारीवाद राजनीतिक चिंतन की एक प्रमुख धारा बन चुकी है। यह एक संदर्भ में उदारवादी राजनीतिक चिंतन को चुनौती दे रहा है। आंदोलनों के समक्ष सामूहिक गतिविधि की समस्या आती है परंतु ये सामाजिक आंदोलन है जो असंगठित, स्वायत्त और बिखरी हुई जनसंख्या को साझी और निरंतरशील गतिविधियों के लिए एकजुट करते हैं। यह न केवल एक सैद्धांतिक विचारधारा है अपितु पिछली अर्ध शताब्दी में इस विचारधारा के आधार पर स्थापित समाजों में परिवर्तन करने का प्रयास किया गया है। इसके साथ–साथ नारीवादियों ने स्थापित राजनीतिक चिंतन की मान्यताओं में महत्वपूर्ण योगदान देकर उन्हें पुर्न परिभाषित किया है नारी वादियों का एक महत्वपूर्ण योगदान उदारवादी राज्य को नारी सहिष्णुता का पाठ पढ़ाना रहा है। इसी प्रकार नारीवादी निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र के विभेद को समाप्त कर सार्वभौमिक नियमों और मूल्यों को दोनों क्षेत्रों में समान ंरूप से कियान्वित करने पर बल देते हैं ताकि स्त्री और पुरूषों के मध्य कार्यो के आधार पर भेद न किया जा सके।

संदर्भ :-

1. वासुकिनाथ चौधरी, युवराज कुमार, भारतीय शासन और राजनीति, पृ. 396–397
2. वही, पृ. 396
3. घनश्याम साह, सोशल मूवमेंट इन इंडिया, नई दिल्ली 2004
4. वासुकिनाथ चौधरी, भारतीय शासन और राजनीति, पृ. 392
5. वही, पृ. 393
6. वही, पृ. 392–393
7. मनोज सिन्हा, समकालीन भारत एक परिचय, पृ. 236
8. तपन विस्वाल, तुलनात्मक राजनीति संस्थाएं और प्रकियाएं, पृ. 528
9. वासुकिनाथ चौधरी, युवराज कुमार, आज का भारत राजनीति और समाज, पृ. 59
10. वहीं, वही, पृ. 60
11. वही, पृ. वही।
12. वही, पृ. वही।

मो.न.–7465967280

Email-aptech.ramesh1984@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 156-160

संजीव और राणेंद्र के उपन्यासों मे चित्रित पर्यावरण चेतना

निर्मला. ए
शोधार्थी, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, एरणाकुलम, केरल।

धरती के चारों ओर ओढते हुए जैविक और अजैविक संसाधनों को हम पर्यावरण कहते है। इसमें जंगल, पहाड नदि, झरना सागर आदि जलस्रोत, मानव, पेड–पौधे, पशु–पक्षियों, वायु, मिट्टी, जीव प्राणियाँ सब समेटे है। पर्यावरण संरक्षण हर एक मानव का दायित्व है। बढ़ती हुए आबादी, तकनीकी के विकास एवं औद्योगीकरण, वैश्वीकरण, नवउदारीकरण, नव उपनिवेशवाद तथा पूँजीपति कारपरेटॉम के लालच, शहरीकरण आदि से सुख–सुविधा के पीछे दौडनेवाले मानव के अंधाधुंध शोषण द्वारा पारिस्थितिक तंत्र को बिगड़ जाते रहते हैं। प्रतिक्रिया के रूप मे जलवायू परिवर्तन, भूस्खलन, अकाल बाढ़, भूकम्प, भूक्षरण जैसे प्रकृति के जवाब सह सकते है। नये पत्थरों की विशेषता के खोज में भूमण्डलीकरण के दौरान अनछुए जंगलों की प्राकृतिक संसाधनों पर जब मानव का नजर पड़ा है, तब से पर्यावरण समस्यायें झेलने पड़े।

संजीव के 'जंगल जहाँ शुरू होता हैं' नामक उपन्यास बिहार के पश्चिम में एक जिला को प्रमुखता देकर लिखा गया है। पश्चिमी चम्पारण के पर्वतीय इलाका ही केंद्र है। पश्चिमी चम्पारण जो मिनी चम्बल नाम से जाने जाते है, वहाँ के आदिवासी समाज विशेष जाति थारू समाज के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थितियाँ और मनोविज्ञान की स्तर, अपराधीकरण, चोर–डकैती बनने का कारण, समस्यायें, शोषण, उत्पीड़न, यौन–ोषण, पुलिस और डाकुओं के गठजोड, मध्यवर्गीय अपराध बोध, प्रशासन की निष्क्रियता, लूटमार करना, सामाजिक असमानता पर विद्रोह, हक के लिए संघर्ष आदि की विस्तृत वर्णन है। वर्षों तक उस आदिवासी इलाके में रहकर निरन्तर शोध करने के बाद ही आप यह जंगल गाथा पेश की है। उपन्यास के मुख्य पात्र डी. एस. पी कुमार और काली है। पश्चिमी चम्पारण के इलाके से डाकू समस्या शोषण व अत्याचार दूर करके समाज में आम जनता के जीवन और संपत्ति को सुरक्षित रखने के लिए नियुक्त कुमार जी के सामने दूसरा समस्या गंभीरता के रूप में आते है। वह है परशुराम जैसे इनामी डाकू और प्रशासनिक अधिकारियों के षडयंत्र।

कालिया जैसे निरीह आदमी का परिवार को चकनाचूर करके खत्म करते है। एनकाउंडर के नाम से नाश कर दिया है। भाई बिसराम का हत्या, भतीजी को पुलिस थाने में बलात्कार तथा अत्यन्त शोषण उनके बच्ची की मृत्यु, कालिया की पत्नी को जोगी द्वारा अपहरण तथा दलालों द्वारा दूसरों को बेचना मजदूरी करने पर भी जमींदारी समाज से पैसा नहीं मिलते है, फटकार और गालियाँ देकर अपमान करना, मंत्री दुबे जी जैसे आदमी के जीत के लिए चुनाव के चक्कर में धन रूपी जाल बिछाकर निरीह आदिवासियों को फंसाने के लिए कोशिश करते रहे परशुराम डाकू। सारे परिस्थितियाँ से दुःखित काली कैसे एक डाकू बन जाते है। इसका जीवंत

दस्तावेज है कथानक में। 'हम पर्वत की शान्त, समुद्र की शक्ति जंगल की सुन्दरता और रोगिस्तान के विशाल विस्तार को देखकर अचंभित होते हैं। इन्ही परिदृश्यों में और उनमें वानस्पतिक और जन्तु जीवन की अपार विविधता ने मानव जीवन से संबंधित अनेक दर्शनों को जन्म दिया है'[1]। भारत जैव विविधता के आवासीय स्थान है। इस उपन्यास में जंगल के पहाड़ों, नारायणी तथा डांड़की नदियों से युक्त रेता क्षेत्रों, कई जडी बूटियों के गुण, शान्तता, सुन्दरता और सौन्दर्य भी लेखक नजरअंदाज करते है। सौन्दर्य में भी शिव की स्थापना अभिव्यक्त करती है। घने जंगल में भयावह और जुगुप्सा वह घटनाएँ ही नहीं, बल्कि सुन्दरता का अनेक चित्र कहीं कहीं लेखक इसमें डालने का प्रयास किया गया है। काली के मन में जंगल के सुन्दरता एवं कोमलता है। अपने चारों ओर के जंगल में अन्य अत्याचारी लुटेरे न उगने के लिए वह कोशिश करते है। प्रजातंत्र के ओढ में सत्ताधिकारी के कुकृत्य निरीह लोग को अपराधी कुएँ में डालने वाले जंगल तंत्र के निज रूप को पर्दाफाश करते है।

अंत में काली को सान्वना देते हुए कुमार जी कहते हैं 'हम सभी अपने अपने स्तर पर इस जंगल से लड़ने लड़ते है और एक दिन पाते हैं कि 'जंगल खुद हमारे अंदर उगा आ रहा है'। ड़ाकुओं से भी बड़ा डाकू राजनीतिक सत्ताधिकारी लोग ही है। यह सत्य दिखाना इस उपन्यास का लक्ष्य है। वन प्रान्तर में प्रकृति के साथ–साथ फैले अपराध की जड़ों और शाखाओं पर रोशनी डालने वाला कथा है यह।

'धार' नामक संजीव जी के उपन्यास पूँजीवादी सभ्यता के खिलाफ आदिवासियों की संघर्ष गाथा है। कोयला समस्या, जल, जमीन और जंगल धोखाबाजी या बहला–फुसलाकर उनके हाथों से छीन लेना, पूँजीपति, खदान मालिक, निगमित भू–माफिया के कुकृत्य, नारी शोषण, मजदूरी शोषण आदि के विरुद्ध अपने हक और अस्मिता के लिए लड़ाई गई संघर्ष की कहानी है धार। उपन्यास का मुख्य पात्र है मैना। वह एक आदिवासी महिला है उसकी ईर्द–गिर्द कथानक घटित है। वह संघर्षशील नारी है। बिहार के संथाल परगाना के कोयला क्षेत्र में से संघर्ष की शुरुआत किया। भोले–भाले आदिवासियों को कई वादायें धमकी देकर उनके जल, जमीन, जंगल सब छीन लेते है। आदिवासी फोकल की जमीन पर तेजाब की फैक्टरी खुलते है। एक के बाद एक करके कई खेत–खलिहानों को अपने कब्जे में समेट कर लिया।

फैक्टरी से निकलते हुए जल, धुआँ तथा अपशिष्टों से जनजीवन बर्बाद होने लगा। अशिक्षित होने पर भी 'मैना' मूल निवासियों को इकट्ठा कर के संघर्ष करने लगा। बासवाडा गाँव के पूरा जमीन, जलस्रोत, खेती सभी जहरीला बन गयी। धुआँ से हवा में भी जहर फैलाया गया। महामारियाँ तथा कई संक्रामिक रोगों के शिकार बन गये आदिवासियों इन पर्यावरण प्रदूषण को रोकने के लिए फैक्टरी मालिक तथा प्रशासनिक सत्ताधिकारियों से निरन्तर प्रयास, संघर्ष करने लगे। लेकिन धन और प्रभाव के कारण मैना तथा अन्य लोगों को जेल में डाल दिया।

प्रदूषित जहरीला जल पीकर मैना की भैंस की मृत्यु, माँ को डायन घोषित कर हत्या करना, बेरोजगारी, भूख–प्यास, दरिद्रता आदि से लोग सरकारी खदानों से कोयला के अवैध खनन करना पड़ते है। ठेकेदार भी धमकी देकर यह काम करवाते है। जन खदान का निर्माण करने के लिए मैना प्रयास किया। जन खदान का राष्ट्रीयकरण द्वारा बेरोजगारी की समस्या मिट जाने ने की विश्वास है। लेकिन महेन्द्र बाबू के धन रूपी मायाजाल मे अधिकारियों तथा भ्रष्ट नेता के लालच से सभी प्रयास निष्फल हो गया। फिर मालिकों का अवैध कोयला खदान का राष्ट्रीयकरण हो गया।

अंत में अपने जमीन और खेती उखाड़ने के लिए आ रहे बुलडॉजर के सामने खड़ी हुई मैना को रौंदकर

गाड़ी आगे चली गयी। मैंना समाज के लिए शहीद बन गयी। 'किंतु उसकी मृत्यु चेतना और संघर्ष की समाप्ति नहीं है। वह मरी नहीं, मर सकती ही नहीं! जहाँ जहाँ अंधेरे में जुगनु आपको चमकता दिखलाई दें, ईमानदारी से पुकारिए, मैना। कान साधे रहिए, बहुत गहराई से कोई जवाब आएगा है'[3]। पर्यावरण प्रदुषण, समस्याएं, विस्थापन, अशिक्षा, बेरोजगार, वेश्यावृत्ति, अंधविश्वास जैसे कई समस्या पर प्रश्न चिह्न लगते है।

इतिहास और वर्तमान के बीच के एक धारा प्रवाह की तरह बहने वाली के नदी है यह उपन्यास। जो काल के साथ सामाजिक, राष्ट्रीय एवं धार्मिक संरचनाओं और लड़ाइयों को प्रस्तुत करते है। दलित चेतना, नारी चेतना, शिक्षा का महत्व विद्रोही नारी की आत्मविश्वास, वर्जित एवं हाशिये पर छोड़े गए लोगों को मुख्य धारा में लाना, मानव मूल्यों को संरक्षण देना आदि इसका उद्‌देश्य है। शिक्षा की धार से समाज में प्रचलित अंधविश्वास और अन्याय के खिलाफ संघर्ष करने की अनिवार्यता पर बल देते है। प्राकृतीय संसाधनों का उपयोग मानव की भलाई के लिए होना है, बुराई के लिए नहीं होना। 'जान देंगे, जमीन नहीं देंगे' नारा बताकर अगले पीढ़ियों को पर्यावरण के साथ उल्लासपूर्ण जीवन जीने के लिए यह प्रेरणा देते हैं।

मानव का अनियंत्रिक हस्तक्षेप के कारण धरती जहरीला बन गयी है। पूँजीपतियों तथा विदेशी कॉरपोरेटों, स्थानीय प्रशासक एवं अधिकारी वर्ग के मिलीभगत में भारत के कई पहाड़ी इलाकों के मूलनिवासियों के भाषा एवं संस्कृति सब विलुप्त हो गयी है। खदानें, फ्लैट निर्माण, रोजगार, अभयारण्य, सड़क–रेल मार्ग, बिजली की लभ्यता, बाँध योजना आदि के नाम पर जंगली इलाकों के आदिवासियों के जल, जमीन अस्मिता सब माफिया द्वारा हड़प ले लिया है। लुटेरों के हाथों के पकड़ में धंसी होने वाले देश के आदिम संतानों के दर्दनाक घटनाएँ ऐतिहासिक संघर्ष प्रजातंत्र के द्वारा सत्ताधिकारियों के लालच के शोषण, धोखेबाजी डाकू डकैती, हत्या काण्ड, बलात्कार, नारी शोषण, सांक्रमिक रोग, प्रदूषण, विस्थापन, भूखमरी, अशिक्षा, अंधविश्वास तथा पाखंड जैसे कई समस्यायें समाज के सन्मुख उजागर करने वाले उपन्यासकारों में प्रमुख हैं संजीव और राणेंद्र।

कुमार जी के साथ आत्मीयता स्थापित करने वाला काली एक पत्र में कुमार को ऐसा लिखा है 'अब सारा कुछ छीनकर नियति ने मुझे सोलह आने डाकू बनने को ठेल दिया है। मेरे अंतर का जंगल घना होता जा रहा है...वहीं कभी मुलाकात होगी'। सामाजिक परिस्थितियों शुद्ध मानव के मन को कैसे बदलाव लाते है इसका उदाहरण भी इसमें है। इसलिए यह सामाजिक यथार्थता व्यक्त करने वाला उपन्यास है। अंत में मन परिवर्तन से ईमानदार, काली के मन में स्नेह एवं भ्रातृत्व भावना से निर्भर हैं।

दूसरों को आर्थिक सहायता देने का मनोभाव, करुणा, दया आदि से आँसू बहते रहते हैं। उसी तरह वहाँ के अत्याचार के खिलाफ संघर्ष शुरू करने लोगों को नक्सल एवं आतंकवाद नाम से मुठभेड़ कराने वाले प्रजतंत्र की ओर एक तीखा व्यंग्य भी है इसका कहानी।

रणेंद्र के 'ग्लोबल गाँव के देवता' नामक उपन्यास में झारखंड के पहाड़ी धरती के आदिवासियों के जीवन के संतप्त सारांश है। मुख्य रूप में वहाँ के 'असुर' नामक जनजातियों के जल, जमीन और जंगल छीन लेने वाले पूँजीपतियों, विदेशी कम्पनियों के अंधाधुंध दोहन के खिलाफ किये गये अनवरत संघर्ष है। प्राचीन काल से ही देवता और असुरों के बीच के लड़ाई में सदाहार करने वाले लोग है असुर। लेकिन यहाँ के असुर निवासी लोग सुसंस्कृत आग, धातू आदी के खोज करके, उसको आकार देने वाले कारीगार है। निरीह एवं हाशिये पर छोडे गये होने के वजह से ही वहाँ शिक्षित लोग भी है। फिर भी वह भूमण्डलीकरण के वजह से मुनाफा की लक्ष्य से

उनके इलाके में आये शिंदाल्को, वेदांग जैसे कम्पनियों के अधिकारियों को लेखक व्यंग्य रूप में 'ग्लोबल गाँव की देवता' कहते हैं। अनियंत्रित खदानों से धरती में खुले गड्ढे भी है। विस्थापन की समस्या, कम्पनी मालिकों, के तथा प्रशासनिक अधिकारियों के षड्यंत्र, पसरे हुए उजाड़ बंजर खेत, आदि से त्रसित असुर उन देवता रूपी मालिकों के विरुद्ध संघर्ष शुरू किये। नक्सली, देशद्रोही आदि पुकार कर बेचारे लोगों को एनकाउंटर नाम से मार डालते है।

जान देने वजह से ही जमीन उनको देने के लिए वे लोग तैयार नहीं है। हार करते रहते है, हालांकि असुर आदिवासियों ग्लोबल गाँव के उन देवताओं से अंत तक लड़ते रहते है। अंधविश्वास, अशिक्षा, धोखाबाजी, धमकी देना, नारी एवं मजदूरों के ऊपर किये गये शोषण, सांक्रमिक रोगों के फैलना, आतंकवाद, गुण्डागिरी आदि कई समस्यायें इस उपन्यास में उजागर कर रहा है। सबसे ऊपर पर्यावरण प्रदूषण विद्यमान है।

भौरापाट गॉव, सखुआपाट, पाथरपाट जैसे अनेक स्थानों में तांबे, अलुमिनियम बॉक्सैट आदि अलग–अलग खदाने है। यह देखकर लेखक कहते है 'बीच बीच में बॉक्साइट की खुली खदानें। जहाँ से बॉक्साइट निकाले जा चुके थे वे गड्ढे भी मुँह बाये पड़े थे। मानो धरती माँ के चेहरे पर चेचक के बड़े–बड़े धब्बे हों'। 'वहाँ बारिश के समय मच्छर, कीड़े आदि से लोग बीमारियों के शिकार बने। पेयजल के लिए मैलों दूर तक स्त्रियों को जाना पड़ते थे।

लेखक एक विज्ञान शिक्षक के रूप में कोयल बीघा के भौरापाट स्कूल में आते हैं। वहाँ के असुर जाति के नेता महान व्यक्ति लालचन दा के खेत में धोखा से गोनु सिंह द्वारा रोपाई करना, जमीन अपहरण करके विध्वंस करना यह सब समझकर रुमझुम के नेतृत्व में लोगों को इकटाकर रातों–रात आपसी दंग और लडाई पाथर पाट हत्याकाण्ड के रूप में आते है। जालियन वाला बैग के समान। डॉ. रामकुमार और बालचन को मुठभेड में मार डालते है।

विदेशी कम्पनियों ने अपने माल लाने–जाने के लिए जमीन खोदकर सड़कें बनवाती है। उसमें ट्रकों द्वारा परिवहन करते रहते है। लेकिन खुले पड़े खदानें मिट्टी से भरने के लिए, वह मालिक तैयार नहीं है। कई दिनों तक खदानों में काम करने वाले मजदूर नहीं आये। खदान मालिकों के के काम और मुनाफा नष्ट हुआ। कई बॉक्साइट खदानें बंद हो गयी। इसलिए वह षड़यंत्र रचा। सरकार या वन संरक्षण विभाग से नोटिस निकाला है कि सभी असुर जातियों अपने इलाके से बाहर जाने के लिए कहता है।

भेड़िया की संख्या घटती जा रही है। इसलिए अभ्यारण्य की योजना लागू करने के लिए है। लेकिन असुरों की संख्या घड़ करने के ध्यान उन अधिकारियों के मन में नहीं पड़ते।

संत्रस्त एवं पीड़ित असुर लोग शिक्षित नवयुवक अध्यापक रूमझूम के नेतृत्व में अपने दर्दनाक अवस्था, कम्पनी मालिकों द्वारा किये गये अन्याय सभी कार्य विस्तृत करके लिखता है। इसमें सभी लोग हस्ताक्षर करते है। लेखक इसे शुभ पत्र के नाम से कहते है। कहानी के अंत में सरकार को माँग पत्र देने के लिए ललिता, बुधनी, एतवारी, पती गंदूर, आदि पंद्रह लोग ट्रक पर जाते है।

रास्ते में माइनस बिछाकर उन लोगों की धज्जियाँ उड़ गयी थी। लेखक कहते है 'बिखरी हुई हुए देह की जगह पिघला हुआ गरम लोहा वहाँ बहने लगा। लाल पानी–सा लोहा धीरे–धीरे पाट की धरती में समा रहा'।[6] इस प्रकार की घटनाएँ घटती रहती है। लेकिन वे लोग हार नहीं माने। राजधानी के यूनिर्वसिटी हॉस्टल में ठहरे

गये रुमझुम का भाई सुनिल असुर उनके साथियों के साथ संघर्ष करने के लिए कोयल बीघा की ओर यात्रा शुरू किया है। यह बिलकुल पर्यावरण विमर्श संबंधी उपन्यास है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. डॉ मुक्तिनाथ झा – पर्यावरण अध्ययन – सनराइज पब्लिकेशन (2008), पृ. 14
2. संजीव–जंगल जहाँ शुरू होता है– पृ. 286
3. संजीव – धार – राधाकृष्ण पेपरबेगस–पृ. 209.
4. संजीव–जंगल जहाँ शुरू होता है– पृ. 193, 194
5. रणेन्द्र – ग्लोबल गाँव के देवता– भारतीय ज्ञानपीठ –पृ. 9.
6. रणपेन्द्र – ग्लोबल गाँव की देवता – पृ. 100

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 161-165

‘एक ब्रेक के बाद’ और ‘मुन्नी मोबाइल’ पर भूमंडलीकरण के प्रभावों का अध्ययन

प्रणीत कुमार इन्द्रगुरू
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली।

भूमंडलीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो विश्व के विभिन्न हिस्सों को आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक रूप से अकीकृत करती है। यह वैश्विक व्यापार, प्रौद्योगिकी, सूचना के आदान–प्रदान और सांस्कृतिक मेलजोल के माध्यम से विभिन्न समाज को एक दूसरे के करीब लाता है। यह मेलजोल विश्वव्यापी सामाजिक परिवर्तनों को तीव्र करता है। यह सामाजिक परिवर्तन वैश्विक और स्थानीय के बीच होने वाले अंतर्क्रियाओं के कारण उत्पन्न होते हैं, जिसका प्रभाव समाज के हर एक भाग पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से दिखाई देता है। रोलैंड रॉबर्ट्सन इन अंतर्क्रियाओं को वैश्विक और स्थानीय के बीच के तनाव के रूप में देखते हैं, जहां वैश्विक एकीकरण सामाजिक पहचानों को प्रभावित करता है। सुमन गुप्ता के अनुसार ‘भूमंडलीकरण एक जटिल प्रक्रियाओं का समूह है जो आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक क्षेत्रों में एक साथ संचालित होता है, जो मानव अंतर्क्रियाओं का वैश्विक स्तर पर पुनर्जनन करता है’[1]। भूमंडलीकरण की इस पूरी प्रक्रिया में विश्व धीरे–धीरे एक वैश्विक गाँव बनाता जाता है, जहां सीमाएं धुंधली पड़ती जाती हैं और लोग, पूंजी, विचार और संस्कृतियाँ प्रौद्योगिकी, वैश्विक व्यापार और सांस्कृतिक आदान प्रदान के माध्यम से एक जगह से दूसरी जगह प्रवाहित होती हैं।

भारत जैसे विकासशील देशों में, 1990 के दशक के आर्थिक उदारीकरण के बाद भूमंडलीकरण ने गहरे सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन लाए हैं। इसी समय भारत सरकार ने भी भारत की अर्थव्यवस्था को पूरे विश्व के लिए खोल दिया। नतीजतन भारतीय अर्थव्यवस्था ने विकास की नई राह पकड़ी। इसके साथ ही भारत में एक नई उम्मीद का संचार हुआ। भूमंडलीकरण की इस प्रक्रिया ने भारत की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों पर गहरा प्रभाव डाला। हिंदी लेखकों ने भी समाज में आते इन बदलावों को बहुत सूक्ष्मता से देखा तथा अपने साहित्य में उनको जगह दी। हिन्दी साहित्य में भूमंडलीकरण को एक दोधारी तलवार के रूप में देखा जाता है। यह आर्थिक अवसरों और वैश्विक पहचान को बढ़ावा देता है पर साथ ही साथ स्थानीय संस्कृतियों और सामाजिक संरचनाओं पर दबाव भी डालता है। बबीता अग्रवाल और अनिल अग्रवाल ने तर्क दिया है कि ‘भूमंडलीकरण ने भारतीय साहित्य को नए विषयों और कथात्मक शैलियों के साथ समृद्ध किया है, लेकिन यह सांस्कृतिक पहचान के संकट को भी दर्शाता है’[2]। आलोच्य दोनों उपन्यास भूमंडलीकरण की आधारभूमि पर लिखे

गए हैं, और दोनों के प्रकाशन वर्ष में भी एक वर्ष का अंतर है। एक और जहां अलका सरावगी का उपन्यास 'एक ब्रेक के बाद' वर्ष 2008 में प्रकाशित हुआ वही प्रदीप सौरभ का उपन्यास 'मुन्नी मोबाइल' वर्ष 2009 में प्रकाशित हुआ। एक ही विषय और लगभग एक ही समय पर लिखे जाने के कारण इन दोनों उपन्यासों में भूमंडलीकरण और भारत पर पड़ते उसके प्रभावों को देखना महत्वपूर्ण हो जाता है।

एक ब्रेक के बाद और मुन्नी मोबाइल दोनों ही उपन्यास भूमंडलीकरण और भारतीय समाज के विभिन्न स्तरों पर उसके प्रभावों को बहुत सूक्ष्मता से पेश करते हैं। एक ब्रेक के बाद कॉरपोरेट जगत को केंद्र में रखकर उसकी तमाम मान्यताओं, विडंबनाओं, दुष्प्रभावों आदि को व्यक्त करता है। पुष्प पाल सिंह अपने पुस्तक भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास में एक ब्रेक के बाद के बारे में लिखते हैं– 'एक ब्रेक के बाद में अलका कथा के केंद्र में मुख्यतः कॉरपोरेट जगत, व्यवसाय जगत को रखकर भूमंडलीय व्यापार जगत आर्थिकता के श्वेत–श्याम पक्ष, कंप्यूटर क्रांति के नफे नुकसान, इंडिया की इकोनॉमी कल्चर, पॉलीटिकल हिस्ट्री, मल्टीनेशनल कंपनियों के दिग्गज प्रबंधन अधिकारियों, विकास की द्रुत गति, समकालीन कला बाजार, पर्यावरण प्रश्न, मॉल और डिपार्टमेंटल स्टोर के एक दिन में 5 करोड़ रुपए के टर्नओवर, इंडियन स्काई शॉप आदि के वैश्विक दृष्टिकोण, नई पीढ़ी और उनकी यौनिक स्वतंत्रता आदि प्रश्नों–समस्याओं पर पूरे अधिकार से विश्वस्थ विमर्श रचती है'[3]। वहीं प्रदीप सौरभ का उपन्यास मुन्नी मोबाइल 20वीं सदी के अंतिम दशक से लेकर 21वीं सदी के पहले दशक तक के समय में हो रहे सामाजिक परिवर्तनों को व्यक्ति और समाज के विषमता के माध्यम से प्रस्तुत करता है। मुन्नी मोबाइल का समाज एक ऐसे भूगोल पर आधारित है जो दिल्ली से सटे साहिबाबाद में है। पूरे भारत से आए हुए लोग यहां रहकर अपनी आजीविका का इंतजाम करते हैं। यह उपन्यास प्रवासी वर्ग, जो कि भूमंडलीकरण के कारण ही एक वृहद तौर पर अस्तित्व में आया है कि समस्याओं, उनकी स्थितियों आदि पर भी प्रकाश डालता है। साहिबाबाद में एक ओर जहां बिहार से एक बेहतर जीवन की तलाश में आए प्रवासियों की संख्या बढ़ रही है वही वहां की सत्ता पर जाटों का वर्चस्व है। परंतु जब ऐसे वर्ग को, जिनका सामाजिक वर्चस्व स्थापित है, को यह दिखाई देता है कि एक दूसरे सामाजिक वर्ग की संख्या बढ़ रही है तो वह वर्ग अपने वर्चस्व को स्थापित रखने के लिए हर प्रकार के प्रयास करता है। भूमंडलीकरण के कारण देश की इस सामाजिक संरचना पर प्रभाव पड़ा है जिसे लेखक ने भी चित्रित करने का प्रयास किया है। प्रदीप सौरभ लिखते हैं– 'गांव में जाटों का वर्चस्व है गुर्जर भी है लेकिन गांव में बिहारी ने सामाजिक समीकरण गड़बड़ा दिया है यहां भले ही अब बिहारी की संख्या अधिक हो गई हो परंतु पंचायत पर जाटों का ही कब्जा है'[4]।

इन दोनों ही उपन्यासों में एक मिश्रित समाज को दिखाने की कोशिश की गई है, जहां बिहार से आया कोई व्यक्ति किसी संपन्न व्यक्ति के घर काम करता है। बेहतर जीवन की तलाश करने वाला व्यक्ति दोनों ही उपन्यासों में एक ही स्थिति में है। एक ब्रेक के बाद में के.वी के घर पर काम करने वाला रसोईया बिहार के दरभंगा से है,जो कि गांव में अपनी बेटी की विवाह के लिए लिए गए कर्ज को लौटने के लिए शहर में रसोईया का काम कर रहा है। भूमंडलीकरण ने उसके गांव में खेत सींचने के लिए डीजल से चलने वाली मशीन तो पहुंचा दी पर उसमें डीजल डालने के लिए धन का समुचित इंतजाम नहीं कर पाई। तभी जब के. वी. पूछता है कि 'अगर तुम्हें बिना बिजली के शरीर की ताकत से चलने वाली ऐसी मशीन लगभग मुफ्त में दे दी जाए जिससे तुम पानी निकाल कर खेतों की सिंचाई कर सको तो तुम ले लोगे?– क्यों नहीं बाबू? रमा की आंखों में इस तरह

चमक आ गई जैसे कि कारपोरेट कंपनियों की चमकीली वार्षिक रपट में लगी किसानों की तस्वीरों में होती है। आप तो जानते हैं हर समय तो गांव में ज्यादातर बुड्ढे लोग रहते हैं जो बीमारी से परेशान रहते हैं, हमारी जनना लोग में तो दम रहा नहीं। कितना रुपया हमें देना पड़ेगा बाबू मशीन का?'[5] केवल महिलाओं और बुजुर्गों का गांव में बच जाना भूमंडलीकरण के कारण प्रवासी होने का वह दंश महसूस होता है जो भारत में लगभग हर गांव में व्याप्त है। एक ब्रेक के बाद में प्रवासी होने का यह दंश छटपटाहट पैदा करता है वही मुन्नी मोबाइल में यह प्रवास जिंदगी में एक नई उम्मीद भी पैदा करता है। बिंदु यादव यानी मुन्नी बिहार के बक्सर की रहने वाली है और मात्र 17 वर्ष की आयु में विवाह होने के बाद वह अपने पति के साथ साहिबाबाद आ गई। यहां रहकर उसने दुनिया को बदलते देखा और अपनी दुनिया भी बदली। जरूरतें पूरी करने के लिए रुपयों की जरूरत रहती जो पति के तनख्वाह से पूरी नहीं हो पा रही थी मुन्नी ने छोटे–छोटे काम कर रुपए कमाना सीखा। मुन्नी आर्थिक रूप से कुछ–कुछ स्वतंत्र होने लगी। अपने हाथ में पैसा आते ही उसने सपने देखना शुरू कर दिए। प्रदीप सौरभ लिखते हैं कि 'पहली बार जब उसने स्वेटर बुनकर 50 रुपए कमाई तो उसने सपनों की झड़ी लगा दी। उसे लगा टीवी से लेकर फ्रिज तक सब उसके घर में आएगा। बाहरी दुनिया के साथ उसका यह मेल मिलाप उसे खूब भाया'[6]।

दोनों ही उपन्यासों ने उपभोक्तावाद की संस्कृति और उसके प्रभाव को भी अंकित करने का प्रयास किया है। अलका सरावगी ने उपभोक्तावाद को गांव और शहर दोनों के ही परिपेक्ष में देखा है। उपभोक्तावाद के इसी चक्र की व्याख्या करते हुए वह लिखती हैं– 'बस्तर के गाँव में झोपड़ी में बैठकर आदिवासी टी.वी. पर वॉशिंग मशीन में कपड़े धुलते देख रहा है और डबल डोर फ्रिज में जाने कब से रखी ताजा लौकी और टमाटर की गाथा सुन रहा है। इस देश की एक अरब जनता अब एक साथ सपने देख रही है, फर्क यही है कि किसी के सपने छोटे तो किसी के ज्यादा बड़े सपने'[7]। इस उपभोक्तावादी व्यवस्था के कारण भारतीय परिवार में जो टूटन आ रही है, अलका सरावगी इस उपन्यास के माध्यम से अपनी चिंता उस ओर भी व्यक्त करती हुई लिखती हैं कि 'चोरडिया का प्रेशर कुकर एक दिन इन करोड़ों घरों के अंदर आलू दाल चावल उबल रहा होगा। अभी तो इंडिया में संयुक्त परिवार टूट कर न जाने कितने और करोड़ चूल्हे चौके बन जाएंगे'[8]। उपभोक्तावादी संस्कृति का चित्रण मुन्नी मोबाइल उपन्यास में भी हुआ है। प्रौद्योगिकी के विकास के साथ ही साथ सब कुछ प्राप्त कर लेने की इच्छा में भी विकास हुआ है, और यही इच्छा मनुष्य को गैर जरूरी वस्तुओं को खरीदने के लिए प्रेरित करती है।

इसी तरह की एक इच्छा ने मुन्नी को मुन्नी मोबाइल बना दिया। मुन्नी के मोबाइल खरीदने की इच्छा इसी उपभोक्तावाद का परिचायक है। एक और जहां यह मोबाइल मुन्नी के आत्मविश्वास और संतोष में इजाफा करता है वहीं दूसरी ओर तकनीक का गलत प्रयोग उसे एक ऐसे दलदल में धकेल देता है जिसमें फंसकर वह स्वयं तो नष्ट हुई ही साथ ही साथ उसने अपनी बेटी के जीवन को भी नष्ट कर दिया। यह स्थिति केवल मुन्नी की नहीं बल्कि मुन्नी के पड़ोस में रहने वाले लोगों की भी है जिनके पास जमीन के मुआवजे से आए धन थे परंतु उपभोक्तावादी सोच से ग्रसित उनके बच्चों ने वह पैसे अपनी आवारागर्दी पर उड़ा दिए। प्रदीप सौरभ लिखते हैं–'बच्चों की मर्जी के आगे वे लाचार हैं। घरबाहर का सारा काम बच्चों ने अपने हाथ में ले लिया है। बच्चों की मनमानी के चलते जमीन के मुआवजे में मिले पैसे से खरीदी बसें भी गाँव में इधर–उधर खड़ी हैं। बच्चे उन पर ध्यान नहीं देते। वे तो मोटरसाइकिलों या फिर जीपों में दिन भर इधर–उधर चौधराहट करते रहते हैं'[9]।

तकनीक के आने से रोजगार प्राप्ति की संभावनाएं बढ़ी है एवं रोजगार प्राप्ति में व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं के अनुसार रोजगार ढूंढ सकता है। इसके वर्तमान उदाहरण लिंक्डीन, नौकरी डॉट कॉम जैसे वेबसाइट हैं। परंतु रोजगार में आते त्वरित बदलाव, बढ़ते औद्योगीकरण के कारण कर्मचारियों में अतिरिक्त काम का बोझ, अनैतिक कार्य करने का दबाव, ज्यादा वेतन की इच्छा आदि ने लोगों को अपना रोजगार बदलने के लिए प्रेरित किया है। अलका सरावगी लिखती हैं :–

'आप अपने काम से ऊब गए हैं?

क्या आपको लगता है कि आपकी तनख्वाह आपकी योग्यता से कम है?

क्या आपको काम में कोई नई चुनौती मिल रही है?

क्या आपका बॉस आपका अपमान करता है?

क्या आपसे गधा खटनी करवा कर शोषण किया जा रहा है?'[10]

लेखिका द्वारा पूछे गए सारे प्रश्न यह बताते हैं कि लोग रोजगार की संभावना होने के बाद भी अपने रोजगार से ऊब रहे हैं और जीवन में नयापन चाह रहे हैं। बाजारवाद ने इस समाज को हर पल बदलाव की तरफ उन्मुख कर दिया है और जो इस बदलाव में शामिल नहीं होता उसे यह पूरी व्यवस्था बाहर कर देती है। इसी बदलाव और कुछ नया करने की चाह के कारण लोग अक्सर अनैतिक कार्य में भी फस जाते हैं। जिनका सबसे अच्छा उदाहरण मुन्नी मोबाइल में मुन्नी है। घर के कार्य में सहयोग करने वाली मुन्नी कैसे पहले एक घर में भोजन बनाने वाली महिलाओं का एक समूह बनती है और फिर ज्यादा धन पाने की इच्छा में स्त्री यौन कर्मियों की पूरी व्यवस्था खड़ी कर देती है जिसमें वह अपनी बेटी तक को घसीट लेती है और बाद में उसकी बेटी रेखा चितकबरी इस पूरे व्यापार को संभालने लगती है। यह दर्शाता है कि धन पाने की चाहत उससे अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए नैतिक रास्ते होते हुए भी व्यक्ति अनैतिक रास्ते को चुन लेता है।

प्रदीप सौरभ लिखते हैं– 'कॉलगर्ल वर्ल्ड में मुन्नी कि जगह रेखा चितकबरी ने ले ली थी। आनंद भारती को इस बार कोई हैरानी नहीं हुई थी बल्कि मन ही मन वह रेखा की यही तस्वीर अपने मन में बना चुके थे। इसके अलावा रेखा के रास्ते किसी और दिशा में भला जाते भी कैसे? मुन्नी ने जो रास्ता चुना था, रेखा के लिए वही उसकी विरासत थी'[11]। भूमंडलीकरण के कारण रहन–सहन में आए बदलाव, तकनीक का दुरुपयोग, धन की लालसा इनसब के मिले–जुले प्रभाव ने व्यक्ति के जीवन को जटिल बना दिया है। व्यक्ति के जीवन की यह ऊहापोह और जटिलता भूमंडलीकरण के प्रभावों का श्याम–पक्ष है।

भूमंडलीकरण एक जटिल और बहुआयामी प्रक्रिया है जो विश्व को एकीकृत करती है, लेकिन साथ ही असमानतना, सांस्कृतिक तनाव और इनसे उपजे अन्य चुनौतियाँ भी लाती है। भारत में भी इसका प्रभाव कुछ ऐसा ही दिखाई देता है। हिन्दी साहित्य इनके सामाजिक प्रभावों को विस्तारपूर्वक प्रदर्शित करने का प्रयास करता है। इसी क्रम मे आलोच्य दोनों ही उपन्यास भूमंडलीकरण के कारण समाज में आते बदलावों को पहचानने की कोशिश करते हैं वहीं साथ ही साथ उसके कारणों की भी पड़ताल करते हैं। इन दोनों उपन्यासों की तुलना, भूमंडलीकरण के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों को एक साथ एक जगह लाकर एक वृहद दृष्टि प्रदान करता है।

संदर्भ सूची :-

1. सुमन गुप्ता, ग्लोबलाइजेशन एंड लिट्रेचर, रावत पब्लिकेशन, 2016, पृ. सं. 4–6
2. बबीता अग्रवाल, अनिल अग्रवाल, ग्लोबलाइजेशन एंड इंडियन सोसाइटी, क्षिप्रा प्रकाशन, 2007, पृ. सं. 45
3. पुष्पपाल सिंह, भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ. सं. 17
4. प्रदीप सौरभ, मुन्नी मोबाइल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ. सं. 12
5. अलका सरावगी, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, 2019, पृ. सं. 147
6. प्रदीप सौरभ, मुन्नी मोबाइल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ. सं. 16
7. अलका सरावगी, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, 2019, पृ. सं. 11
8. अलका सरावगी, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, 2019, पृ. सं. 14
9. प्रदीप सौरभ, मुन्नी मोबाइल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ. सं. 106
10. अलका सरावगी, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, 2019, पृ. सं. 11
11. प्रदीप सौरभ, मुन्नी मोबाइल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ. सं. 117

ई–मेल– pranitguru10@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 166–169

मातृभाषा में शिक्षा : अवसर एवं चुनौतियां

हर्षा साहू
सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान), शशिधर पंडा शासकीय महाविद्यालय सरिया
जिला सारंगढ़ बिलाईगढ़ छत्तीसगढ़।

"भाषा मनुष्य की आत्मा की अभिव्यक्ति है, यह हमारी चिंतन की सबसे स्वाभाविक माध्यम है।"
– रविंद्र नाथ टैगोर

शिक्षा क्या है? और शिक्षा क्या नहीं है? ये बहुत ही व्यापक प्रश्न हैं! व्यक्ति के पास मात्र डिग्री का होना लेकिन मूल्यों व नैतिकता का न होना शिक्षा नहीं है। यदि कोई व्यक्ति डिग्री के आधार पर नौकरी पा लेता है किंतु उसके सोचने समझने, संवेदनशीलता का विकास न हुआ हो तो वह शिक्षा नहीं हैं। यदि कोई अच्छा पढ़ा लिखा नौकरी करने वाला नागरिक अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति सजग नहीं हो वह जातिगत भेदभाव, छुआछूत का समर्थक हो, दहेज प्रथा को सही मानता हो, किसी का आकलन उनके सैलरी से किया जाए तो उस महिला और पुरुषों में उचित रूप से शिक्षा का विकास नहीं हो पाया कहा जा सकता हैं क्योंकि शिक्षा एक साधन है एक विचार हैं एक क्रांति हैं जो इंसान को पूर्ण रूप से इंसान बनाने में मदद करती है जिससे उसमें विवेकशीलता, संवेदशीलता, नैतिकता के गुण जागृत हो सके तथा वह समाज के लिये एक उपयोगी नागरिक के रूप में अपनी भूमिका निभा पाये। किंतु वर्तमान समय में शिक्षा मात्र व्यवसायीकरण का एक साधन बनकर रह गया है जिसे एक लाभकारी व्यवसाय के रूप में स्थापित किया जा रहा है। जिसमें गलती सरकार, प्रशासन, नीति निर्माताओं और अभिभावक की कही ज्यादा है क्योंकि हमारा समाज में आम प्रचलन में ये आ चुका है कि English is the Passport to a better future, english medium ka bachha hi har, Jagah fit hai, जो अंग्रेजी बोले वही समझदार और smart दिखता हैं। दुनिया की नजर में भाषा को जो सामाजिक स्थिति और बुद्धिमता को अंग्रेजी से जोड़ता हैं। ग्रामीण व शहरी हर क्षेत्रों में तुलना करने पर हम पाते है यदि अभिभावक सक्षम है तथा उनके पास अंग्रेजी भाषा विद्यालय में दाखिले का संभव विकल्प मौजूद हो तो वह अपने बच्चे का दाखिला अंग्रेजी माध्यम विद्यालय में ही कराएगा।

इसी वजह से वर्तमान समय में हिन्दी तथा अन्य क्षेत्रीय भाषा संबंधी स्कूल, महाविद्यालय की स्थिति दयनीय हो है चुकी है। "अजीम प्रेम जी फाउंडेशन सर्वे (2018) के अनुसार अधिकांश अभिभावक जो अपने बच्चो को निजी अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में भेजते है वह सीमित शैक्षणिक पृष्ठभूमि से आते हैं वह अपनी मातृभाषा में ही सहज व निपुण होते है अंग्रेजी भाषा में उनकी अच्छी पकड़ नहीं होती लेकिन समाज और आस पड़ोस की देखा–देखी और अपने बच्चों के उज्जवल भविष्य तथा अंग्रेजी के बढ़ते महत्ता के वजह से वह अपने बच्चों को सबसे

महंगे कॉन्वेंट स्कूल में भेजता है। अपने यथा सामर्थ के चाहे वह ग्रामीण या शहरी क्षेत्र का हो। उदाहरण – वर्तमान में अपने आसपास के सब्जी वाले या ऑटो रिक्शा वाले से चर्चा करने पर वह बताते है कि वह हरसंभव कोशिश से अपने बच्चे को अंग्रेजी माध्यम में पढ़ने के लिए एडमिशन करवा लेता हैं लेकिन उसके ट्यूशन तथा अन्य आवश्यक माहौल दे पाने में सक्षम नहीं होता हैं और मूल समस्या यहीं है जिसे समझने के की कोशिश नहीं की जा रही है तथा जिसे अनदेखा किया जा रहा है। SERC (Annual Status of Educatias Reports) ग्रामीण स्कूलों में बुनियादी पढ़ने और गणित कौशल मे कमी देखी गई जबकि शहरी क्षेत्रों में प्रतियोगी परीक्षाओं का दबाव बढ़ रहा है बच्चे अंग्रेजी माध्यम में तो पढ़ रहे हैं किंतु उनका बौद्धिक विकास तथा नैतिक रूप से वह समाज के प्रति, अपने बड़े बुजुर्गों के प्रति सम्मान या जुड़ाव नहीं रख पा रहे। उनके द्वारा वर्तमान समाज में प्रचलित सोशल मीडिया ट्रेंड तथा आभासी दुनिया से अधिक जुड़ाव हो रहा। भारत में चूंकि जनगणना 2011 के अनुसार 19500 से अधिक बोलियाँ और 121 प्रमुख भाषा हैं हिन्दी सबसे व्यापक मातृभाषा है 43.6% आबादी संवाद हेतु हिंदी 8% बंगाली, 7%, मराठी, 6.7%, तमिल 5.7%, तेलगु तथा अन्य हैं।

NSO 2017–18 के सर्वे अनुसार 80% आबादी मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा में बातचीत करते है। (ग्रामीण) वह 50–60% परिवार मातृभाषा (शहरों में) लोकभाषा सर्वेक्षण 2013 के अनुसार 90% ग्रामीण वह 70% शहरी क्षेत्र में मातृभाषा संवाद करते हैं। जिससे अनुमान के रूप में कहा जा सकता हैं कि देश का एक बड़ा तबका संवाद हेतु अपनी मातृभाषा पर निर्भर हैं फिर भी जब मेरे द्वारा अपने कार्य क्षेत्र के निकट एक गांव के 20–25 परिवारों से पूछा गया तो उन्होंने माना कि वो शिक्षा में कोई समझौता नहीं करेंगे और अपने बच्चों को अंग्रेजी भाषा में अच्छा हो ऐसा ही स्कूलों में दाखिला देंगे लेकिन क्यों? पहले से ही शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के अध्याय V की धारा 29 (एफ) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि, "जहां तक संभव हो, शिक्षा का माध्यम बच्चे की मातृभाषा में होगा।" शिक्षा संविधान की समवर्ती सूची में है और अधिकांश स्कूल राज्यों/संघ शासित प्रदेशों के अधिकार क्षेत्र में हैं। लेकिन इस पर प्रभावी कदम नहीं उठाया गया। यदि शिक्षा की बुनियादी स्तर पर शुरुआत की बात की जाए तो उसका आरंभ घर, परिवार से होता हुआ औपचारिक शिक्षा हेतु विद्यालय, महाविद्यालय तक पहुंचता हैं और आगे चलकर वह समाज के विभिन्न क्षेत्रों में अपने आपको अपनी क्षमता के अनुरूप स्थापित करता हैं तो यदि बच्चों के समझ की भाषा जिसमें वह सहज होता हैं जिसमें वह घर परिवार के लोगों के साथ बातचीत करता है। उसे ही स्कूलों पर भी लागू कर दिया जाये तो उनमें सोचने, समझने और सीखने की प्रक्रिया बेहतर तथा प्रभावी होगी क्योंकि बीच का गतिरोध जो अभिभावक तथा विद्यालय के मध्य होने के कारण बच्चों की प्रगति में बाधक है वह दूर हो होगा। इसी की ओर एक व्यापक और सफल प्रयास किया गया है। NEP 2020 के तहत, जिसके द्वारा एक सकारात्मक और बाल केन्द्रित कदम के रूप में मातृभाषा में प्रारंभिक शिक्षा का प्रावधान किया गया हैं।

NEP 2020 कहता है :–

कक्षा 5 तक, और जहां तक संभव हो वहां कक्षा 08 या उससे मोने तक शिक्षा का माध्यन मातृभाषा, स्थानीय भाषा या क्षेत्रीय भाषा में होना चाहिये जैसा कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 के पैरा 4.11 में परिकल्पित है, जहाँ भी संभव हो, कम से कम ग्रेड 5 तक, लेकिन अधिमानतः ग्रेड 8 और उससे आगे तक, शिक्षा का माध्यम घरेलू भाषा/मातृभाषा/स्थानीय भाषा/क्षेत्रीय भाषा होनी चाहिए। इसके बाद, जहाँ भी संभव हो,

घरेलू/स्थानीय भाषा को एक भाषा के रूप में पढ़ाया जाना जारी रहेगा। NEP 2020 के तहत मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा देना अनिवार्य करना चाहिए एक तार्किक पहल हैं है क्योंकि बाल मनोविज्ञान का अध्ययन करे तो पाते है कि बच्चे मातृध्भाषा में तेजी से सीखते है क्योंकि वहीं उनके संप्रेषण की पहली भाषा होती है जिससे उनमे रचनात्मकता, आत्मविश्वास तथा समझ बेहतर होता है, तथा सभी बच्चों को समान रूप से मुख्यधारा में लाने का एक सकारात्मक प्रयास है। जिससे बच्चे अवधारणा को बेहतर समझ पाएंगे और अपनी संस्कृति से उनका अत्यधिक जुड़ाव रहेगा भाषा जो एक बाधा की भूमिका निभा रही थी। घर के बुजुर्ग और बच्चों के पढ़ाई के मध्य वह शक्ति के रूप में परिवार, बच्चों और विद्यालय के मध्य के गैप को भरने का कार्य करेगी। मेलजोल और वार्तालाप, संवाद बढ़ेगा।

विवेकानंद जी का भी मानना था कि शिक्षा को केवल किताबी ज्ञान तक सीमित नहीं माना, बल्कि इसे चरित्र, आत्मविश्वास, और स्वावलंबन का साधन बताया। यह विचार आधुनिक शिक्षा में नैतिकता और आत्मनिर्भरता को शामिल करने की मांग करता है साथ ही उनका मानना था यदि तुम अपनी मातृभाषा में शिक्षा नहीं दोगे, तो जनता का मन और बुद्धि कभी विकसित नहीं होगी।" अगर हम कुछ देशों का जिन्होंने मातृभाषा में शिक्षा का अध्ययन का कॉन्सेप्ट अपनाया हैं उनका अध्ययन, विश्लेषण, सर्वे करे तो हमे काफी सकारात्मक परिणाम देखने को मिलते हैं जो उनके देश की सर्वांगीण विकास तथा प्रगति का महत्वपूर्ण कारण हैं। जापान द्वारा अपनी मातृभाषा जापानी में प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा दी जाती हैं तथा गणित, विज्ञान, तकनीक जैसे जटिल अवधारणा तथा विषय को समझने हेतु मातृभाषा में शिक्षण सामग्री, पद्धति तथा परीक्षाओं का आयोजन होता हैं जिसका परिणाम वहां की साक्षरता दर 100% हैं तथा जापान को तकनीक एवं वैज्ञानिक नवाचार में विश्व के अग्रणी स्थान प्राप्त हैं, इसी तरह फिनलैंड, दक्षिण कोरिया, चीन और इजरायल द्वारा मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा को आवश्यक बनाया गया और इनके परिणामों को देखे तो ये सभी राष्ट्र की साक्षरता दर 95% से अधिक हैं तथा सभी राष्ट्रों ने नवाचार, स्टार्ट अप संस्कृति, सांस्कृतिक पहचान व राष्ट्रीय एकता में विश्व में अपना एक महत्वपूर्ण मुकाम हासिल किया हैं। (Unesco2016report, oecd2023.pisaresult,azaadbharat.org2020) अब यदि भारतीय परिदृश्य में इसकी तुलना की जाए तो सिक्के के एक पहलू की चर्चा हमने पूर्व में की हैं कि किस प्रकार सुधार के प्रयास NEP के माध्यम से किया जा रहा हैं लेकिन हम सिक्के के दूसरे पहलू पर जाए तो स्थितियों को बेहतर करने के हेतु या तो अत्यधिक प्रयास करने होगा क्योंकि वर्तमान में NEP 2020 के तहत जो प्रावधान स्कूली शिक्षा पर लागू किए जा रहे हैं तथा उसे उच्च शिक्षा में लागू करने के भी प्रावधान हैं किंतु उसे पूर्णतः प्रभावी बनाने में वक्त लगेगा। स्कूली शिक्षा के तहत मातृभाषा में अच्छी पकड़ रखने वाला किंतु अंग्रेजी में कमजोर छात्र छात्रा हेतु चुनौतियां अधिक होंगी। वह प्रतियोगिता परीक्षा तथा वैश्वीकरण के इस दौर में निजी कंपनी में होने वाली प्रतिस्पर्धा, IIT, IIM, NEET जैसी परीक्षा तथा नचेब जैसी परीक्षा में मातृभाषा में उसे पर्याप्त संसाधन तथा मौके प्राप्त नहीं हो पाते/पाएंगे। अतः NEP 2020 के लागू किए गए प्रावधानों के तहत मातृभाषा में गुणवत्ता पूर्वक सामग्री पाठ्य पुस्तकों की व्यवस्था तथा मात्र शिक्षा नहीं अपितु व्यवसाय एवं नौकरियों में भी मातृभाषा संबंधी कुछ प्रावधान लाने की आवश्यकता हैं जिससे शिक्षा का उद्देश्य सफल हो सके तथा शिक्षा का लाभ सभी को प्राप्त हो पाए।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. Pib.gov.in
2. AzaadBharatOrg 2020
3. UNESCO (2016). Global Education Monitoring Report : Emphasizes Japan's success in mother-tongue education for cognitive development.
4. OECD (2023). PISA Results : Japan ranks among top performers in literacy and numeracy. [Available at oecd.org/pisa]
5. ASER survey
6. The Hindu (2025). NEP 2020 in the classroom, from policy to practice.
7. Ministry of Education (2024). UDISE+ 2023-24 Report. [Available at education.gov.in]
8. NEP 2020 आधिकारिक दस्तावेज (PDF)
9. ResearchGate.com
10. Times of India लेख

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 170–175

आदिवासी विमर्श और साहित्य

रामकिशोर चीचाम
शोधार्थी, हिन्दी साहित्य, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्यप्रदेश।

सारांश :–

जनजाति अथवा आदिवासी विमर्श – विकलांग विमर्श, किन्नर विमर्श आदि ढेर सारे विमर्श हिन्दी साहित्य में कुकुरमुत्तों की भांति उग आये। इन विमर्शों ने हिन्दी साहित्य का रूप–स्वरूप ही बदल दिया। फिर भी दलित और स्त्री विमर्श के पश्चात् आदिवासी–विमर्श ने हिन्दी के लेखकों को अपनी ओर सर्वाधिक आकृष्ट किया। आदिवासी विमर्श बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में शुरू हुआ अस्मितामूलक विमर्श है। इसके केन्द्र में आदिवासियों के जल, जंगल, जमीन और जीवन की चिंताएँ हैं। माना जाता है कि 1991 के बाद भारत में शुरू हुए उदारीकरण और मुक्त व्यापार की व्यवस्थाओं ने आदिमकाल से संचित आदिवासियों की संपदा के लूट का रास्ता भी खोल दिया। आदिवासियों ने अपने लिए इतिहास की नये सिरे से तलाश की। उन्होनें अपने नेताओं की पहचान की। अपने लिए नेतृत्व का निर्माण किया। साथ ही समर्थ आदिवासी साहित्य को जन्म दिया। प्रतिरोध अस्मितामूलक साहित्य की मुख्य विशेषता है। आदिवासी विमर्श भी आदिवासी अस्मिता की पहचान, उसके अस्तित्व संबंधी संकटों और उसके खिलाफ जारी प्रतिरोध का साहित्य है। यह देश के मूल निवासियों के वंशजों के प्रति भेदभाव का विरोधी है। यह जल, जंगल, जमीन और जीवन की रक्षा के लिए आदिवासियों के 'आत्मनिर्णय' के अधिकार की मांग करता है।

प्रस्तावना :–

आज वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिन्दी साहित्य और दलित–विमर्श से आगे बढ़ने का प्रयास कर रहा है और हिन्दी में आदिवासी समुदाय सबसे नया विमर्श है। ऐसा नही माना जा सकता है कि हिन्दी में इससे पहले आदिवासियों के जीवन पर लेखन कार्य नहीं किया गया, लेकिन पिछले दो ढाई दशकों के दौरान उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की तेज होती प्रक्रिया के साथ जिस तरह से आदिवासियों के जीवन में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हस्तक्षेप को बढ़ाया और उसके कारण उसके जल, जंगल एवं जमीन से संबंधित पारंपरिक अधिकारों का अतिक्रमण शुरू हुआ, इसने आदिवासी क्षेत्रों में संघर्ष को तेज किया और इस संघर्ष में राजसत्ता एवं प्रशासन का हस्तक्षेप बहुराष्ट्रीय कंपनियों एवं कॉर्पोरेट्स के पक्ष में तथा आदिवासियों के विरूद्ध रहा। 2024 की ऑकड़ों के अनुसार यूनेस्को ने भारत की जिन 198 जन–भाषाओं के अस्तित्व को खतरे में बताया है, उनमें अधिकांश भारत की आदिवासी भाषाएं है। यही वह पृष्ठभूमि है जिसमें आदिवासियों की अस्तित्वगत एवं अस्मितागत बेचैनी ने एक पृथक एवं स्वतंत्र धारा के रूप में आदिवासी विमर्श की संभावनाओं को बल प्रदान किया।

आदिवासी, दो शब्दों 'आदि' और 'वासी' से मिलकर बना है। जिसका अर्थ है आदिकाल से इस देश में निवास करने वाले, 2011 जनगणना के अनुसार भारत में आदिवासी भारत की जनसंख्या का 8.6 प्रतिशत है। भारतीय संविधान में आदिवासियों के लिए 'अनुसूचित जनजाति' पद का उपयोग किया गया है। भारत के प्रमुख आदिवासी समुदायों में गोंड, हल्बा, मुण्डा, खड़िया, बोडो, कोल, भील नायक, सहरिया, संथाल, भूमिज, हो, उरांव, बिरहोर, पारधी, असुर, भिलाला आदि हैं।

भारत में आदिवासी को प्रायः 'जनजातीय' लोग के रूप में जाना जाता है। आदिवासी मुख्य रूप से भारतीय राज्यों उड़ीसा, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, झारखण्ड, अण्डमान–निकोबार, सिक्किम, त्रिपुरा, मणिपुर, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, बिहार, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल में अल्पसंख्यक है। भारत सरकार ने इन्हें भारत के संविधान की पांचवी अनुसूची में 'अनुसूचित जनजाति' के रूप में मान्यता दी है।

आदिवासी साहित्य से तात्पर्य उस साहित्य से है जिसमें आदिवासियों का जीवन और समाज उनके दर्शन के अनुरूप अभिव्यक्त हुआ हो। आदिवासी साहित्य को विभिन्न जगहों पर विभिन्न नामों से जाना जाता है। जैसे– यूरोप और अमेरिका में इसे नेटिव अमेरिकन लिट्रेचर, कलर्ड लिट्रेचर, स्लेव लिट्रेचर और अफ्रीकन अमेरिकन लिट्रेचर, अफ्रीकन देशों में ब्लैक लिट्रेचर (काला साहित्य) और ऑस्ट्रेलिया में एबोरिजिनल लिट्रेचर और ट्राइबल लिट्रेचर कहते हैं। भारत में इसे हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में सामान्यतः 'आदिवासी साहित्य' कहा जाता है।

आदिवासी विमर्श का मूल लक्ष्य उन कारणों की खोज है जिनके कारण आदिवासी अस्मिता संकट में है और आदिवासी अपना जल, जंगल और जीवन छोड़ने को विवश है। इसका सूक्ष्म विश्लेषण आदिवासी विमर्श में मौजूद है। आज से कई वर्ष पहले दुनिया के आदिवासी समाजों ने अपनी लड़ाईयां खुद ही लड़ी हैं लेकिन मुख्यधारा के क्रांतिकारी साहित्यों नें भी उनके प्रति मानवीय संवेदनशीलता प्रदर्शित करते हुए उनकी चिंताओं के चित्रण की जहमत नहीं उठाई। सवाल यह उठता है कि आखिर उनकी चिंता किसी को क्यों नहीं है क्यों यह समुदाय आज भी हाशिये पर की जिंदगी जीने को अभिशप्त है। साहित्य यदि बाजार के लिए नहीं है, मनुष्य और मनुष्यता के लिए है, तो हिन्दी साहित्य की प्रस्तुति आदिवासी समाज के बगैर क्यों है। हिन्दी साहित्य के संदर्भ में यह प्रश्न प्रेमचंद से ज्यादा प्रेमचंद की परंपरा का वाहकों से है कि प्रेमचंद से छूट गया आदिवासी आज भी उनकी परंपरा से क्यों बहिष्कृत है। लेकिन, इस प्रश्न का जवाब न मिलता देख पिछले दशकों के दौरान इस शून्य की भरपाई की दिशा में खुद आदिवासियों को पहल करनी पड़ी।

समकालीन हिन्दी साहित्य स्त्री–विमर्श और दलित–विमर्श से आगे बढ़ने की कोशिश कर रहा है और हिन्दी में आदिवासी विमर्श सबसे नया विमर्श है। ऐसा नहीं है कि हिन्दी में इससे पहले आदिवासियों के जीवन पर नहीं लिखा गया, लेकिन पिछले ढाई दशकों के दौरान उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की तेज होती प्रकिया के साथ जिस तरह से आदिवासियों के जीवन मे बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हस्तक्षेप को बढ़ाया और इसके कारण उनके जल, जंगल एवं जमीन से संबंधित पारंपरिक आधिकारों का अतिकमण शुरू हुआ, इसनें आदिवासी क्षेत्रों में संघर्ष को तेज किया और इस संघर्ष में राजसत्ता एवं प्रशासन का हस्तक्षेप बहुराष्ट्रीय कंपनियों एवं कॉर्पोरेट्स के पक्ष में तथा आदिवासियों के विरूद्ध रहा। इसने आदिवासियों की समझ अस्तित्व एवं अस्मिता के विकट प्रश्न को जन्म दिया जिसमें यदि वे अपनी सांस्कृतिक पहचान को अहमियत देते हैं तो उनकी सांस्कृतिक पहचान

खतरे में पड़ सकती है। और अगर वे अपने अस्तित्व को प्राथमिकता देते हैं, तो उनकी सांस्कृतिक पहचान खतरे में पड़ सकती है। ध्यातव्य है कि यूनेस्को ने भारत की जिन 198 जनभाषाओं के अस्तित्व को खतरे में बतलाया, उनमें अधिकांश भारत की आदिवासी भाषाएं है। यही वह पृष्ठभूमि है जिसमें आदिवासियों की अस्तित्वगत एवं अस्मितागत बेचैनी ने एक पृथक एवं स्वतंत्र धारा के रूप में आदिवासी विमर्श की संभावनाओं को बल प्रदान किया। इसे परिणाम स्वरूप दलितों से प्रेरणा ग्रहण करते हुए आदिवासियों की समस्याओं पर लेखन की दिशा में खुद आदिवासियों ने ही पहल की।

'तुम्हारे एहसान लेने से पहले सोचना पड़ेगा हमें' से उद्धृत इस अंश में आदिवासियों में आकर ग्रहण करती नवीन चेतना को अभिव्यक्ति देते हुए यह बतलाने की कोशिश की गई है कि आदिवासी समुदाय धीरे–धीरे अपने शोषण–तंत्र से वाकिफ हो रहा है और अपने विरूद्ध होने वाले हर षड्यंत्रो को समझने लगा है।

महादेव टोप्पो अपनी कविता 'त्रासदी' में आदिवासी समाज की इस विडम्बनापूर्ण स्थिति को अभिव्यक्ति देते हुए लिखते हैं –

'इस देश में पैदा होने का
मतलब है
आदमी का जातियों में बंट जाना,
और गलती से तुम अगर हो गए पैदा
जंगल में,
तो तुम कहलाओगे
आदिवासी–वनवासी–गिरिजन
वगैरह – वगैरह,
आदमी तो कम–से–कम
कहलाओगे नहीं ही।'

लेकिन, उनकी यह विडंबनात्मक स्थिति कही न कही सभ्य समाज की तथाकथित सभ्यता को बेपर्द करती है और इसलिए उसे अपने आदिवासी होने का गुमान है। अस्तु आदिवासी विमर्श के प्रतिमानों की पड़ताल करना प्रस्तुत शोध पत्र का लक्ष्य है।

उपलब्ध साहित्य :-

गंगा सहाय मीणा–आदिवासी साहित्य विमर्श, हिन्दी समय आदिवासी विमर्श (इन्टरनेट के माध्यम से) पर उपलब्ध आदिवासी विमर्ष की पत्र–पत्रिकाएं, आदिवासी समाज, साहित्य और राजनीति–केदार प्रसाद मीणा, के कुछ आलोचनात्मक ग्रंथ, विभिन्न पत्र–पत्रिकाएं।

शोध पद्धति :-

प्रस्तुत शोध पत्र लेखन हेतु तथ्याव्याख्यानपरक विश्लेषणात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया गया।

शब्द संकेत (की–वर्ड) :- आदिवासी, प्रकृति, संस्कृति, गैर–आदिवासी, जल, जंगल, कृषक, समाज, गोंड़ी भाषा, सांस्कृतिक, संगीत, लय–ताल, संघर्ष, प्रेम, गरिमा, सम्मान, जिजीविषा, सामूहिक इत्यादि।

विमर्श :-

आदिवासी विमर्श का मूल लक्ष्य उन कारणों की खोज है जिनके कारण आदिवासी अस्मिता संकट में है और आदिवासी अपना जल, जंगल, और जीवन छोड़ने को विवश हैं। पूंजीवादी और वर्चस्ववादी सत्ता किस प्रकार आदिवासी समाज का शोषण करती है और उसके हितों को हाशिये पर डाल देती है तथा भू–मंडलीयकरण की प्रक्रिया में किस प्रकार आदिवासियों की जीवनदायी शक्तियों एवं स्त्रोतों का विनाश कर आदिवासियों को पलायन एवं विस्थापन के लिए विवश किया जा रहा है, इसका सूक्ष्म विश्लेषण आदिवासी विमर्श में मौजूद है। समकालीन हिन्दी कविता में आदिवासी विमर्श का स्वर सुनाई देता है। उदाहरणस्वरूप, निर्मला पुतुल की निम्नांकित पक्तियों विस्थापन एवं पलायन के दर्द को देखा जा सकता है– 'धरती के इस छोर से उस छोर तक / मुट्ठी भर चावल लिए / दौड़ती–हॉफती–भागती / तलाश रही हूँ निरंतर / अपनी जमीन अपना घर / अपने होने का अर्थ।'

डॉ. भीम की कविता 'हम आदिवासी है' में आदिवासी होने के इसी गुमान को अभिव्यक्ति मिली है। साथ ही, इसमें आदिवासियों के शोषण के दुष्चक्र को भी उद्घाटित करते हुए कहा गया है :–

इस देश के मूल निवासी हैं,
हम आदिवासी हैं,
हम आदिवासी हैं।
हमारा जीवन सहज
सरल एवं न्यायपूर्ण है, फिर भी,
सदियों से शोषण का चक्र चला,
सदा उसने हमें दबोचने का यत्न किया,
सत्ताधारी, पूंजीपति,
सेठ, साहूकार, ठेकेदार,
पुलिस, सरकारी कर्मचारी,
सबने हमारा शोषण किया, दमन किया,
जल, जंगल, जमीन से
पहाड़ों, झीलों एवं नदियों से
हमें बेदखल करने का भरपूर प्रयास किया,
हमारी रोजी–रोटी हड़पने का जोरदार यत्न किया।
हम आदिवासी हैं।

आदिवासियों के भविष्य की संभावनाओं को कुचलते विकास के पहिए का चित्रण करते हुए अण्डमान के आदिवासी कवि हरिराम मीणा भी लिखते हैं :–

'समुद्रों से उठ रही है आग की लपटे
पृथ्वी की सारी सभ्यता
एक भीमकाय रोडरोलर की मानिन्द

लुढ़कती आ रही है हमारी जानिव
और हम बदहवास।'

'सुबह के इंतजार में' काव्य–संकलन से उद्धृत इस काव्यांश में अण्डमान के आदिवासियों की मनोदशा का बड़ा ही मार्मिक चित्रण हुआ है। यही कारण है कि धीरे–धीरे आदिवासियों को विकास विनाश लगने लगा और इसकी पृष्ठभूमि में उनका सरकार पर से भरोसा भी उठता चला गया। वह उसके प्रति ईर्ष्या और घृणा के भाव से भर उठा है जिसे आदिवासी साहित्य में अभिव्यक्त होते हुए देखा जा सकता है।

हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श :–

हिन्दी साहित्य की दुनियां में पहले–पहल आदिवासी समाज का चित्रण फणीश्वरनाथ 'रेणु' के ऑचलिक उपन्यास 'मैला ऑचल' में, जब उसने अपने–अपने जमीनी हक से बेदखल संथालों को अपने स्वत्व और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते देखा। यही उसका परिचय आदिवासियों की जिजीविषा और जीवटता से भी हुआ और उसने देखा कि प्रशासन की बेरूखी और जुल्म का शिकार होने के बावजूद मांदर और डिग्गे की आवाज बंद नहीं हो पाई। लेकिन, एक सच्चे हमदर्द की तरह पीड़ित संथालों के प्रति सहानुभूति के बावजूद यह संघर्ष तार्किक परिणति तक नही पहुंच पाता, फलतः उनके जीवन में बदलाओं को ला पाने में असमर्थ रहता है। रेणु की समाजवादी यथार्थवादी चेतना और उनको यथार्थवादी आग्रह उन्हें इस समस्या का काल्पनिक एवं आदर्शपरक समाधान देने से रोक देता है । यह है मैला ऑचल, एक ऑचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णिया। इसमें फूल भी हैं शूल भी, धूल भी है, गुलाल भी, कीचड़ भी है, चंदन भी, सुंदरता भी है, कुरूपता भी– मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया। प्रथम संस्करण की भूमिका – रेणु, पटना 9 अगस्त 1954।

आदिवासी साहित्य की आवधारणा :–

आदिवासी विषय पर लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य है– पहली अवधारणा गैर–आदिवासी लेखकों की है। परंतु समर्थन में कुछ आदिवासी लेखक भी है, जैसे – रमणिका गुप्ता, संजीव, राकेश कुमार सिंह, महुआ मॉझी, बजरंग बिहारी तिवारी, गणेश देवी आदि गैर–आदिवासी लेखक और हरिराम मीणा महादेव टोप्पो, आइवी हांस्दा आदि आदिवासी लेखक।

आदिवासियों द्वारा लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य है – दूसरी अवधरणा उन आदिवासी लेखकों और साहित्यकारों की है, जो जन्मना और स्वानुभूति के आधार पर आदिवासियों द्वारा लिखे गये साहित्य को ही आदिवासी साहित्य मानते हैं।

'आदिवासियत' (आदिवासी दर्शन) के तत्वों वाला साहित्य ही आदिवासी साहित्य है – अंतिम और तीसरी अवधारणा उन आदिवासी लेखकों की है, जो आदिवासियत के तत्वों का निर्वाह करने वाले साहित्य को ही आदिवासी साहित्य के रूप में स्वीकार करते हैं। ऐसे लेखकों और साहित्यकारों के भारतीय आदिवासी समूह ने 14–15 जून, 2014 को रॉची, झारखण्ड में आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय सेमिनार में इस अवधारणा को ठोस रूप में प्रस्तुत किया जिसे आदिवासी साहित्य का रॉची घोषणा–पत्र के तौर पर जाना जा रहा है और जो अब आदिवासी साहित्य विमर्श का केन्द्रीय बिन्दु बन गया है।

आदिवासी साहित्य का भाषायी मानचित्र :–

आदिवासी साहित्य वाचिक तौर पर अपनी मूल आदिवासी भाषा में बहुत समृद्ध और विपुल है। भारत में

लिखित आदिवासी साहित्य की शुरूआत बींसवी सदी के आरंभिक दौर में होती है जब औपनिवेशिक दिनों में आदिवासी समुदाय आधुनिक शिक्षा के संपर्क में आते है। विशेषकर, झारखण्ड और उत्तर–पूर्व के आदिवासी इलाकों में। तब से लेकर आज तक अंग्रेजी और हिन्दी, बांगला, उड़ीया, असमी, मराठी आदि अन्य भारतीय भाषाओं में आदिवासी साहित्य लेखन निरंतर प्रगति पर है और हर वर्ष सौ से अधिक आदिवासी रचित पुस्तकें विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित हो रही हैं।

उपसंहार :–

आदिवासी समाज सदियों से जातिगत रंग–भेद, वर्ण व्यवस्था, अंग्रेजों और विदेशी आक्रमणों से ग्रस्त रहा। आज वर्तमान में सभ्य कहे जाने वाले समाज (मुख्यधारा के लोग) द्वारा दूर–दराज जंगलों और पहाड़ों में खदेड़ा गया है। शिक्षा की अज्ञानता और कमजोर पिछड़ेपन के कारण उन्हे सताया गया है। शिक्षा की अज्ञानता अर्थात् अक्षरज्ञान न होने के कारण यह समाज सदियों बरसों से मुख्यधारा से कटा रहा, और इनकी दूरियाँ बनता रहा। उनकी जिजीविषा और साहित्य सदियों से मौखिक रूप में रहा है, और इसका कारण रहा उनकी भाषा के अनुरूप लिपि का विकसित न हो पाना। यही कारण साहित्य जगत में आदिवासी रचनाकार और उनका साहित्य गैर–आदिवासी साहित्य की तुलना में कम मिलता है। आदिवासी साहित्य मुख्यधारा की संस्कृति के दायरे से बाहर रहकर आदिवासियों के जीवन को व्यक्त करने वाला, उनकी संस्कृति, परम्पराएं, संघर्ष, इतिहास को एक स्तर से ऊपर उठाने वाला साहित्य है। यह गैर–आदिवासी समाज से पृथक है। इसे मात्र आदिवासी दृष्टिकोण़ से ही जाना–समझा जा सकता है। अनुसूचित जनजातियों और उनके भूमि अधिकारों तक सीमित नहीं है और आरक्षण भेदभाव और अत्याचारों की रोकथाम आदि जैसी अन्य संवैधानिक गारंटी तक विस्तारित है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. हिन्दी साहित्य में आदिवासी विमर्श – संपादक – डॉ. हर्षलता शाह, सृजनलोक प्रकाशन, आरा, बिहार, प्रथम संस्करण सितम्बर 2016
2. आदिवासी दर्शन और साहित्य – वंदना टेटे – संपादक – नोशन प्रेस।
3. आदिवासी : समाज, साहित्य और राजनीति – केदार प्रसाद मीणा, अनुजा बुक्स।
4. आदिवासी साहित्य : परम्परा और प्रयोजन – वंदना टेटे, नोशन प्रेस।
5. मैला ऑचल– फणीश्वरनाथ रेणु – राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 50वॉ संस्करण : फरवरी 2025
6. अक्षरवार्ता पत्रिका – उज्जैन मध्य प्रदेश।
7. https://hi.wikibooks.org
8. https://hi.m.wikibooks.org/wiki

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 176-179

समकालीन हिंदी उपन्यासों में उपेक्षित किन्नर समुदाय

अम्बरा देवी
सहायक आचार्य, हिंदी, राजकीय महाविद्यालय संगडाह, हिमाचल प्रदेश।

वर्तमान विमर्शों के दौर में हाशिये पर खड़े समुदाय को केंद्र में रखा गया हैं और हिंदी साहित्य में इन विमर्शों को महत्ता से दर्शाया जा रहा हैं। आधुनिक समाज आज भी कई तरह की दकियानूसी विचारों से घिरा हुआ है तथा समतामूलक समाज के लिए आज भी संघर्ष जारी है। इस समतामूलक संघर्ष की लिए जूझता एक प्रमुख समुदाय है किन्नर समुदाय। किन्नर विमर्श समकालीन समाज और साहित्यिक विमर्श का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। जो दो प्रमुख लिंगों के अलावा एक अन्य प्रजाति तृतीय लिंगीं है जो न स्त्री है न पुरुष। जिसे हिजड़ा, किन्नर, थर्ड जेंडर, तृतीयलिंगीं तथा छक्का आदि नामों से पुकारा जाता हैं। भारतीय समाज में आमूमन दो लिंगों की बात की जाती है स्त्रीलिंग और पुल्लिंग। तृतीय लिंगीं के विषय में कोई बात नहीं करना चाहते यदि बात की भी जाएँ तो उन्हें निकृष्ट और हेय दृष्टि से देखा जाता है।

बीज बिंदु :– हिजड़ा, किन्नर, समाज, हिंदी उपन्यास, किन्नर समुदाय, विमर्श, उपेक्षित।

सदियों से समाज में किन्नर समुदाय को समाज के घृणित दृष्टि का सामना करना पड़ा है। इतिहास साक्षी है कि मुगल साम्राज्य के दौरान किन्नरों को राजदरबार में रानियों की सुरक्षा के लिए रखा जाता था। महाभारत और रामायण काल में भी किन्नरों का उल्लेख मिलता है। किन्नर समुदाय को ऐतिहासिक रूप से भारत में धार्मिक और सांस्कृतिक भूमिकाएँ मिली है, लेकिन औपनिवेशिक काल और आधुनिक काल में यह समुदाय समाज के हाशिये पर खड़ा हो गया और समाज के द्वारा किन्नरों के साथ उपेक्षित व्यवहार किया जाने लगा। आज भारतीय समाज में किसी घर में तीसरी जाति या किन्नर का जन्म होता है तो उस घर में मातम छा जाता है। किन्नर समुदाय के इस दर्द खुद भुक्तभोगी समुदाय के बाद साहित्यिक समाज उनके इस दर्द को महसूस कर रहा है और समाज में किन्नर समुदाय को एक सम्मानजनक स्थान मुहैया करने हेतू जागरूक लेखकों द्वारा साहित्य लिखा जा रहा है जिनमें इनके जीवन के दर्द, संत्रास और पीड़ा को दर्शाया गया है।

किन्नर विमर्श का उद्देश्य मुख्यधारा समाज में किन्नर समुदाय की भागीदारी, गरिमा और अधिकारों को सुनिश्चित करना है। साहित्य, सिनेमा, रंगमंच और मीडिया में अब इस समुदाय की आवाज को मुखर रूप से प्रस्तुत किया जा रहा है। हिंदी साहित्य में किन्नर जीवन को केंद्र में रखकर अनेकों उपन्यास लिखें जा रहे है उसमें नीरजा माधव का 'यमदीप', अनुसुइया त्यागी का 'मैं भी औरत हूँ', महेंद्र भीष्म का 'किन्नर कथा', प्रदीप सौरव का 'तीसरी ताली', निर्मला भुराड़िया का 'गुलाम मंडी', चित्रा मुद्‌गल का 'पोस्ट बॉक्स न. 203 नाला सोपारा', महेंद्र भीष्म का 'मैं पायल', पंकज विष्ट का 'पंखवाली नाव', भगवंत अनमोल का 'जिन्दगी 50–50',

गीरजा भारती का 'अस्तित्त्व' आदि प्रमुख उपन्यास है। वर्ष 2009 में प्रकाशित नीरजा माधव का उपन्यास 'यमदीप' किन्नर समुदाय की मनोस्थिति तथा अंतरंग जीवन की मार्मिक व्यथा को प्रस्तुत करता है। उपन्यास में एक पागल लड़की के साथ आवारा लड़के जबरदस्ती करते है, लड़की गर्भवती हो जाती है। जब उसे प्रसव पीड़ा होती है तो उस लड़की को देखने वाला कोई नहीं है यहाँ तक कि औरते भी उसकी पीड़ा को अनदेखा कर देती है। तब एक किन्नर का ध्यान उस ओर जाता है जो उसका प्रसव करवाती है और कहती है "इसी पगली के लिए तुम्हारी अम्मा बाहर नहीं आ सकती और तुम्हारे ही बाप–दादों ने रात–रात में आकर मुहँ काला किया होगा, हाय हाय रे! मर्दों का जमाना।"[1] नीरजा माधव ने अपने इस उपन्यास के माध्यम से किन्नरों के सभी अनछुए पहलुओं को पाठकों के सामने रखा है। 'यमदीप' उपन्यास की पात्र चमेली कहती है "तन को भगवान ने आधा टुकड़ा बनाया है कि किसी लायक नहीं रहे और पेट? पेट को नहीं बंद करके भेजा। वहा तो खुला ही है रोज भरो खाली करो।"[2]

महेंद्र भीष्म का उपन्यास 'मैं पायल' में पायल किन्नर समाज के शापित जीवन को उजागर करती हैं। जिस घर में उस कन्या (किन्नर) का जन्म होता है, वह अपनी लोकमर्यादा की रक्षा के लिए उस कन्या को मरवा देना चाहते है किन्तु उनका दीवान उस बच्चे को नहीं मार पाता। पायल छोटी है उसे शरीरांग का पता नहीं है उसके लिए क्या स्त्री और क्या पुरुष लेकिन वह तब हैरान हो जाती है जब वह अपने पिता के मुहँ से हिजड़ा शब्द सुनती है "जब कभी पिताजी दारू के नशे में कोंसतें, गाली देते 'ये जुगनी ! हम क्षत्रिय वंश में कलंक पैदा हुई है,साली हिजड़ा है......आदि न जाने क्या –क्या वे बकते रहते थे।"[3] इस तरह उपन्यास में कई भावात्मक पहलु आते है जो पाठको के दिल को झकझोर देते है।

भगवंत अनमोल कृत 'जिंदगी 50–50' उपन्यास में किन्नर जीवन का यथार्थ प्रस्तुत हुआ है। यह उपन्यास एक सकारात्मक दृष्टिकोण से लिखा उपन्यास है। उपन्यास का नायक अनमोल का भाई हर्षा और बेटा सूर्या दोनों किन्नर है। अनमोल को जब यह बात पता लगती है कि उसका बेटा किन्नर है तो अनमोल को अपने भाई हर्षा के अन्याय और प्रताड़ना भरे जीवन की याद आ जाती है। हर्षा का जीवन समाज और परिवार के लिए परिहास मात्र रह गया है उसके स्कूल की आध्यापिका भी उसका मजाक उड़ाते हुए कक्षा में शैतानी कर रहे बच्चों से कहती है "अगर किसी ने बदमाशी की तो हर्षा के पास बैठा दूंगी।"[4] हर्षा का जीवन बहुत कठिनाई और यातनाओं से बीता और यह अनमोल कभी नहीं चाहता था कि उसके बेटे के साथ भी ऐसा हो। "हर्षा की जिंदगी आसन नहीं होने वाली। उसकी जिंदगी में कठिनाइयों के पत्थर बिछे है और यह पत्थर समाज के लोगों की संकीर्ण सोच के साथ खुद उसके पिता ने भी बिछाए है।"[5] जब परिवार की सोच ही अपने बच्चों के प्रति संकीर्ण हो जाएं तो समाज से किसी सकारात्मक सोच की उम्मीद कर पाना कठिन हैं।

भारतीय समाज की संकीर्ण सोच तथा बुरी मनोवृति के कारण आज भी किन्नर समुदाय के बारे में कई प्रकार की नकारात्मक रस्में समाज में मौजूद है। गिरिजा भारती के उपन्यास 'अस्तित्त्व' में उन रस्मों को इस प्रकार वर्णित किया है। "लेकिन आज भी किन्नरों के बारे में कई प्रकार की रस्में हमारे समाज में मौजूद है जैसे कि हिजड़ों की शव यात्रा रात्रि को निकाली जाती है, शव यात्रा को उससे पूर्व जूते चपल्लों से पीटा जाता है किन्नर के मरने के उपरांत पूरा किन्नर समुदाय एक हफ्ते तक भूखा रहता है।"[6] ईश्वर प्रदत्त जीवात्मा का मानव समाज परिहास बनाए हुए है, आज भी किन्नर समुदाय शरीर–विज्ञान की विकृति का दंश सहते हुए अपने

अस्तित्त्व की लड़ाई लड़ रहे है। साहित्य अकादमी पुरस्कृत उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स न. 203 नाल सोपरा' में लेखिका चित्रा मृद्गल ने किन्नरों की परिवार द्वारा अस्वीकार्यता, समाज द्वारा उपेक्षा, नाच–गाना करके जीवनयापन करते हुए होने वाली अवहेलना, शारीरिक–मानसिक पीड़ा, संत्रास, शोषण आदि भयानक स्थिति का बड़े ही सजीव एवं मार्मिकता से वर्णन किया है। उपन्यास का मुख्य पात्र विनोद एक किन्नर है जो समाज की नजरों से दूर सिर्फ पत्र के माध्यम से अपनी बा की अपनी व्यथा लिखता है "मेरी सुरक्षा के लिए कानूनी कार्यवाही क्यों नहीं की तूने और पापा ने मिलकर, मुझे कसाइयों के हाथ मासूम बकरी सा सौंप दिया, जिस नर्क में तूने और पापा ने धकेला है मुझे, वह एक अँधा कुआँ है, जिसमें सिर्फ सांप–बिच्छु रहते है। सांप–बिच्छु बनकर पैदा नहीं हुए होंगें। बस इस कुएं ने उन्हें आदमी नहीं रहने दिया।"[7]

निर्मला भुराड़िया कृत 'गुलाममंडी' उपन्यास में भी छात्र का लिंग पहचानने के लिए उसकी चड्ढी उतरवाई जाती है और जूतों से मारकर स्कूल से निष्काषित किया जाता है। ऐसे ही प्रदीप सौरव कृत 'तीसरी ताली' उपन्यास में एक अप्रिय घटना घटती है जो उपन्यास की पात्र मणि का जीवन बदलकर रख देती है। एक दिन स्कूल में कुछ लड़के मणि को नंगा करके उसके गुप्तांगों को देखकर हिजड़ा हिजड़ा! चिल्लाने लगते है और इस अपमान जनित व्यवहार के कारण मणि को स्कूल छोड़ना पड़ता है। शिक्षित समाज होकर भी आज मानव के नैतिक मूल्यों का स्तर गिरता जा रहा है। मनुष्य के संवेदनशीलता, आत्मीयता पर आज आधुनिक यांत्रिकरण और औद्योगिकीकरण का पर्दा पड़ा है। यही कारण है कि आज मानव के अंदर की भावनाएं, संवेदनाएं कई छिप गई है। एक तरफा तो हमारा समाज किन्नरों को मनुष्यता से बहिष्कृत करता है और दूसरी तरफ उसका यौन शोषण में भी नहीं कतराता है। डॉ. मोनिका देवी द्वारा लिखित उपन्यास 'अस्तित्त्व की तलाश में सिमरन' में लेखिका ने सिमरन के माध्यम से समस्त किन्नर समुदाय का चित्रण किया है जो कई न कई हैवानियत का शिकार हुई है। सिमरन एक फैक्ट्री में काम करती है वहां का एक मजदूर नेता सिमरन के समक्ष प्रस्ताव रखता है "अगर नौकरी पक्की करनी है तो एक रात का मुझे सुख दो।"[8] जब वह यही बात अपनी माँ से जाकर कहती है तो वह एकदम अचंभित हो जाती है। उसकी माँ का जबाव था "माँ का जबाव एकदम उल्टा आया वह बोली अगर तेरी नौकरी स्थाई करता है तो क्या बुराई है वह जो कहता है वही किया कर।"[9] जब माता–पिता ही अपनी संतान को त्याग दे तो उस संतान की क्या मनोस्थिति होगी। यह कैसी विडम्बना है कि किन्नरों को ह्दृय तो मिला लेकिन उस ह्रदय की वेदना और पीड़ा को समझने वाला कोई नही है।

ईश्वर ने सृष्टि में जो भी रचना की है उसके पीछे कोई न कोई कारण अवश्य होगा। वह अलग है, दुर्लभ या विशेष इस पर विचार विमर्श की जरूरत है लेकिन हमारे समाज में ताना मारना जितना आसान है उतना ही मुश्किल है किसी विचारणीय विषय पर सोचना या चिंतन करना। अगर इस समाज में समता स्थापित करनी है तो हमें किन्नर समुदाय पर चिंतन करना होगा, उनके प्रति दृष्टिकोण को बदलना होगा। डॉ. लता अग्रवाल कृत 'मंगलामुखी' उपन्यास में तृतीयलिंगी महेंद्र ने अनु को कलेक्टर बनाने के लिए बहुत परेशानियों का सामना की था। अनु महेंद्र को इंटरव्यूह में पापा कहती है और समाज से आग्रह करती है "एक सम्पूर्ण विकसित समाज तभी बन सकता है जब सभी को अधिकार मिलें। मेरी समाज और सरकार से यह अपेक्षा है कि हम इंसान है सभी को इंसान की नजर से देखें आखिर हर आँख में एक सपना पलता है ..... उन सपनों को भी सम्मान और रुढियों से ऊपर उठाएं, कहने को शिक्षित न बनें, शिक्षा को अपने आचरण में दिखाएं।"[10]

भारत तृतीयलिंग समुदाय को दर्जा देने वाला पहला देश है लेकिन समाज की संकीर्णता के कारण लोग आज भी तृतीयलिंग को बहिष्कृत दृष्टि से देखते है। किन्नर समुदाय की समतामूलक स्थान दिलाने का प्रयास सर्वप्रथम घर से शुरू होना चाहिए। किन्नरों के माता–पिता को अपनी संतान के प्रति दबी संवेदनाओं, सद्भावनापूर्ण व्यवहार को जागृत करने की आवश्यकता है। हम सभी को भी किन्नरों के प्रति अपने नजरिए बदलने की आवश्यकता है जब समाज की सोच मे, दृष्टिकोण में बदलाव आयेगा तो किन्नर समुदाय अपने अधिकारों की आधी लड़ाई जीत जाएंगें। साथ में किन्नर समुदाय को शिक्षित किया जाए इनको शिक्षा से वंचित न किया जाए अगर यह शिक्षित होंगे तो इनके भीतर साहस विकसित होगा और समाज की बनाई गई संकुचित और दमनकारी सोच पर यह प्रहार कर पायेगें। पिछले कुछ वर्षों में समाज के बौद्धिक तबको का नजरिया किन्नर समुदाय के प्रति बदला है और साहित्य में भी इनको सामजिक अधिकार दिलाने के महत्वपूर्ण प्रयास किए जा रहे है। अब एक उम्मीद की जा सकती है कि एक दिन अवश्य किन्नर समुदाय सामान्य लोगों की भांति अपना जीवनयापन कर सकेगें।

संदर्भ सूची :–

1. नीरजा माधव, यमदीप, सामायिक प्रकाशन, 2009
2. नीरजा माधव, यमदीप, सामायिक प्रकाशन, 2009
3. भीष्म महेंद्र, मैं पायल, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2016, पृ.सं.24
4. भगवंत अनमोल, जिंदगी 50–50, राजकमल एंड सन्स प्रकाशन, 2017, पृ.सं.118
5. भगवंत अनमोल, जिंदगी 50–50, राजकमल एंड सन्स प्रकाशन, 2017, पृ.सं.54
6. गिरिजा भारती, अस्तित्त्व, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृ.सं.24
7. चित्रा मृद्गल, पोस्ट बॉक्स न.203 नाला सोपारा, सामायिक प्रकाशन, 2011, पृ.सं.11
8. डॉ. मोनिका देवी, अस्तित्त्व की तलाश में सिमरन, माया प्रकाशन, 2019, पृ.सं.35
9. डॉ. मोनिका देवी, अस्तित्त्व की तलाश में सिमरन, माया प्रकाशन, 2019, पृ.सं.35
10. डॉ. लत्ता अग्रवाल, मंगलामुखी, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृ.सं.140

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 180–184

वर्तमान दौर के सन्दर्भ में संस्कृत साहित्य के नाटक अभिज्ञानशाकुंतलम् में पर्यावरण विमर्श

चन्द्र प्रकाश पथिक
सहायक आचार्य, संस्कृत, राजकीय महाविद्यालय संगडाह, जिला सिरमौर हि. प्र. पिन 173023

संस्कृत साहित्य में सर्वत्र प्रकति चित्रण मिलता हैं। उसका प्रमुख सन्देश यह हैं कि हम मानव इस पृथ्वीलोक पर रहकर अपने तथा समस्त जीवों के लिये इस पर्यावरण का सम्यक प्रकार से उपयोग कर सके। वर्तमान समय में विश्व के समक्ष पर्यावरण की बिगड़ती स्थिति एक प्रमुख चुनौती हैं। इस समस्या से भारत देश भी अछूता नहीं हैं। मनुष्य अपने स्वार्थ के कारण प्रकृति का अत्यधिक दोहन कर रहा हैं। इस दोहन के कारण पर्यावरण पर अत्यधिक प्रभाव पड़ रहा हैं। प्रकृति के दोहन से मनुष्य अपने साथ–साथ इस पृथ्वी पर अन्य जीवों के लिये भी खतरा उत्पन्न कर रहा हैं। भारतीय विद्वानों को पूर्व में ही इस विषय का ज्ञान था कि प्रकृति का संरक्षण करने से प्रकृति समस्त प्राणियों का संरक्षण करती हैं। विश्व में साहित्य की बात की जाएं तो सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद मिलता हैं जो कि संस्कृत भाषा में हैं। संस्कृत साहित्य के कवियों, लेखकों, रचनाकरों ने अपने काव्यों, नाटकों, कथा, ऐतहासिक ग्रंथों में यत्र–तत्र पर्यावरण संरक्षण का वर्णन किया हैं। किसी भी विषय पर जन चेतना को जागृत करने का सर्वोत्तम माध्यम शिक्षा हैं। शिक्षा में भी संस्कृत साहित्य भारतीय ज्ञान परम्परा का प्राचीन और सर्वोत्तम माध्यम हैं। संस्कृत के विषय में निम्न उक्तियां कही गयी हैं :–

भाषासु मुख्या मधुरा दिव्या गीर्वाण भारती।[१]

भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा।[२]

पर्यावरण विमर्श से पूर्व पर्यावरण शब्द की व्युत्पत्ति जानना आवश्यक हैं। परि तथा आङ् उपसर्ग पूर्वक वृयं वरने धातु से ल्युट प्रत्यय होकर पर्यावरण शब्द बना हैं। पर्यावरण का अर्थ न केवल हमारे चरों ओर का वातावरण हैं अपितु यह व्यापक अर्थ को समाहित किये हुआ हैं। पर्यावरण के अंतर्गत पञ्च महाभूत पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, आकाश सहित समस्त चराचर जगत सन्निहित हैं।

पर्यावरण मानव जीवन का अभिन्न अंग हैं। इसके बिना जीवन असम्भव हैं। वर्तमान भौतिकवादी युग में विकास और प्रगति के नाम पर एक ऐसे युग का आरम्भ हो चुका हैं जो पर्यावरण को दूषित के साथ–साथ नष्ट कर रहा हैं। दूषित पर्यावरण सम्पूर्ण संसार के लिये घातक हैं। पर्यावरण एवं प्रकृति में गहरा सम्बन्ध हैं। स्वच्छ प्रकृति ही स्वच्छ पर्यावरण का निमार्ण करती हैं। हमारे ऋषि मुनियों ने प्रकृति को सर्वोच्च स्थान दिया हैं। उन्होंने प्रकृति में विद्यमान वृक्ष, नदी, आकाश, सौरमंडल के सभी ग्रहों को देवता की संज्ञा दी हैं। संस्कृत साहित्य की

प्रत्येक रचना में प्रकृति को समादृत भाव प्रदान किया गया हैं। संस्कृत साहित्य के आदिकाव्य रामायण के आरम्भ में महर्षि वाल्मीकि क्रोंच पक्षी के करुण क्रंदन से करुणा में डूब गये कि उनका शोक श्लोक के रूप में प्रकट हो गया।

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रोञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।[3]

तमसा नदी के किनारे जब महर्षि वाल्मीकि विहार कर रहे थे उसी समय वृक्ष पर रतिक्रिया में लग्न क्रोंच के जोड़े में से निषाद के बाण से एक पक्षी का वध हो गया। इस दृश्य को देखकर महर्षि का मन करुणा से व्याकुल हो गया कि उनके मुख से श्लोक की रचना हो गयी। रामायण के आरम्भ में ही प्रकृति के प्रति इतना स्नेह दर्शाया गया है कि एक पक्षी का वध होने के कारण महर्षि के अंतर्मन में इतनी करुणा का उद्भव हुआ कि संस्कृत साहित्य के आदि काव्य का प्रथम श्लोक उत्पन्न हुआ। इस श्लोक से ज्ञात होता है कि संस्कृत साहित्य का उद्भव प्रकृति में घटित एक घटना से हुआ हैं।

रामायण में स्वयं महर्षि वाल्मीकि वर्णन करते है :—

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।[4]

जब तक पृथ्वी पर पर्वत और नदियाँ रहेंगी तब तक लोकों में रामायण कथा चलती रहेगी। रामायण की कथा के साथ साथ नदियों और पर्वतों के महत्त्व को भी कहा गया हैं कि नदियों और पर्वतों का लोकों के लिये कितना अधिक महत्त्व हैं। न केवल रामायण अपितु उसके परवर्ती साहित्यकारों महाकवि कालिदास, भारवि, माघ, अश्वघोष आदि ने भी अपनी रचनाओं में प्रकृति का मार्मिक और सजीव चित्रण किया हैं। महाकवि कालिदास के सुप्रसिद्ध नाटक अभिज्ञानशाकुंतलम के आरम्भ में ही मंगलाचरण में निम्न वर्णन किया हैं।

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री।
ये द्वे कालम् विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वं।।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवंतः।
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः।।[5]

जो मूर्ति ब्रह्माजी की प्रथम सृष्टि है। जो विधिपूर्वक हवि किये गये घृतादि द्रव्य को देवताओं तक पहुंचाती हैं। जो दो मूर्तियां, समय, दिन—रात का विभाजन करती हैं। जो मूर्ति शब्द गुणवाली हैं और विश्व को व्याप्त करके अवस्थित हैं। जो मूर्ति समस्त बीजों को उत्पन्न करने वाली है। जिस मूर्ति से प्राणी प्राण प्राप्त करते हैं। प्रत्यक्षसिद्ध इन आठ मूर्तियों से युक्त भगवान शिव रक्षा करें।

भगवान शिव को अष्टमूर्ति कहा गया हैं। अष्टमूर्ति :— जल, अग्नि, यजमान, सूर्य, चंद्रमा, आकाश, पृथ्वी, वायु ये शिव की आठ मूर्तियां प्रत्यक्ष रूप से सभी जीवों का कल्याण कर रहे हैं।[6]

अभिज्ञानशाकुंतलम् में कवि ने भगवान शिव की जो आठ मूर्तियों का वर्णन किया हैं उसमे प्रकृति के प्रत्यक्ष तत्वों का वर्णन हैं, दिन और रात का निर्माण करने वाले सूर्य चंद्रमा पर्यावरण के लिये आवश्यक हैं। मानव जीवन के आधारभूत प्राणवायु का इसमें वर्णन किया गया हैं। प्राणवायु तभी उपयोगी हैं जब वह स्वच्छ होगी। स्वच्छ वायु से ही जीवन संभव हैं अन्यथा दूषित वायु से तो जीवन की कल्पना करना भी कठिन हैं। प्रकृति तो मानव को शुद्ध वायु प्रदान करती हैं, परन्तु मानव अपने भौतिकता सुख के लिये स्वयं ही इसे अशुद्ध कर रहा

हैं।

सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्गसुरभिवनावताः।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः।।[6]

महाकवि कालिदास इस श्लोक के मध्यम से यह बता रहे हैं कि ग्रीष्म ऋतु में प्रकृति में क्या क्या आनन्ददायक हैं। स्वच्छ जल से भरे जलाशयों में जलक्रीडा का आनंद आता हैं। पाटल पुष्प के स्पर्श से सुरभित पवन चलती हैं। मध्याहन काल में घनी छाया में नींद भी आनंददायक आती हैं। वर्तमान समय में विश्व बढती गर्मी से परेशान हैं। गर्मी आने पर हमें वृक्ष की छावं का स्मरण आता हैं। इससे बचने का एकमात्र उपाय वृक्ष लगाकर पर्यावरण का संरक्षण करने से हैं।

न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्, मृदुनि मृगशरीरे पुष्पराशाविवाग्निः।
क्व वत हरिणकानां जीवितं चातिलोलं, क्व च निशितनिपाताः वज्रसाराः शरास्ते।।7

महाकवि कालिदास राजा दुष्यंत को मित्र के द्वारा सावधान करते हुए कह रहे हैं कि हे राजन आप इस कोमल मृग शरीर पर बाण संधान मत करो। मृगों के शरीर पर बाण छोड़ना उस प्रकार हैं जैसे किसी कपास के ढेर में आग छोड़ना। मानव को न केवल वृक्ष इत्यादि का संरक्षण करना चाहिए अपितु उसमें पाए जाने वाले जीवों की रक्षा करना भी परमावश्यक हैं।

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररूहैरनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादित रसं।
अखंडं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः।।[8]

उपरोक्त श्लोक में कवि ने शकुन्तला की उपमाएं प्रकृति से ही दी हैं। कवि ने शकुन्तला को ऐसा पुष्प कहा है जिसे किसी ने अभी तक घ्राण इन्द्रिय से सूंघा नहीं हैं, ऐसा किसलिये हैं जिसे किसी का नख तक भी स्पर्श नहीं हुआ हैं, अखंडित रत्न हैं, ऐसा नवीन मधु हैं जिसे किसी ने चखा नहीं हैं। प्रकृति में जिस जगह और जिस वस्तु को संरक्षित करके रखा जाता हैं वह मनोहारी होती हैं। समस्त मानव पर्यावरण में अनछुई प्रकृति की ओर आकर्षित होते हैं। मानव को ऐसे स्थानों पर शांति और आनंद का अनुभव होता हैं। स्वच्छ और सुंदर पर्यावरण सभी को अपने ओर आकर्षित करता हैं।

पातुं न व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवं।
आद्ये वः प्रसुतिसमये यस्या भवत्युत्सवः सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।[9]

महाकवि कालिदास पर्यावरण प्रेमी शकुन्तला के विषय में कह रहे हैं कि शकुन्तला सर्वप्रथम पौधों को जल से सिंचन करती हैं उसके पश्चात् ही स्वयं जल ग्रहण करती हैं। शकुन्तला को आभूषण अत्यंत प्रिय हैं, परन्तु पर्यावरण प्रेमी होने के कारण वह अपने अलंकार के लिये एक पत्र, पुष्प नहीं तोड़ती हैं। जब वृक्षों पर नए–नए पुष्प निकल रहें होते हैं वह उस समय उत्सव मनाती हैं। कालिदास ने जिस प्रकार से शकुन्तला को पर्यावरण प्रेमी दर्शाया हैं सभी मानव को उसी प्रकार पपर्यावरण प्रेमी होना चाहिए। यही वह सम्पदा हैं जिसे हम आने वाली पीढ़ी को विरासत में दे सकते हैं।

रम्यांतरः कमलिनीहरितैः सरोभिश्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूखतापैः।
भुयात्कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थाः।।[10]

महाकवि कालिदास ने अपने नाटक अभिज्ञानशाकुंतलम् में प्रकृति का सजीव चित्रण किया हैं। कवि उक्त

श्लोक के माध्यम से कह रहे हैं कि शंकुन्तला का मार्ग ऐसे हरे भरे सरोवरों से युक्त हो जहाँ मध्य मध्य कमल की लताएं हो। जहाँ पेड़ो की छाया से सूर्य की किरणों का प्रभाव कम हो। जहाँ मंद और शीतल पवन सुखकारी और कल्याणप्रद हो। प्रत्येक मानव अपने लिये इस भौतिकवादी चकाचौंध में जीवन व्यतीत करने के पश्चात पर्यावरण में शांति और आनंद चाहता हैं। उस शांति और आनंद प्राप्ति के लिये पर्यावरण का संरक्षण आवश्यक है। पर्यावरण में यह तभी संभव हैं यदि हम इसका दोहन आवश्यकतानुसार करें न कि अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु उसे नष्ट करें।

यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसुचिविद्धे।
श्यामकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते।।[११]

महाकवि कालिदास जीव संरक्षण की बात करते हुए कहते है कि हिरण शिशु के मुख में व्रण को ठीक करने के लिये इंगुदी का तैल लगाकर व्रण को ठीक किया है। श्यामक की मुष्टि देकर तूने जिसका पालन किया है। यह बच्चे की तरह पाला हुआ हिरण शिशु तेरा रास्ता नहीं छोड़ा रहा हैं। पर्यावरण में जीव संरक्षण आवश्यक हैं। जीवों के संरक्षण से ही पारिस्थितिक तंत्र सुचारू रूप से चलता हैं। यदि जीवों को प्रेम से पाला जाया तो वह भी मानव के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित करते हैं।

स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव।
ह्यनुभवति हि मूर्ध्ना पदापस्तीव्रमुष्णं शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्।।[१२]

राजा प्रजा के सुख के लिये परिश्रम करते हैं और कष्ट उठाते हैं। वृक्ष अपने आश्रितों का संताप दूर करने के लिये सूर्य के आतप को अपने शिखर पर सहन करते हैं। वर्तमान समय में संसार गर्मी से पीड़ित हैं हिमालय की बर्फ तेज गति से पिंघल रही हैं। समुद्र का जल स्तर बढ़ रहा हैं। इन सभी का समाधान वृक्षारोपण ही हैं। वृक्ष केवल छाया ही नहीं देते हैं अपितु सम्पूर्ण पर्यावरण के लिये आवश्यक हैं। एक नारा प्रसिद्ध हैं "नंगी धरती करे पुकार वृक्ष लगाकर करो श्रृंगार"।

भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैर्नवाम्बुभिर्दुरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरूषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकरिणाम्।।[१३]

वृक्ष फल आने पर नम्र हो जाते हैं। मेघ जल बरसाने के लिये नीचे आ जाते हैं। प्रकृति में सभी देने वाले होते हैं देने वाला हमेशा नम्र रहता हैं। प्रकृति पर ही हम सब निर्भर हैं। हमें अपने जीवनयापन के लिये पर्यावरण पर आश्रित रहना पड़ता हैं। अपने दैनिक जीवन की अधिकांश पूर्ति पर्यावरण से हो होती हैं। यदि हम इस पर्यावरण को नष्ट करेंगे तो हमारा और आने वाली पीढ़ियों का जीवन मुश्किल में पड़ जायेगा। आने वाले भविष्य के लिये हमें इस पर्यावरण को रक्षित करने के लिये नम्र ही रहना पड़ेगा।

स्वप्नो नु माया मतिभ्रमो नु क्लिष्टं नु तावातफलमेव पुण्यम्।
असंनिवृत्यै तदतीतमेते मनोरथा नाम तटप्रपाताः।।[१४]

महाराज दुष्यंत शकुन्तला के प्रथम मिलन को स्वप्न के समान उसी प्रकार स्मरण कर रहे हैं जैसे बरसाती नदी के तट पतन के समान होते हैं। पर्यावरण में बरसात में आने वाली बाढ़ के कारण क्षति होती हैं। जान माल का नुकसान होता हैं। बाढ़ के बचाव के लिये वृक्षारोपण करना आवश्यक हैं।

वर्तमान दौर में हम पर्यावरण में हुए परिवर्तनों के कारण परेशान हैं। इस पर्यावरण के संरक्षण और

आवश्यक उपोयग के विषय में हमारे ऋषि मुनियों से लेकर पूर्ववर्ती आचार्यों ने सम्यक रूप से वर्णन किया हैं। अंत में मैं यह कहना चाहूँगा कि इस विकास की दौड़ में हमें अपने पर्यावरण को अपने तथा विश्व के समस्त जीवों के लिये यदि लाभकारी बनाना हैं तो उसके लिये अपने शास्त्रों में वर्णित बातों का पालन करना होगा। भौतिकवादी इस युग में इशावास्योपनिषद के इस मन्त्र को ध्यान में रखकर भोग करना चाहिए :-

ईशावास्यमिदं सर्वम् यत् किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध कस्यस्विद्धनम्।।[१५]

इस चराचर जगत में सब कुछ उस परम शक्ति ईश्वर से व्याप्त हैं। इसलिये संसार में त्याग भाव से उपभोग करना चाहिए। त्याग भाव से उपभोग करने पर हम आवश्यकतानुसार उपभोग करेंगे जिससे हमारे पर्यावरण का संरक्षण हो सके और वसुधैव कुटुम्बकम् के भाव को चरितार्थ कर सकें।

सन्दर्भ :-

१. अज्ञात।
२. अज्ञात।
३. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, २/१५
४. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, २/३६
५. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, १/१
६. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, १/३
७. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, १/१०
८. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, २/१०
९. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ४/८
१०. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ४/१०
११. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ४/१३
१२. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ५/७
१३. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ५/१२
१४. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ६/१०
१५. इशावास्योपनिषद्, १ मन्त्र।

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक SANGAM
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 185-188

चंद्रकिशोर जायसवाल की कहानियाँ : किसान अस्मिता का प्रश्न

रितु शर्मा
शोधार्थी– वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान।

20वीं सदी के उत्तरार्द्ध से अपनी कथा–यात्रा शुरू करने वाले चंद्रकिशोर जायसवाल का जन्म 15 फरवरी 1940 को बिहार के मधेपुरा जिले के बिहारीगंज में हुआ। वे मूलतः ग्रामीण चेतना के कथाकार हैं उन्होंने अपने कथा साहित्य के माध्यम से पिछले 50 वर्षों के दौरान मुख्यतः ग्रामीण परिवेश में औद्योगिकीकरण और भूमण्डलीकरण के कारण जो बदलाव आए उन्हें रेखांकित करने का कार्य किया। उन्होंने प्रेमचंद और फणीश्वरनाथ रेणु की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए ग्रामीण चेतना और किसान अस्मिता से जुड़े प्रश्नों को अपने साहित्य में समाहित किया। आज औद्योगिकीकरण और भूमण्डलीकरण के प्रभाव से हमारे सामाजिक मूल्यों में तेजी से परिवर्तन हो रहा है। ऐसे समय में हमारे देश के अन्नदाता भूमि अधिग्रहण, मँहगे होते खाद–बीज, ऋण, पलायन, प्राकृतिक संकट और आत्महत्या जैसी गम्भीर समस्याओं का सामना करते हुए भी अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष कर रहे हैं। किसान के लिए खेती केवल उसके जीविकोपार्जन का साधन मात्र नहीं है बल्कि उनकी जीवन शैली है। जो दृष्टिकोण हमारा किसी जमीन के टुकड़े को लेकर होगा, वह उस जमीन के मालिक किसान का नहीं होगा। किसान का अपनी जमीन से अटूट लगाव होता है वह किसी भी कीमत पर अपनी जमीन से अलग नहीं होना चाहता। चाहे बात भूमि अधिग्रहण के नाम पर मिल रहे लाखों रुपये के प्रलोभन की हो या ऋण के बोझ से दबे होने की वह अपने खेत नहीं बेचना चाहता। वह सब कुछ खोकर भी किसान बना रहना चाहता है। वह मजदूर बनने से, दो बीघे की जायदाद का मालिक कहलाना ज्यादा पसन्द करता है। लेकिन 2010–11 की किसान जनगणना के आँकड़े[1] बताते हैं कि किसानों की संख्या अब घट रही है, 2001 में किसानों की कुल संख्या 12.73 करोड़ थी जो घटकर 2011 में 11.87 करोड़ रह गयी। यह स्थिति काफी चिंताजनक है कि आखिरी क्यूँ इतनी बड़ी संख्या में किसान खेती छोड़ने को मजबूर हो रहे हैं।

चंद्रकिशोर जायसवाल की कहानियों में हम देखते हैं कि किसान किस प्रकार आर्थिक समस्याओं से जूझते हुए भी अपनी जमीन से अपना मोह नहीं त्याग पाते। उनके किसान पात्र अपने जीवन से अधिक महत्व अपनी पीढ़ियों से चली आ रही जमीन को देते नजर आते हैं। ''गाँव के समझदार गरीब हमेशा से ही यह मानते आये हैं कि गाँव के गरीबों को अगर भगवान रोग दे, तो खूब हल्का या खूब भारी। रोग इतना हल्का हो कि गाँव का झोला डॉक्टर भी दवा की दो–चार खुराक से उसे भगा दे, या फिर इतना भारी कि इलाज कराने की बात

ही घर वालों के ध्यान में नहीं आये। इन दोनों के बीच का वह रोग अच्छा नहीं जो इलाज में खेत–पतार छीन ले, डीह–बाड़ी बिकवा दे।''[2] इस वाक्य के साथ शुरू होती 'जमीन' कहानी एक किसान के अपनी जमीन से अटूट लगाव को दर्शाती है। हरिलाल अपने इलाज के लिए अपनी जमीन नहीं बेचना चाहता क्योंकि उसके पिता नें जिंदगी भर मजदूरी और बटाई कर ये जमीन खरीदी थी। वह अपनी पत्नी दुखिया से कहता है– ''इस जमीन में बाबू की आत्मा बसती है। मैं नहीं बेचूँगा वह जमीन।''[3] लेकिन दुखिया इलाज के पैसों का प्रबंध करने में पहले अपने बथान को सूना कर देती है और फिर जमीन बेचने का मन भी बना लेती है। हरिलाल का मन यह सब देख विदा माँगता है वह अपनी पत्नी को समझाने की बहुत कोशिश करता है कि अब वह नहीं बचेगा और वह नहीं चाहता की उसकी जान भी जाए और जमीन भी। ''मैं यह दुख लेकर नहीं मरना चाहता हूँ कि मैं बेटे को भँवर में छोड़कर मर रहा हूँ, बेटे की जमीन बेचकर मर रहा हूँ।''[4] और कहानी के अंत में हम देखते हैं कि हरिलाल घर छोड़कर चला जाता है और रह जाता है केवल उसका आखिरी सवाल– यह जमीन मेरी है न?

जायसवाल जी की 'मात' कहानी दिल्ली–पंजाब की ओर बढ़ते पलायन को आधार बनाकर लिखी गई है। आज की नई पीढ़ी का खेती–किसानी से होता मोहभंग एक गंभीर समस्या बन गया है। रघुवीर का बेटा नागेसर भी खेती–किसानी से कोई मुनाफा न होता देख दिल्ली–पंजाब की ओर जाने का रूख करता है। लेकिन रघुवीर चाहता है कि उसका बेटा किसान बना रहे– ''तुम क्यों किसान से मजदूर बनो? मेरे दादा किसान थे; मेरे बाबू किसान थे; मैं भी किसान हूँ; तुम भी किसान बनकर रहो।''[5] वह चाहता है उसका बेटा भी किसान होने का सुख महसूस करे– ''मैं नेताओं के भाषण सुनने जाता हूँ, साधु–सन्तों के प्रवचन सुनता हूँ, मगर घर आकर यह महसूस करता हूँ कि मैं उन सबसे अधिक अच्छा काम कर रहा हूँ। मुझे लगता है कि पूरी दुनिया को खिला रहा हूँ मैं।''[6] लेकिन खँखड़ी रोग नागेसर को ये सुख महसूस नहीं करने देता। इस रोग से सारे इलाके की फसल में एक दाना तक नहीं आता और मजबूर हो रघुबीर को अपने खेतों में आग लगानी पड़ती है। कहानी की शुरुआत में जहाँ रघुबीर अपने बेटे को दिल्ली–पंजाब न जाने की सलाह देता है वही रघुबीर कहानी के अंत में अपने बेटों से कहना चाहता है कि उधर मेरे लायक भी कोई काम ढूँढें।

'अनगढ़' कहानी में बटेसर और उसके बैल अलबेला के बीच के अटूट लगाव को दर्शाया गया है। बटेसर अपने बैल का विशेष ध्यान रखता था उसके खाने से लेकर उसकी सेहत तक की चिंता उसे हमेशा लगी रहती। जब गाँव में मवेशी चोरी का उत्पात बढ़ा तो वह खुद बथान पर खटिया डाल कर सोने लगा। और जब उसके पिता ने अलबेला को बेचकर बैंक की किस्त चुकाने की बात की तो बटेसर कहता है– ''अलबेला को बेचने की बात मन में मत लाइये, बाबू ; उससे पहले मुझे बेच डालियेगा। मैं इसका जोड़ा लगाना चाह रहा हूँ और आपके मन में इसे बेचने की बात आ रही है।''[7] बटेसर अपने अलबेला का जोड़ लगाने के लिए बैंक द्वारा दिए जा रहे मोटरसायकिल खरीदने का ऋण ले लेता है। लेकिन उसे क्या पता, ''अभी जो दुपहिया वाहनों के लिए किसानों को ऋण दिया जा रहा है, यह कोई उनका दुख दूर करने के लिए नहीं, उन्हें कर्ज के एक महा मकड़जाल में फँसाने का षड्यंत्र किया जा रहा है। यह सोचने की बात है कि जहाँ किसान अपने परिवार का पेट पालने में भी असमर्थ है, वहाँ अब वह मोटरसायकिल में पेट्रोल जलायेगा? कितना उपजा लेगा कि मोटरसाईकिल उड़ायेगा? यह तो किसानों को मौत की ओर ठेलना हुआ।''[8] बटेसर अलबेला का जोड़ लगा दूसरी फसल में अपने प्राण डाल देता है लेकिन ओलों की भयंकर वर्षा बटेसर को मौत के मुँह में ठेलने के लिए मजबूर कर देती

है। बटेसर को जैसे ही पता चलता है कि सहकारिता बैंक वाले कर्ज वसूली में उसके अलबेला को ले गए हैं वह फाँसी लगाकर अपनी जान दे देता है। लोग कहते हैं– ''भला किसी बैल में किसान के प्राण बसे! किसान तो बैल खरीदते– बेचते ही रहते हैं। औरों के बथानों से भी तो बैल–गाय खोलकर ले गये बैंक वाले; कोई तो जान देने नहीं गया।''[9]

'जय किसान' कहानी में बूढ़े रमाधीन को यह चिंता सताती रहती है कि उसके दादा किसान, उसका पिता किसान, वह खुद किसान लेकिन क्या उसके बच्चे किसान बने रहेंगे या मजदूर बन जाएँगे? यहाँ तक कि उसे दिल्ली–पंजाब की ओर जाती टोलियों में अपने पोते भी नजर आने लगते। जब उसके बेटे ऋण लेकर ट्रैक्टर लेने की बात करते हैं तो वह उन्हें कई किस्से सुनाकर समझाता है कि ऋण की किस्त चुकाने में कई किसानों को अपनी जमीन बेचनी पड़ी है। ''हमारे पास अपनी जमीन छोड़ और कोई सहारा नहीं है। भगवान से मनाओ, बेटा, कि ऐसा दिन आये कि हमारी जमीन सोना उगले और हमारा सोना बाजार में सोना की तरह बिके, कोयला की तरह नहीं।''[10] लेकिन रमाधीन को यह चिंता हमेशा सताती कि उसका घर किसान का घर बना रहेगा? वह अपने आप को यह सोच कर समझाता है कि उस दुख से क्या दुखी होना जो दुख उसके जैसे सारे किसानों का है। आज मौसम की मार, ऋण, बीमारी जैसी समस्याओं के चलते कई किसान अपनी जमीन बेच रहे हैं। लेकिन फिर भी वह उसी चिंता में हमेशा खोया रहता और अपने बेटों से कहता है– ''मेरे मरने पर कोई श्राद्ध–भोज नहीं देना। मैं जानता हूँ, समाज के लोग तुम्हें घेरेंगे, बाप की आत्मा की शान्ति के लिए भोज देने का दबाव तुम पर डालेंगे.... तुम वह मत करना जो बिरंची के बेटे ने किया कि भोज देने के लिए जमीन बेच दी। तब तुम उन्हें साफ–साफ सुना देना कि रमाधीन मंडल यह कहकर मरा है कि अगर उसकी मरनी का भोज होता है, तो उसकी आत्मा को कभी शांति नहीं मिलेगी।''[11]

'समाधान' कहानी में हमें किसानों की आत्महत्या जैसी गम्भीर समस्या के प्रति सरकार की असंवेदनशीलता देखने को मिलती है। जहाँ एक ओर विपक्षी पार्टी जनता को उकसाने का काम करती है तो वहीं सत्ताधारी पार्टी इसकी जिम्मेदारी लेने से बचने का उपाय खोजती नजर आती है। किसान की समस्याओं को समझने और उनका निराकरण करने की पहल कोई नहीं करना चाहता। कहानी की शुरुआत में सदाशिव नाम के किसान का शव मुर्दाघाट की जगह सरकार के मुखिया के घर लाया जा रहा होता है। विपक्षी पार्टी जनता के बीच किसानों के कर्ज से आत्मघात करने की बात का खूब प्रचार करते हैं जिस पर सरकार के मुखिया का कहना है– ''सरकार क्या अपने बाप के घर से पैसा लाकर सबको कर्जमुक्त कर देगी? हम तो जनता के सारे पैसे जनता को लौटा ही देते हैं, अपने लिए सिर्फ उतना भर रखते हैं जितना हमारे सत्ता में बने रहने के लिए जरूरी है। यही काम क्या विरोधी सत्ता में आ जाने पर नहीं करेंगे या नहीं करते थे?''[12] सरकार के मुखिया को लगता है कि विपक्ष बेजुबान किसानों को विरोध करने के लिए उकसाकर सरकार पर बेवजह का बोझ बढ़ा रही है– ''जिनके मुँह में आवाज नहीं थी, उनके मुँह में आवाज देने की क्या जरूरत? क्या विरोधियों ने मान लिया है कि अब वे कभी सत्ता में आने वाले नहीं हैं? जिनके मुँह में बोली थी, उनका काम ही तो हम पूरा नहीं कर पा रहे थे। जो हमारी कुरसी हिला सकते हैं, हम उन्हें देखें या किसान को?''[13] चमनलाल सरकार के मुखिया को बताता है कि कुछ किसानों ने कर्ज से बचने के लिए अपनी बेटियों को बेचने का उपाय निकाला है तो कुछ ने किडनी बेचने का और सबसे आसान तरीका था कि सदाशिव अपनी कुछ जमीन बेचकर कर्ज चुका देता। मुखिया को सदाशिव

का जमीन न बेचकर आत्महत्या करना बहुत गलत लगा– ''जो जान बचाने के लिए जमीन नहीं बेचते वे उल्टी खोपड़ी के किसान होते हैं। वे इस तरह नहीं, तो किसी और तरह मरेंगे।''[14] और कहानी के अंत में सरकार के मुखिया ये समाधान निकालतें हैं कि हम किसानों को आत्महत्या से रोकने के लिए साधु–संतों की मदद लेंगे क्योंकि उनकी बात कोई नहीं टालता।

चंद्रकिशोर जायसवाल ने इन कहानियों के माध्यम से किसान जीवन से जुड़े कई संवेदनशील विषयों को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। प्रेमचंद का किसान आज 21वीं सदी के दौर में भी अपनी पहचान, अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहा है। जायसवाल जी ने इन मुद्दों को उठाकर हाशिए पर जाते किसान वर्ग को साहित्य की मुख्यधारा में लाने का प्रयास किया है। उनके द्वारा ग्रामीण एवं कृषि जीवन का सफल चित्रण किए जाने के लिए उर्वरक क्षेत्र की अग्रणी सहकारी संस्था इंडियन फारमर्स फर्टिलाइजर कोऑपरेटिव लिमिटेड (इफको) द्वारा उन्हें वर्ष 2024 के श्रीलाल शुक्ल स्मृति इफको साहित्य सम्मान से सम्मानित भी किया गया है।

सन्दर्भ-सूची :-

1. ओह रे किसान– अंकिता जैन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2020, पृष्ठ संख्या–15
2. जमीन (कहानी–संग्रह)– चंद्रकिशोर जायसवाल, अर्चना पब्लिकेशन्स, मेरठ, 2009, पृष्ठ संख्या–9
3. जमीन (कहानी–संग्रह)– चंद्रकिशोर जायसवाल, अर्चना पब्लिकेशन्स, मेरठ, 2009, पृष्ठ संख्या–13
4. जमीन (कहानी–संग्रह)– चंद्रकिशोर जायसवाल, अर्चना पब्लिकेशन्स, मेरठ, 2009, पृष्ठ संख्या–14
5. खट्टे नहीं अंगूर (कहानी–संग्रह)– चंद्रकिशोर जायसवाल, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2015, पृष्ठ संख्या–92
6. खट्टे नहीं अंगूर (कहानी–संग्रह)– चंद्रकिशोर जायसवाल, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2015, पृष्ठ संख्या–(92–93)
7. जमीन (कहानी–संग्रह)– चंद्रकिशोर जायसवाल, अर्चना पब्लिकेशन्स, मेरठ, 2009, पृष्ठ संख्या–171
8. जमीन (कहानी–संग्रह)– चंद्रकिशोर जायसवाल, अर्चना पब्लिकेशन्स, मेरठ, 2009, पृष्ठ संख्या–175
9. जमीन (कहानी–संग्रह)– चंद्रकिशोर जायसवाल, अर्चना पब्लिकेशन्स, मेरठ, 2009, पृष्ठ संख्या–180
10. हम आजाद हो गये! (कहानी–संग्रह)– चंद्रकिशोर जायसवाल, रचनाकार प्रकाशन, पूर्णिया–साहिबाबाद, 2019, पृष्ठ संख्या– 144
11. हम आजाद हो गये! (कहानी–संग्रह)– चंद्रकिशोर जायसवाल, रचनाकार प्रकाशन, पूर्णिया–साहिबाबाद, 2019, पृष्ठ संख्या– 147
12. खट्टे नहीं अंगूर (कहानी–संग्रह)– चंद्रकिशोर जायसवाल, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2015, पृष्ठ संख्या– 70
13. खट्टे नहीं अंगूर (कहानी–संग्रह)– चंद्रकिशोर जायसवाल, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2015, पृष्ठ संख्या– 71
14. खट्टे नहीं अंगूर (कहानी–संग्रह)– चंद्रकिशोर जायसवाल, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2015, पृष्ठ संख्या– 80

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 189-193

विकलांग विमर्श एवं साहित्य

शिवेन्द्र कुमार, शोधार्थी,
डॉ. शांत कुमार चतुर्वेदी, आचार्य,
हिन्दी विभाग, जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उत्तर प्रदेश।

शोध सार :–

विकलांगता केवल शारीरिक या मानसिक अक्षमता की स्थिति नहीं है, बल्कि यह समाज द्वारा गढ़ी गई एक सामाजिक संरचना भी है, जो 'सामान्यता' की पूर्वधारणाओं पर आधारित होती है। यह शोधपत्र दिव्यांगता के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक पक्षों का विश्लेषण करता है तथा यह दर्शाता है कि किस प्रकार समाज में प्रचलित दृष्टिकोण, व्यवहार और संस्थागत ढांचे दिव्यांग व्यक्तियों को हाशिए पर धकेलते हैं। परिवार, शिक्षा, रोजगार और सार्वजनिक जीवन में दिव्यांगजन किस प्रकार भेदभाव, उपेक्षा और असमान अवसरों का सामना करते हैं, इस पर विशेष चर्चा की गई है। साथ ही, यह शोध सामाजिक समावेशन, अभिगम्यता (Accessibility) और सशक्तिकरण की आवश्यकता पर बल देता है। साहित्य, कानून और नीति–निर्माण में दिव्यांगता के चित्रण के माध्यम से यह अध्ययन सुझाव देता है कि दिव्यांगता को दया की दृष्टि से नहीं, बल्कि अधिकार और सम्मान की दृष्टि से देखने की आवश्यकता है। समावेशी और समानतामूलक समाज की स्थापना के लिए सामाजिक संरचना में व्यापक परिवर्तन अनिवार्य है।

बीज शब्द :– दृष्टिकोण, समाज, विकलांग, संरचना, साहित्य, विमर्श, समानता।

प्रस्तावना :–

साहित्य में समाज प्रतिबिंबित होता है, समाज लोगों का एक पुंज मात्रा नहीं है बल्कि समाज में रहने वाले लोगों के आंतरिक भावनाओं का एक प्रतीकात्मक संबंध भी है, जिनका भावनात्मक संबंध या वैचारिक संबंध समाज में रहने वाले लोगों के प्रति एक समानता का भाव दिखाता है। सामानता कई प्रकारों से देखी जाती है जैसे कि सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, शारीरिक, वैचारिक, राजनीतिक आदि है।

समाज में रहने वाले लोगों के बीच सामाजिक संरचना का निर्माण होता है और इस संरचना में एक वर्ग दिव्यांग का भी है। इसके विषय में, कल्पना मात्र से ही होठों पर आने वाले मीठी मुस्कान की जगह कटु अनुभव की स्मृति दुख–दर्द तथा अवसाद प्रदान करती है। मानव का जीवन स्थिर नहीं है बल्कि वह चलायमान है। जिसमें आने वाली अनेक बधाएं उसे आगे बढ़ने से रोकती हैं किंतु उसकी गतिशीलता को नष्ट नहीं कर सकती। शारीरिक रूप से कमजोर व्यक्तियों को विकलांगता की श्रेणी में रखा जाता है और उनकी क्षमता के आधार पर उन्हें पहचाना जाता है। हम ऐसे व्यक्तियों को उनकी अक्षमता के कारण उनके अस्तित्व को नकारना बिल्कुल

उचित नहीं है।

विकलांग विमर्श एक ऐसा क्षेत्र है जो शारीरिक, मानसिक या संवेदी अक्षमताओं से ग्रसित व्यक्तियों की स्थिति, अधिकार, समाज में उनकी भूमिका और उनके प्रति दृष्टिकोण पर ध्यान केंद्रित करता है। यह विमर्श केवल संवेदना या दया की भावना तक सीमित नहीं है, बल्कि यह बराबरी, स्वाभिमान और सहभागिता की माँग करता है।

विकलांगता से तात्पर्य :–

जब तक किसी भी मनुष्य का शरीर स्वस्थ नहीं होता तब तक मनुष्य सामान्य मनुष्य की तरह सामान्य रूप से कार्य करने में असमर्थ होता है और यही असमर्थता उसके कार्य में बाधा उत्पन्न करती है। मनुष्य की सभी प्रकार की प्रगति तथा उत्थान मानव के कार्यों पर निर्भर करता है जिसका आधार शरीर है, साथ ही उसका मानसिक रूप से स्वस्थ होना भी आवश्यक है। विकलांगता शब्द के लिए प्रायः कई सारे शब्दों का प्रयोग किया जाता है जैसे की अपंगता, अंगहीनता, अपाहिज, शारीरिक अक्षमता, अंगहीनता, विशेष क्षमता तथा दिव्यांगता प्रमुख है। इन शब्दों का प्रयोग लोगों ने अपने मानसिक विकास के आधार पर समय–समय पर किया है। 'विकलांग एक व्यापक शब्द है जिसका उपयोग ऐसे लोगों या समुदायों के लिए किया जाता है जो उठने चलने देखने सीखने जैसी गतिविधियों को करने पूर्णता अथवा आंशिक रूप से असमर्थ हैं।'[1]

विकलांगता की परिभाषा :–

विकलांग शब्द की उत्पत्ति 17वीं शताब्दी में हुई थी वास्तव में यह शब्द अंग्रेजी भाषा के हैंडिकैप्ड शब्द का हिंदी रूपांतरण है। 'जो व्यक्ति शारीरिक मानसिक रूप से सामान्य गतिविधियां करने में सक्षम नहीं है वह किसी कष्ट बाधा या समस्या का अनुभव करता है अथवा उसका कोई अंग कमजोरी या विक्षिप्त है विकलांग कहलाता है।'[2]

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) की परिभाषा के अनुसार, 'दिव्यांगता किसी व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक या बौद्धिक कार्यक्षमता में कमी है जो उनके रोजमर्रा के कार्यों को प्रभावित करती है। यह कमी कई कारकों के कारण हो सकती है, जैसे कि जन्मजात स्थिति, बीमारी, चोट या पर्यावरणीय कारक।'[3] विश्व स्वास्थ संगठन और भारतीय विधायी परिभाषा के अनुसार– 'दिव्यांगता एक ऐसी शारीरिक स्थिति है जिसमें किसी व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक कार्य करने की क्षमता में हुए ह्रास का कारण होती है और उनके सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में बाधा उत्पन्न करती है।'[4] हमारा भारतीय कानून दिव्यांग व्यक्तियों को समान अवसर, अधिकार और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता है और उनके लिए सुलभ वातावरण और सुविधाओं का प्रावधान करता है।

विकलांगता के प्रकार :–

प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने 27 दिसंबर 2015 को 'अपने मन की बात' में विकलांगता को इस प्रकार परिभाषित करते हुए कहते हैं– 'ऐसे व्यक्ति जो अलौकिक अंगों से परिपूर्ण है वह विकलांग नहीं दिव्यांग हैं।'[5] विकलांगता की विभिन्न श्रेणियां है विकलांगता की श्रेणी में उन्हीं व्यक्तियों को रखा जाता है जो किसी मान्यता प्राप्त चिकित्सा अधिकारी के द्वारा कम से कम 40 प्रतिशत शारीरिक अक्षमता रखते हों।

विकलांग व्यक्ति प्रायः अपने किसी न किसी अंग के दुर्घटना ग्रसित होने के कारण कार्यों को करने में

असमर्थ होता है जो असमर्थता उसके विकास में बाधक बनती है यह असमर्थता प्रायः सामाजिक तथा वातावरण द्वारा प्रदत्त हो सकती है। विकलांगता को मुख्यतः दो भागों में बांटा जा सकता है– जन्मजात तथा अर्जित विकलांगता। '2011 की जनगणना के अनुसार दिव्यांग व्यक्तियों की कुल जनसंख्या 26810557 है, इनमें से 14986202 पुरुष तथा 11824355 महिलाएं हैं। यदि हम प्रतिशत में विकलांगों को देखें तो 2.24 प्रतिशत जनसंख्या विकलांगता की श्रेणी में आती है। जिनमें से 2.24 प्रतिशत पुरुष और 2.01 प्रतिशत महिलाएं विकलांग हैं।'[6]

विकलांगता के वर्गीकरण से तात्पर्य विकलांग व्यक्ति को विकलांग होने के पश्चात उसे विकलांगता की श्रेणी में अलग–अलग विभाजित करना है। 'भारत में सर्वप्रथम विकलांगता किस श्रेणी में विभाजित करने का कार्य 1961 में किया गया। इसमें तीन तरह की विकलांगता को दिखाने का प्रयास किया गया शारीरिक विकलांगता, मानसिक विकलांगता तथा बौद्धिक विकलांगता।'[7]

2001 में पांच प्रकार की तथा 2011 में सात प्रकार की विकलांगता की श्रेणी विभाजित की गई। 'निःशक्त व्यक्ति अधिकार अधिनियम 2014' के तहत 7 प्रकार की विकलांगता बताई गई है। ''दिव्यांग अधिकार अधिनियम 2016 में विकलांगों की श्रेणियां सात से बढ़ाकर 2 कर दी गई हैं – दृष्टि विकलांगता, श्रवण बाधिता, मूक अक्षमता, चलन अक्षमता, अल्पदृष्टि अक्षमता, कुष्ठरोग ग्रसित, बौनापन, बौद्धिक अक्षमता, मानसिक मंदता, मानसिक रूग्णता, आत्मकेंद्रित विकार, प्रमस्तिकीय पक्षाघात, मांसपेशी दुर्विकर, थैलीसीमिया, पार्किंसस रोग, अधिरक्त स्राव, तेजाब हमला, विशेष अधिगम अक्षमता, पुरानी स्नायु रूग्णता, मल्टीपल स्क्लेरोसिस, तथा बहुअक्षमता।''[8]

दिव्यांगता और सामाजिक दृष्टिकोण :-

विकलांगता केवल शारीरिक या मानसिक अक्षमता का नाम नहीं है, यह एक सामाजिक संरचना से जुड़ी जटिल परिघटना है। समाज में स्थापित मानदंडों, मूल्यों और दृष्टिकोणों के कारण विकलांग व्यक्ति न केवल अपनी अक्षमता से, बल्कि सामाजिक भेदभाव, उपेक्षा और कलंक से भी जूझते हैं। 'सामाजिक संरचना वह ढांचा है, जिसमें व्यक्ति का जन्म होता है, उसका पालन–पोषण होता है, और वह समाज में अपनी भूमिका निभाता है। इसी ढांचे में कुछ लोग 'सामान्य और कुछ 'असामान्य' ठहराए जाते हैं – और दिव्यांग व्यक्ति अक्सर 'दया' या 'बोझ' की दृष्टि से देखे जाते हैं।'[9]

परिवार, शिक्षा, रोजगार और सार्वजनिक स्थानों पर विकलांग व्यक्तियों के साथ व्यवहार यह दर्शाता है कि समाज उन्हें किस प्रकार से स्वीकार करता है। कई बार उनके लिए सहानुभूति तो प्रकट की जाती है, परंतु समान अवसर या आत्मनिर्भर बनने का मंच नहीं दिया जाता। उदाहरण के लिए, स्कूलों में समावेशी शिक्षा की कमी, कार्यस्थलों पर सहायक उपकरणों का अभाव, या भवनों में रैंप और लिफ्ट की अनुपस्थिति– ये सब सामाजिक ढांचे की विकलांगजन के प्रति उपेक्षा को दर्शाते हैं।

हिन्दी साहित्य में विकलांगों की स्थिति :-

हिन्दी साहित्य को मुख्यतः चार भागों में बाँटा गया है और इन चारों भागों में विकलांगता की बात कहीं–न–कहीं किसी–न–किसी रूप में देखने को मिलता है। यदि हम आदिकाल की बात करते हैं तो यह पूरा काल श्रृंगार और वीर रस प्रधान काल है, जहाँ पर वीर रस की प्रधानता है, वहाँ पर युद्ध की स्थिति पाई जाती

है। युद्ध में प्रायः व्यक्तियों का विकलांग होना सामान्य बात है। इस प्रकार आदिकाल के 'नाथ–साहित्य' धर्म के आधार पर पाया गया है, और रासो–साहित्य युद्ध की स्थिति पर आधारित होने पर विकलांगता साहित्य प्रधान काल है।

'भक्तिकाल' के प्रतिष्ठित कवि– 'कबीरदास' ने विकलांगता की चर्चा अपने काव्य में की है जिनकी रचना–'बीजक' के रमैनी में (विकलांगता) अंधा शब्द को पाँच बार दिखाया गया है। सूरदास के सूरसागर में उन्होंने 21 बार अंधे शब्द का प्रयोग किया है। रीतिकाल की अगर हम बात करते हैं तो मलिक मुहम्मद–जायसी का नाम प्रेमाश्रय शाखा के प्रतिनिधित्व कवि के रूप में जाना जाता है जिनकी रचना अखरावट, पद्मावत एवं आखिरीकलाम। 'जायसी' चेचक रोग से ग्रसित थे, जिससे उनकी एक आँख खराब हो जाने के कारण वे काने थे और उन्होंने अपने काव्यों में कुछ इस प्रकार से लिखा है–

'मोहि का हँससि कि कोह रहि?'[10]

रीतिकाल में केशव, घनानंद, भूषण, मतिराम का नाम भी उल्लेखनीय है जिसमें बिहारीदास ने अपनी रचना– 'बिहारी–सतसई' में विकलांगता को दिखाते हुए लिखा है कि–

"कौंहर सी हम एडीनु की, लाली देखि सुभाई।
पाई महावर देई को, आयु भई ने-पाई।।"[11]

आधुनिक काल में विकलांगता के साहित्य की यदि बात करते हैं तो सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की रचना– 'रानी और कानो', रघुवीर सहाय के काव्य–संग्रह 'लोग भूल गए हैं' जिसमें एक कविता– 'कमरे में बंद अपाहिज'। मुंशी प्रेमचंद का उपन्यास रंगभूमि का सूरदास विकलांग व्यक्ति एवं उसकी स्थिति का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

संक्रान्तिवाद के प्रवर्तक 'जगद्गुरू रामभद्राचार्य'का अष्टावक्र महाकाव्य जो कि सम्पूर्ण विकलांगता के जीवन पर आधारित है, 'इस महाकाव्य में विकलांगों की स्थिति एवं समाज के लोगों के दृष्टिकोण को दिखाया गया है।'[12]

गीता पंडित का उपन्यास 'इनबाक्स का नन्नू' नामक पात्र विकलांग नायक के रूप में समाज के सामने प्रस्तुत किया गया है और शिवानी की कहानी– 'अपराजिता' की नायिका भी एक अस्थि–विकलांग लड़की है। लाला श्रीनिवासदास का उपन्यास– 'रागदरबार' में लंगड़ जो कि अपनी विकलांगता के कारण लंगड़ नाम से जाना जाता है। तुलसीराम की– 'मुर्दहिया' और 'मणिकर्णिका' यह दोनों भी विकलांग एवं दलित विमर्श पर आधारित आत्मकथाएँ हैं तथा जिनके लेखक स्वयं विकलांग थे। उन्होंने अपनी आत्मकथा में एक कम दृष्टि दोष वाले व्यक्ति को अपने ही परिवार में किस प्रकार से हास्य का पात्र बनना पड़ता है यह बताने का भरसक प्रयास किया है। वहीं दूसरी तरफ गीता पंडित का विकलांग विमर्श पर आधारित उपन्यास इनबॉक्स का पत्र नन्नू जो कि शत प्रतिशत अस्थि विकलांग है उसनें अपनी विकलांगता को अपना साधन बनाकर जीवन में उच्च मुकाम प्राप्त किया। गीता पंडित ने अपने उपन्यास में आइंस्टीन तथा हेलन केलर का भी उदाहरण प्रस्तुत किया है।

निष्कर्ष :-

विकलांग विमर्श समाज को यह सोचने पर मजबूर करता है कि 'सामान्यता' की परिभाषा क्या है। यह विमर्श हमें समावेशी समाज की दिशा में ले जाने वाला एक महत्वपूर्ण उपकरण है, जिसमें हर व्यक्ति को सम्मान, अवसर और आत्मनिर्भरता का अधिकार है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. https://www.dictionary.com
2. https://viklangta.com
3. http//kidshealth.org
4. वही।
5. द्विवेदी, पीयूष कुमार, शोध कार्य 'हिन्दी साहित्य में विकलांग विमर्श'।
6. वही।
7. https://cip.org.in
8. शंकर, डॉ. प्रमिला, 'विकलांगता और समाज'।
9. https://kavitakosh.org बिहारी सतसई भाग –11
10. महाराज, स्वामी रामभद्राचार्य जी, अष्टावक्र (महाकाव्य), प्रथम संस्करण–2010, जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग विश्वविद्यालय चित्रकूट (उ०प्र०)
11. https://www.hindifiles.कॉम
12. सत्यनारायणा, के 'डिसएबिलिटी इन मॉडर्न इंडियन लिटरेचर'।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 194–198

‘अस्तित्व’ उपन्यास में चित्रित किन्नर और नारी विमर्श का मूल्यांकन

भारती

शोधार्थी, पीएच.डी. हिंदी, डॉ. बी. आर. अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली।

‘अस्तित्व’ गिरिजा भारती द्वारा लिखित उपन्यास है। इसमें लेखिका ने किन्नरों के जीवन की सच्चाई को पाठकों के समक्ष उजागर किया है। गिरिजा भारती ने अस्तित्व के अलावा ‘मैं श्याम की दीवानी’ (भजन संग्रह) लिखा। इसके साथ ही दूरदर्शन व आकाशवाणी पर काव्यपाठ व परिचर्चाएँ की। लेखिका को कुछ पुरस्कार व सम्मान भी मिली, जिनमें–दैनिक जागरण द्वारा काव्यपाठ में तथा शब्दांगन एवं संकल्प संस्था द्वारा कहानी लेखन में सम्मान मिला। ‘अस्तित्व’ उपन्यास में लीक से हटकर लेखिका ने समाज के ऐसे अनछुए विषय को चुना है, जिसकी संवेदना तथा यथार्थ व्यंजना की सूध कम ही रचनाकारों ने ली है।

उपन्यास को पढ़ते समय लेखिका की विस्तृत दृष्टि का परिचय मिलता है। उन्होंने विभिन्न कोणों से इस विषय पर विचार किया है। चाहे वह किन्नरों का सामाजिक पक्ष हो या आर्थिक पक्ष। सभी को लेखिका ने उपन्यास में व्यक्त किया है। हमारे सामाजिक परिवेश में किन्नर समुदाय सदैव उपेक्षित सा रहा है। इन पर बोलना–लिखना आज भी सभ्य समाज की निशानी नहीं मानी जाती है। किन्नर को सदैव हेय दृष्टि से देखा जाता है। यह संतोष की बात है कि आज किन्नर विमर्श को साहित्य की महत्त्वपूर्ण धारा के रूप में जाना–समझा जा रहा है। विभिन्न उपन्यासों, कहानियों, आलेखों ने साहित्यकारों के साथ–साथ पाठकों का ध्यान भी इस ओर आकर्षित किया है। यह किन्नर समाज के लिए भी आशा की किरण है। गिरिजा भारती का उपन्यास ‘अस्तित्व’ भी इसी परंपरा की अगली कड़ी के रूप में हमारे समक्ष आता है।

‘अस्तित्व’ उपन्यास की कथावस्तु की शुरूआत एक मध्यवर्गीय परिवार के इर्द–गिर्द बुनी गई है। विवाह के चार वर्ष बाद वर्मा जी एवं उनकी पत्नी सुधा को एक कन्यारत्न की प्राप्ति होती है। बेटी के जन्म की खुशी एवं उत्साह उस समय ठंडा हो जाता है। जब वर्मा जी को पता चलता है कि उनकी बेटी एक किन्नर है– ‘‘जब बीवी ने बताया कि बेटी एक किन्नर है तो वर्मा जी को लगा मानों किसी ने उनके कानों में शीशा पिघलाकर डाल दिया हो और वह अभी यह खबर सुनकर बेहोश हो जाएंगे।’’[1]

इस प्रकार खुशी मातम में बदल जाती है जिसका कारण केवल एक किन्नर बेटी है। यहाँ समाज की उस दोहरी मानसिकता को समझा जा सकता है। जिसमें किन्नरों के प्रति समाज अपनी दृष्टि में केवल घृणा का चश्मा ही पहने हुए है, परन्तु वर्मा जी अपनी बेटी की सच्चाई जानकर भी उसे अपने साथ रखने का फैसला लेते है,

और अपनी बेटी को समाज की उन सभी परेशानियों से बचाकर एक सफल व्यक्ति बनाने का सपना देखते है जो अंत में पूरा भी होता है। वह अपनी बेटी प्रीत को उसके पैरों पर खड़ा कर उसका विवाह अमन (जो एक किन्नर पुरूष है) से करवाते है इसके साथ ही उन्हे एक बच्ची अनाथालय से गोद दिलाकर उसका जीवन भी खुशियों से भरने का प्रयास करते हैं। उपन्यास के अंत में प्रीत की माँ सुधा कहती है– ''आज मैं अपने सभी बच्चों का घर संसार देख कर बहुत खुश हूँ और साथ ही आज मेरी प्रीत को भी उसके हिस्से की खुशी और उसका सम्मान मिल गया।''[2]

प्रीत के पिता वर्मा जी भी कहते है :–

''सुधा, समाज बहुत बदल रहा है एक दिन ऐसा भी आएगा कि सभी को समान अधिकार होंगे। अब लोगों ने हमारी तरफ से सोचना शुरू कर दिया।''[3]

हमारे समाज में अगर सभी किन्नर बच्चों को सुधा और वर्मा जी जैसे माता–पिता मिलें तो किन्नरों को अपने परिवार से विस्थापन का दर्द नही झेलना पड़ेगा। सभी किन्नर बच्चे अपने माता–पिता, भाई–बहन के बीच रहकर सामान्य जीवन जी पाएंगे। सुधा के माध्यम से लेखिका उपन्यास में कहलवाती है–''अगर हर माँ–बाप चाहे तो अपने बच्चे के भविष्य को संवार सकते हैं। अगर किसी इंसान का कोई अंग नहीं रहता है किसी दुर्घटना में शरीर से अलग हो जाता है तो क्या समाज उसे नहीं अपनाता है और फिर अगर कोई इंसान यदि किन्नर है तो इतना भेदभाव क्यो? क्या उसका इस समाज पर अधिकार नहीं उसे सबकी तरह समाज में जीने का अधिकार क्यों नहीं होता? समाज पर उसका भी उतना ही अधिकार है जितना सामान्य व्यक्ति का।''[4]

जिस प्रकार हमारे समाज में साक्षरता अभियान मतदाता अभियान व जागरूकता अभियान आदि चलाए जाते है। उसी प्रकार लैंगिक विकृति वाले बच्चों को अपनाने के लिए भी अभियान चलाए जाने के साथ ही किन्नर बच्चों को जन्म देने वाले माँ बाप को समाज के समक्ष पुरस्कृत व सम्मानित किया जाना चाहिए ताकि समाज की सोच में बदलाव लाया जा सके। वरना जो परिवार किन्नरों को अपनी संतान के रूप में अपनाने के साथ समाज और परिवार के बड़े–बुजुर्गों से भयभीत रहते है कि कोई उनकी लैंगिकता पर सवाल ना उठा ले। पूरे उपन्यास में शुरू से लेकर अंत तक ऐसे ही प्रश्न पाठकों के मन में उठते हैं। जो उन्हें किन्नर समुदाय के प्रति गंभीर चिंतन करने पर विवश करते हैं।

पूरे उपन्यास में सुधा का व्यक्तित्व एक निर्भीक माँ के रूप में आता है। अपने बच्चे के किन्नर अस्तित्व को दुनिया की नज़र से बचाने के लिए वह अपनी सास, माँ और किन्नरों से लड़ जाती है। एक समय जब किन्नरों का समूह प्रीत के जन्म पर नेग मांगने के लिए आता है तो उसमें एक मोटा किन्नर यह कहता है–''नेग नहीं देती हो तो लाओं बच्ची कहाँ है? उसे ही ले जाएंगे। यह सुनते ही सुधा तो मानों चंडी बन गई। कैसे ले जाओगे मेरी बच्ची को, आगे बढ़ो तो। अपने पास में रखा चाकू उठा लेती है यह देखकर सास डर गई और बोली, ''अरे भई अपना नेग पकड़ो बहस मत करों''[5]।

जेण्डर हमारे समाज में फैली एक बुराई है। जेण्डर की मानसिकता से पीड़ित लोगों ने केवल बेटी और बेटे को ही महत्त्व दिया हैं बस में यात्रा करते समय वृद्धा द्वारा यह पूँछना कि सुधा तुम्हारी गोद में क्या है? बेटी या बेटा''[6]। यह दर्शाता है कि इंसान वही है जिन्होंने बेटी या बेटा के रूप में जन्म लिया है। उन्हे ही जीने का अधिकार है बाकी सब व्यर्थ की वस्तुएं है।

मायके पहँचने पर जब सुधा की माँ उससे प्रीत की गोद में लेना चाहती है तो वह देने से साफ इंकार कर देती है यह सोचकर कि कहीं माँ को यह पता चल गया कि प्रीत एक किन्नर है तो वह प्रीत से घृणा करने लगेंगी। सुधा की माँ ने कई मौकों पर उसके दुख का कारण पूछा तो उसने बताने से इंकार कर दिया। एक अवसर पर बहुत ही भावुक होकर वह कहती है–

''तुम नहीं समझोगी माँ, मेरी बेबसी। अगर मैं अपने दिल का हाल तुम्हें बता भी दूँगी तो पता नहीं तुम्हारा व्यवहार मेरी बेटी के प्रति कैसा रहे। मैं बहुत मजबूर हूँ माँ। मुझे तुम्हारी ये नाराजगी कबूल है लेकिन मैं अपनी परेशानी तुम्हें नहीं बता सकती। मन ही मन बुदबुदाती रही और सिसकती रही।''[7]

सुधा का किरदार एक माँ के रूप में अद्वितीय है न तो उसे शब्दों में बांधा जा सकता है और न ही उसे जुंबा से कहा किया जा सकता है। प्रीत की पहचान एक किन्नर के रूप में समाज से छुपाने के लिए वह अपनी माँ से हाथ जोड़कर दया की भीख माँगती हैं–

''उन्होंने सुधा की तरफ देखा जो पति के पीछे खड़ी माँ के सामने दोनो हाथ जोड़कर सिर हिलाने लगी। मानो कर रही हो माँ मेरी बेटी का राज सबके सामाने मत खोलना। नही ंतो मैं जी नहीं पाऊँगी। आंखों से झर–झर आंसू बह रहे थेण्ण्ण।''[8]

उपन्यासकार ने बहुत ही सहजता से यह बताने का प्रयास किया कि किसी भी समस्या को जीता जा सकता है यदि सकारात्मक सोच का व्यक्ति पीड़ित के साथ खड़ा हो। जब सुधा की माँ ने उसे आश्वस्त किया कि प्रीत के बारे में वह कोई बात किसी से नहीं बताएगी पर तुम उस समाज से कैसे लड़ पाओगी जो हर समस्या को नष्ट करने की जगह उसे बढ़ावा देने में विश्वास रखता हो। तब बड़ी बेबाकी से सुधा अपनी माँ को उत्तर देते हुए कहती है कि–''आप इसकी चिंता मत करो। मेरे साथ मेरे पति हैं।''[9]

सुधा का यह वाक्य साफ रूप से दिखाता है कि वर्मा जी का साथ उसके लिए उसके आत्मविश्वास को बढ़ाता है और वह हर समस्या को सुलझाने में अपने आपको समक्ष मानती है।

सुधा न केवल अपनी बेटी प्रीत के लिए एक ढाल बनकर खड़ी दिखाई देती है बल्कि एक वकील की तरह तर्क पे तर्क देकर अपनी माँ को समझाने में सफल भी रहती है वह कहती है– मुझे यह समझ में नहीं आता माँ, लोग कुत्ते पालते हैं। उसको अच्छे–अच्छे साबुन शैंपू से नहलाते हैं। उसको कितना प्यार और इज़्ज़त देते हैं। कितने प्यार से उसको खाना खिलाते हैं, दूध पिलाते हैं, गाड़ियों में बिठाते हैं, उसको बिस्तर पर सुलाते हैं। वो तो एक कुत्ता है, जानवर है। जब आप उसे जीने का अधिकार देते हैं तो एक किन्नर को क्यों नहीं?''[10]

यहाँ समाज की उस मानसिकता को साफ रूप से देखा जा सकता है जहाँ लोग कुत्ते, बिल्लियों को अपनी संतान की तरह पालते–पोसते हैं परन्तु किन्नर बच्चे को पालना तो दूर उसे इंसान तक समझना उचित नहीं मानते। समाज की इस दोहरी मानसिकता पर लेखिका उपन्यास में कई प्रश्न करती हुई दिखाई देती है और साथ ही सुधा के माध्यम से वही एक ऐसी माँ के रूप को व्यक्त करती है, जो हर परिस्थिति में अपनी बेटी प्रीत के अस्तित्व को बचाने के लिए समाज से भी लड़ती हैं सुधा अपनी माँ से कहती है कि–''मैं अपनी बेटी के हक के लिए पूरे समाज से लड़ लूँगी। पर माँ मुझ पर दया करो। किसी को मेरी बेटी का राज मत बताना।''[11]

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि एक माँ का प्रेम अपने बच्चे के प्रति निश्छल होता है। माँ को अपने सभी बच्चे प्यारे होते हैं फिर चाहे वह बच्चा किन्नर ही क्यों न हो। उपन्यास में ऐसी ही माँ के रूप में सुधा को

देखा जा सकता है। सुधा प्रीत के लिए हर प्रकार के ताने सुनने को भी तैयार रहती है परन्तु वह अपनी किन्नर बच्ची को किसी भी कीमत में खुद से दूर नहीं करना चाहती। सुधा की सांस उसे कई प्रकार के ताने मारती है। पर सुधा कुछ नहीं कहती और ताने सुनती रहती है–''बेटी पैदा की है तो हाथ नहीं लगाने देती। अगर बेटा पैदा करती तो चेहरा भी नहीं दिखाती। पर्दे में रखती।''[12]

सुधा और उसके माँ के बीच की वार्तालाप इस खोखले समाज की हक़ीकत सामने ला देती है। समाज में आदर्शवादिता की बड़ी–बड़ी बातें होती है। तमाम सेमिनार, वर्कशॉप और सिवोंसियम आयोजित कराए जाते हैं, उनमें बहुत सारे लोग ए०सी० कमरे में बैठकर मिनरल वाटर ग्रहण कर बड़ी–बड़ी बाते करेंगे किन्तु समस्या ज्यों की त्यों मुहँ बाये खड़ी रहती है। इसका एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण 'अस्तित्व' उपन्यास में देखने को मिलता है कि सुधा अपनी माँ को विश्वास दिलाती है परंतु उसकी माँ का यक्ष प्रश्न सदियों तक हमारी परंपराओं और मान्यताओं पर एक प्रहार है जिसने इस समुदाय (किन्नरों) को मुख्यधारा से अलग किया–''यह सब मैं नहीं जानती बेटा माँ ने कहा। पूर्वजों से चला आ रहा है कि किन्नरों का अलग समुदाय होता है। तुम इस समाज से कैसे जीत पाओगी।''[13]

उपन्यास में सामाजिक व्यवस्था या यों कहें की समाज द्वारा किन्नरों के लिए जो धारणा बनाई गई है वह भी साफ तौर पर देखी जा सकती है। किन्नरों के लिए सभी लोगों में यह धारणा है कि उनके जन्म के साथ ही उन्हे उनके माता–पिता की जगह किन्नर समुदाय की गुरू को सौंप दिया जाता है ताकि वह बच्चा अपने समुदाय में रहकर ही बड़ा हो। उसे उसके अस्तित्व को भूलने के लिए विवश किया जाता है, उसे याद दिलाया जाता है उसका इस समाज में कोई परिवार नहीं है जन्म के साथ इस समाज के लिए वह मर गया है। परन्तु इस धारणा को तोड़ते हुए एक अलग ही लीक पर सुधा और वर्मा जी उपन्यास में दिखाई देते हैं। सुधा से जब डॉक्टर प्रीत के बारे में पूछती है–''आपकी बच्ची कैसी है? क्या वह अभी भी तुम्हारे पास है–या किन्नर ले गये? उसने तुरंत डॉक्टर के पैर पकड़ लिए बोली–मैडम आप कृप्या किसी को मत बताइएगा कि मेरी बेटी एक किन्नर है। डॉक्टर बोली मुझे तो खुशी है कि तुम अपनी बेटी को खुद पाल–पासे रही हो। यह पता होते हुए भी कि वह एक किन्नर है। अगर तुम्हारी तरह सब माँ–बाप सोच ले तो यह समाज ही बदल जाएगा।''[14]

उपन्यास में केवल किन्नर विमर्श लेकर आगे बढ़ता हो, ऐसा नहीं है, वह एक परिवार की समस्याओं माता–पिता की अपनी संतान के प्रति चिन्ता और परिवार में फैली मान्यताओं के साथ सामाजिक मान्यताओं को लेकर भी आगे बढ़ता है। उदाहरण के लिए नाना–नानी का आना, दीवाली मनाना, नानी का कहानी सुनाना, बच्चों का जिद करना एवं ऐसी अनेक घटनाएँ हैं जो बालसुलभ चेष्टाओं को भी उभारती है। जब रात्रि के समय बच्चे अपनी नानी से कहते है–''नानी कहानी सुनाओ न, आज हम आपके पास ही सोएंगे... दादी तो रोज राजा–रानी की कहानी सुनाती हैं। आज हम आप से सुनेंगे......।''[15]

प्रीत को इस बात का एहसास भली–भाँति हो चुका था कि समाज में कोई नियम नहीं है, समाज खुद नियम बनाता है और उसे जो भी खुद से कमजोर लगता है उसे समाज की बलि बेदी पर चढ़ा देता है। पहले महिलाओं, आदिवासियों, दिव्यांगों, दलितों के साथ समाज यही बर्ताव करता था और अब किन्नरों के साथ भी करता है। एक समय था जब किन्नर मुख्यधारा में रहकर समाज के आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक निर्णयों को बदल देते थे। आज वही समस्या उनके अस्तित्व को नकार कर उन्हें अपमानित जिंदगी जीने के लिए विवश

कर रही है। प्रीत कहती है–''मैं इतनी कमज़ोर नहीं मैं अपनी पहचान खुद बनाऊँगी।''[16]

लेखिका ने उपन्यास में प्रीत के माध्यम से उन सभी किन्नरों की मनोस्थिति को दिखाया है जो केवल समाज में इसलिए संघर्ष कर रहे हैं कि उन्हें बस मनुष्य माना जाए। उन्हें अपने अस्तित्व को छुपाना न पड़े। वे जैसे है समाज उन्हें वैसे ही क्यों नहीं अपना सकता? हमारा समाज ये क्यों भूल जाता है कि दो लिंग के अलावा एक तीसरे लिंग भी है जो न पुरूष है और न ही स्त्री। क्यों इस तीसरे लिंग को दूसरे नाम के साथ जीना पड़ता है? क्या उसे अपने नाम के साथ जीने का कोई हक नहीं? ऐसे ही प्रश्नों को प्रीत उपन्यास में एक फॉर्म भरते हुए उठाती हुइ दिखाई देती है।

'अस्तित्व' उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह सारे पात्रों में सकारात्मक सोच का विकास करता है। लेखिका ने किन्नर की मनोदशा का चित्रण प्रीत नाम के पात्र के माध्यम से किया है परंतु सुधा और वर्मा जी के चरित्र के आगे सारे चरित्र फीके पड़ जाते हैं। जिस संघर्ष और जिजीविका की भावना सुधा ने प्रति में विकसित की वह अद्वितीय है। वह यह संदेश देना चाहती है यदि किन्नर बच्चे के माँ–बाप उसका साथ न छोड़े तो समाज भी उसको अपना लेगा। वे भी पढ़–लिखकर सफल जीवन व्यतीत कर सकेंगे। इस विषय पर कई उपन्यास आये लेकिन 'अस्तित्व' की विशेषता यह है कि इसमें किन्नर बच्चे को त्यागा नहीं गया बल्कि उसे अपनाया गया है, जो इससे पहले के उपन्यासों में हमें नहीं देखने को मिलता। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि लेखिका अपने उद्देश्य में सफल रही, जो है किन्नर को भी मनुष्य मानकर सभी अभिभावकों से एक अपील करना, कि वे अपने बच्चों को त्यागे नहीं बल्कि उन्हें अपनाकर उनके अस्तित्व को तलाश करने में उनकी सहायता करें।

संदर्भ ग्रन्थ :–

1 अस्तित्व, गिरिजा भारती, (विकास प्रकाशन, कानपुर, 2018) पृष्ठ सं० 17
2 वही, पृष्ठ सं० 95
3 वही, पृष्ठ सं० 95
4 वही, पृष्ठ सं० 95
5 वही, पृष्ठ सं० 19
6 वही, पृष्ठ सं० 21
7 वही, पृष्ठ सं० 25
8 वही, पृष्ठ सं० 29
9 वही, पृष्ठ सं० 29
10 वही, पृष्ठ सं० 10 (अपनी बात से)
11 वही, पृष्ठ सं० 40
12 वही, पृष्ठ सं० 30
13 वही, पृष्ठ सं० 30
14 वही, पृष्ठ सं० 30
15 वही, पृष्ठ सं० 14 (अपनी बात से)
16 वही, पृष्ठ सं० 38

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 199-205

आदिवासी विमर्श : पहचान, संघर्ष और साहित्यिक अभिव्यक्ति

Dr. Anupama

Assistant Professor, Department of Hindi, Mount Carmel College, Autonomous, #58] Palace Road, Abshot Layout, Vasanth Nagar, Bangalore-560032

सारांश :–

आदिवासी भारत की सांस्कृतिक विविधता का अभिन्न हिस्सा है। वे न केवल हमारे अतीत से जुड़े हुए हैं बल्कि वर्तमान समाज को सामुदायिकता, पर्यावरण, संरक्षण और सरल जीवन का मूल्य भी सिखाते हैं। लेकिन शोषणकारी नीतियाँ और आधुनिक विकास के नाम पर उन्हें उनके जल, जंगल और जमीन से वंचित किया गया। इसी शोषण, अन्याय और विस्थापन के खिलाफ आवाज उठाने का माध्यम बना–आदिवासी विमर्श। यह विमर्श विकास की उन नीतियों की आलोचना करता है जिनके कारण आदिवासियों को अपनी जीवन शैली से बेदखल होना पड़ा। आदिवासी विमर्श समाज में उन उपेक्षित जनसमूह के लिए बराबरी और न्याय की माँग करता है, ताकि उनको भी वही अधिकार मिलें जो अन्य नागरिकों को प्राप्त है। इस विमर्श का विकास विशेष रूप से तब हुआ जब आदिवासियों की स्थिति को मुख्यधारा की राजनीति और साहित्य में उपेक्षित किया गया। आदिवासी लेखकों, चिंतकों और समाजशास्त्रियों ने अपने अनुभवों और जीवन की सच्चाइयों को अभिव्यक्त करने के लिए इस विमर्श को आगे बढ़ाया।

प्रस्तावना :–

भारत में आदिवासी समुदाय के इतिहास का समय काल अत्यंत पुराना है। इनका इतिहास न केवल भारतीय सभ्यता के प्रारंभ से जुड़ा हुआ है बल्कि उनकी जीवन शैली और संघर्षों का भारतीय समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इनका जीवन मुख्यतः प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण रहा है, लेकिन उपनिवेशवाद और आधुनिक विकास ने इनकी पहचान और अस्तित्व को चुनौती दी है। "चिंता की बात यह हैं कि, स्वयं को धर्मनिरपेक्ष कहने वाली सरकार तक धर्म निरपेक्षता की हिफाजत करने में कमजोर नजर आती है"(1) जमीन का हक, विस्थापन, शोषण और जल–जंगल–जमीन से जुड़ा संबंध, संस्कृति, परंपरा, भाषा और पहचान की खोज इन सबने आदिवासियों को अपने अधिकारों के प्रति संघर्ष करने के लिए विवश किया। इस तरह भारतीय समाज में हाशिए पर पड़े आदिवासी समुदायों की पहचान, संस्कृति, संघर्ष और अभिव्यक्ति से जुड़ा एक महत्वपूर्ण बौद्धिक व सामाजिक आंदोलन के रूप में आदिवासी विमर्श उभर कर आया। आदिवासी विमर्श एक सामाजिक, सांस्कृतिक,

राजनीतिक और साहित्यिक आंदोलन है, जिसका उद्देश्य भारत के आदिवासी समुदायों की आवाज को प्रमुखता देना, उनके अधिकारों की रक्षा करना तथा उनके ऐतिहासिक और सांस्कृतिक अस्तित्व को पहचान दिलाना है। यह विमर्श मुख्य रूप से आदिवासियों के शोषण उनके साथ होनेवाले भेदभाव, विस्थापन, शिक्षा और आजीविका से जुड़ी समस्याओं को सामने लाना है। यह न केवल उनके अधिकारों और पहचान की लड़ाई है बल्कि यह पूरे समाज को एक समतामूलक और न्यायपूर्ण दृष्टिकोण की ओर ले जाने वाला आंदोलन है। यह विमर्श हमें सिखाता हैं कि, किसी भी समाज की असली प्रगति तभी संभव है जब उसके सबसे हाशिए पर खड़े समुदाय की भी आवाज सुनी जाए और उसे समान अवसर दिए जाए।

भारत में आदिवासियों का इतिहास :-

भारत की सभ्यता जितनी प्राचीन है उतना ही प्राचीन है आदिवासियों का इतिहास। इनकी प्रारंभिक उपस्थिति का प्रमाण पुरातात्विक खंडहरों में मिलता है, जिनमें से प्रमुख है भीमबेटका की गुफाएँ जो आदिवासी जीवन की शुरुआत को दर्शाती है। भीमबेटका की गुफाएँ जो आदिवासी जीवन की शुरुआत को दर्शाती है। यहाँ पर चित्रित चित्र और कला कार्य आदिवासी समुदाय की प्रारंभिक सभ्यता के संकेत है। वैदिक साहित्य में आदिवासी समुदायों का वर्णन मिलता है, जो उन्हें "दस्यु", "निषाद", "भील" आदि के रूप में प्रस्तुत करता है। इन्हें अकसर असभ्य और अवर्ण के रूप में देखा गया था। इन समुदायों को मुख्य धारा से अलग किया गया था और इन्हें "वर्ण व्यवस्था" से बाहर रखा गया। आदिवासी समुदायों ने कई बार विद्रोह और प्रतिरोध की नीतियाँ अपनायी, लेकिन धीरे–धीरे वे मुख्यधारा में समाहित हो गए थे। आदिवासी इतिहास भारत में आदिवासी समुदायों के लंबे संघर्षों, आंदोलनों और उनकी सांस्कृतिक चेतना के विकास से जुड़ा हुआ है। इसका विकास मुख्यतः तीन स्तरों पर देखा जा सकता है, सामाजिक संघर्ष, साहित्यिक अभिव्यक्ति और राजनीतिक आन्दोलन।

वे अपनी पृथक सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक व्यवस्थाएँ रखते थे। लेकिन आर्यों के आगमन से लेकर विभिन्न साम्राज्यों के विस्तार तक, आदिवासी समुदायों को धीरे–धीरे धकेला गया। मध्यकाल में मुगलों और बाद में अंग्रेजों के शासनकाल में आदिवासी समुदायों का बड़े पैमाने पर शोषण और उनकी जमीनों का दामन हुआ। अंग्रेजों के आने के बाद जबरदस्त आर्थिक और सामाजिक शोषण शुरू हुआ। अंग्रेजों ने वन कानून बनाकर आदिवासियों के परंपरागत अधिकार छीन लिए। इसका परिणाम कहीं बड़े विद्रोह के रूप में सामने आया :–

1. 1831 का कोल विद्रोह।
2. 1853–56 कासंथाल हूल।
3. 1895 का बिरसा मुंडा का आंदोलन।

इन आन्दोलनों में आदिवासी नेताओं ने औपनिवेशिक शोषण के खिलाफ विद्रोह कर अपनी स्वतंत्रता और संस्कृति की रक्षा का प्रयास किया। बिरसा मुंडा जैसे नायक आदिवासी चेतना के प्रतीक बन गए। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आदिवासी समुदायों के लिए संविधान में विशेष प्रावधान किए गए (जैसे अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण)। लेकिन विकास परियोजनाओं–जैसे बड़े बाँध, खनन, औद्योगीकरण ने आदिवासियों को बड़े पैमाने पर फिर से विस्थापित किया। इस दौर में आदिवासी आंदोलन ने नए तेवर लिए, जैसे :–

झारखंड आंदोलन (जिसके परिणामस्वरुप झारखंड राज्य का गठन हुआ)

बस्तर क्षेत्र में नक्सलवादी गतिविधियों की शुरुआत।

नागालैंड, मिजोरम, मणिपुर जैसे पूर्वोत्तर राज्य के आदिवासी आंदोलन ने भी जोर पकड़ा। संयुक्त राष्ट्र ने भी आदिवासियों के अधिकारों को लेकर घोषणाएँ की है (जैसे UNDRIP–2007)। आज आदिवासी विमर्श वैश्विक विमर्श का हिस्सा बन गया है। ये एक लंबी यात्रा का परिणाम है जिसमें दमन, संघर्ष, पुनरुद्धार और आत्मप्रतिरोध का इतिहास जुड़ा हुआ है।

उपेक्षा, विस्थापन, शोषण और संघर्ष की कहानी :–

आदिवासी समुदाय भारत में सबसे पुराने मूल निवासी है। लेकिन ऐतिहासिक रूप से इन्हें लगातार अलग–अलग प्रकार के शोषण का सामना करना पड़ा। शोषण के विभिन्न रूपों में आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक शोषण शामिल है। सबसे पहले इन्हें अपनी भूमि से बेदखली सहना पड़ा। अंग्रेजों के शासनकाल में वन कानून के जरिए आदिवासियों को उनकी परंपरागत जमीनों से बेदखल कर दिया गया। उनके जमीन पर सरकार और पूँजीपतियों ने कब्जा कर लिया। इनके इलाकों में जमींदारी प्रथा लागू की गई, जिससे आदिवासी किसानों को अत्यधिक 'कर' देना पड़ा साथ ही साथ सामाजिक और सांस्कृतिक शोषण भी समय–समय पर होता रहा। इनकी अपनी अलग सांस्कृतिक पहचान थी, लेकिन मुख्यधारा ने उन्हें 'असभ्य' या 'जंगली' कहकर हाशिए पर धकेल दिया। "एक और बात जो दिल में तीर की तरह रात–दिन चुभती है कि आदिवासी असभ्य, जंगली, जाहिल, गंवार और जरायमपेशा कहे जाते हैं। अशिक्षित, पिछड़ा और गरीब होना अलग बात है और असभ्य होना अलग।"[(2)] मिशनरियों द्वारा जबरन या छल से इनका धर्म परिवर्तन कराया गया, जिससे उनकी मूल धार्मिक कमजोर पड़ी। आदिवासी भाषाएँ नृत्य, गीत, लोक कथाएँ धीरे–धीरे खत्म होने लगे या उन्हें नीचे दिखाया गया।

आदिवासियों को प्रशासनिक और राजनीतिक निर्णय प्रक्रिया से दूर रखा गया। उनके इलाकों में विकास योजनाएँ बिना उनकी सहमति से थोपी गई। बड़ी परियोजनाओं के नाम पर आदिवासी क्षेत्रों में जबरन भूमि अधिग्रहण हुआ। इससे लाखों आदिवासी बिना मुआवजें के विस्थापित हो गए। जब आदिवासी समुदायों ने अपनी अधिकारों के लिए आवाज उठाए तो, उन पर बल प्रयोग किया गया, उन्हें जेल में डाला गया और कई बार पुलिस गोलीकांडों का शिकार भी होना पड़ा। उनको समाज में 'कमतर' या 'अल्पविकसित' मानव मानकर मानसिक रूप से भी दमन किया गया। हालांकि आदिवासी समाज ने हर युग में अपनी अधिकारों और पहचान की रक्षा के लिए संघर्ष किया है लेकिन आज भी उन्हें मुख्यधारा में समावेश की प्रक्रिया में कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। आदिवासियों के लिए स्वतंत्रता, समानता और न्याय की प्राप्ति के लिए हमें राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संरचनाओं में सुधार की आवश्यकता है।

असल में समाज और व्यक्ति को संकुचित विचारधाराओं से बाहर निकलना अनिवार्य है, व्यक्ति को परखना किसी जाति के आधार पर नहीं बल्कि उसके चरित्र या गुण के आधार पर होना चाहिए। "विचारधारा मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में ही संभव होती है। पागल आदमी को इस बात की कोई परवाह नहीं होती कि वह किस जाति का है। अंतः मानसिक रूप से जो व्यक्ति जीवंत होता है, उसी में विचारधारा विद्यमान रहती है। पशु–पक्षियों में विचारधारा नहीं होती, यानि वे स्वयं को एक–दूसरे से ऊँचे या नीचे नहीं समझते।"[(3)]

आदिवासी विमर्श केवल पीड़ा का वर्णन नहीं करता बल्कि यह आदिवासी समुदायों के संघर्ष और प्रतिरोध की कथा भी है। इन संघर्षों के माध्यम से आदिवासियों ने अपनी अस्मिता, अधिकार और जीवनशैली की रक्षा के लिए आवाज उठाई। सशक्त विद्रोह और आंदोलन के रूप में संथाल आदिवासियों ने सिद्धू–कान्हू के नेतृत्व में अंग्रेजों

और महाजनों के अत्याचारों के खिलाफ एक विशाल सशस्त्र विद्रोह किया। बिरसा मुंडा जैसे एक साधारण आदिवासी ने अपने मनोबल के सहारे आदिवासियों को संगठित कर अंग्रेजों और जमींदारों के खिलाफ 'धरती आबा' आंदोलन चलाया, जिसमें जल–जंगल–जमीन पर आदिवासियों के अधिकार की माँग प्रमुख थी। इन लोगों ने अपने लोकगीत, लोककथाएँ, पूजा पद्धतियाँ, परम्पराएँ बचाकर सांस्कृतिक उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष किया। "प्रत्येक धर्म कहीं न कहीं प्रेम, दुनिया की सहायता, शांति, भाईचारे, न्याय, समानता की बात करता है। पर ये बातें दब कर इनमें से जुनून, हिंसा, आतंक, अन्याय, शोषण और असमानता ही बाहर क्यों आते हैं? क्योंकि मुश्किल उस धर्म में नहीं वरन् इसमें है कि उस धर्म के आधार पर जो लोग अपना वर्चस्व और सत्ता कायम रखना चाहते हैं वे धर्म को तोड़–मरोड़कर लोगों को उल्टा सिखाते हैं।"[4] जब मुख्यधारा ने उन्हें 'जंगली' या 'पिछड़ा' कहकर उनकी संस्कृति को दबाना चाहा, तब भी आदिवासी समुदायों ने अपनी सांस्कृतिक धरोहर को जिन्दा रखा। "यह अलग बात है कि भारत की बाकी हिंदू या अन्य धर्मी आबादी अपनी कूपमंडूकता के कारण खुद को श्रेष्ठ समझकर, इन्हें अनदेखा करती रही और इन्हें जंगली या असभ्य कहकर अपमानित करती रही। यह भी एक अटूट सत्य है कि इन जंगली कहलाने वाले लोगों ने ही गौतम बुद्ध के बाद बने भारत के समतावादी, भाईचारावादी और मुक्तवादी संस्कृति को और प्रकृति एवं पर्यावरण को कायम रखा उन्होंने ईमानदारी से अपने आदिम मूल्यों व जनतांत्रिक प्रणाली को भी जिंदा रखा, जबकि भारत के बाकी हिस्सों में इन्हें बर्बाद करने के होड लगी थी।"[5]

आदिवासी आंदोलन का आधार स्वाभिमानी भावना से उत्पन्न हुए हैं। इसके लिए व्यक्ति को स्वयं जाति के आधार पर नहीं बल्कि मनुष्य के रूप में खुद को स्वीकारना है। "जात–पाँत की व्यवस्था ने ऊँच–नीच की व्यवस्था को कायम रखने के लिए एक गलत शिक्षण और प्रचार खड़ा किया। उसने यह सिखाया कि, जो ऊँची जाति का होगा, उसीमें स्वाभिमान होगा। जब तक हम गलत प्रचार को मानते रहेंगे, तब तक ऊँच–नीच का भेदभाव जारी रहेगा।"[6] आदिवासियों ने भूमि अधिकार के लिए भी निरंतर संघर्ष किया। भूमि पर अधिकार को आदिवासी विमर्श 'जीवित रहने के नैसर्गिक अधिकार' के रूप में देखा है न कि केवल संपत्ति के रूप में। आदिवासियों ने अन्याय के खिलाफ सिर्फ हथियारों से नहीं बल्कि संस्कृति, साहित्य, राजनीति और कानूनी अधिकारों के रास्ते में भी व्यापक संघर्ष किया।

साहित्य में आदिवासी विमर्श :–

आदिवासी विमर्श समकालीन साहित्य में भी प्रमुख रूप से उभरकर सामने आया है। आदिवासी विमर्श के क्षेत्र में कई ऐसे साहित्यकार सामने आए हैं जिन्होंने या तो स्वयं आदिवासी समुदाय से आकर लिखना शुरू किया या आदिवासियों के जीवन संघर्ष को गहरी संवेदनशीलता से अपने साहित्य में प्रस्तुत किया। इनकी रचनाएँ आदिवासी समाज के शोषण, उनकी सांस्कृतिक अस्मिता, अस्तित्व संघर्ष और उनके जल–जंगल–जमीन से गहरे रिश्ते को उजागर करती है। उपनिवेशवाद के कारण आदिवासी समाज ने अपनी सांस्कृतिक और सामाजिक अस्मिता को संरक्षित करने के लिए संघर्ष किया। इस संघर्ष को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करने का कार्य आदिवासी लेखकों ने किया। "आदिवासी साहित्य में वेदना है, विद्रोह है और अपने ढंग की अभिव्यक्ति भी है और है– आदिपुत्रों को वन–जंगलों, गिरि गह्वरों में कैद करने वाली व्यवस्था के प्रति जान–बूझकर किया गया नकार। यह एक उज्जवल परंपरा का आधारभूत प्राणी होने का अहसास है। उसके सांस्कृतिक संघर्ष में बलिदान किए

जाने वाले परिवारों से हमारा रक्त संबंध भी है।"[7] महाश्वेता देवी जैसे साहित्यकार ने आदिवासियों के समान अधिकार, भूमि अधिकार और संस्कृति संरक्षण के विषय पर कई रचनाएँ लिखी है। उनकी रचनाओं में "हजार चौरासी की माँ" और "रुदाली" जैसे कृतियाँ शामिल है, जो आदिवासी समाज के शोषण और संघर्ष की एक मार्मिक छवि प्रस्तुत करती है। उनकी रचनाओं में आदिवासी केवल दया के पात्र नहीं बल्कि विद्रोही और अपने हक के लिए लड़ने वाले नायक के रूप में आते हैं। 'अरण्येर अधिकार' में बिरसा मुंडा के ऐतिहासिक आंदोलन का मार्मिक चित्रण किया गया है। निर्मला पुतुल समकालीन आदिवासी महिला कवियों में एक प्रमुख नाम है। उनके काव्य में आदिवासी समाज की स्त्रियों की पीड़ा उनकी आकांक्षाएँ और उनके संघर्ष बड़ी संवेदनशीलता के साथ सामने आते हैं। वह आदिवासी महिला के दोहरे शोषण–एक तो आदिवासी होने का और दूसरा स्त्री होने का–को बेहद प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करती है। "निर्मला पुतुल की कविताएँ समाज में स्त्री के जो सामाजिक यथार्थ की तरफ संकेत करते हैं वह स्त्रियों के बारे में मुख्यधारा के समाज और उनकी सोच से बहुत भिन्न नहीं है। स्त्री जीवन का यह यथार्थ इस बात की तरफ भी संकेत करता है कि धर्म और शास्त्रों ने स्त्रियों की गुलामी को बढ़ाने में एक बड़ी भूमिका निभाई है।"[8]

नंदलाल नायक के लेखन में आदिवासी समाज की राजनीतिक चेतना और जल–जंगल–जमीन के अधिकार का प्रश्न उभरकर सामने आता है। उनकी रचनाओं में आधुनिक विकास परियोजनाओं के दुष्परिणामों का भी गहरा विश्लेषण मिलता है। रामदयाल मुंडा स्वयं एक आदिवासी बुद्धिजीवी और साहित्यकार थे। उन्होंने आदिवासी ज्ञान, परंपरा, मिथकों और संघर्षों को स्वर दिया। उनके लेखन में आदिवासी दृष्टिकोण से सभ्यता और विकास की वैकल्पिक अवधारणाएँ मिलती है। वे आदिवासी जीवन को एक संपूर्ण दर्शन के रूप में प्रस्तुत करते हैं। गिरीश कर्नाड स्वयं आदिवासी न होकर भी उनकी वेदना को अनुभव किया है, जिन्होंने आदिवासी मुद्दों और उनकी सांस्कृतिक पहचान पर अपने नाटकों को उपन्यासों के माध्यम से विचार किए। उनके नाटक "तुगलक" और "आदिवासी समाज" में आदिवासी जीवन के संघर्षों और उनके अस्तित्व को प्रस्तुत किया गया है।

आदिवासी लेखन अब केवल एक सामाजिक आंदोलन का हिस्सा नहीं रह गया है, बल्कि यह साहित्यिक अभिव्यक्ति का एक अहम हिस्सा बन चुका है। "साहित्य के माध्यम से ही हम उन लोगों को अधिक से अधिक शिक्षित कर, इस दिशा में आकर्षित कर सकते हैं कि महिलाओं की स्वतंत्रता और पुरुषों की स्वतंत्रता में कोई अंतर नहीं होता। हम अपने को, अपने समाज को सुधारें ताकि वे महिलाओं का सम्मान करना सीखें। उनके अधिकारों की रक्षा कर सकें और जहां भी उनके अधिकार छीने गए हैं, उन्हें वापस दिलाने की कोशिश करें।"[9]

आदिवासी जीवन पर आधारित काव्य, कहानी और उपन्यास आदिवासी समाज के संघर्ष, सांस्कृतिक अस्मिता और विस्थापन की वास्तविकताओं को सामने लाता है। ये रचनाएँ न केवल साहित्यिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है बल्कि वे समाज के लिए आदिवासी जीवन के प्रति संवेदनशीलता और जागरूकता का एक महत्वपूर्ण साधन है।

आदिवासी विमर्श की प्रासंगिकता :–

आज के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संदर्भ में आदिवासी विमर्श की प्रासंगिकता अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह न केवल उनके समस्याओं और संघर्षों को उजागर करता है, बल्कि हमें सामाजिक न्याय और समानता की दिशा में सोचने के लिए भी प्रेरित करता है। भारतीय संविधान में आदिवासियों के लिए विशेष

अधिकार और सुरक्षा की व्यवस्था की गई है। लेकिन जमीनी स्तर पर उनका पालन अक्सर नहीं होता। आदिवासी विमर्श इन अधिकारों के प्रति जागरूकता फैलाता है और उनके प्रभावी क्रियान्वयन की माँग करता है। क्योंकि आज के विकास मॉडल में आदिवासियों को बाँध निर्माण, खनन, वनों के कटान और विकास परियोजनाओं के नाम पर बलि का बकरा बनाया जा रहा है। यह विमर्श इस 'विकास' की जनविरोधी और विस्थापनकारी प्रवृत्तियों की आलोचना करता है और स्थानीय टिकाऊ और मानवकेंद्रित विकास की बात करता है। आदिवासी विमर्श की प्रासंगिकता केवल अतीत की पीड़ा को उजागर करने में नहीं है, बल्कि यह वर्तमान की चुनौतियों और भविष्य की संभावनाओं से भी जुड़ा हुआ है। "मानव जाति का इतिहास तथाकथित सभ्य लोगों द्वारा आदिवासियों के क्रमिक विस्थापन और विनाश का भी इतिहास है, जिनकी सभ्यता शोषण और हिंसा से उत्पन्न हुई थी। आज जबकि वह सभ्यता, भूमंडलीकरण, सांप्रदायिक और जातीय हिंसा, पारिस्थितिकीय विनाश और युद्ध के माध्यम से मानव जाति को आत्मघात के कगार पर ले आई है, तब पहले से ज्यादा जरूरी है कि हम आदिवासियों के सामुदायिक मूल्यों और प्रकृति के साथ उनके बंधुत्व से सीख प्राप्त करें।"[10] यह विमर्श भारतीय समाज के लोकतांत्रिक, समतामूलक और बहुसांस्कृतिक स्वरूप को साकार करने की दिशा में एक आवश्यक कदम है।

निष्कर्ष :-

आदिवासी विमर्श केवल एक साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं बल्कि एक सांस्कृतिक पुनरुत्थान और सामाजिक न्याय की माँग है। यह विमर्श उस मौन को तोड़ने की प्रक्रिया है जो सदियों से आदिवासी समाज पर थोपी गई थी। आज जरूरत है इस विमर्श को सुनने–समझने और स्वीकारने की–ताकि एक समतामूलक और समावेशी समाज की ओर बढ़ा जा सके। यह विमर्श केवल आदिवासियों के आर्थिक शोषण या राजनीतिक उपेक्षा का दस्तावेज नहीं है बल्कि उनकी सांस्कृतिक पहचान, सामाजिक गरिमा और आत्मनिर्णय के अधिकार की भी पुर्नस्थापना का प्रयास है। आदिवासी समुदाय ने भारत के विभिन्न कालखंडों में सशक्त और स्वायत्त जीवन जीने के लिए प्रयास किए, लेकिन उपनिवेशवाद और आधुनिक विकास ने उनकी संस्कृति और अस्तित्व को चुनौती दी। आदिवासी विमर्श इन संघर्षों को एक सकारात्मक चेतना के रूप में प्रस्तुत करता है–जहाँ आदिवासी समाज एक निष्क्रिय शिकार नहीं बल्कि एक जीवंत प्रतिरोधकर्ता के रूप में उभरता है। साहित्य में आदिवासी संघर्षों की उपस्थिति इस बात का प्रमाण है कि, आदिवासी समुदाय ने अपने भूमि अधिकार, संस्कृति की रक्षा और समानता के लिए संघर्ष किया। आदिवासी लेखकों और कवियों ने अपने साहित्य में उन संघर्षों को जगह दी है, जो आदिवासी समुदायों ने औपनिवेशिक शासन पूंजीवाद और राजनीतिक दबाव के खिलाफ किए।

आज भी आदिवासी लेखक अपनी रचनाओं के माध्यम से आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक दबावों के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद करते हैं और आदिवासी समाज की स्थिति को सुधारने के लिए संघर्ष करते हैं। आदिवासी विमर्श ने यह स्थापित किया कि आदिवासी समुदाय न तो 'पिछड़े' हैं और न ही 'सभ्यता के बोझ' के पात्र, बल्कि वे अपनी विशिष्ट संस्कृति, जीवन दर्शन और ज्ञान परंपराओं के साथ मानवता की विविधता को समृद्ध करते हैं। इस विमर्श ने साहित्य, राजनीति और सामाजिक आंदोलनों के माध्यम से विकास की एक वैकल्पिक दृष्टि प्रस्तुत की है–जहाँ विकास का अर्थ केवल आर्थिक उन्नति नहीं, बल्कि न्याय, गरिमा और सांस्कृतिक स्वतंत्रता है। आज आदिवासी विमर्श न केवल आदिवासी अधिकारों की लड़ाई का हिस्सा है, बल्कि यह संपूर्ण मानव समाज को यह सोचने पर मजबूर करता है कि असली प्रगति वह है जो सबसे वंचित व्यक्ति

की गरिमा को सुरक्षित रखे। इस तरह, आदिवासी विमर्श शोषण के खिलाफ संघर्ष, अस्मिता की खोज और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

संदर्भ सूची :-

1. सुधीश पचौरी, हिन्दुत्व और उत्तर–आधुनिकता, राधाकृष्ण प्रकाशन–2002, पृष्ठ संख्या 43
2. रमणिका गुप्ता, आदिवासी समाज और साहित्य, कल्याणी शिक्षा परिषद प्रकाशक–2015, पृष्ठ संख्या 70
3. मार्टिन मेकवान, मेरी कथा : दलित यातना, संघर्ष और भविष्य, परंपरा पब्लिकेशन–2015, पृष्ठ संख्या 34
4. मार्टिन मेकवान, मेरी कथा : दलित यातना, संघर्ष और भविष्य, परंपरा पब्लिकेशन–2015, पृष्ठ संख्या 133
5. रमणिका गुप्ता, आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह, राधाकृष्ण प्रकाशन–2012, पृष्ठ संख्या 09
6. मार्टिन मेकवान, मेरी कथा : दलित यातना, संघर्ष और भविष्य, परंपरा पब्लिकेशन–2015, पृष्ठ संख्या 53
7. रमणिका गुप्ता, आदिवासी समाज और साहित्य, कल्याणी शिक्षा परिषद प्रकाशक–2015, पृष्ठ संख्या 17
8. देवेन्द्र चौबे, आधुनिक साहित्य की दलित विमर्श, ओरियेंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड–2009, पृष्ठ संख्या 16
9. रमणिका गुप्ता, आदिवासी समाज और साहित्य, कल्याणी शिक्षा परिषद प्रकाशक–2015, पृष्ठ संख्या 91
10. रमणिका गुप्ता, आदिवासी समाज और साहित्य, कल्याणी शिक्षा परिषद प्रकाशक–2015, पृष्ठ संख्या 15–16

Phone Number 8105566341

Email-Id : pa.anupama09@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक SANGAM
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE Vol. 13, Issue 5
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL पृष्ठ : 206–210

आदिवासी विमर्श अर्थ व अवधारणा

वानखेडे गणेश संतोष
शोधार्थी, दयानंद कला महाविद्यालय, लातूर।

पिछले कुछ दशकों से आदिवासी जन–जीवन से जुड़े सवाल (जल, जंगल और जमीन से सम्बन्धित) प्रमुखता से उभरकर सामने आए है। अस्मिताओं से जुड़े विमर्शों में 'आदिवासी विमर्श' भी एक महत्वपूर्ण विमर्श है। आदिवासी विमर्श और उसकी अवधारणा से पूर्व आदिवासी कहते किसे है, वह कौन है, कहाँ से आए हैं? इसको समझना जरूरी है 'आदिवासी' शब्द का सीधा अर्थ है, आरम्भिक या प्रारम्भ से निवास करने वाले 'मूल निवासी'। 'आदिवासी देश के मूल निवासी माने जाने वाले तमाम आदिम समुदायों का सामूहिक नाम है।'[1] हांलाकि इन्हें आधिकारिक रूप से भारत में 'अनुसूचित जनजाति' (Scheduled tribes) का नाम दिया गया है।

आदिवासियों को लेकर समाज की मुख्यधारा के एक हिस्सें में गलत धारणा इस रूप में दिखाई देता है कि उन्हें बिना असभ्य, जंगली, बर्बर आदिम समझा जाता है। जबकि यह समझ सत्य से कोसों दूर है। असलियत में आदिवासियों के जल, जंगल और जमीन को हड़पने, कब्जा करने के लिए उक्त गलत धारणा को प्रचारित किया गया है। दरअसल 'भारत के घने जंगलों में, पहाड़–पर्वतों में, घाटियों–दरों में आदिवासी अपना जीवन जी रहा था। उस जंगल पर, उस हिस्से पर आदिवासी का ही अधिकार था, उसकी सत्ता थी। फल–फूल, लकड़ी, शिकार के लिए उसे किसी से मंजूरी लेने की जरूरत नहीं थी। जंगल पर अधि कार आदिवासी का ही था। खैबर दर्रे से आर्य भारत आए। वे रथ, बर्फी, कुल्हाड़ी, गाय, घोड़े, दोरो की फौज लेकर आए और पहला हमला उन्होने आदिवासियों पर ही किया।'[2] यह सर्वमान्य है कि आर्य भारत के मूल निवासी नहीं थे, वे 'मध्य एशिया' से भारत आए थे। "प्रसिद्ध इतिहासकार रामशरण शर्मा ने आर्यों के भारत आगमन के बारे में लिखा है कि 'इस बात के पुरातात्विक और भाषाई साक्ष्य है जिनके आधार पर हम कह सकते है कि आर्य भाषा–भाषी मध्य एशिया से भारत वर्ष में आए।"[3] और भारत में उनका संघर्ष यहां के मूल निवासियों जिन्हें अनार्य के रूप में हम जानते हैं, के साथ हुआ और आर्यों ने उन्हें उत्तर भारत से मध्य और दक्षिण की ओर पलायन करने पर मजबूर किया। घने जंगलो में आदिवासियों को खदेड़ने का काम यहीं से शुरू हुआ।

"आज हजारों सालों से तथाकथित सभ्यता से दूर प्रकृति और जंगलों में रहने वाले आदिवासी एक समुदाय के रूप में सामूहिक जीवनयापन करते चले आ रहें हैं। 'दैत्य, पिशाच, राक्षस, असूर ऐसे अनेक उपहासपूर्ण शब्दों में अनार्यों के अस्तित्व की चर्चा वैदिक साहित्य तथा रामायण–महाभारत आदि ग्रन्थों में की गई है।"[4] जाहिर सी बात है कि जब आदिवासियों ने आर्यों का प्रतिरोध किया होगा, अपने अस्तित्व के लिए आर्यों

से संघर्ष किया होगा, वहीं से आर्यों ने आदिवासियों के लिए असूर और राक्षस जैसे शब्दों को गढ़ा होगा। यह एक विडम्बना ही है कि आजादी के बाद भी आदिवासियों को संवैधानिक रूप से 'आदिवासी' न कहकर उन्हें 'अनुसूचित जनजाति' कहा गया। 'अनुसूचित जनजाति' एक औपनिवेशिक शब्दावली है, जिसे अंग्रेजों ने अपने फायदे के लिए गढ़ा था। दरअसल अंग्रेजो ने अपने औपनिवेशिक शासन के दौरान आदिवासियों और उनके संसाधनो जल, जंगल, जमीन का दोहन करने के लिए दो तरीके अपनाए एक तो '1874' में 'शेडयूल्ड डिस्ट्रिक्ट एक्ट' लागू कर भारत के बहुत सारे जिलो को 'अनुसूचित जिलों' का दर्जा देकर दूसरा जंगलो को अपने आधिपत्य में लाने के लिए 1864, 1865 और 1878 के द्वारा वन विभाग की स्थापना और वन अधिनियम के प्रावधान लागू कर। '1878 के वन अधिनियम में यह प्रावधान किया गया कि किसी स्थान को जंगल घोषित करने के बाद वहां पर रहने वाले लोगो के सम्पत्ति अधिकार को मान्यता दी जाएगी। लेकिन इसके लिए यह जरूरी था कि दावा करने वाले लोग अपने इस दावे के पक्ष में कोई लिखित प्रमाण पेश करें। ऐसा न होने पर उन्हें इस जमीन का 'अतिक्रमक' घोषित कर दिया गया। बहुत सी जगहों को जंगल घोषित करते वक्त लोगों के अधिकार सही तरीके से तय नहीं किये गए। इस कारण उनके सारे अधिकार खत्म हो गए।"[5] इस तरह अंग्रेजो ने अपने फायदे के लिए, अपनी साम्राज्यवादी लूट को जारी रखने के लिए उक्त नियमों अधिनियमों का इस्तेमाल किया। लेकिन आदिवासियों ने अंग्रेजों की इस लूट और जंगल में उनके दखल के खिलाफ खुलकर प्रतिरोध किया, बिरसा मुण्डा का अंग्रेजो के विरुद्ध विद्रोह और संघर्ष को उदाहरण के तौर पर देखा जा सकता है।

आजादी के बाद 'राष्ट्रीय विकास' के नाम पर आदिवासियों के जल, जंगल और जमीन का दोहन, और विस्थापन तेज हुआ है। इसका व्यापक दुष्प्रभाव पर्यावरण के विनाश के रूप में आज देखा जा सकता है। देश की आजादी के बाद भारतीय संविधान में 'आदिवासियों' को 'अनुसूचित जन जाति' कहा गया। जो निश्चित ही आदिवासी समाज और उनकी संस्कृति की विशेषताओं को प्रकट या उद्‌घाटित नहीं करता है। आजकल तो 'आदिवासी के लिए 'वनवासी' कहने का चलन भी बढ़ा है। 'आदिवासियों को 'जंगली' या 'वनवासी' दक्षिण पंथी लोग कहते हैं उनको असभ्य और बर्बर साबित करने के लिए, लगभग उसी अंदाज में जिस अंदाज में उपनिवेशवादी शक्तियाँ ट्राइव' या 'सेवेज' कहती हैं, ताकि उनके समाज और संस्कृति को पिछड़ा घोषित कर दक्षिणपंथियों को उन्हें सभ्य बनाने का ठेका मिल जाए। पिछले कुछ दशकों में हिंदुत्व की संरक्षक शक्तियां आदिवासियों की 'घरवापसी' के नाम पर उनका 'हिन्दूकरण' कर रही है।"[6] राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ जैसे दक्षिणपंथी संगठन आदिवासियों को वनवासी कहते हैं। इससे उनके इस तर्क को बल मिलता है कि आर्य भारत के मूल निवासी हैं और वनवासी जंगलों में रहने के कारण पिछड़ गये हैं, अतः उन्हें विकास की मुख्य धारा में लाने के लिए सभ्य बनाना जरूरी है।

लेकिन, अनेक प्रगतिशील, और वामपंथी तथा अन्य शोध अध्येताओं, आदिवासी समूहों और संगठनों के विचारकों का स्पष्ट मत है कि आर्य यहाँ के मूल निवासी नहीं थे यहां भारत के मूल निवासी आदिवासी ही थे जिन्हें आर्यों ने (जो कि बाहर से भारत में आए थे) छल, साजिश, और अपने से भिन्न नस्ल के आधार पर उन्हें भागने और जंगलों में रहने को विवश किया। 'वास्तव में, आदिवासी आर्यों से पूर्व का मनुष्य समूह है। वह इस

भूमि का मूल मालिक है। सही अर्थ में वह ही क्षेत्राधिपति है। इसलिए कुछ अध्येताओं ने उन्हें 'ॲबरिजनल' कहकर संबोधित किया है, जो उचित भी है। वनराई के बच्चे ही इस भूमि की आदि सन्तान हैं। गोंड़, भील, करेली आदि आदिवासी जनजातियों के आर्य पूर्व निवास के बारे में महात्मा ज्योतिबा फूले जी ने मार्मिक वचन कहें हैं। वे लिखते हैं :–

'गॉड भील क्षेत्री ये पूर्व स्वामी पीछे आए वहीं इरानी,

शूर, भील मछुआरे मारे गए रारों से ये गए हकाले जंगलो गिरिवनों में।"[7]

वैश्विक सन्दर्भ (अमरीका और ऑस्ट्रेलिया के मूल निवासियों के साथ यूरोपियनो द्वारा किए जाने वाले बर्बरता और शोषण की बुनियाद पर विकास का उदाहरण जग जाहिर है) को देखने से लगता है कि भारत के आदिवासी ही मूल निवासी थे और बाहर से भारत में आए आक्रान्ताओं ने उन्हें अपने से भिन्न मानते हुए उनके साथ बर्बर अत्याचार किया और उन्हें भागने और जंगलों में रहने के लिए मजबूर किया। इस आधार पर यह स्पष्ट है कि आदिवासियों को 'वनवासी' कहना सही नहीं है। यहाँ तक कि अंग्रेज उपनिवेशवादियों द्वारा अनुसूचित जनजाति नाम भी उपयुक्त नहीं लगता। 'जैसे अनुसूचित जाति की जगह 'दलित' शब्द गहरे अर्थ रखता है, वैसे ही अनुसूचित जनजाति केवल आरक्षण या नौकरियों में हिस्सेदारी के संदर्भ में प्रासंगिक हो सकता है आदिवासी एकता और संघर्षों की परंपरा का बोध नहीं करा पाता। 'आदिवासी' शब्द उस चेतना का भी प्रतीक है जिसकी मदद से उन्होंने अपने दुःख–दर्दी को समझा है और जो उन्हें मुक्ति की राह में आगे बढ़ा रही है। 'आदिवासी पद में एक आंदोलनधर्मिता है जो जनजाति में नहीं।"[8] आदिवासी विमर्श के लिए आदिवासी समाज और संस्कृति की विशेषताओं की पहचान जरूरी है।

जब हम आदिवासी कहते है तो इसका यह मतलब नहीं है कि यह कोई एक जाति या समरूप समाज है बल्कि भारत मे कई तरह के आदिवासी समुदाय हैं जिनमें परस्पर बहुत सारी भिन्नताएं हैं, कई ऐसे आदिवासी समुदाय हैं जो बहुत पिछड़े है और कई ऐसे है जो काफी आगे बढ़ चुके हैं। कुछ आदिवासी समुदाय खेती करते हैं, तो कुछ अभी भी जंगलों में रहकर उन्हीं जंगलों से अपने जीवन यापन के लिए, आदिम तरीके से इस्तेमाल कर रहें हैं। यानि अभी भी वो जंगल पर पूरी तरह निर्भर हैं। स्पष्ट है कि भारत में कई तरह के आदिवासी समुदाय है जैसे भारत के ष्पूर्वोत्तर में कितने अलग–अलग तरह के आदिवासी समाज है और उनके बीच कितने तरह के अन्तर्विरोध हैं और वे सभी अपनी–अपनी अलग पहचान को कायम रखने के लिए कितना संघर्ष कर रहे हैं। इसके साथ ही पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदायों से बाकी भारत के आदिवासी समुदायों में कई तरह के महत्वपूर्ण फर्क हैं। एक बुनियादी फर्क जो हमेशा ध्यान में रखना चाहिए वह यह है कि मध्य, उत्तर और पश्चिमोत्तर भारत में जो आदिवासी समाज रहते हैं ये सदियों से अपने चारों ओर हिन्दू आबादी से घिरे रहे हैं।

इस कारण उनके अन्दर बाकि हिन्दूओं से अपनी स्वायत्तता के बोध के बावजूद अलगाव की तीव्र भावना नहीं मिलती लेकिन पूर्वोत्तर के आदिवासी एक जमाने से मुख्य भारत भूमि से बिल्कुल अलग रहें हैं। इसलिए बाकी भारत के साथ उनका लगाव और जुड़ाव वैसा कभी नहीं हो सकता जैसा मध्य और उत्तर भारत के आदिवासियों का है। यही कारण है कि पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदायों पर छठा शैडयूल लागू किया गया है

जिसके फलस्वरूप उनकी जमीन की पूर्ण सुरक्षा है और वहीं उनके अपने इलाके हैं, जहां उन्हीं की परिषदें स्थानीय प्रशासन चलाती हैं।"[9] हांलाकि आजकल मणिपुर और उससे सटे अन्य जिलों में वहां के आदिवासियों और स्थानीय समुदायों के बीच परस्पर वैमनस्य, घृणा और हिंसा का जो रूप देखने को मिला वह बेहद गंभीर चिंता का विषय है।

बहरहाल आदिवासियों में परस्पर बहुत सारी भिन्नताओं के बावजूद उनमें एक महत्वपूर्ण समानता यह है कि उनके लिए भूमि या जमीन कोई संपत्ति नहीं जिसे खरीदा या बेचा जाए बल्कि वह उसका अपना एक ऐसा इलाका या क्षेत्र होता है, जहां वह स्वतंत्रतापूर्वक समूह के रूप में रहता है। जहाँ वह सदियों से अपनी पुरानी पुरखों की परंपराओं को संजोते हुए रहता चला आ रहा है। साथ ही सभी आदिवासी समुदायों के बीच एक और बहुत महत्वपूर्ण समानता देखने को मिलती है कि वह अपने जंगल, प्रकृति और परिवेश मे एकमेक है, उसका अपने जंगल और प्रकृति से गहरा लगाव, 'भाव और चेतना' दोनों ही रूपों में दिखाई देता है। प्रकृति उसके लिए सब कुछ है। 'आदिवासी प्रकृति और मनुष्य के बीच कोई भेद नहीं करते। यह उनकी एक खूबसूरत विशेषता है। चर, अचर, जड़, चेतन, पहाड़, पत्थर, नदी तालाब, मनुष्य और जीव–जंतु सब उनके लिए एक जैसे सजीव है। सबके अन्दर एक जैसी आत्मा का निवास है। यह आत्मा का निवास उनके लिए किसी शास्त्र में लिखी हुई बात नहीं है यह उनके जीवन दर्शन में गूंथी हुई चीज है और उनके रोजमर्रा के जीवन दृष्टि का अंग रही है।

प्रकृति और मनुष्य की एकता में उनका गहरा विश्वास रहा है यही उनकी धर्म दृष्टि है, यही उनकी साहित्य दृष्टि है और यही उनकी आध्यात्मिक दृष्टि और यही उनका सौन्दर्यबोध भी है।"[10] लेकिन आदिवासी समुदाय और उसका जंगल आज दोनो लोभ, लालच और विकास के नाम पर विस्थापन दोहन की विभीषिका झेल रहें हैं। आज आदिवासियों को उनकी अपनी जमीनों और जंगलो से उजाड़ा जा रहा है ताकि वहाँ के जंगलों को काटकर जमीनों की खुदाई करके वहाँ से खनिजों और अन्य धातुओं को निकाला जा सके। वर्तमान समय में आदिवासी विमर्श के सामने यह एक गंभीर चुनौती और सवाल है कि आदिवासियों और जंगलों तथा उनमें रहने वाले तमाम जीव–जंतुओं, पशु–पक्षियों, पेड़ो की हजारों प्रजातियों जो कि हमारे पर्यावरण और पारिस्थितिकी तंत्र के लिए बेहद जरूरी है, कैसे बचाया जाए, उन्हें सुरिक्षत रखा जाए। आज पूरी दुनिया पर्यावरण के विनाश से उपजे दुष्परिणामों को झेल रही है। ऐसे में हमे अपनी प्रकृति और जंगलो को और नष्ट होने से रोकना एक अनिवार्य लक्ष्य होना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. गंगा सहाय मीणा (संपादक), आदिवासी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014 पृष्ठ सं० 19.
2. रमणिका गुप्ता (संपादक), आदिवासी कौन, राधाकृष्ण पेपरबैक, नई दिल्ली, संस्करण 2022 पृष्ठ सं० 15.
3. गंगा सहाय मीणा (संपादक), आदिवासी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014 पृष्ठ सं0 27.

4. रमणिका गुप्ता (संपादक), आदिवासी कौन, राधाकृष्ण पेपर बैक, नई दिल्ली, संस्करण 2022 पृष्ठ सं० 25
5. अभय कुमार दुबे (संपादक), समाज विज्ञान विश्वकोश, खण्ड–1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2016 पृष्ठ सं० 130.
6. गंगा सहाय मीणा (संपादक), आदिसाहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, संस्करण 2014 पृष्ठ सं0 26.
7. रमणिका गुप्ता (संपादक), आदिवासी कौन, राधाकृष्ण पेपरबैक, नई दिल्ली, संस्करण 2022 पृष्ठ सं0 27.
8. सहाय मीणा (संपादक), आदिवासी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली संस्करण 2014 पृष्ठ सं0 28.
9. वीर भारत तलवार, आदिवासी और आदिवासी साहित्य की अवधारणा तद्भव पत्रिका (संपादक–अखिलेश) अंक, 34 नवम्बर 2016, पृष्ठ सं० 30.
10. वही, पृष्ठ सं० 31.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 211-215

आदिवासी विमर्श : संस्कृति और परम्परा

डॉ. कुमारी प्रेमलता
सीनियर असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, सुंदरवती महिला कॉलेज, भागलपुर
तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार– 812001

सारांश :–

आदिवासी विमर्श भारतीय समाज का एक महत्वपूर्ण एवं संवेदनशील पक्ष है, जो भारतीय समाज के आदिवासी समुदायों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्थितियों पर ध्यान केंद्रित करता है। हमारा देश भारत प्राचीन काल से सांस्कृतिक विविधताओं का देश रहा है। यहाँ विभिन्न जातियों एवं धर्मों के लोग आदिकाल से निवास करते आ रहे हैं। भारतीय संस्कृति एवं इतिहास में इन जातियों के अन्तर्गत आदिवासियों का अपना अलग ही महत्वपूर्ण स्थान है। ये अपनी विशिष्ट पहचान, संस्कृति और परम्पराओं के लिए जाने जाते हैं। "आदिवासी विमर्श" समकालीन साहित्य के विविध विमर्श में सबसे तेजी से उभरता हुआ विमर्श है। वास्तव में तो आदिवासी विमर्श का प्रारंभ देश की स्वतन्त्रता से पहले ही हो चुका था, किन्तु कई सदियों से हाशिए पर रहा आदिवासी समाज आज नक्सलवाद, ऑपरेशन उल्गुलान, कोल विद्रोह, वारली विद्रोह, ऑपरेशन ग्रीनहंट आदि की त्रासदी के कारण संवेदनशील रचनाकारों, नेताओं व समाजसेवियों के बीच चर्चा और विमर्श का प्रमुख केंद्र बन गया है। आदिवासी संस्कृति और परम्परा भारतीय समाज की एक अमूल्य निधि हैं। जिसकी अविरल धारा सुदूर अतीत से निरंतर आज तक प्रवाहित होती आयी है। प्राचीन काल से ही आदिवासी अपनी संस्कृति एवं परम्परा को संजोए वनों में, पहाड़ों पर तथा घाटियों में निवास करते आ रहे हैं। ये पूर्ण रूप से जल, जंगल और जमीन से जुड़े होते हैं। इन आदिवासियों की स्वतंत्र अस्मिता और अस्तित्व भारत की विविधतापूर्ण सांस्कृतिक विरासत को और अधिक समृद्धता प्रदान कर रहा है।

विशिष्ट शब्द :– आदिवासी, विमर्श, प्रकृति, परम्परा एवं जंगल।

'आदिवासी विमर्श' का जब उल्लेख किया जाता है तब हमारे मस्तिष्क में कौतूहलवश विचार उत्पन्न होता है कि इस 'विमर्श' शब्द का आखिर तात्पर्य क्या है? साथ ही इस आदिवासी विमर्श की आवश्यकता ही क्यों है? वस्तुतः विमर्श शब्द का तात्पर्य होता है – अनुकूल प्रतिकूल चिन्तन, सोच–विचार, चर्चा और सोच–समझ आदि।[1] इस विमर्श शब्द का अर्थ बृहत हिंदी कोश में इस प्रकार दिया गया है – विचार, विवेचन, परीक्षण, समीक्षा, गुण–दोष की मीमांसा, परामर्श, तर्क, ज्ञान आदि।[2] वहीं 'आदिवासी' शब्द का तात्पर्य है "मूलनिवासी या वनवासी"। भारतीय संविधान में आदिवासी समुदाय के लिए 'अनुसूचित जनजाति' पद का प्रयोग किया गया है।[3] "आदि यानि पहला आरंभ, तो 'आदिम' का अरबी अर्थ मनुष्य का आदि प्रजापति, मनु के समांतर। आदिवासी यानि

किसी प्रदेश के मूल निवासी।"[4]

अतः आदिवासी से तात्पर्य धरती के मूल निवासियों से है जो नगरों से दूर प्रकृति की गोद में घने जंगलों, ऊँचे पर्वतों, पहाड़ी घाटी प्रदेशों में अपनी अद्भूत संस्कृति व परम्परा के अन्तर्गत सामाजिक व्यवस्था में निवास करते हैं। वन व जंगल ही आदिवासी समाज की उपजीविका का प्रमुख साधन है। गिलिन और गिलिन ने अपनी रचना "कल्चर एंथ्रोपोलोजी" में आदिवासी की परिभाषा देते हुए लिखा है – "स्थानीय जनजातीय समूहों को ऐसा समवाय जनजाति कहा जाता है जो एक सामान्य क्षेत्र में निवास करता है, एक सामान्य भाषा का प्रयोग करता है तथा जिसकी अपनी सामान्य संस्कृति है।"[5] आदिवासियों की पहचान उनकी सांस्कृतिक धरोहर, भाषा, रीति–रिवाज और परम्पराओं से जुड़ी होती है। ये समुदाय अक्सर अपने अनूठे लोककला, संगीत और नृत्य के लिए प्रसिद्ध होते हैं। उनकी संस्कृति एवं परम्परा प्रकृति के साथ गहरे संबन्धों को दर्शाती है।

आदिवासी साहित्य मूलतः आदिवासी जीवन संघर्ष, अस्तित्व की समस्या, शोषण, विस्थापन एवं अस्तित्व का साहित्य है। यह साहित्य आदिवासी समाज के विभिन्न मुद्दों को उठाने वाली रचनाएँ हैं। वर्तमान में भारतीय साहित्यकारों ने अपने विभिन्न दृष्टिकोणों से आदिवासी साहित्य में काफी कुछ लिखा है। इससे आदिवासी समाज की दुर्दशा को मुखर शब्दों की अभिव्यक्ति प्राप्त हो सकी है। वास्तव में आदिवासी साहित्य को साहित्यकारों द्वारा ही विमर्श का एक प्रमुख मुद्दा बनाया गया है। "आदिवासी समाज में साहित्य सहित विविध कला माध्यमों का विकास तथाकथित मुख्यधारा से पहले हो चुका था, परंतु वहाँ साहित्य सृजन की परंपरा मूलतः मौखिक रही। आज भी सैकड़ों देशज भाषाओं में आदिवासी साहित्य रचा जा रहा है, जिसमें से अधिकांश से हमारा संवाद अभी शेष है।"[6]

आदिवासी विमर्श ने आदिवासी समाज के अधिकारों, उनकी मूलभूत आवश्यकताओं एवं उनकी सांस्कृतिक अस्मिता की जोरदार वकालत की है। आज आदिवासी समुदाय अपनी परम्परागत अस्त्र या हथियार के सहारे नहीं बल्कि कलम के सहारे लड़ाई लड़ने को तैयार हो गया है। इस विषय में रमणिका गुप्ता लिखती हैं – "आदिवासियों का कहना है, देखो हम एक ऐसे समाज में है, जिनके मूल्यों का न तो ह्रास हुआ, न ही उनमें विकृति आई है। हमारी भाषाओं ने अब कलम थाम ली है। हम लिखने लगे हैं कि, अब हमने अपनी अस्मिता पहचान ली है।"[7] इक्कीसवीं सदी में आदिवासी समाज के अस्तित्व की तलाश में आदिवासी कवि महादेव टोप्पो ने अपने कविता संग्रह "जंगल पहाड़ के पाठ" में आदिवासियों के अस्तित्व को लेकर सरकारी व्यवस्था से यह सवाल करते हैं कि :–

> "संविधान की भाषा में हम
> अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति हैं
> मनु की भाषा में शूद्र
> कम्युनिस्टों की भाषा में शोषित
> ईसाइयों की नजरों में अपवित्र लोग
> भाजपाईयों की भाषा में पिछड़े हिंदू
> मैं पूछता हूँ तुम सबसे
> आखिर इस देश में, इस प्रजातंत्र में

हम क्या हैं?

हम क्या हैं?"[8]

आज आधुनिक भारत में आदिवासी समाज अपेक्षित रूप से एक पृथक समाज है, जिसकी अपनी एक निश्चित भाषा, संस्कृति एवं परम्परा है। आदिवासी संस्कृति बहुत प्राचीन और गरिमामयी परम्परा रखने वाली संस्कृति है। "जियो और जीने दो" का संदेश देनेवाली आदिवासी संस्कृति में भाईचारा, समता और प्रकृति प्रेम मुख्य है। उनकी अपनी सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था, लोक साहित्य परम्पराएँ, विश्वास तथा रीति रिवाज होते हैं और ये अपनी क्षेत्रीय एकता के प्रति विशेष जागरूक होते हैं। सदियों से जंगल में रहनेवाली आदिवासी प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग अवश्य कर रहे हैं, परंतु इनके द्वारा प्रकृति को कभी नुकसान नहीं पहुंचाया गया। ये आरंभ से ही प्रकृति के प्रेमी होते हैं एवं ज्यादातर इनका विश्वास प्राकृतिक देवताओं में ही होता है, जैसे – नदी, सूर्य, चन्द्र, जंगल, पीपल एवं वृक्ष इत्यादि। यहाँ यह बात ध्यान आकर्षित करती है कि जब भारत में आधुनिक काल में ब्रिटिश सरकार द्वारा आदिवासियों का शोषण किया जाने लगा तथा उन्हें उनकी ही जमीनों से बेदखल किया जाने लगा, तो इसके परिणामस्वरूप आदिवासियों ने ब्रिटिश सरकार के खिलाफ विद्रोह का बिगुल फूँक दिया। अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए उन्होंने विद्रोह का दामन थाम लिया।

इस प्रकार प्रकृति की गोद में पैदा हुआ, पला और जवान हुआ यह आदिवासी प्रकृति की तरह ही सहनशीलता की सीमा तक अत्याचारों को सहने की क्षमता रखता है। लेकिन सहनशीलता के समाप्त होते ही प्रकृति की तरह ही ज्वालामुखी विस्फोट सा रौद्र रूप धारण कर अन्यायी अत्याचारियों पर अपना पूरा क्रोध एवं असंतोष जाहिर करता हुआ, संघर्ष पर उतरता है। छोटानागपुर के सिंहभूम, मानभूम, राँची के क्षेत्र में आदिवासियों ने जल, जंगल और जमीन के सवाल पर कोल विद्रोह किया। जिसमें मुंडा, हो, उराँव, भुईयाँ आदि अनेकों आदिवासी जातियाँ सम्मिलित थीं। इस विद्रोह ने आदिवासियों के अंदर दबे गहरे आक्रोश को बाहर ला दिया।

वहीं आदिवासियों द्वारा किये गए पहाड़िया आंदोलन, मुंडा आंदोलन, हो आंदोलन, खासी विद्रोह, कोल आंदोलन, सरदारी आंदोलन, नागा आंदोलन आदि इसके ज्वलंत प्रमाण हैं। वास्तव में इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि अधिकांश खनिज संपदा वनों में ही पाई जाती है, जो कि आदिवासियों के निवास करने वाले क्षेत्र के अन्तर्गत ही अधिकांशतः आते हैं।

तत्कालीन समय में पूंजीवाद की आवश्यकता का एक परिणाम यह निकला कि वन विभाग ने उन जंगलों को 'रिजर्व' घोषित कर दिया, जिन्हें आदिवासी आदिकाल से अपना निवास स्थान समझते आ रहे थे परंतु आदिवासी एवं प्रकृति के बीच गहरा रिश्ता है। प्रकृति की गोद में रहनेवाला समुदाय आदिवासी प्रकृति के बिना अस्तित्वहीन हो जाएगा। जीवन की इस गहरी पीड़ा का वर्णन करते हुए विश्वविख्यात चिंतक एडवर्ड सईद ने कहा था कि – "मेरी मातृभूमि से मुझे काट दिया जाना ही मेरे जीवन की सबसे गहरी पीड़ा है। जमीन का एक टुकड़ा महज भौगोलिक इकाई मात्र ही नहीं होता वरन् इतिहास, संस्कृति, परम्परा और विरासत का केंद्र होता है। सत्ता में बैठे लोगों के लिए जमीन भले ही सिर्फ आर्थिक विषय होता है। परंतु इसका असली मर्म इसमें जन्म लेने वाले किसान एवं आदिवासियों से पूछिए, जिनमें इनकी नाभि गड़ी होती है, और गड़ी होती है पुरखों की हड्डियाँ।"[9]

वर्तमान परिदृश्य में कोई भी आदिवासी समुदाय, गैर आदिवासियों के संपर्क से अछूता नहीं रह गया है।

जल, जंगल, जमीन, परम्पराएँ एवं संस्कृति आदिवासियों की अस्मिता हैं। वर्तमान समय में इन महत्वपूर्ण मुद्दों का मूल्यांकन किया जाना अति आवश्यक है। क्योंकि जल, जंगल, जमीन से जुड़ी समस्या, लोक संस्कृति की समस्या, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि की समस्याएँ आदिवासियों में दिनों–दिन गंभीर रूप लेती जा रहीं हैं। विकास के नाम पर आदिवासियों को विस्थापित कर जंगल और जल से वंचित कर जंगलों से बाहर खदेड़ा जा रहा है। जबकि वह प्रकृति से संवाद करता चलता है, उसका सहयात्री है।[10]

आज भारतीय आदिवासी समाज विभिन्न समस्याओं से लगातार जूझ रहा है। जिनमें आर्थिक समस्याएँ, सामाजिक समस्याएँ, सांस्कृतिक समस्याएँ, स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ तथा शिक्षा संबंधी समस्याएँ प्रमुख हैं। तत्कालीन समय में भारत के आदिवासी अधिकांशतः दुर्गम स्थानों पर निवास करते है। पहाड़ी भागों तथा घने जंगलों एवं घाटियों में रहने के कारण ये संचार एवं यातायात के साधनों से बहुत दूर रहते हैं। इन वजहों से उन्हें अपने जीवनयापन के साधन जुटाने में कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों एवं आरक्षण नीतियों के बावजूद आदिवासी समाज का एक बड़ा भाग आर्थिक एवं शैक्षणिक दृष्टि में पिछड़ा ही रह गया है। अब ऐसे प्रयास किए जाने आवश्यक हो गए हैं जिससे की आदिवासी जागरूक हो सकें। भारत सरकार द्वारा उनके उत्थान के लिए जो योजनाएँ बनाई गई हैं, वे उनका लाभ उठाकर शिक्षित हो सकें। जिससे उनका भी सर्वांगिण विकास हो सके। वास्तव में भूमिहीन, खेतिहर बंधुआ मजदूरों और श्रमिकों पर जो साहित्य लिखा गया है, वह नाकाफी है और संतोषजनक भी नहीं। आदिवासियों और दरिद्र समाज का दर्द भी इनमें पर्याप्त रूप से अभिव्यक्त नहीं।[11]

भारत के आदिवासी वर्तमान में तीव्र संक्रमण काल के दौर से गुजर रहें हैं। हमारी सामाजिक व्यवस्था आदिवासियों को हमेशा समाज के निचले पायदान पर खड़ा करती है। उन्हें अपनी ही बुनियादी जरूरतों एवं अधिकारों से वंचित रखती है। प्राचीन काल से ही आदिवासी वनों तथा पहाड़ों में निवास करते आ रहे हैं। इन्हें अपने जीविकोपार्जन के लिए पूरी तरह वनों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। इनकी प्रमुख समस्या जल, जंगल और जमीन से जुड़ी हुई है। तत्कालीन दौर में विकास के नाम पर उन्हें विस्थापित कर उन्हें उनके ही प्राचीन शरणस्थल वनों से शहरों की ओर धकेला जा रहा है। प्राचीन काल से ही ये जंगल आदिवासियों के प्राकृतिक गृह एवं शरणस्थल रहे हैं, परंतु उन्हें धोखे में रखकर आधुनिक काल में भूमि के निजीकरण के कारण आदिवासियों को विकास का भुलावा दिया जा रहा है। जंगलों का कटाव कर कारखाने लगाकर आदिवासियों को उनकी ही जमीन से साजिश के तहत बेदखल किया जा रहा है। परिणामस्वरूप छोटानागपुर, पश्चिम बंगाल, वीरभूम आदि कई प्रदेशों में आदिवासियों ने इस अन्याय एवं अत्याचार के खिलाफ उल्गुलान हूल भी किए हैं। इसी कारण यह आवश्यक है की शोषित, पीड़ित व विस्थापित आदिवासी अपने अधिकारों के प्रति सजग होकर अपनी आवाज बुलंद करे। जब–जब आदिवासियों की संस्कृति, रीति, रिवाज, परंपरा व अस्मिता को नष्ट करने का प्रयास किया गया है, तब–तब ये लोग बाहरी घुसपैठ के खिलाफ विद्रोह के लिए उठ खड़े हुए हैं। आदिवासियों ने अपनी संस्कृति, भाषा, अपने जीने की सामूहिक शैली, परम्पराओं और रीति रिवाजों की विरासत को आज भी जिंदा रखा है।[12]

निष्कर्षतः आज वैश्विकरण के दौर में आदिवासी संस्कृति एवं परम्परा भारतीय समाज की एक अमूल्य निधि है। परंतु आदिवासी समाज को मजदूर बनाकर उनकी संस्कृति, जमीन, जंगल, वनों आदि को बड़ी ही

चतुराई से हथियाकर उन्हें उनकी ही जमीनों से पलायन के लिए मजबूर किया जा रहा है। अतः हमें 'आदिवासी विमर्श' को समृद्ध करने की आवश्यकता है, जिससे कि अपने अस्तित्व तथा अधिकारों की लड़ाई लड़ रहे आदिवासी समाज के जीवन संघर्ष को मार्गदर्शन प्राप्त हो सके एवं आदिवासी समाज अपने हक की लड़ाई स्वयं लड़ने में सक्षम हों। आदिवासी समाज जो हाशिए पर पहुँच चुका है, उसे मुख्यधारा में लाने का दायित्व हम सभी का है तभी आदिवासी भाषा, साहित्य और आदिवासी चेतना का विकास हो सकेगा एवं उन्हें सही पहचान मिल सकेगी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आदिवासी समाज तथा उनकी संस्कृति, परम्पराओं की सुरक्षा आज की एक बड़ी चुनौती है। आज "आदिवासी विमर्श" एक व्यापक विषय है, जिसके द्वारा आदिवासियों के अधिकारों और विकास की दिशा में जागरुकता लाई जा सकती है।

सदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. कुमार, अरविंद, समांतर कोश हिन्दी, राजकमल प्रकाशन, पृ. सं. 331
2. प्रसाद, कालिका (सं.), बृहत हिन्दी कोश, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, वर्ष 1984, पृ. सं. 1059
3. शर्मा, राम शिवलोचन, भारत की जनजातियाँ, पृ. सं. 90
4. मीणा, हरिराम, आदिवासी दुनियाँ, नेशनल बुक ट्रस्ट, 2013, पृ. सं. 168
5. उत्प्रेती, हरिशचन्द्र, भारतीय जनजातियाँ : संरचना एवं विकास, राजस्थान, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर. पृ. सं. 1
6. मीणा, गंगा सहाय, आदिवासी साहित्य विमर्श : चुनौतियाँ और संभावनाएं, फॉरवर्ड प्रेस, बहुजन साहित्य वार्षिक, अप्रैल, 2013.
7. गुप्ता, रमणिका, आदिवासी साहित्य यात्रा, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2014 पृ. सं. 6
8. टोप्पो, महादेव, जंगल पहाड़ के पाठ, अनुज्ञा प्रकाशन, दिल्ली, पृ. सं. 90
9. सिंह, हितेष कुमार, सं. प्रयाग पथ (प्रवेशांक), इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, जनवरी, 2015, पृ. सं. 123
10. प्रमोद, कोवप्रत, समकालीन हिन्दी साहित्य और नए विमर्श, हिन्दी बुक ट्रस्ट, पृ. सं. 73
11. मीणा, हरिराम, आदिवासी दुनियाँ, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2012
12. कुमार, दीपक, चौबे देवेन्द्र, आदिवासी अस्मिता के प्रश्न : हाशिये का वृतांत, पृ. सं. 353

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 216-220

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में दलित-विमर्श

शिवलाल अहिरवार, शोधार्थी, हिंदी
सहायक प्राध्यापक, शासकीय नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, देवरी जिला– सागर म.प्र. 470226
डॉ. घनश्याम भारती, शोध निर्देशक, हिंदी
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गढ़ाकोटा जिला– सागर म. प्र.

सारांश :-

उपर्युक्त विवेचन के उपरांत हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि आजादी के कई दशक बीतने के बाद भी समाज में जातिगत पूर्वाग्रह बहुत मजबूत बने हुए हैं। हमारे रोजमर्रा के जीवन में हमारे आस–पड़ोस में, जहां हम रहते हैं और जहां हम काम करते हैं–वहां वंचित जातियों के खिलाफ मजबूत पूर्वाग्रहों की साझा भावना के साक्ष्य मौजूद है। आज आवश्यकता है उनको भी मुख्य धारा से जोड़ने की और साथ लेकर चलने की तभी हमारा देश एवं दलितों का विकास संभव है। यदि आज भी दलित समाज को मुख्य धारा से नहीं जोड़ा जाता है तो हम भारत का वह विकास नहीं कर सकते जो हम वास्तव में करना चाहते हैं। दलित मसीहा डॉक्टर भीमराव अंबेडकर ने किसी नेता का भेष धारण नहीं किया। उनका रूढ़ियों और पाखंड बाद में विश्वास नहीं था लेकिन जन नेता के रूप में भी भारतीय राजनीति के शीर्ष पर रहकर भी सामाजिक, धार्मिक, विचारधाराए जो समाज में चलती हैं उनको साथ जोड़ना चाहते थे। संविधान के माध्यम से उनको समाज की अग्रिम पंक्ति में स्थान दिलाने के लिए प्रयास किया। वर्तमान में ऐसे अनेक दलित लेखक हुए हैं जिन्होंने उस पीड़ा को अपने साहित्य या कहें हिंदी साहित्य की मुख्य गद्य विधा उपन्यास के माध्यम से अपनी पीड़ा को उजागर किया है।

दलित-विमर्श साहित्य की अवधारणा :-

सदियों से उपेक्षित दबी कुचली मानवता ने आज जीवन का पाठ सीख लिया है। भारतीय समाज की मूल वृत्ति वर्ण व्यवस्था, जातिवाद, ऊंच–नीच के कारण समाज का बहुत बड़ा वर्ग अपने मानवीय अधिकारों से वंचित है और नरकीय जीवन जीने को मजबूर है। व्यवस्था सदियों से भारतीय समाज व्यवस्था को संचालित करने वाली मनुवादी व्यवस्था ने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य व शुद्ध के नाम पर समाज को बाटकर विषमता की गहरी खाई खोदी दी थी। एक ओर ऐसा वर्ग था जिसके हाथ में सभी तरह के अधिकार थे तो दूसरी तरफ ऐसा भी वर्ग था जिसे समाज में जीने तक का अधिकार नहीं था। पशु से भी बदतर जीवन जीने को विवश यह वर्ग शूद्र के रूप में अभीहित है। बाबा साहब भीमराव अंबेडकर के अथक संघर्ष एवं संवैधानिक व्यवस्था के कारण समाज के निचले पायदान का व्यक्ति आज जागृत होने लगा है। अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो रहा है। जिसकी पीड़ा साहित्य में अभिव्यक्त नहीं हो पाई वह स्वयं आज अपने भोगे हुए यथार्थ को कलमबद्ध करने को आतुर हैं। इस पीड़ा

की अभिव्यक्ति आज दलित साहित्य के रूप में हो रही है।

दलित कौन है सदियों से भारतीय समाज व्यवस्था वेदों, शास्त्रों, स्मृतियों एवं धर्म ग्रंथो में बनाए गए नियमों से संचालित होती रही है। इसकी जड़ में वर्ण व्यवस्था है जो वैदिक व्यवस्था की शूद्र थे वही कालांतर में दलित के रूप में पहचाने गए। समाज का यह वंचित समुदाय अपने अधिकारों से वंचित रहा और यंत्रणा पूर्ण जीवन जीने को बिबस रहा। कालांतर में चतुर वर्ण व्यवस्था अन्य जातियों में विभाजित हुई। आज भी भारतीय समाज स्वाधीनता की पचहत्तर वर्ष पश्चात भी उन पर अन्याय और अत्याचार की घटनाएं आए दिन होती रहती हैं।

दलित कौन हैं?

दलित का कोशीय अर्थ है – मसला हुआ, मर्दित, दबाया, रौंदा या कुचला हुआ खंडित किया हुआ। (संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर सं. रामचंद्र शुक्ल)

इन शब्दों से यही प्रतीत होता है कि जिसका दलन हुआ है। भारतीय समाज व्यवस्था में निचली पायदान की वर्ण शूद्र का ही दलन हुआ है। दलित वह व्यक्ति है जो विशिष्ट सामाजिक स्थिति का अनुभव करता है। जिसके जीने के अधिकारों को छीना गया है। मात्र जन्म के आधार पर जिसको समाज में एक ही प्रकार का जीवन मिला है। मानव के रूप में जिनके अधिकारों को ठुकराया गया है। (डॉ. प्रभाकर : अस्मिता दर्श)

विशिष्ट सामाजिक स्थिति से आशय वर्ण व्यवस्था से है। जिसमें जन्म से ही जाती तय कर दी जाती है। यह व्यवस्था इसे बदलने का अधिकार नहीं देती।

अजय नावरिया का यह उपन्यास 'उधर के लोग' भारतीय संस्कृति की विशिष्टता और वैयक्तिक सत्ता के साथ–साथ अन्तरराष्ट्रीय मुद्दों को रेखांकित करता है। बेशक, यह उनका पहला उपन्यास है, लेकिन अपनी शिल्प संरचना और वैचारिक परिपक्वता में, यह अहसास नहीं होने देता।

उपन्यास में हिन्दू कहे जाने वाले समाज के अन्तर्विरोधों, विडम्बनाओं और पारस्परिक द्वेष के अलावा, उसके रीति–रिवाजो का भी सूक्ष्म और यथार्थपरक अंकन किया गया है। यह द्वन्द्व भी उभरकर आता है कि क्या वर्णाश्रम धर्म ही हिन्दू धर्म है या कुछ और भी है?

उपन्यास, पाठकों में प्रश्नाकुलता पैदा करता है कि क्या 'जाति' की उपस्थिति के बावजूद 'जातिवाद' से बचा जा सकता है? क्यों विभिन्न समुदाय, एक–दूसरे के साथ, सह–अस्तित्व के सिद्धान्त के तहत नहीं रह सकते? क्यों? इसके अलावा उपन्यास में बाजार की भयावहता, वेश्यावृत्ति, यौन–विकार, विचारधाराओं की प्रासंगिकता, प्रेम, विवाह और तलाक पर भी खुलकर बात की गई है।

उपन्यासकार की सबसे बड़ी विशेषता यथार्थ को रोचक, प्रभावोत्पादक और समृद्ध भाषा में रूपान्तरित करने में है। यह सब उन्होंने नायक की जीवन–कथा के माध्यम से बड़े कुशल ढंग से किया है।

''पलायन'' उपन्यास में दलित विमर्श एक महत्वपूर्ण विषय है, जो दलित समुदाय के पलायन के कारणों, परिणामों और उनके जीवन के अनुभवों को उजागर करता है।

उपन्यास में दलित समुदाय के पलायन के कारणों को दर्शाया गया है, जैसे कि आर्थिक संकट, सामाजिक भेदभाव, और राजनीतिक उत्पीड़न। उपन्यास में दलित पात्रों के जीवन के अनुभवों को दर्शाया गया है, जैसे कि उनके संघर्ष, उनकी आकांक्षाएं, और उनकी चुनौतियाँ। उपन्यास में दलित समुदाय के लिए सामाजिक न्याय की मांग की गई है, जैसे कि समानता, न्याय, और अधिकार।

उपन्यास में सामाजिक न्याय की मांग की गई है, जैसे कि समानता, न्याय, और अधिकार। उपन्यास में दलित पहचान को दर्शाया गया है, जैसे कि उनकी भाषा, उनकी परंपराएं, और उनकी कला। उपन्यास में दलित समुदाय के संघर्ष और प्रतिरोध को दर्शाया गया है।

''मिस रमिया'' उपन्यास में दलित विमर्श एक महत्वपूर्ण विषय है, जो दलित समुदाय के अनुभवों, संघर्षों और आकांक्षाओं को उजागर करता है। रमिया उपन्यास की नायिका रमिया एक दलित पात्र है जो अपने समुदाय के लिए संघर्ष करती है और अपनी पहचान को बनाए रखने के लिए प्रयास करती है। उपन्यास में दलित समुदाय के सदस्यों का चित्रण किया गया है, जो उनके जीवन के अनुभवों और संघर्षों को दर्शाता है।

उपन्यास दलित समुदाय के उस वर्ग पर केंद्रित है जो मध्यम वर्ग में प्रवेश करने की कोशिश कर रहा है। इसमें उनकी सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि, शिक्षा, और उनके जीवन में आने वाली चुनौतियों को दर्शाया गया है।

यह उपन्यास दलित मध्यम वर्ग के लोगों के संघर्ष को दर्शाता है। वे जातिगत भेदभाव, सामाजिक असमानता, और आर्थिक चुनौतियों का सामना करते हैं। साथ ही, उन्हें अपनी पहचान और अपनी संस्कृति के बीच एक द्वंद्व का भी सामना करना पड़ता है।

उपन्यास दलित समुदाय के लोगों की सामाजिक पहचान पर भी प्रकाश डालता है। वे किस तरह अपनी पहचान बनाते हैं और समाज में अपनी जगह कैसे बनाते हैं, इस पर विचार किया गया है। उपन्यास दलितों की आकांक्षाओं को भी उजागर करता है। वे किस तरह अपनी सामाजिक स्थिति को बेहतर बनाना चाहते हैं।

कुल मिलाकर, 'मिस रमिया' एक शक्तिशाली उपन्यास है जो दलित समाज के अंदरूनी संघर्षों और सामाजिक असमानताओं को उजागर करता है। यह उपन्यास दलित महिलाओं के संघर्ष और प्रतिरोध को दर्शाता है और दलित साहित्य में एक महत्वपूर्ण योगदान है।

'हिंदू' उपन्यास शरण कुमार लिंबाले द्वारा लिखित है। जिसमें अयोध्या में राम मन्दिर बनाने के प्रश्न पर हिन्दू संगठनों ने जमीन–आसमान एक किया और कार सेवकों ने बाबरी मस्जिद ध्वस्त कर दी। इस घटना के बाद देश का सामाजिक वातावरण बदलने लगा। मुम्बई में हुए दंगे, बम विस्फोट, कश्मीर में चल रही आतंकवादी कार्रवाइयाँ, संसद पर हुआ हमला, आदि से देश की शान्ति खतरे में पड़ गयी। राजनीतिक दहशतगर्दी ने इस देश के सौहार्द को खून में डुबो दिया। इस दहशतगर्दी के विरोध में चर्चाएँ शुरू हुईं। राजनीतिक दहशतगर्दी ने पूरे विश्व को ही अपने घेरे में ले लिया। हिन्दू समाज के विषम ताने–बाने और विकृत जाति व्यवस्था का पोस्टमार्टम करने हेतु 'हिन्दू' उपन्यास लिखा गया है। इस देश पर जाति व्यवस्था का जो कलंक है, उसे मिटाए बगैर यह देश सुन्दर नहीं हो सकेगा। जाति व्यवस्था के खिलाफ बोलने का अर्थ है राष्ट्रीय एकता की, सौन्दर्य की भाषा बोलना। 'हिन्दू' महज एक साहित्यिक कृति नहीं है, अपितु यह लेखक की एक साहित्यिक–सांस्कृतिक भूमिका भी है।

मोहनदास नैमिशराय द्वारा लिखा गया उपन्यास 'वीरांगना झलकारी बाई' में झलकारी बाई की कहानी है। इस उपन्यास में 1857 के झांसी के संग्राम का वर्णन है। इसमें सामाजिक परिवेश में दलित समाज के शोषण को भी दिखाया गया है। इस उपन्यास में क्या है?

इस उपन्यास में झांसी में 1857 के संग्राम का वर्णन है।

इसमें सामाजिक परिवेश में दलित समाज के शोषण को दिखाया गया है। इसमें उच्चवर्णीय लोगों द्वारा दलित समाज का शोषण दिखाया गया है।

इसमें अंग्रेजों के आक्रमण से चरमराए सामाजिक परिवेश को दिखाया गया है। इसमें दलित समाज को शिक्षा, सत्ता, संपत्ति से दूर रखे जाने को दिखाया गया है।

'जख्म हमारे' उपन्यास मोहनदास नैमिशराय द्वारा लिखा गया एक दलित साहित्य का उपन्यास है। यह उपन्यास दलित समुदाय के जीवन, संघर्ष, और सामाजिक भेदभाव पर आधारित है। यह उपन्यास दुःख, वेदना, जातिगत हीनता, दलितों पर सवर्णों के अत्याचार, और सांप्रदायिकता के दंश से ओत–प्रोत है।

दलितों पर सवर्णों के अत्याचार, साम्प्रदायिकता का दंश आदि समस्याओं से ओत–प्रोत है। साम्प्रदायिक दंगों में स्त्रियों पर होने वाले बुरे बर्ताव, बर्बरता, हिंसा आदि का मार्मिक वर्णन किया गया है।

सुअरदान :–

रूपनारायण सोनकर जी का उपन्यास है सूअरदान। सूअरदान समाज में सदियों से चली आ रही लूली–लंगड़ी अंध धार्मिक प्रथाओं को मिटाता है। सोनकर ने सुअरदान उपन्यास लिखकर प्रेमचंद की चुनौती को स्वीकार किया और गोदान में स्थापित धार्मिक मिथको को सूअरदान ने ध्वस्त कर दिया है। यह ऐसा एक सशक्त उपन्यास है जिसमें समस्याओं की प्रस्तुति के साथ निवारण का सुझाव भी पेश किया गया है।

सुशीला टाकभौरे का उपन्यास : तुम्हे बदलना होगा :–

समाज और साहित्य का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। जो कुछ समाज में घटित होता है उसका प्रभाव साहित्य पर अवश्य पड़ता है। समकालीन हिंदी साहित्य में यदि हम दलित लेखिकाओं की बात करें तो सुशीला टाकभौरे का स्थान विशेष महत्व रखता है। उनका व्यक्त्वि प्रभावकारी होते हुए भी दलित स्त्री चेतना को लेकर मुखर है। वर्तमान साहित्य में सुशीला टाकभौरे का उपन्यास 'तुम्हे बदलना होगा' दलित जीवन की वर्ण जाति भेद की समस्याओं को वर्तमान संदर्भों में गहराई से रेखांकित करता है। इस उपन्यास के नायक धीरज और नायिका महिमा दोनों ही दलित समाज को जागृति करने की ओर अग्रसर है। यह उपन्यास समाज में समता एकता का निर्माण कैसे हो वर्ण जाति के भेदभाव को भूलकर सब ग्राहक तत्व भाव के साथ कैसे आगे बढ़ सकते हैं। मानवता को ही सच्चा धर्म माना जाए सामाजिक समानता और स्त्री पुरुष समानता की भावना के साथ नए समाज के निर्माण की बात को दिखाता है। सामाजिक समानता की बात करते हुए यह उपन्यास दलित जाति की लड़की उच्च वर्ण के व्यक्ति के साथ विवाह करके उनके परिवार के साथ सम्मान पूर्ण क्षमता तथा स्वतंत्रता से कैसे जीवन जी सकती है। अंतरजातीय विवाह को भी इस उपन्यास के माध्यम से बढ़ावा दिया गया है। वर्ण जाति भेद की समस्याओं को वर्तमान संदर्भों को जोड़कर लेखिका ने बखूबी प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। आवास की समस्या तथा शिक्षा की समस्या प्रदान की है। जैसे शहरों की दलित बस्तियों में सड़कों के किनारे भली–भांति देखा जा सकता हैं। उन्हें ढंग से दैनिक सुविधाएं भी उपलब्ध नहीं हो पाती है।

मोहनदास नैमिशराय द्वारा रचित उपन्यास बाबा साहब अंबेडकर दलित अस्मिता से जुड़ा एक तथ्यपरक उपन्यास है, जिसमें उनके पूरे जीवन संघर्ष और ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक और शैक्षिक घटनाओं को शामिल किया गया है। यह उपन्यास बाबा साहेब डॉ. अंबेडकर के जीवन, संघर्ष और दलित अधिकारों के लिए उनके योगदान को चित्रित करता है। यह पुस्तक दलितों के जीवन, उनके अनुभवों और जातिगत भेदभाव के

खिलाफ उनके संघर्ष को उजागर करती है। यह उपन्यास डॉ. अंबेडकर के विचारों और विचारधाराओं को भी प्रस्तुत करता है, जैसे कि शिक्षा का महत्व, सामाजिक न्याय और समानता आदि।

डॉ. अंबेडकर ने जातिगत भेदभाव और सामाजिक असमानता के खिलाफ आवाज उठाई।

उन्होंने शिक्षा के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन लाने पर जोर दिया है।

यह उपन्यास डॉ. अंबेडकर के जीवन और संघर्ष को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत है।

महानायक डॉ. अम्बेडकर का बचपन :-

डॉ. अम्बेडकर के बचपन के वर्ष भारतीय इतिहास या सामाजिक सुधार के इतिहास में रुचि रखने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए एक आवश्यक पुस्तक है। यह पुस्तक भारतीय इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण हस्तियों में से एक की अच्छी तरह से लिखी गई और जानकारी पूर्ण जीवनी है।

संत रविदास की राम—कहानी देवेन्द्र दीपक की प्रथम औपन्यासिक रचना है। लेकिन इसमें एक अनोखापन है। अधिकतर जीवनियां जिस ढ़ंग से लिखी जातीं हैं, वह उतनी प्रभावी नहीं हो पाती, क्योंकि जीवनी पात्र पाठक से सीधा संवाद स्थापित नहीं कर पाते हैं। इस राम कहानी में ऐसा नहीं है। लेखक ने संत रविदास के जीवन—दर्शन को समझकर सटीक शैली का प्रयोग किया है। इस महापुरुष के प्रमुख जीवन प्रसंगों को रोचक वार्तालाप शैली में वर्णन किया गया है। कहीं—कहीं तो स्वयं ही कथन उनके द्वारा प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने रविदास जी से काल्पनिक बातचीत करते हुए इस राम कहानी को उनसे ही स्वयं अभिव्यक्त करवाया है। इस कारण यह पुस्तक पाठक से सीधा संवाद स्थापित करने में सफल हो गई।

संदर्भ सूची :-

1. संजय कुमार, प्रोफेसर, दैनिक भास्कर, 22 अप्रैल 2025
2. प्रो. किशोरी लाल रैगर,हिंदी विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर।
3. सारिका, मई 1976, स. कमलेश्वर।
4. अजय नरवरिया, उधर के लोग— उपन्यास।
5. के.नाथ 'पलायन'— उपन्यास।
6. कावेरी, मिस रमिया —उपन्यास।
7. शरण कुमार लिंबाले, हिंदू —उपन्यास।
8. मोहनदास नैमिशराय, वीरांगना झलकारी बाई —उपन्यास।
9. मोहनदास नैमिशराय, जख्म हमारे— उपन्यास।
10. रूपनारायण सोनकर, सूअरदान—उपन्यास।
11. सुशीला टाकभौरे, तुम्हें बदलना होगा— उपन्यास।
12. मोहनदास नैमिशराय, बाबा साहब अंबेडकर —उपन्यास।
13. देवेंद्र दीपक, संत रविदास की राम कहानी —उपन्यास।

मो. 8823045608 Email : shivlala77@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 221-228

समकालीन कवि कुमार अंबुज की कविताओं में पर्यावरणीय संवेदना

निषा राफेल
शोधार्थी, महात्मा गाँधी यूनिवर्सिटी, कोट्टयम, सेन्टर – कातलिकेट कॉलेज, पत्तनंतिट्टा।

कुमार अंबुज समकालीन हिन्दी कविता के प्रतिनिधि कवि है। उनका जन्म 13 अप्रैल 1957 में मध्य प्रदेश के गुना में हुआ है। कविता, आलोचना एवं कहानी इन तीनों विधाओं में उन्होंने अपनी कलम चलाई। अब तक उनके पांच काव्य संग्रह– 'किवाड़', 'क्रूरता', 'अनंतिम', अतिक्रमण', 'अमीरी रेखा और एक कहानी संग्रह 'इच्छाएँ' प्रकाशित हुए हैं। कुमार अम्बुज को भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार, श्रीकांत वर्मा सम्मान, केदार सम्मान, वागीश्वरी पुरस्कार, माखनलाल चतुर्वेदी पुरस्कार, गिरिजा कुमार माथुर सम्मान आदि प्राप्त हुए है।

पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ होता है (परि + आवरण : बाहरी आवरण, जिसका अर्थ सामान्यतया पृथ्वी के बाह्य आवरण से लगाया जाता था, बाद में शब्द की विशालता एवं व्यापकता बढ़ती चली गयी, तब इसके मूल स्वरूप में भी परिवर्तन या और इसके अर्थ ने व्यापकता ग्रहण की। इस स्थिति में पहुँचने के उपरान्त पर्यावरण का सामान्य अर्थ भूमि–जल और वायु से लगाया जाने लगा। प्रकृति बहुविध स्वरूप की है। वह अनंत स्वरूपा है। वह जड़–चेतन, चर–अचर, सजीव–निजैव विविध रूपों में हैं। उसके विविध रूपों में मानव भी एक है। सबसे अधिक चेतन, कर्मरत, सजग, जागृत, संवेदनशील, भावुक, विचारशील, कल्पना प्रवण तथा अभिव्यंजना शक्ति सम्पन्न। वह इस विस्तीर्ण प्रकृति के बीच तथा उसके साथ रहता है। उसे अपने अनुकूल बनाता है तथा गतिशील रहता है। परंतु जैसे जैसे वह विविध क्षेत्रों में विकास करता गया वैसे–वैसे वह प्रकृति से दूर होता गया। प्रकृति से जो रागात्मक संबन्ध रहा था वह कविता के क्षेत्र में भी कम होता गया। जब मानवीय अस्मिता ढूढने के प्रयत्न प्रारंभ हुए तो साहित्यकारों की दृष्टि 'प्रकृति' की ओर पुनरूश्च केन्द्रित हुई। जिस प्रकृति से मनुष्य स्वाभाविकता से जुडा है परंतु जड़वत् मानसिक स्थिति में वह उसे भूल गया था, उसके साथ उसके रागात्मक संबंध स्थापित होने लगे।

पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति संवेदना :–

प्रकृति मुलतः सृजनधर्मी है। वह प्रचीन भी है और नवीन भी। प्रकृति बहुत ही विशाल है तथा हमारी संवेदनाएँ भी प्रकृति से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है। मनुष्य प्रकृति की ही देन है। वह उसी से निर्माण हुआ है। अनादिकाल से मानव का प्रकृति पर निर्भर रहना एक निर्विवाद सत्य है। तब से मानव प्रकृति से सहज भाव से

सम्बन्ध था। सभ्यता का युग आने पर दरारें आ गयी।

आधुनिकता, मशीनीकरण, यात्रिकता, उपभोक्तावाद, जनसंख्या वृद्धि, प्रदूषण आदि प्रकृति एवं पर्यावरण को बडे मात्रा में असंतुलित कर दिया है। मानव केवल भौतिक सुख में डूबता गया और प्रकृति से अलग होता गया। प्रकृति के अधीन रहने की स्वाभाविक स्थिति को फेंक मानव उसके विभिन्न रूपों को आत्मसात कर उस पर भी हावी होता गया। वह प्रकृति पर निर्भर रहने की बगैर स्वंय उस पर हावी होने लगा। पर्यावरण असंतुलन से संबन्धित अपनी मन की व्याकुलता कुमार अंबुज जी उनके कई कविताएँ द्वारा पाठकों के सामने रखे हैं।

पर्यावरण असंतुलन पर संवेदना :–

'यथास्थिति' कविता में कवि ने आने वाले समय में मनुष्य की अनियंत्रित गतिविधियों के कारण उत्पन्न होने वाले संकटों का चित्रण किया है और एक गहरी सामाजिक एवं पर्यावरणीय चेतावनी भी देती है।

"धूप तेज और सीधी गिरेगी
मगर दान में दूध नहीं बनेगा
पानी संतुष्टि करने का स्वभाव
खो देगा
गिर जाएगा बैरोमीटर का पारा
डालियाँ हो जाएँगी नंगी।"

यहाँ कवि पर्यावरण असंतुलन की भयानक स्थिति को उल्लेख करके कहते हैं कि प्रकृति की सामान्य प्रक्रियाएँ जैसे सूरज की रोशनी अब बेअसर जाएगी तेज धूप तो होगी, मगर अनाज फलदायक नहीं होगा। जल प्रदूषण का भीषण स्थिति को भी उजागर करके लिखा है .. पानी संतुष्ट करने का स्वभाव खो देगा...। कवि चेतावनी देती हैं कि पर्यावरणीय असंतुल से मौसम बिगड़ पाएगा पेड़ सूखेंगे, पत्तियाँ झड़ जाएँगी। आगे की पंक्तियों में भी कवि पर्यावरण असंतुलन पर व्यथित होकर लिखते हैं :–

"रोशनी चकाचौध पैदा करेगा
पेड़ अपनी जड़ों की पूरी ताकत खर्च कर देंगे
हवा, हवा नहीं रहेगी
और हम कभी न सूखने वाला पसीना
उमस को सौंप देंगे।"

कवि कहते हैं कि कृत्रिम प्रकाश का कोई सार्थक उपयोग नहीं होगा। प्रकृति की जड़ें यानि उसका अस्तित्व नष्ट हो जाएगा। वायु प्रदूषण पूरे पर्यावरण को नष्ट कर देने का दुःख प्रकट करके कवि कहते है कि वायुमंडल इतना दूषित हो जाएगा कि शुद्ध हवा नहीं रहेगी। अंततः मनुष्य एक निरंतर थकान, बेचैनी और श्रम में डूबा रहेंगा – एक ऐसा पसीना जो कभी सूखेगा नहीं, और पूरी उम्र के हवाले कर देगा। कवि की व्याकुलता यह है कि प्रकृति पर होने वाले इन बदलाव हमारे सामाजिक संबन्धों एवं रिश्तों को भी प्रभावित कर देगा और लोग त्यौहारों पर भी खुश नहीं होंगे, गावों की जीवन्तता, उनकी आवाजें–संस्कृति सब खत्म हो जाएँगी।

"बहन सत्ताईसवें बरस में भी रहेगी अनब्याही
त्योहार गुजर जाएँगे चुपचाप
गाय के रँभाने में आवाज आना
खत्म हो जाएगी......।"

इस कविता द्वारा कवि हमें चेतावनी देते हैं कि प्रकृति के साथ छेड़छाड़ और मानवीय संबन्धों की उपेक्षा हमें एक ऐसे भविष्य की ओर ले जाएगी जहाँ जीवन तो होगा, पर उसमें न स्वाद होगा, न सुख।

पर्यावरण प्रदूषण पर संवेदना :-

"धूल' कविता द्वारा कवि ने पर्यावरण प्रदूषण की ओर इशारा करती है यह कविता 'धूल' को प्रतीक बनाकर हमारे समय की पर्यावरणीय, बौद्धिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय गिरावट को उजागर करती है।

'इतिहास के खिड़की से लगातार
गिर रही है धूल
पृथ्वी और सूर्य की किरणों के बीच
धूल की एक मोटी परत है
बेड़े–बूढे बताते है
अब नहीं रहा धूल का पुराना गहरा रंग
बदल रहा है धूल का रंग
जैसे बदल रहा है उनके बालों का रंग।'

यह पंक्तियाँ वायुमंडलीय प्रदूषण को दर्शाता है। समय के साथ धुल का रूप बदल चुका है, यहाँ कवि बौद्धिक और संस्कृतिक जड़ता को भी उजागर किया है। कवि की राय में मूल्य और संस्कार भी फीके पड़ चुके हैं।

'धूल भरे लोगों के लिए
बहुत परिचित है धूल का संसार
वहीं नष्ट होने से बचाते हैं
वे अपने बीच...
धूल का संगीत वैभव के सन्नाटे में गूँजता है।''

आगे के पंक्तियों द्वारा कवि कहते है कि जो लोग इस धूल अर्थात् (प्रदूषण, जड़ता, गिरावट) के अभ्यस्त हो गए है, वे इसे सामान्य मानने लगे है। वे उसमें ही अपने बीच या अस्तित्व को बचाकर जीते हैं। और इतिहास और सभ्यता के खामोशी में गुँजता है। कवि के मन में अब भी यह उम्मीद बची है कि हम इस धूल को उपजाऊ मिट्टी में बदल सकें।

कवि की राय में प्रकृति, स्वास्थ्य, परंपरा और संस्कृति में भी पर्यावरण में आए बदलाव का असर पड़ गया है। निम्न पंक्तियाँ इसका सूचक है :–

'जरा सी देर में नीम पर निंबौरी आ गई
और आँखों में पानी
पत्ते पीले पड़ते हुए डाल छोडने लगे
खतम हो गई बैलों की जुगाली
जरा–सी देर में मैदान बनते हुए खत्म हो गए
वृक्ष और पहाड़
खतम हो गए चावल, गेहू और रसोईघर के चूहे
जरा सी देर में हरित–क्रान्ति फैल गई
फैल गया हैजा।''

कवि यहाँ प्रकृति में हो रहे बदलावों का जिक्र करता है, पेड़ों के पत्ते गिरने लगे, पानी की गुणवत्ता स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो गई। कृषि संस्कृति का धीरे–धीरे अंत, खेत, जंगल, पहाड़ सब खत्म होते जा रहे हैं। हरित क्रांति के नाम पर परंपरागत खती की जगह नई तकनीक आ गई। पर्यावरणीय बदलाव के प्रति जागरूक रहने की आवश्यकता भी कवि यहाँ व्यक्त किया है। कविता की आखिरी पंक्तियों में चिड़िया की आवाज द्वारा कवि कहते हैं कि 'उठो, काम का वक्त हो गया।'

जमीन का विनाश पर संवेदना :–

'कटे हुए खेत को देखकर' कविता द्वारा कवि ने धरती और खेतों के प्रति उनकी कृतज्ञता, संवेदना और आत्मीय जुड़ाव की भावना व्यक्त किया है।

'जमीन का यह हिस्सा सबसे प्रसन्न है
सबसे ज्यादा जिन्दा है जमीन यहाँ
स्पदन और ऊष्मा से भरी हुई
प्रसव के बाद की यह जमीन
बगल में लेटे शिशु–गट्ठर को देखती हुई।
पुलक रही है
चमक रही है डंठलों पर
उत्साह भरी ममता
और थोड़ी सी सन्तुष्ट मकान.....।'

इस कविता में कवि खेतों की कटाई के बाद की जमीन को देखता है और उसमें एक विशेष प्रकार की ऊर्जा, जीवन और संतोष महसूस करता है। यहाँ कवि खेत को एक माँ की तरह देखता है, जिसने प्रसव के बाद अपने बच्चे को जन्म दिया और अब शांति व संतोष का अनुभव कर रही है। कवि चाहता है कि इस धरती के इस रूप को वह अपनी आँखों में कैद कर ले, इसकी गोद में लेटे और इसका सुख अनुभव करे।

'बस रोको! रोकों ड्राइवर!

मैं यही उतरना चाहता हूँ
मुझे सचमुच आना था यहीं तक
हाँ यही हो रही थीं मेरी प्रतीक्षा
कि इस वक्त
बेहद जरूरत है इस जमीन को
थोड़े–से प्यार की, थोड़े से धन्यवाद की!'

प्रकृति एवं जमीन के साथ कवि की आध्यात्मिक एवं भावनात्मक एकता का संकेत इन पंक्तियों में दृष्टव्य है। कवि का मन खेत का सौन्दर्य से भर गया है। वह उस दृश्य से दूर नहीं जाना चाहता। उन्होंने वहीं रुक जाना चाहता है क्योंकि वही उसका गंतव्य था। मानो उसकी आत्मा उसी धरती में विश्राम पाना चाहती हो। कवि को लगता है कि यह धरती उसे बुला रही थी। उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। यह धरती जो जीवन है, ऊर्जा है, और सृजन की शक्ति है जिसकी उपेक्षा आज के युग में लगातार हो रही है। इस सत्य की ओर हमारे ध्यान आकर्षित करके कविता हमें अंतिम पंक्तियों में एक भावुक संदेश देती है कि हमें अपनी धरती के प्रति प्रेम और आभार का भाव रखना चाहिए क्योंकि वहीं हमारे जीवन का आधार है।

जंगलों की तबाही पर संवेदना (Deforestation) :-

मनुष्य और प्रकृति के रिश्ते पर गहराई से विचार करने वाले कुमार अंबुज ने 'बचे–खुचे जंगल के साथ' कविता द्वारा जंगल के उस हिस्से को चित्रित करती है जो अभी पूरी तरह नष्ट नहीं हुआ है, लेकिन धीरे–धीरे विलुप्त होने की कगार पर है।

'सड़क किनारे की दूरी से
जितना भी वह दिखाा था बचा हुआ
भीतर उतना नहीं बचा था
जैसे मैं भी दिखता हूँ जितना बचा हुआ कुछ दूरी से
अंदर उतना बचा नहीं रह गया था ....।'

कवि कहता है कि बाहर से देखने पर तो लगता है कि जंगल अभी भी बचा हुआ है, लेकिन जब भीतर झाँका जाए तो असल में वहाँ कुछ भी शेष नहीं है, अर्थात् असल में जंगल भीतर से खोखली हो चुकी है। कविता में कवि ने जंगलों के धीरे–धीरे समाप्त होते स्वरूप का वर्णन किया है। कवि के राय में जंगल अभी खंड करके समान है जो कभी पूर्ण और जीवंत था, अब वह बिखरा हुआ, टूटा–फूटा है। कवि जंगल का पूर्व स्मृति यहाँ प्रस्तुत किया है जो कभी वृक्षों में थी जैसे सागौन, तेंदु और बबूल, अब केवल ठूंठ बनकर रह गई हैं।

'पश्चिम में हहराते बाँस के दस–बारह झुण्डों ने
जंगल के दिलखुश बना दिया था
जिसकी खुशी बंदरों और तोतों से होती हुई
पहुँचती थी हर उस आदमी तक जो वहाँ होता था

यह छीजते जाते जंगल में जिजीविषा का ही दृश्य था।
कि हवा बाँसें में से गुजर कर बचा रही थी बाँसुरी....।'

कविता इस पंक्तियाँ जंगल के जीवन की जीवंतता को दिखाती हैं – जहाँ बॉस, बंदर और तोते होते थे, जो जंगल को आबाद करते थे। लेकिन अब वह अवाजें मनुष्य तक नहीं पहुँचतीं। अब जंगल धीरे–धीरे नष्ट हो रहा है, लेकिन फिर भी उसमें जीवन की झलक शेष है।

'जैसे अपनी उदासी तोड़ते हुए जब–जब
मैं संगीत में झूमता हूँ
प्रकृति चली आती है
अपनी झरनों, बीहड़ों और अरण्यों के साथ
विस्तारित करती हूई मुझे नए प्रदेशों में।

कविता की इन पंक्तियों में प्रकृति के साथ कवि के आत्मीय रिश्ता प्रकट है। कवि कहता है कि जब भी वह संगीत में डूबता है, प्रकृति उसके पास आकर वह उसे अपने झरनों, जंगलों और आरण्यों के साथ नए प्रदेश में ले जाती है। यहाँ कवि प्रकृति और इंसान के बीच के आंतरिक रिश्ते को प्रकट करती है।

इस कविता प्रकृति से टूटते रिश्तों और पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता को दर्शाती है। कवि यहाँ जंगल, पेड़ जीव–जंतुओं के माध्यम से इस बात की ओर इशारा करती है कि मानव अगर इसी तरह प्रकृति से दूर होता रहा, तो न केवल जंगल नष्ट होंगे, बल्कि मानव की अस्तित्व भी नष्ट हो जाऐंगी।

वायु प्रदूषण पर संवेदना :–

स्वच्छ वायु हमारे जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है, लेकिन आधुनिक जीवन शैली और तेजी से बढ़ते उद्योंगों के कारण वायु प्रदूषण लगातार बढ़ रहा है। वायु प्रदूषण आज के समय की एक गंभीर समस्या है। इस प्रदूषण का असर हमारे स्वास्थ्य पर सीधा पड़ता है। हवा में हानिकारक पदार्थों जैसे छूल, धुआँ, विषैली गैंस मिल जाना वायु प्रदूषण का कारण बन जाती है। मानव के स्वास्थ्य और पर्यावरण के लिए नुकसानदायक वायु प्रदूषण को गहराई से दर्शाती है। कुमार अंबुज की कविता 'इतनी धूल' :–

'इतनी धुल चली आती है जीवन में
कि मरते दम तक कोई छुड़ा नहीं सकता पीछा
जो बारीश की तरह झरती है आपके भीतर....
वह जमा हो जाती है उन ऊँचाईयों पर भी
जहाँ पहुँचते नहीं किसी के हाथ।'

कविता 'इतनी धूल' में कवि ने हमारे जीवन में फैलती जा रही धूल (प्रदूषण) को प्रतीक रूप में प्रयोग किया है। कवि कहता है कि जीवन में इतनी धुल भर गई है कि कोई चमक नहीं बची। यह धुल हर वस्तु को इस कदर ढक लेती है कि उसका असली रूप दिखाई ही नहीं देता। यह धूल केवल भौतिक रूप से ही नहीं, बल्कि मानसिक, बौद्धिक और सामाजिक जीवन में भी फैल गई है। यह हमारे विचारों संवेदनाओं और मूल्यों तक

को ढकने लगी है।

'कलाकतियों, किताबों और कपड़ों पर ही नहीं
किडनी में, पित्ताशय में वह इकट्ठा हो रही है लगातार
अनंरिक्ष में भी है उसी का साम्राज्य.....
वह ताकत की कुर्सियों पर मिलती है
और न्यायालयों में फैसलों में
यही है जो जम जाती है साफ, पारदर्शी चीजों पर
जरा–सी चुक हो तो उड़कर बैठती है वाक्यों के बीच में......................"

कवि कहते हैं कि यह धूल केवल वस्तुओं पर ही नहीं, बल्कि हमारे सोचने–समझने की शक्ति को भी प्रभावित कर रही है। धूल का साम्राज्य हर जगह फैल गई है। यह धूल सत्ता न्याय और प्रशासन तक में है। पारदर्शिता के स्थान पर अब धूल छा गई है, जिससे सत्य और न्याय भी ढक गए है।

धुल का यह प्रतीक वर्तमान समय की उस स्थिति को दर्शाता है, जहाँ प्रदूषण केवल पर्यावरण तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह हमारे जीवन के हर पहलू में घुस गया है। यहाँ कवि ने धूल को अहंकार और नश्वरता का प्रतीक के रूप में भी माना गया है।

'अश्वमेधी काफिलों के पीछे छूट जाता है धुल का गुबार
एक दिन सबसे ताकतवार आदमी भी गिरता है – धप्प!

....

निर्माण में उड़ती है वह
ध्वंस के बाद भी बची रहती है वह।

कवि की राय में 'अश्वमेधी काफिलें अर्थात् बड़ी–बड़ी विजय यात्राएँ, युद्ध इन सबके पीछे आखिर केवल धूल का गुबार ही रह जाता है। अर्थात् अंत में सब धुल में मिल जाता है। अगला पंक्ति मनुष्य के अहंकार के पतन को दर्शाता है। जब व्यक्ति या सत्ता गिरती है, तो वह धूल में समा जाती है। यह पतन की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। धूल यहाँ प्रतीक है उस सच्चाई का जो हर चमक, हर उँचाई, हर निर्माण और हर ध्वंस के बाद भी शेष रहती है। कविता की ये पंक्तियाँ जीवन की क्षणभंगुरता सत्ता के अहंकार और समय के प्रभाव को दर्शाती है। कुमार अंबुज की यह कविता केवल पर्यावरणीय समस्या नहीं, बल्कि आधुनिक जीवन के नैतिक, सामाजिक और मानसिक प्रदूषण की ओर भी इशारा करती है।

निष्कर्ष :–

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि कवि कुमार अंबुज की कविताओं में पर्यावरण विमर्श एक महत्वपूर्ण और संवेदनशील पक्ष के रूप में उभरता है। वे प्रकृति और पर्यावरण के नष्ट होते स्वरूप को न केवल शब्दों में चित्रित करते हैं, बल्कि उसके पीछे छिपे सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संदर्भों को भी गहरी पडताल करते हैं। कवि दिखाती हैं कि मनुष्य ने अपने स्वार्थ केलिए प्रकृति से संबंध तोड़ लिया है, और अब वह उसी

का परिणाम भुगत रहा है। संवेदना की गहराई से यह संबंध फिर से जोड़ने की पुकार भी उनकी कविताओं में दिखाई देती हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ :–

1. समकालीन कविता : प्रकृति और पर्यावरण, पृ. 146
2. अमीरी रेखा : चाँद तुम्हारे साथ कुछ दूर तक पृ. 83
3. किवाड : सिन्ध पृ. 102
4. अतिक्रमण : जब तक हूँ, पृ. 46
5. अमीरी रेखा : पत्थर हूँ पृ. 69
6. आधुनिकिक हिन्दी कविता : प्रकृति और पर्यावरण, पृ. 160
7. किवाड : धूल, पृ. 52
8. किवाड : जरा सी देर में, पृ. 28
9. किवाड : कटे हुए खेत को देखकर, पृ. 56
10. अतिक्रमण : बचे–खुचे जंगल के साथ, पृ. 116
11. उपशीर्षक – इतनी धूल, पृ. 30

Nisha Raphael

Anjuthykkal House

St. Antony's Link Road, Thykoodam,

Vyttila P.O. Cochin – 682019

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 229-233

ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा "जूठन" में स्त्री का स्वरूप

सीमा कुमारी,
शोधार्थी
हिन्दी–विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा।

हिंदी दलित साहित्य के मूर्धन्य रचनाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा "जूठन" दो खण्डों में प्रकाशित है। वाल्मीकि जी हिंदी दलित साहित्य की एक विशिष्ट उपलब्धि लब्ध व्यक्ति के रूप में सुविख्यात हैं। उनकी आत्मकथा 'जूठन' एक विशिष्ट उपलब्धि के रूप में व्यापक रूप से स्वीकृत हिंदी दलित साहित्य की आत्मकथात्मक कृति है। उनकी आत्मकथा 'जूठन' का अनुवाद कई भाषाओं में जैसे – अंग्रेजी, जर्मन, स्वीडिश, पंजाबी, तमिल, मलयालम, कन्नड़, तेलुगु में अनूदित एवं प्रकाशित है। सिर्फ इतना ही नहीं उनकी आत्मकथा जूठन के नाट्य रूपांतरण का अनेक नगरोंकृ जालंधर, चंडीगढ़, लुधियाना, कैथल आदि में सफल मंचन भी हुआ है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की आत्मकथा जूठन में स्त्री का जो स्वरूप है वह विभिन्न परिस्थितियों में पाठक के सामने आता है। कहीं स्त्री शेरनी के रूप में पाठक के सामने आती है, तो कहीं ममतामयी देवी के रूप में सामने आती है, कहीं देहशोषिता के रूप में सामने आती है तो कहीं मानसिक पीड़ा को झेलती हुई सामने आती है। उनकी आत्मकथा में स्त्री अपने परिस्थितियों से कहीं डटकर मुकाबला करते हुए नजर आती हैं तो कहीं अपने अभावग्रस्त जीवन को कुंठित होकर जीते हुए नजर आती हैं। वाल्मीकि जी अपनी आत्मकथा में यह कहते हैं कि मेरी माँ त्यागियों के घर शादी विवाह के अवसर पर जूठन बटोरने का काम करती थीं। उनकी आत्मकथा के प्रथम खंड में एक घटना का जिक्र आता है कि सुखदेव सिंह नामक एक त्यागी के घर उनकी लड़की की शादी थी। शादी को लेकर साफ–सफाई का काम इनकी माँ द्वारा दस–बारह दिन पहले से ही की जा रही थी। बारात बहुत अच्छे घराने से आई थी। सभी बाराती खाना खा रहे थे। उनकी माँ जूठन का टोकरा लेकर शादी वाले घर के दरवाजे पर खड़ी थीं। सारे बाराती खाना खाकर बचा खुचा जूठन वाले पत्तल को उठाकर टोकरी में डाल रहे थे। वाल्मीकि जी की माँ की इच्छा थी कि बारात वाले घर से उनके बच्चों को भी कुछ अच्छा खाना मिल जाता। इसलिए उन्होंने उस घर के गृहस्वामी से अच्छे खाना के लिए आग्रह किया, इसपर उनको गृहस्वामी ने बड़ा भला–बुरा कहा और झूठन रखे टोकरे की तरफ इशारा करके कहा कि "टोकरा भर तो जूठन ले जा रही है.......... ऊपर से जाकतों के लिए खाणा मांग री है? अपणी औकात में रह चूहड़ी। उठा टोकरा दरवाजे से और

चलती बन।"[1] शादी वाले घर की दस–बारह दिन पहले से ही साफ–सफाई के लिए इतनी मेहनत का मेहनताना सिर्फ और सिर्फ जूठन! यह कितना अमानवीय और शोषणकारी व्यवहार है। समाज में रहने वाले सभी लोग समाज के अभिन्न अंग हैं। जिसे खाने–पीने के मामले में दलित, तुच्छ, हीन समझा जाता है, किंतु जहाँ काम करने की बात आती है, वहाँ पर उन लोगों की भागीदारी अहम हो जाती है। और उनसे बढ़–चढ़कर काम लिया जाता है, तब छूआछूत नहीं देखा जाता। उस पर भी समाज का वह व्यक्ति दलित होने के साथ–साथ यदि महिला हो तो स्थिति और अधिक अमानवीय और विषम हो जाती है। जब वह स्त्री अपनी अस्मिता और स्वाभिमान की रक्षा के लिए कुछ करती है तो लोगों की आँखें चौंधियाँ जाती हैं और अहंकारियों का घमंड चकनाचूर हो जाता है। इसी संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि जी कहते हैं कि "उस रोज मेरी माँ की आँखों में दुर्गा उतर आई थी। माँ का वैसा रूप मैंने पहली बार देखा था। माँ ने टोकरा वही बिखेर दिया था। सुखदेव सिंह से कहा था, "इसे ठाके अपने घर में धर ले। कल तड़के बारातियों को नाश्ते में खिला देणा........"[2] ऐसी पौराणिक कथा है कि महिषासुर जैसे अत्याचारी और अन्यायी राक्षस का विनाश करने के लिए माँ भगवती ने दुर्गा अवतार धारण किया था और महिषासुर का समूल विनाश किया था। ठीक वैसे ही ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की माँ ने अन्यायी और अत्याचारी त्यागियों के खिलाफ माँ दुर्गा का रूप धारण करके उनके अन्याय और अत्याचार को जड़ से मिटाने का सफल प्रयास किया। इस तरह की घटना के बाद से ही ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के घर त्यागियों के घर से जूठन लाने की परंपरा समाप्त हो गई।

जब उनकी माँ ने त्यागी सुखदेव सिंह को इस तरह से मुंह तोड़ जवाब दिया तो वर्षों से दलितों पर अत्याचार कर रहे त्यागी सुखदेव सिंह के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। उसे अपने सामंतवादी व्यवस्था की दीवार धूल में भरभरा कर गिरती हुई नजर आई। वह उसे सहन नहीं कर पाया और वाल्मीकि जी की माँ को मारने के लिए झपटा। इस संदर्भ में वाल्मीकि जी लिखते हैं– "सुखदेव सिंह माँ पर हाथ उठाने के लिए झपटा था, लेकिन मेरी माँ ने शेरनी की तरह सामना किया था। बिना डरे।"[3] यहां स्त्री का एक बिल्कुल निर्भीक स्वरूप उभर कर सामने दिखाई देता है, वाल्मीकि जी की माँ के रूप में। वह स्त्री इतने दिनों से दलितों का शोषण और अत्याचार कर रहे त्यागियों का डटकर सामना करती हैं और उसके मारने दौड़ने पर भी तनिक पीछे नहीं हटती हैं, न डरती हैं, बल्कि शेरनी की भाँति उसका मुकाबला करते हुए अपने बच्चों के साथ अपने घर को वापस आती हैं। यहाँ स्त्री का स्वाभिमानी स्वरूप दिखाई पड़ता है। स्त्री का यह स्वाभिमान ही है कि हमारे बच्चे भले भूखे पेट रह लेंगे, लेकिन आज के बाद से किसी का जूठा नहीं खाएंगे। इसके लिए चाहे जो भी हो जाए, वह प्रत्येक चुनौती के लिए तैयार है।

आत्मकथा जूठन में यह भी स्पष्ट है कि स्त्री अपनी मान मर्यादा की रक्षा के लिए दुर्गा का रूप, शेरनी का रूप धारण कर सकती है, तो अपने दरवाजे पर आए अतिथि स्वरूप बड़े बुजुर्गों का सम्मान भी करती है। इस संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि जी लिखते हैं– "सुखदेव सिंह मेरे निवास पर एक बार आया था। मेरी पत्नी ने गाँव देहात के बुजुर्ग के नाते उनका आदर सत्कार किया था।"[4]

दलित समाज की सोच विधवा स्त्री के प्रति हिंदू परंपराओं की तरह संवेदनहीन और कुंठित नहीं है, बल्कि कई गुना संवेदनशील और मानवीय है। यह किसी भी समाज के लिए बहुत ही अच्छी और शुभ बात है। स्त्री के सर्वांगीण विकास के लिए मर्यादापूर्वक जीवन जीने की आजादी समाज द्वारा मिलनी ही चाहिए। इस संदर्भ

में वाल्मीकि जी लिखते हैं– "हमारी बिरादरी में विधवा विवाह को प्रारंभ से ही मान्यता थी। हिंदू परंपराओं की तरह विधवा विवाह हीन दृष्टि से नहीं देखा जाता था।"[5] लेकिन दलित समाज के लोग भी मर्यादाहीन संबंध बिल्कुल पसंद नहीं करते। जब ओमप्रकाश वाल्मीकि के पिताजी के चचेरे भाई मोल्हड़ का देहांत हो गया था और उनकी पत्नी विधवा हो गई थी, तब उनका किसी से अवैध रिश्ता कायम हो गया था। इस रिश्ते को ओमप्रकाश वाल्मीकि का परिवार सहन नहीं किया और वाल्मीकि जी के पिता जी के द्वारा उनकी चाची की पिटाई हो गई। और उन्हें उनके पिता ने ही बसेडो उसके मायके पहुंचा दिया था। कुछ इसी तरह की घटना उनकी चचेरी चाची रामकटोरी के साथ भी घटित हुई थी। अतएव यहाँ दलित समाज में विधवा पुनर्विवाह की मान्यता तो है, परंतु अपने मनचाहा जीवन साथी चुनने और जीने की आजादी नहीं दिखाई देती है। जो भी है वह सामाजिक बंधनों में बंधा हुआ, सामाजिक परंपरा और रीति–रिवाज के अनुसार मान्य है। यह घटना ओमप्रकाश वाल्मीकि के बहुत बचपन की है। इस घटना से उनके मन में अपने पिता के प्रति दहशत वाली छवि बैठ गई थी। ओमप्रकाश वाल्मीकि के मन में दहशत बैठने का कारण अपने पिता की दोहरी नीति को लेकर रही होगी। वे यह सोच रहे होंगे कि यदि यही कार्य उनकी चाचियों की जगह कोई पुरुष किया रहता तो आज यह स्थिति जो इनके साथ घटित हुई वह शायद नहीं घटित होती। इसका प्रत्यक्ष कारण भी उन्होंने दिया है कि जब उनके चाचा श्यामलाल रामकटोरी को छोड़कर बाहर चले गए थे और जब लौट कर आए थे तो अपने ही भाई मोल्हड़ पर चाकू से वार कर दिए थे। इस घटना से क्रोधित होकर उनके पिता द्वारा श्यामलाल के हाथ–पैर बांध दिए गए और उनके रोने गिड़गिड़ाने पर उन्हें चेतावनी देकर छोड़ दिया गया।

दलित समाज में भी परिवार के किसी भी निर्णय में महिलाओं की भागीदारी न होना या उनकी मर्जी जाने बगैर ही फैसला करना एक अहम मुद्दा है। जब ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के श्यामलाल चाचा रात के धुंधले में आकर उनके सोल्हड़ चाचा पर चाकू से वार करते हैं तो इस घटना से ओमप्रकाश वाल्मीकि के पिता बहुत दुखी होते हैं और वे कहते हैं कि "किसी बात से जी दुखी था तो मन्ने कहा होता...... यूं छूरे–बाजी पे क्यूँ उतरा..."[6]। चूंकि यहाँ बात पुरुष की है इसलिए ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के पिताजी की मानसिकता में लचीलापन है और वे बातचीत के द्वारा ही इस मुद्दे को सुलझाना चाहते थे। चाहे कोई भी समाज हो, उसमें पुरुषवादी वर्चस्व का होना स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। जिस बात को लेकर ओमप्रकाश वाल्मीकि के पिताजी हमेशा सख्त रहते हैं उनका नजरिया यहाँ अपने भाइयों के प्रति सकारात्मक और सुलझाववादी दिखाई देता है। जब यही स्थिति इनके चाचियों के साथ हुई थी तो उनकी इच्छा–अनिच्छा जाने बगैर उनके पिताजी ने तुरंत निर्णय सुना दिया था, लेकिन यहाँ अपने भाई की बात है तो उनकी इच्छा जानने के लिए यह बात प्रकट करते हैं कि यदि तुम्हें कोई कष्ट था तो मुझे कहा होता। मैं समस्याओं का निदान बातचीत से करता। इस प्रसंग से यह स्पष्ट होता है कि अगर कोई महिला कुछ गलत करती है तो उसके लिए तुरंत ही दंड निर्धारित किया जाता है, लेकिन यदि कोई पुरुष ठीक वैसे ही गलती करता है जैसे उस गलती को कोई महिला करती है तो उस पुरुष के लिए दंड निर्धारित करने से पहले सोचा जाता है। यहाँ महिलाओं के प्रति दलित समाज का भी क्रूर रूप दिखाई पड़ता है। भले यह कहने के लिए है कि दलित समाज में विधवा विवाह की जरूरत समझी जाती है और दलित समाज में स्त्रियों को भी एक मनुष्य समझा जाता है, लेकिन यहाँ जिस तरह की मनुष्यता दिखाई देती है उसमें काफी भेद नजर आता है।

मां अपने बच्चों से निःस्वार्थ प्रेम करती है और अपने बच्चों के लिए पूरी दुनिया से टकराने की ताकत रखती है। वह हमेशा अपने बच्चों की खुशी से खुश और उनके दुःख से दुःखी होती है। वह हर परिस्थिति में अपने बच्चों की इच्छा–अनिच्छा का ख्याल रखती है। माँ का यही ममतामयी रूप जूठन के प्रथम खंड में दिखाई पड़ता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि इसी ममतामयी रूप का वर्णन करते हुए लिखते हैं – "माँ और पिताजी में इस बात को लेकर झगड़ा हुआ था। तू तू, मैं मैं के साथ नौबत मारपीट की आ गई थी। मां ने साफ शब्दों में कह दिया था, "ओमप्रकाश यह काम नहीं करेगा!" माँ ने जिस दृढ़ता से कहा था, पिताजी गुस्से से बाहर निकल गए थे। शायद वे वहीं गए थे, जहाँ मैं अधूरा काम छोड़कर भाग आया था।"[7]

ओमप्रकाश वाल्मीकि का परिवार आर्थिक तंगी से गुजरते हुए उनका दाखिला छठी क्लास में कराने में असमर्थ था। ओमप्रकाश वाल्मीकि त्यागियों के बच्चों को स्कूल में जाते हुए देखकर, अच्छे कपड़े पहनते हुए देखकर इस तरह की लालसा मन में पाले हुए थे कि मैं भी स्कूल में पढ़ूँ। छठी क्लास में दाखिला के लिए वे अपनी माँ से आग्रह करते हैं, किंतु उनकी माँ आर्थिक विपन्नता के कारण इस कार्य के लिए अपने आपको असमर्थ पाती हैं और फूट–फूटकर रोती हैं।

परिवार में बड़ी भाभी का दर्जा भी माँ की तरह ही होता है। इस तरह की ममतामयी और स्नेहमयी स्त्री का स्वरूप ओमप्रकाश जी की भाभी में दिखाई पड़ता है। इस संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि जी लिखते हैं– "भाभी के पास गहनों के नाम पर चांदी की एक पाजेब थी, जिसे वह हमेशा अपने शादी के कपड़ों में सहेजकर रखती थी। माँ का रोना–धोना जारी था। भाभी ने अपना टिन का बक्सा खोला और वह पाजेब लाकर माँ के हाथ में रख दी। "इसे बेच के लाल्ला जी का दाखिला करा दो" आस–पड़ोस की औरतें मेरी भाभी के इस स्नेह को देखकर अभिभूत हो गई थीं। मैं खुद भाभी से लिपटकर रोया था। उस वक्त मुझे अपने बड़े भाई सुखबीर की बहुत याद आई थी। वह दिन आज भी मेरे भीतर हौसला जगाता है।"[8] इस तरह भाभी के पाजेब बेचकर ओमप्रकाश वाल्मीकि का दाखिला छठी क्लास में होता है।

एक दिन उनके पिता के घर से कही दूर बाहर चले जाने के कारण ओमप्रकाश वाल्मीकि को अपनी आर्थिक विपन्नता के कारण गंदगीपूर्ण पारिवारिक पेशे को करना पड़ता है। उस हाल में उनको देखकर उनकी माँ रो पड़ती हैं। तब वाल्मीकि जी की बड़ी भाभी का हृदय विदीर्ण हो जाता है और वह अपनी सास से कहती हैं – "इनसे ये ना कराओ.......... भूखे रह लेंगे.............इन्हें इस गंदगी में ना घसीटो........"[9] वाल्मीकि जी की भाभी का यह कथन उन्हें तो अंधेरे से निकलकर रोशनी की ओर जाने के लिए प्रेरित किया, पर आज भी उनकी जाति के अनेकानेक लोग अंधकारपूर्ण वैसी घिनौनी जिंदगी जीने के लिए अभिशप्त हैं।

समाज में स्त्री को एक भोग्य वस्तु की तरह उपयोग करते हुए देखा गया है, चाहे वह किसी वर्ग की क्यों न हो। यह बात ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा जूठन में भी दिखाई पड़ती है। वे लिखते हैं– "वेदपाल कमरे में चला गया था। थोड़ी देर बाद फिर वही आवाजें आने लगी थीं। मेरी साँस तेज हो गई थी तथा कुछ–कुछ समझ में भी आने लगा था। मेरा जिस्म ऐंठने लगा था। लेकिन दम साधे फर्श पर लेटा हुआ था। वे लोग समझ रहे थे जैसे मैं सो गया हूं।"[10] स्त्रियों की मजबूरी का फायदा उठाने वाला राक्षसी प्रवृत्ति मनुष्य स्त्री को इंसान नहीं बल्कि उपभोग की वस्तु समझता है। यहाँ किसी तरह का कोई विरोध ओमप्रकाश वाल्मीकि के द्वारा दिखाई नहीं पड़ता। उनके मन में वेदपाल और अन्य दूसरे पुरुष के प्रति घृणा का भाव अवश्य है जो

शारीरिक शोषिता के प्रति प्रश्न चिह्न पैदा करती है। यहाँ आत्मकथाकार के कथन में बहुत बड़ा सामाजिक संकेत भी है। साहस की कमी के कारण स्त्रियों पर हो रहे अत्याचार पर लोग जागते हुए भी सोते रहने का ढोंग करते हैं। सब कुछ समझकर भी नासमझ और जानकर भी अनजान बनने की कोशिश करते हैं। जिससे स्त्रियों पर दिनोंदिन और अधिक अत्याचार होते जाता है।

आत्मकथा जूठन का पहला खंड और दूसरा खंड के अध्ययन के उपरांत मेरी दृष्टि से कहा जा सकता है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि जी अपने लेखन की कुशलता के कारण अपनी आत्मकथा में स्त्री का स्वरूप बहुत ही ईमानदारी से प्रकट करने में समर्थ हुए हैं। आत्मकथा में अभिव्यक्त अनुभव चूँकि व्यक्तिगत नहीं, समष्टिगत होता है, इसलिए यहाँ स्त्री और दलित एक ही सिक्के के दो पहलू के रूप में दृष्टिगत होते हैं। जिस तरह एक दलित का भोगा हुआ यथार्थ दूसरे दलित की दास्तान हो सकती है, उसी तरह एक स्त्री का भोगा हुआ यथार्थ समाज की किसी भी स्त्रियों पर लागू हो सकता है। वस्तुतः स्त्रियों की इस दुर्दशा के पीछे पुरुष वर्चस्ववादी मानसिकता का हावी होना ही प्रतीत होता है।

संदर्भ :-

1. जूठन, पहला खंड, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2021, पृष्ठ 21
2. वही, पृष्ठ 21
3. वही, पृष्ठ 21
4. वही, पृष्ठ 21
5. वही, पृष्ठ 22
6. वही, पृष्ठ 39
7. वही, पृष्ठ 60
8. वही, पृष्ठ 25
9. वही, पृष्ठ 48
10. वही, पृष्ठ 70

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 234–238
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

'झूठ सच्च' उपन्यास में नारी–विमर्श अधुनातन संदर्भ में

सरोज रानी
शोधार्थी, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला।

सृष्टि सृजन में नारी परिवार व समाज की आधारशिला रही है। नारी प्रति विचार, विनिमय करना, उसे केंद्र में रहकर समझने के लिए संवाद या बहस नारी–विमर्श है। प्रकृति ने नारी को पुरुष से अलग बनाया है तो स्वाभाविक है कि उसकी एक अलग स्वतंत्र सत्ता एवं अस्मिता है। नारी को देवी, लक्ष्मी, काली, सरस्वती इत्यादि नाम से भी जाना जाता है क्योंकि उसमें संतोष, सहनशीलता का भाव, गतिशीलता, लचक सद्गुण होते हैं। समाज में नारी को पुरुष का आधा भाग माना गया है। जन्म से लेकर मृत्यु तक वह निरंतर समस्याओं का सामना करती है। सभ्यता के विकास से लेकर आज तक नारी अपने अधिकारों के प्रति संघर्ष करती आ रही है। इतिहास की दीर्घ परंपरा के हाशिए से नारी–समाज विवेचन का विषय नहीं रहा। अधुनातन समय में बदलते मानवीय मूल्यों व समाजिक परिवेश ने नारी को पुनर्मूल्यांकन की नई दिशा प्रदान की है। डॉ. भारती यादव के अनुसार "स्त्री मुक्ति आंदोलन पुरुष के विरोध में आंदोलन न होकर वह जुल्म जबरदस्ती की प्रवृत्ति के विरोध की लड़ाई है सहयोग और सहजीवन की मांग करते करने वाला एक आंदोलन है।"[1] "स्त्री की स्त्रियों से मुक्ति नहीं चाहिए उसे रूढ़ियों से मुक्ति चाहिए जिन्होंने उसे वस्तु बना रखा है।"[2] नारी के ऊपर होते अत्याचारों, शोषण, उत्पीड़न ने उसे जागृत किया है। जिसके फलस्वरूप नारी में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है। नारी अपनी अस्मिता से जुड़े बिंदुओं, स्व की पहचान, अपने होने का अस्तित्व स्थापित करने के लिए संघर्षशील बनी हुई है। नारी को आपने स्वत्त्व को खोजने की प्रक्रिया नारी विमर्श है। अपनी पहचान शक्ति और सत्ता जानने की कोशिश करते हुए वस्तु के दर्जो से ऊपर उठाकर एक पूर्ण मनुष्य की स्थिति तक लाने की कोशिश नारी विमर्श का उद्देश्य है।

आरंभ से ही आज तक नारी के स्वरूप उत्थान व पतन का एक लंबा संघर्षमयी जीवन रहा है। भारतीय समाज में नारी को पुरुष के समान अधिकार दिए गए हैं। शिक्षा और कामकाज के अधिकारों ने नारी में एक नई चेतना पैदा की है। 21वीं सदी की नारी आत्मविश्वास से भरपूर समाज, परिवार व राष्ट्र और संस्कृति का नेतृत्व कर रही है। आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारी सक्रिय है। कोई भी क्षेत्र उसे अछूता नहीं है। नारी का संघर्ष या लड़ाई पुरुष व जगत् के साथ नहीं है बल्कि परंपरा से चली आ रही रूढ़ियों से है। आधुनिक नारी–विमर्श की पृष्ठभूमि यूरोप और अमेरिका के प्रभाव के कारण भारत में आई है।

हिन्दी साहित्य में नारी विमर्श पश्चिम और पाश्चात्य संस्कृति की देन है। "स्त्रीवादी मानते हैं कि स्त्री आर्थिक दमन शोषण के साथ ही अन्य प्रकार के दमन शोषण का शिकार होती हैं। सामाजिक संरचनाएं उसे शिक्षा और रोजगार की उचित अवसर प्रदान नहीं करतीं। उसका शरीर का स्तर पर दमन शोषण किया जाता है। बच्चे जनना और उन्हें पालन स्त्री का काम है। पुरुष की तुलना में शारीरिक रूप से दुर्बल होने के कारण उसे मारा पीटा जाता है, उसके साथ बलात्कार किया जाता है। सांस्कृतिक स्तर पर उसे दमन शोषण का शिकार बनाया जाता है। यौन शुद्धता या सतीत्व के मूल्य स्त्री से संबंध हैं। स्त्री को पतिव्रता होना चाहिए, पुरुष को पत्नीव्रती होने की जरूरत नहीं है। मनोवैज्ञानिक स्तर पर भी स्त्री का दो दमन शोषण किया जाता है।"[3]

आदिकाल में नारी का सौंदर्य वर्णन का मिलता है। भक्ति काल में कुछ संतों ने माया, मोहनी, ठगिनी के रूप में प्रस्तुत किया है। अधिकांश संतों ने नारी को मुक्ति में बाधा डालने वाली बताया है। कबीर कहते हैं कि 'नारी की छाया परत अँधा होत भुजंग'। सुंदर दास के अनुसार 'नारी विष का अंकुर, विष की बेल है।' नारी को केवल कामिनी रूप में देखा गया है, ना की मातृत्व रूप या परिपारायण रूप में। तुलसीदास ने नारी को 'ताड़न की अधिकारी' मानते हुए, 'स्त्री को पशु तुल्य' स्वीकार किया है। भक्ति काल में मीराबाई ने सभी सामाजिक, पारवारिक संबंधों, बंधनों को स्वीकृत न कर, उन का विरोध किया है। मीराबाई ने अपनी भावनाओं को समाज की विद्रुपताओं के विपक्ष में जाकर काव्य के माध्यम से निर्भीकता के साथ अभिव्यक्त किया है। रीतिकाल में नारी को श्रृंगार मात्र ही समझ गया और उसे केवल भोग्य वस्तु के रूप में जाना गया। लेकिन आधुनिक काल में पश्चिमी सभ्यता और शिक्षा के प्रभाव के कारण आधुनिक नारी का सुधारवादी दृष्टिकोण सामने दिखाई देने लगा है। नासिरा शर्मा ने 'ठीकरे की मंगनी' में स्पष्ट कहा है– "हमें मर्द नहीं बनना है ना ही मर्द को औरत बनाना है– एक दूसरे का लबादा पहनने की यह ललक ही मुसीबत बन रही है। जरूरत है अपनी–अपनी जगह खड़े होकर अपने आप को समझने और दूसरे को समझने की।"[4]

शील–अश्लील, मर्यादा, नैतिकता, चरित्रिकता दृढ़ता महिलाओं के लिए बने पैमानों को बदलने की जरूरत है। नारी–विमर्श ने पितृसत्ता के दमनकारी दृष्टिकोण की भर्त्सना की है तथा अधुनातन समय में नारी अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुई है व पुरुष के समान ही आर्थिक, शैक्षणिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में भागीदार बनी है। नारी का अधुनातन जीवन विशाल और व्यापक हो गया है। शिक्षित नारी अपने बंधनों से मुक्ति पाने के लिए सामाजिक कुरीतियों का विरोध करने लगी है। 'झूठा सच' उपन्यास की पात्र तारा अधुनातन शिक्षित, नौकरीपेशा एक पढ़ी–लिखी नारी रूप में चित्रित हुई है लेकिन विभाजन की त्रासदी के बाद उसका पूरा व्यक्तित्त्व ही बदल जाता है। तारा के विवाह की पहली रात ही पति के द्वारा उसके साथ की गई मार–कुटाई और विभाजन के दौरान उसके साथ हुई घटनाओं ने पुरुष के प्रति उसके मन में विद्रोह की चिंगारी पैदा कर दी। विभाजन के दौरान हुई घटनाओं ने उसे संघर्षशील बना दिया। पढ़ाई, लगन और मेहनत के चलते वह एक अच्छी ऑफिसर बन जाती है और वही समाज में एक आदरणीय और नेक लड़की मानी जाती है। नारी जागृत होकर पुरुष के समान अपना अधिकार भोगना चाहती है, यह नारी का जागृत स्वरूप है। जीवन बिताने के लिए, सुख अनुभव करने के लिए, नौकरी के लिए, समाज से मुक्त होकर घूमने फिरने के लिए, सभा में प्रवेश करने के लिए,

राजनीति में भाग लेने के लिए तथा न्याय व्यवस्थाओं में भी पुरुष के समान जीवन बिताना चाहती है। नारी जागृत होने के कारण पुरुषों के समान हर क्षेत्र में कदम से कदम मिलाकर कार्य करने में उत्साह बढ़ाने में अग्रसर हुई है। अधुनातन नारी पूर्ववती नारी की भांति घुटने टेकने की बजाय बलपूर्वक इसका निराकार करती है। कनक

'झूठा सच' उपन्यास की प्रमुख पात्र अधुनातन नारी के रूप में हमारे सामने आई है जो पुरुष की संपत्ति मात्र बनकर नहीं रहना चाहती बल्कि अपने पति के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना चाहती है। अपने दायित्वों को पूरा करने के लिए वह अनेक प्रकार की प्राचीन रूढ़ियों, सामाजिक कुरीतियों का विरोध करती है। अधुनातन समय में नारी की सोच में बदलाव सबसे बड़ा परिवर्तन है। आज उसकी मंजिल विवाह करना या किसी मर्द, पति तक ही सीमित नहीं है। अधुनातन नारी में विवाह के प्रति असंतोष की भावना पैदा हुई है। तारा के शब्दों में– "यह लोग क्यों समझते हैं कि बिना ब्याही औरत आवारा ही होती है, उसे किसी न किसी खूँटे पर बाँध ही देना चाहिए, किसी न किसी को उसका मालिक बन ही जाना चाहिए....।"[5]

ज्यादा पढ़ी लिखी नारी समाज में चुनौती के समान मानी जाती है। समाज में ऐसा माना जाता है कि लड़की को ज्यादा पढ़ा दिए जाने के कारण उसके लिए अच्छा लड़का ढूंढना मुश्किल हो जाता है। 'झूठ सच' उपन्यास में तायी तारा के ब्याह के संबंध में बात करती हुई कहती है– "लड़की को ज्यादा पढ़ा दो तो उसके लिए लड़का ढूँढना और मुश्किल हो जाता है।"[6] जो आज के समय में भी उतना ही प्रांसगिक बना हुआ है कि जितना पहले था।

पुरातन रूढ़ियों के प्रति आक्रोश का स्वर औरतों के लिए माना जाता है कि वह सिर्फ रसोई बनाने के लिए और बच्चे पैदा करने के लिए ही पैदा हुई है। 'झूठा सच' उपन्यास की पात्र पूर्णदेई लाड़ के साथ तारा से कहती है "तीमियाँ (अबलाएँ) कभी रसोई बनाना भूल सकती हैं? वे तो जन्म ही इसी प्रयोजन से लेती हैं कि पका कर खिलायें।"[7] तायी के शब्दों में "तीमी तो चौके और ससुराल में ही सजती है।"[8]

पढ़ी–लिखी नौकरी पेशा नारी के गृहस्थी नारी संबंधी विचार अलग प्रकार के हैं। वह घरेलु नारी को अपने से ज्यादा खुश देखती है तब उनके मन में हीनता का भाव पैदा होता है। 'झूठा सच' उपन्यास की पात्र डॉ. श्यामा के शब्दों में "..शायद बुराई है कि ब्याह नहीं किया। घरों में बंद औरतें शायद हमसे अच्छी हैं। गृहस्थ के धंधे और बच्चों की चिंता और चिल्लपों, उनके दिमाग में कोई बात आने ही नहीं देती होगी... पेट भरता रहता है, काम तृप्ति भी होती रहती है होगी पर मैं वह भी नहीं कर सकती।"[9]

आत्मनिर्भरता अधुनातन समय में नारी आर्थिक रूप से सशक्त हुई है। वह अब आत्मनिर्भर है। 'झूठा सच' उपन्यास की पात्र डॉ. श्यामा के पुरुषों के संबंध में कहती है "स्त्री को बाँध कर रखना है तो उसका व्यक्तित्त्व जगाने, उसे आत्मनिर्भरता की बात सीखने की क्या जरूरत है।"[10]

स्वावलंबी नारी के प्रति समाज का दृष्टिकोण सहज नहीं होता। स्वावलंबन की रक्षा करती हुई नारी परंपरागत चलते रूढ़िगत संस्कारों का विरोध करती हुई समाज और परिवार से उपेक्षित हो जाती हैं। पहले वह घर के कामकाज में पिसती थी अधुनातन युग में नारी घर और नौकरी दोनों में पिस रही है। यह सब वह अपने स्वावलंबन को कायम रखने के लिए कर रही है। झूठा सच उपन्यास की पात्र तारा, कनक, शीला, सीता, डॉ.

श्यामा, मर्सी, मिसज अगरवाल आदि नारियाँ अपने स्वावलंबन को कायम रखने की कोशिश करती हैं।

घुटन भरा जीवन मातृत्व भावना के कारण अधुनातन समय में नारियों विवाह जैसी सामाजिक व्यवस्था का खंडन करती हैं। बदलती परिस्थितियों ने नारी ने पत्नीत्व का त्याग भी किया है, वो अपने निजत्व के लिए समाज को चुनौती देने को तैयार है। झूठा सच उपन्यास की पात्र शीलो अपने पति को छोड़ कर अपने प्रेमी रतन के साथ रहती है। जो समाज के लिए एक विवाहित नारी का यह व्यवहार सहनीय नहीं है। वह अपना जीवन घुटन के साथ नहीं बतीत करना चाहती।

नारी–सशक्तीकरण अधुनातन समय में नारी चेतना ने सशक्त रूप धारण किया है। नारी अब असहाय, अबला नहीं रही, वह पुरुष के समान सभी क्षेत्रों में सक्रिय भूमिका निभा रही है।

अन्तर्जातीय विवाह के प्रति नारी पुरुष के विचारों में भेद हैं। पुरुष जब अन्तर्जातीय विवाह कराने चाहे तो करवा सकता है लेकिन जब यही विवाह उसकी बहन करने चाहे तो पुरुष की इज्जत पर आँच आती है। अन्तर्जातीय विवाह संबंधी पुरुष का यह दोहरा रूप आज भी प्रांसगिक बना हुआ है। झूठा सच उपन्यास का पात्र जयदेव पुरी अपनी शादी तो जाति से बाहर करने के लिए तैयार होता है लेकिन अपनी बहन तारा का मुस्लिम लड़के के साथ मित्रता भी अच्छी नहीं लगती।

विवाह के पहले और बाद प्रेम संबंधों की समस्या :–

झूठा सच उपन्यास में नारी के प्रेम की समस्या को उद्घाटित किया गया है। नारी प्रेम करती है पर सफल नहीं हो पाती अगर सफल हो भी जाती है तो विवाह के अंत तक टिक नहीं पाती। जैसा की झूठा सच उपन्यास की पात्र शीला के साथ होता है शीला प्रेम तो रतन के साथ करती है लेकिन उसका विवाह परिवार और समाज के दबाव के कारण कहीं और कर दिया जाता है। वहां कुछ सालों बाद जब उसके पति को प्रेम संबंध के बारे में पता चलता है तो वह उसकी पिटाई करता है। प्रेम की समस्या लड़कियों को ज्यादा विद्रोही बनाती है क्योंकि माता–पिता अपनी परंपराओं से युक्त रहते हैं। झूठा सच उपन्यास में विवाह के बाद और विवाह पूर्व काम संबंधों की चर्चा की गई है। नारी सेक्स को अपनी आवश्यकता मानती है। इसकी इच्छा पूर्ति के लिए वह कोई भी कदम उठाने को तैयार है। झूठ सच उपन्यास की पात्र शीला अपने विवाह के बाद भी अपने प्रेम संबंध कायम रखती है। सीता विवाह से पूर्व काम तृप्ति को पूरा करती है जो कि बाद में उसके लिए एक जंजाल पैदा कर देता है, जिसके चलते उसे गर्भ–पात करवाना पड़ता है। सीता को प्रेम जाल में फंसकर धोखा होता है। अधुनातन समय का प्रेम काम पर आधारित बन गया है, परंपरा का खंडन कर समाज को चुनौतियां देती हुई नारी सेक्स को जरूरी मानने लगी है।

बलात्कार व हत्या झूठ सच उपन्यास में विभाजन की त्रासदी में नारियों पर किए गए शोषण की समस्या व हत्या को वर्णित किया गया है। नारी के साथ बलात्कार कर उसकी हत्या कर देना एक आम सी बात बन चुकी है। नारी कहीं भी सुरक्षित भावना महसूस नहीं करती। बलात्कार व हत्या, मानसिक शोषण नारी–विमर्श के समक्ष एक चुनौती बनी हुई है।

नारी–विमर्श आज भी उतना प्रांसगिक है जितना कि शुरू होने के साथ क्योंकि इसके केंद्र में नारी को

मनुष्य के रूप में स्थापित करने का प्रयास जारी है और यह विमर्श नारी की अनेक समस्याओं को दूर करने में, नारी को जागृत करने में सहायक सिद्ध हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. स्त्रीमुकतीतील सत्य व भ्रम, डॉ. भारती जाधव, पृष्ठ–9
2. एक जमीन अपनी, चित्रा मुद्‌गल, पृष्ठ–214
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ– 434
4. ठीकरे की मंगनी, नासिरा शर्मा, पृष्ठ–11
5. झूठा सच, यशपाल, पृष्ठ–303
6. वही पृष्ठ–348
7. वही पृष्ठ–361
8. वही पृष्ठ–362
9. वही पृष्ठ–369–370
10. वही पृष्ठ–370

संपर्क– 8968370602

ई–मेल sararisaroj12@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 239-242
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

दलित विमर्श के परिप्रेक्ष्य में 'शवयात्रा' कहानी

डॉ. दीपिका आर परमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, श्री जीवन ज्योत आर्ट्स कॉलेज, गुजरात।

सारांश :-

दलित कहानीकारों ने अपनी भोगी हुई जिंदगी के यथार्थ दस्तावेजों के रूप में साहित्य का निर्माण किया है। हिंदी की प्रथम दलित कहानी १६७५ में सतीश की 'वचनबद्ध' जो मुक्ति पत्रिका में छपी थी। दलित कहानीकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नेमीशराय, जयप्रकाश कर्दम, सूरजपाल चौहान, सुशीला टाकभौरे, रतनकुमार संभ। रिया, कुसुम वियोगी इन साहित्यकारों ने 'दलित जीवन के कमजोर व सबल पक्षों को उठाने का बीड़ा उठाया। वे प्रतिबद्धता से लिख रहे है। वर्तमान दलित साहित्य के ख्यातनाम रचनाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि इनमें से एक है।

उनकी कहानी 'शवयात्रा' दलित समाज के अंतर्विरोध को सामने लाती है, और दलित जीवन की नरकीय अवस्था का भी चित्रण करती है। कहानी को पढ़ने के बाद उसकी जातिगत भेदभाव और उत्पीड़न का भी चित्रण देखने को मिलता है।

कहानी बल्हार ओर चमार समुदाय की हे जिसमें बल्हार समुदाय को चमार समुदाय से कमतर माना गया हे। इन दोनों समुदायों के बीच सामाजिक असमानता और जातिगत पूर्वग्रह भी देखा गया है।

मूल शब्द :- दलित, बापू, गांव, बल्हार।

कहानी की शुरुआत जातिवाद से शुरू होती है। चमारों के गांव में बल्हारो का एक परिवार था, जो जोहड़ के पार रहता था। चमार और बल्हारो की सीमारेखा था जोहड़। बरसात के दिनों में पानी भर जाता तब बल्हारो का संपर्क गांव से छूट जाता था। कोई भी इनकी मदद नहीं करता था और गांव में जाने के लिए कोई रास्ता भी नहीं था। और किसी को रास्ता बनाने की जरूरत भी कभी महसूस नहीं हुई।

जब किसी चमार को उनकी जरूरत पड़ती, तो जोहड़ के किनारे आके आवाज लगाते ओर उनकी आवाज सुनकर बल्हार बाहर आ जाते। यह कहानी सुरजा नामक एक अधेड़ व्यक्ति की है जिसकी उम्र ढल गई है। उसकी एक बेटी संतो है जो शादी के तीसरे साल में विधवा हो चुकी है। सूरज की घरवाली को भी मरे तीन साल हो गए हैं। सुरजा का एक बेटा भी है जो दस बारह साल की उम्र में घर छोड़कर भाग गया था, ओर इधर उधर भटकते उसे रेलवे में नौकरी मिल गई। नौकरी मिलने पर उसने अपनी आगे की पढ़ाई पूरी कर ली और प्रमोशन पाकर फीटर हो गया था। उसका नाम कल्लू जो आज कल्लन हो गया था। जब संतो की शादी हुई तो सारा कर्ज उसने उठाया था। कल्लन की शादी रेलवे कॉलोनी में हो गई। उसका ससुर भी रेलवे में

नौकरी करता था। इसलिए उसको पढ़ी लिखी पत्नी मिली थी जिसके कारण उसके जीवन में भी परिवर्तन आ गया था। गांव में वह कभी कभी आता था। जब कभी भी वह गांव में आता चमार लोग उसे अजीबोगरीब तरीके से देखते। कल्लू से कल्लन हो जाने को वह स्वीकार नहीं कर पाते थे, उनकी नजरों में वह बल्हार ही था सबसे नीचे यानि अछूतों से अछूत।

जब कभी वो गांव में आता अपने आपको अकेला महसूस करता आखिर बात करे तो किसके साथ करे। गांव वाले उसे सलयू बल्हार बुलाते थे जो उसे जरा भी पसंद नहीं था। इस बार जब वो गांव में आया तो बोलने लगा कि, 'बापू मेरे साथ दिल्ली चलो सरकारी मकान में सब एक साथ रहेंगे।'[१] तब बुजुर्ग बाप जवाब देता है कि आखिरी बखत में यो गांव क्यू छुड़ावै। वे..... पुरखों की जमीन है और वो यही मर खप गए इसी माटी में। सुरजा ने आंखे मिचमिचाकर अपने मन की बात कही, ओर कल्लन करे भी तो क्या बापू की बात काटने की हिम्मत उसमें न थी। वह चुपचाप बैठकर सोचता रहा और जोर देकर कहा, :बापू यहां न तो इज्जत है, ना रोटी, चमारों की नजर में भी हम सिर्फ बल्हार हैं..... यहां तुम्हारी वजह से आना पड़ता है.... मेरे बच्चे यहां आना नहीं चाहते ..... उन्हें यहां अच्छा ही नहीं लगता।'[२]

अब कल्लन की बात को बीच में ही काटकर उसका बापू बोलता है कि ठीक है बेटा मत आना, तू बस मारा एक काम करदे तू इस घर को पक्का घर बनवादे..... आज में मारी इच्छा तुझसे बता रहा हूं। बापू की बात सुनते ही कल्लन बोला मेरे पास जो पैसे है वो यह लगाकर क्या होगा? आपके बाद में तो यहां रहने आऊंगा नहीं...... ओर संतो मेरे साथ दिल्ली जाएगी, कल्लन ने बोल दिया। यह बात सुनकर सुरजा भड़क गया और गालियां देने लगा कि तू कैसा बेटा है, मेरे मरने का इंतजार कर रहा है। और हां तू अपना पैसा अपने पास रख जहां इतनी कटगई है जिंदगी आगे भी कट जायेगी।

सुबह होते ही कल्लन दिल्ली चला गया और एक सप्ताह में पैसो का बंदोबस्त करके वह अपनी पत्नी और बेटी को लेकर गांव में आता है। कल्लन आते ही बापू से कहा – 'किसी मिस्त्री से बात करो कल ईंटों का ट्रक आ जाएगा'। कल्लन की बात सुनकर उसकी आंखों में खुशी की चमक आ गयी। अब वह बूढ़ा बाप मिस्त्री की तलाश में निकल गया। उसे कही से पता चलता है कि गांव में ज्यादातर गांव सूरतराम ने बनाए हैं तब वो उनसे मिलने जाता है। वहां पहुंचने पर सूरतराम उसके कपड़ो को देखकर बताता है कि कपड़ों का तो ठिकाना नहीं ओर मकान की बात करते हो, आज टैम नहीं है फिर बात करेंगे।

सुरजा ने हार नहीं मानी और सुबह होते ही वह फिर से दूसरा मिस्त्री साबिर के पास गया और घर बनाने की बात बताई। आखिर बूढ़े बाप की मेहनत रंग लाई और साबिर मिस्त्री ने हा बोला ओर कहा ठीक है मैं कल आके देखता हूं। पर मैं मेहनताना लूंगा और पेशगी भी। सुरजा ने कहा ठीक है कल से आ जाओ जोहड़ पर मेरा घर है। सुरजा के खुशी के मारे पांव जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। घर पहुंचने पर लाल ईंटों को देखकर सुरजा अपनी थकावट भूल गया। लेकिन बूढ़े की खुशी ज्यादा देर तक न रही। गांव में रामजीलाल को यह बात पता चलते ही उन्होंने यह बात गांव के प्रधान बलराम सिंह को बताई। सुरजा घर बनवा रहा है ईंट आ गई हैं, खिड़की दरवाजों के लिए सागौन की लकड़ी आ रही हैं। ओर सुना है संगमरमर की टाइल भी आ रही है। अगले दिन बलराम सुरजा को बुलाकर धमकी देता है कि घर बनाने का विचार छोड़ दे। वह जमीन जिस पर तुम रहते हो हमारे बाप दादा की है। जिस हाल में रहते हो वैसे रहो। किसी को एतराज नहीं होगा। पर सिर उठाकर खड़ा

होने की कोशिश की तो गांव से बाहर कर देंगे। बलराम के शब्दों ने बूढ़े सुरजा के जिस्म को छली–छली कर दिया। पर सुरजा हार स्वीकार नहीं करता और संकल्प करता है कि मकान तो बनवा के ही रहूंगा। कल्लन बुरी तरह फंस जाता है क्योंकि उसकी दस साल की बेटी सलोनी को बहुत बुखार आ जाता है।

रातभर बुखार में तपती सलोनी को गांव का डॉक्टर दवाई देने से मना कर देता है। अंत में वह और उसकी पत्नी शहर ले जाते है तब रास्ते में ही बच्ची दम तोड़ देती है। अब आधे रास्ते से रोते पीटते वह उनकी बच्ची को ले के आते हैं। एक लाचार पिता अपनी पीठ पर अपनी बच्ची को लादकर गांव वापस आता है। सब देखकर सुरजा का माथा ठनकता है वह बूढ़ा दादा अपने आपको सम्भाल नहीं पाता है। कल्लन अपनी बीवी की दशा देखते हुए अपनी बेटी का अंतिम संस्कार रात को ही कर देना चाहता था पर अब समस्या लकड़ियों की थी। कोई भी उनको लकड़ियों देने के लिए तैयार न थे और चमारों को श्मशान में जलाने की भी इजाजत नहीं थी। अंत में घर में रखें उपले और गांव से तीन चार किलोमीटर दूर ले जाकर फूंकना पड़ा था।

बलहार के मुर्दे को हाथ लगाने ओर शवयात्रा में शामिल होने भी कोई व्यक्ति आया न था। अंत में बूढ़ा बाप और बेटा सलोनी के शव को लेकर चलते हैं और संतो लकड़ियों का गट्ठर सिर पर रखकर आग और हांडी उठा लेती है। और उसकी मां उपलों से भरा टोकरा लिए चल पड़ती है। और इस शवयात्रा को सब अपनी अपनी छत पर चढ़कर देख रहे थे।

यह कहानी दलितों के जीवन में मौजूद दर्दनाक सच्चाई को उजाकर करती हैं और समाज में समानता और न्याय की मांग करती है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलितों के अधिकारों और सामाजिक न्याय के लिए आवाज उठाई। अपने लेखन के माध्यम से समाज को जातिगत भेदभाव ओर उत्पीड़न के बारे में दलितों को जागरूक किया ओर उनके अधिकारों के लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया।

कहानी का अंत बहुत दुखद होता है, एक बूढ़े दलित बाप की घर बनाने की मंशा पूरी नहीं होती है ऊपर से कल्लन भी अपनी बेटी सलोनी को खो देता हे और जब वह शवयात्रा निकालती है जिसमें उसे चार कंधे देने के लिए भी लोग आगे नहीं आते हैं। क्या परिस्थिति निर्माण हुई वह सोचकर ही मेरी रूह कांप गई। अंततः वह अपने घर में जलाने के उपलों ओर जंगल की छोटी मोटी लकड़ियों से अपनी बेटी का दाह संस्कार कर देता है, ओर यह नजारा चमार समुदाय की महिलाएं अपने घर की छत से देखती रहती हैं।

जब यह कहानी आई तो इसका विरोध भी हुआ कि क्या अछूत से भी अछूत कोई होता है भला?

यहां कहानी के करुण अंत के साथ–साथ में डॉ. आंबेडकर को याद कर के एक बात रखती हूं कि उनकी मंशा आदर्श राज्य की स्थापना करना था, ओर वह अपने आदर्श राज्य की स्वतंत्रता, समानता, और बंधुत्व इन तीन आवश्यक तत्वों पर स्थापना करते हैं। आदर्श समाज में वह व्यक्ति के विकास पर जोर देते हैं। साधारणतः उनके अधिकतर लेखों ओर पुस्तकों से ज्ञात होता है कि उनका आदर्श राज्य सामान्यतः एक जातिविहीन राज्य है, परन्तु जब हम ध्यान से देखते है तो यह पता चलता है कि जाती की अवधारणा में ही दासता, असमानता तथा अलगाव निहित है। जाती को परिभाषित करते हुए आंबेडकर कहते है कि 'जाति एक ऐसे कमरे की तरह है जिसमें न दरवाजे है न खिड़कियां है। इस कमरे में जो एक बार जनम लेता है फिर वह इस कमरे के बाहर नहीं जा सकता, वह इसी में जन्मा है तो इसी में ही मरेगा।'[३]

कहानी का बूढ़ा सुरजा भी वही कहता है कि में इसी मिट्टी में जन्मा हूं और इसी मिट्टी में मर जाऊंगा। एक दिन पर तुम्हारे साथ शहर आकर नहीं रहना मुझे। यह मिट्टी ही मेरे लिए सब कुछ है अगर तुम मुझे पक्का घर बनवा दो तो मेरे लिए बहुत खुशी की बात होगी। पर कल्लन घर बनाने के लिए सब सामान ला के रख देता है पर कोई भी उस बूढ़े बाप की इच्छा पूरी नहीं होने देता। ओर कहानी का दुखद करुण अंत हो जाता है।

संदर्भ सूची :-

1. श्रेष्ठ हिंदी कहानियां (१६६०–२०००) उमाशंकर चौधरी, ज्योति चावला पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा) लि २७
2. श्रेष्ठ हिंदी कहानियां (१६६०–२०००) उमाशंकर चौधरी, ज्योति चावला पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा) लि २८

Email : dipikarparmar1986@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 243–246

हिंदी कहानी में किसान विमर्श

डॉ. मिशा शर्मा
सहायक आचार्य, हिंदी अकलंक कॉलेज ऑफ एजुकेशन, कोटा (राजस्थान)

किसान विमर्श एक परिचय :–

नामवर सिंह के अनुसार 'किसान विमर्श साहित्य में उस सामाजिक चेतना का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें कृषक वर्ग के शोषण, पीड़ा, संघर्ष और बदलाव की प्रक्रिया को अभिव्यक्ति दी जाती है। यह न केवल किसान की आर्थिक स्थिति पर केंद्रित होता है, बल्कि उसकी सांस्कृतिक, मानसिक और वैचारिक स्थिति का भी दस्तावेज होता है।' डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार 'किसान विमर्श हिंदी साहित्य की वह धारा है, जो सामंती और पूंजीवादी शोषण के विरुद्ध किसानों की सामूहिक चेतना और संघर्ष को स्वर देती है।'

हिंदी साहित्य में किसान विमर्श का आरंभ :–

किसान विमर्श हिंदी में एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक और साहित्यिक प्रक्रिया रही है, जिसकी जड़ें हिंदी के आरंभिक युग से ही देखी जा सकती हैं। यद्यपि प्रारंभिक हिंदी काव्य में इस विमर्श की छवि और नामकरण बहुत स्पष्ट रूप से सामने नहीं आती, फिर भी लोकगीतों और भक्ति काव्य में कहीं न कहीं कृषक जीवन की झलक मिलती है। भक्तिकाल में तुलसीदास और कबीरदास के काव्य में किसान जीवन की कठिनाइयों, श्रम, और सामाजिक विषमता के विषयों को प्रतीकों में प्रस्तुत किया हैं। तुलसीदास और कबीरदास का यह दोहा इसका साक्ष्य है :–

'साईं इतना दीजिए, जा में कुटुम समाय।
मैं भी भूखा न रहूं, साधु न भूखा जाए।।' (कबीर)

"खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।
जीविका बिहीन लोग सीद्यमान सोच बस,
कहैं एक एकन सों, 'कहाँ जाई, का करी?'
बेदहूँ पुरान कही, लोकहूँ बिलोकिअत,
साँकरे सबै पै, राम! रावरें कृपा करी।
दारिद–दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु!
दुरित–दहन देखि तुलसी हहा करी।।" (तुलसीदास)

यहाँ श्रमजीवी वर्ग की न्यूनतम आवश्यकताओं की ओर संकेत मिलता है, जो किसान विमर्श का प्रारंभिक

बीज रूप है। संगठित रूप में किसान विमर्श का उद्‌भव हिंदी के आधुनिक युग, विशेषकर प्रेमचंद के कथा साहित्य से माना जाता है।

किसान विमर्श की प्रमुख विशेषताएं :-

1. **यथार्थपरक चित्रण** – हिंदी कहानियों में किसान का चित्रण कल्पना नहीं, बल्कि अनुभव पर आधारित है।
2. **संघर्ष और चेतना** – किसान अब केवल पीड़ित नहीं, बल्कि अपने अधिकारों के लिए जागरूक भी है।
3. **सांस्कृतिक जड़ें** – किसान केवल अर्थशास्त्र की ही इकाई नहीं, बल्कि सांस्कृतिक अस्मिता का वाहक भी है।
4. **राजनीतिक संदर्भ** – किसानों के जीवन में राजनीति का हस्तक्षेप और उसका असर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

हिंदी कहानी में किसान विमर्श :-

हिंदी साहित्य में किसान जीवन का चित्रण प्रारंभ से ही महत्वपूर्ण विषय रहा है। विशेष रूप से हिंदी कहानियों में किसान विमर्श ने सामाजिक यथार्थ को प्रकट करते हुए किसानों की समस्याओं, संघर्षों और अस्मिता को प्रमुखता से प्रस्तुत किया है। यह विमर्श न केवल साहित्यिक सरोकारों का हिस्सा है, बल्कि भारतीय समाज की बदलती संरचना और ग्रामीण जीवन की विडंबनाओं को भी उद्‌घाटित करता है।

किसान विमर्श की पृष्ठभूमि :-

भारतीय कृषि प्रधान समाज में किसान की स्थिति सदैव संघर्षशील रही है। आधुनिकता, पूंजीवाद और भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने जहां एक ओर आर्थिक विकास को गति दी, वहीं दूसरी ओर किसानों की समस्याओं को भी जटिल बना दिया। इस यथार्थ को अनेक हिंदी कथाकारों ने अपनी कहानियों में संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है।

प्रारंभिक कहानियों में किसान का चित्रण :-

प्रेमचंद हिंदी साहित्य के पहले ऐसे कथाकार हैं, जिन्होंने किसानों की समस्याओं को सामाजिक यथार्थ के साथ प्रस्तुत किया। उनकी अनेक कहानियों में किसान वर्ग की असहायता, निर्धनता और सामाजिक शोषण का गहन चित्रण मिलता है। 'पूस की एक रात' उनकी ऐसी ही कहानी है, जिसमें किसान हल्कू के माध्यम से ग्रामीण किसान जीवन की पीड़ा, मजबूरी और संघर्ष को दर्शाया गया है। कहानी के आरंभ में ही प्रेमचंद किसान की आर्थिक विवशता को रेखांकित करते हैं – 'हल्कू ने आकर स्त्री से कहा कृ लाओ, अब की दो रूपये दे दो, जरा एक कम्बल लाऊँ, नहीं तो रात को खेत में मर जाऊँगा।' यह संवाद केवल एक व्यक्ति की व्यथा नहीं है, बल्कि उस समय के करोड़ों किसानों की वेदना को उजागर करता है, जो बुनियादी जरूरतों को भी पूरा नहीं कर पाते थे।

कहानी में हल्कू का खेत की रखवाली करते हुए ठिठुरना, उसका कुत्ते के साथ संवाद करना, और अंततः आलस्य में खेत को नष्ट होते देखना – ये सभी दृश्य किसान की टूटती हुई इच्छाशक्ति और उसकी बेबसी को सामने लाते हैं। प्रेमचंद ने लिखा है – 'हल्कू की हड्डियाँ गल गयीं, कभी इस करवट लेटता, कभी उस करवट, पर कोई गर्मी नहीं।' यह पंक्ति उस किसान की व्यथा–कथा है, जो दिन–रात मेहनत करने के बाद भी चौन की नींद नहीं सो सकता। कहानी के अंत में हल्कू की वह स्वीकारोक्ति अत्यंत मार्मिक है – 'अब खेती नहीं करूँगा।

क्या करेंगे खेती का?' यह संवाद किसान के भीतर उपजी हताशा और टूटे हुए सपनों का प्रतीक है। वह समझ चुका है कि खेती अब उसके लिए केवल कष्टों का कारण है, लाभ का नहीं। 'पूस की एक रात' किसान विमर्श का एक सशक्त उदाहरण है।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानियों में किसान के सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति और तीव्र हो गई। कथाकारों ने किसान के जीवन में आए बदलावों, जैसे – हरित क्रांति, जमींदारी प्रथा का अंत, कर्ज की समस्या और आत्महत्याओं को केंद्र में रखा। फणीश्वरनाथ 'रेणु' हिंदी साहित्य में ग्रामीण जीवन और किसान समाज के यथार्थ चित्रण के लिए प्रसिद्ध हैं। उनकी कहानी 'पहलवान की ढोलक' इसका उदाहरण है। इस कहानी में किसान विमर्श मुख्य रूप से ग्रामीण किसान वर्ग की आर्थिक दयनीयता, सामाजिक संघर्ष और आत्मसम्मान के मुद्दों पर केंद्रित है। कहानी के नायक 'पहलवान' का चरित्र एक किसान मजदूर का प्रतिनिधित्व करता है, जो शारीरिक रूप से बलिष्ठ है, लेकिन सामाजिक व्यवस्था में वह एक उपेक्षित और शोषित वर्ग से आता है – 'पहलवान की ढोलक बजने लगती है तो मेला जाग उठता है।' यह उद्धरण दर्शाता है कि पहलवान की कला समाज में लोकप्रिय है, लेकिन उसकी सामाजिक स्थिति फिर भी दयनीय बनी रहती है। किसान वर्ग की दुर्दशा इस बात से भी झलकती है कि जब गांव के प्रभावशाली लोग उसकी ढोलक को हथियाने की कोशिश करते हैं, तो वह अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए खड़ा होता है। यह एक किसान की उस जद्दोजहद का प्रतीक है जिसमें वह न केवल भूमि, बल्कि अपनी अस्मिता की भी रक्षा करता है। रेणु लिखते हैं– 'ढोलक उसकी आत्मा थी, कोई उसे छीन ले तो क्या वह जिंदा रह सकेगा?' यह पंक्ति किसान की उस आंतरिक चेतना को सामने लाती है जो आत्मसम्मान और सांस्कृतिक अस्मिता से जुड़ी होती है। 'पहलवान की ढोलक' सिर्फ एक ढोलक की कहानी नहीं, बल्कि किसान के संघर्ष, उसकी कला, आत्मसम्मान और उसके अस्तित्व की कहानी है। रेणु ने इस कहानी के माध्यम से किसान विमर्श को संवेदनशीलता, यथार्थ और गहराई के साथ प्रस्तुत किया है, जो हिंदी साहित्य में इसे एक महत्वपूर्ण रचना बनाती है।

संपूर्ण क्रांति और समकालीन किसान विमर्श :–

1970 के दशक में जेपी आंदोलन, नक्सल आंदोलन, और संपूर्ण क्रांति जैसे आंदोलनों ने ग्रामीण चेतना को नया आयाम दिया। इस समय मलयज, सुभाष पंत, फणीश्वरनाथ श्रेणुश, और कृष्णा सोबती जैसे लेखकों ने किसानों की चेतना, आक्रोश और संघर्ष को कहानी के माध्यम से अभिव्यक्त किया। इक्कीसवीं सदी में किसान विमर्श और भी जटिल हुआ है। किसान आत्महत्या, भूमि अधिग्रहण, कारपोरेट कृषि, और सरकारी नीतियों के प्रभाव को कहानियों में प्रमुखता से उठाया गया है। सूरज पालीवाल, मधु कांकरिया, शशांक, और भगवत रावत जैसे समकालीन कथाकारों ने ग्रामीण संकट को गहराई से प्रस्तुत किया है। सूरज पालीवाल की कहानी 'धान रोपते लोग' में खेती किसानी की सांस्कृतिक परंपरा और बदलती सामाजिक संरचना को चित्रित किया गया है। "धान रोपते हाथ अब भी गीत गाते हैं, पर आंखों में डर है कि अगली बार ये खेत बचेंगे भी या नहीं।" (धान रोपते लोग, सूरज पालीवाल)

निष्कर्ष :–

हिंदी कहानियों में किसान विमर्श समय के साथ विकसित हुआ है। प्रेमचंद से लेकर समकालीन कथाकारों तक, किसान जीवन की विडंबनाओं, संघर्षों और आशाओं को कहानियों में स्थान मिला है। आज जबकि किसान

आंदोलन और कृषि संकट राष्ट्रीय विमर्श का हिस्सा बन चुके हैं, हिंदी कहानियाँ न केवल इस विमर्श को जीवित रखे हुए हैं, बल्कि सामाजिक चेतना को भी जागृत कर रही हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सिंह नामवर, आलोचना और विचारधारा, राजकमल प्रकाशन, 2005
2. शर्मा रामविलास, भारतीय साहित्य का समाजशास्त्र, लोकभारती प्रकाशन, 1994।
3. प्रेमचंद – मानसरवर (खंड 8)
4. रेणु फणीश्वरनाथ – पहलवान की ढोलक।
5. बेनीपुरी रामवृक्ष – गांधी टोपी गांधी बस्ती।
6. रावत भगवत – नई कहानी : एक पुनर्पाठ।
7. कमलेश्वर – नई कहानी की भूमिका।
8. प्रभाकर श्रोत्रिय – समकालीन हिंदी कथा साहित्य।
9. रवींद्र कालिया (संपादक) : नयी कहानी : प्रतिनिधि रचनाएं।

मकान नंबर 805, बसंत विहार,
कोटा – 324009, राजस्थान।
मोबाइल – 8561076775

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 247-251

प्रवासी हिन्दी कहानियों में बिखरते भारतीय मूल्य

क्रिस्टी .पी. जेराल्ड
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, कालिकट विश्वविद्यालय।

शोध सारांश :–

समय के अनुरूप प्रवासी साहित्य में निर्वासन जैसे आख्यानों से आगे बढ़कर सांस्कृतिक संघर्ष, मिश्रित पहचान और बिगड़ते मानवीय मूल्य जैसे जटिल विषयों को शामिल करने लगे है। सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और धार्मिक मुद्दों को उजागर करने का प्रयास आज प्रवासी हिन्दी कहानियों द्वारा हो रहा है। विभिन्न देशों के संस्कृति और पृष्ठभूमि भिन्न होने के कारण प्रवासी भारतीयों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जिसमें सबसे महत्वपूर्ण है सांस्कृतिक संघर्ष एवं बदलते मानवीय मूल्य से जुड़ी समस्याएं। यह व्यापक विश्लेषण भारतीय संस्कृति और मूल्य की विशेषताओं को उजागर करते हुए विदेशी संस्कृति और मानवीय मूल्य किस तरह प्रवासी भारतीयों पर, उनके सांस्कृतिक अस्तित्व की जटिलताओं पर प्रभावित करती है, इस पर प्रकाश डालती है।

बीज शब्द :– मानवीय मूल्य, भारतीय संस्कृति, पाश्चात्य संस्कृति।

प्रस्तावना :–

हिन्दी साहित्य संसार में आज वर्तमान की हर मुख्य विमर्शों के साथ–साथ प्रवासी विमर्श भी जोरों से अपना स्थान पसार रहे हैं। प्रवासी साहित्य उन लोगों द्वारा लिखी गयी साहित्य है जो अपने मूल स्थान से विस्थापित होकर पाराये देश में अपने को स्थापित करने की चेष्ठा करते हैं। जब भारत के लोग विदेशी भूमि में निवास करने लगे और अपने अंतर्मन की व्यथा, पीड़ा, मानसिक संघर्ष, अजनबीपन एवं अलगाव की भावना को कलम की सहायता से व्यक्त करने लगे तो वहाँ भारतीय प्रवासी साहित्य का उदय हुआ। दुनिया के कोने–कोने में भारतीय जन समुदाय प्रवास करते आये है। कई रिपोर्टों के अनुसार विश्व के प्रवासियों ने भारतीय मूल के प्रवासी समुदाय ही सबसे बड़ा है और इसका एक लंबा इतिहास भी है। जब भारतीय प्रवासी हिन्दी भाषा में साहित्य लेखन आरंभ किया तभी हिन्दी साहित्य का विस्तार बढ़ा एवं सीमाहीन हो गया।

अपने देश से उखाड़ कर पाराये देश में स्थापित होने की व्यथा पूरी जिंदगी उन्हें झकझोरती है। प्रवासी साहित्य के माध्यम से हम न सिर्फ प्रवासियों के जिंदगी एवं उनका पीड़ादायक व्यथा को जान सकते हैं बल्कि विश्व के विभिन्न देशों, वहाँ की संस्कृति, रहन–सहन आदि के बारे में भी विस्तार से परिचित हो सकते हैं। प्रवासी साहित्य आज अनेक विधाओं के माध्यम से सामने आया है जिसमें प्रवासी हिन्दी कहानी सबसे सशक्त विधा के रूप में उभर रहा है। नवीन विचारों एवं नवीन विषयों से ओत–प्रोत प्रवासी साहित्य ने हिन्दी साहित्य को विश्व

साहित्य में प्रतिष्ठित किया है।

तात्विक दृष्टि से देखा जाए तो प्रवासी हिन्दी कहानियाँ अनुभवों की सच्चाई और अभिव्यक्ति की ईमानदारी को सच्चे अर्थ में बल देता है। भारतीय प्रवासी विदेशी भूमि में अनेक समस्याओं का सामना करते हैं और उन समस्याओं से लड़ते हुए वह अपने आप को विदेशी भूमि में स्थापित करने का प्रयास करते हैं जिसका अभिव्यक्तीकरण प्रवासी हिन्दी कहानियों के माध्यम से अधिकतर व्यवहार्य हुआ है।

मानवीय मूल्य वास्तव में विश्वासों और सिद्धांतों का समुच्चय है जिनके आधार पर विभिन्न मानवीय परिस्थितियों का मूल्यांकन किया जाता है। मानवीय मूल्य वह सद्‌गुणों का गुच्छा है जो हमें आपस में प्रेम और निष्ठा के साथ व्यवहार करने के लिए सहायक सिद्ध होता है। मानवीय मूल्य मानव के कल्याण हेतु तथा समाज को सही दिशा–निर्देश करने के लिए है। हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठित कवि रामधारी सिंह दिनकर जी के अनुसार "मूल्य वे मान्यताएं है जिन्हें ज्योति मानकर सभ्यता चली या रही है और जिसकी उपेक्षा करने वालों को परंपरा अनैतिक उच्छृंखल या बागी कहते हैं।" मानवीय मूल्य व्यक्ति से प्रारंभ होकर समाज की ओर अग्रसर होती है। यदि मानवीय जनसमूह अपनी समाज की अस्तित्व को बनाए रखना चाहते हैं तो हर व्यक्ति अपने मानवीय मूल्यों को नियमित रूप से बरकरार रखें। मानवीय मूल्यों का एक सामाजिक–सांस्कृतिक आधार होता है और इसी कारण हर समाज की अपनी मानवीय मूल्य होता है जो कभी–कभी एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होता है। मानवीय मूल्य संस्कृति और परंपरा पर आश्रित होता है। भारत और पाश्चात्य मूल्यों में इसी संस्कृति और परंपरा की भिन्नता के कारण ही मानवीय मूल्यों में भी भिन्नता दिखायी देती है।

भारत अपनी संस्कृति और मानवीय मूल्यों के लिए विश्व विख्यात है। समाज केंद्रित संस्कृति होते हुए यहाँ की परंपरा और मानवीय मूल्यों में अहिंसा, प्रेम, परोपकार, बुजुर्गों के प्रति सद्‌भावना, पति–पत्नी के बीच प्रेम और निष्ठा, बच्चों के प्रति माता–पिता के ममता और वात्सल्य, संयुक्त परिवार की संकल्पना आदि गुणों को शामिल किया है परंतु पाश्चात्य मानवीय मूल्य इससे बिल्कुल अलग है। वहाँ व्यक्ति केंद्रित संस्कृति है। पति–पत्नी का रिश्ता जीवनभर के लिए नहीं होता है, बच्चों की देखभाल करना उनका उत्तरदायित्व से बाहर है, बुजुर्ग बुढापे के समय में ओल्ड ऐज होम्स या नर्सींग होम्स में दाखिला हो जाते हैं। इस तरह अगर देखा जाए तो मानवीय मूल्य विश्वभर में सदैव समान नहीं है, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के आधार पर वह एक दूसरे से भिन्न है।

मानवीय मूल्य सदैव समान रूप से नहीं रहेगा, उसमें युग के अनुसार नवीन परिकल्पनाओं और विचार जुड़ जाते हैं और काल क्रमानुसार बदलाव भी दृष्टिगोचर है। प्रवासी साहित्य में इस तरह के भारतीय मूल्य में आए बदलाव और परिवर्तन की चर्चा हुई है। प्रवासी भारतीय ममता, आपसी प्रेम, पति–पत्नी की बीच की निष्ठा, समाजवादी दृष्टिकोण, बुजुर्गों के प्रति श्रद्धा भाव आदि जैसे भारतीय मूल्यों को अस्वीकृत करते हुए पाश्चात्य संस्कृति की मूल्य और नवीन जीवन दृष्टि को अपनाते हुए नजर आने लगे। इस प्रकार अगर देखा जाए तो प्रवासी साहित्य बदलते युग का नवीनतम साहित्य है।

सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'कमरा नंबर–103' प्रवासी वृद्ध विमर्श की सच्चा दस्तावेज है। भारतीय मानवीय मूल्य के अनुसार घर के बुजुर्ग लोगों का बहुत आदर और सम्मान किया जाता है, उन्हें अक्सर ज्ञान और अनुभवों का भंडार माना जाता है। बुजुर्गों को सम्मान के साथ उनका देखबाल भी अच्छे ढंग से किया जाता है। यहां यह पढ़ाया जाता है कि बुजुर्गों के बिना गाँव पानी के बिना कुएं के समान है। परंतु पाश्चात्य मूल्य के

अनुसार बुजुर्ग घर का बोझ है। 'कमरा नंबर–103' की बुजुर्ग महिला मिसिज वर्मा है जो बेटे के बुलाने के कारण प्रवास जाती है। बहु जब गर्बवती होती है तो भारत से माँ को बच्चे की देखभाल के लिए विदेश लाता है। पत्नी की बच्चा गिर जाने पर वृद्ध माँ विदेश में रहने वाले बेटा और बहु पर बोझ बन जाती है। अपने ही परिवार में वृद्ध अकेला और उपेक्षित महसूस करते है। "वे उन्हें घर की फालतू समान की तरह अस्पताल छोड़ गए और अब डॉक्टर भी उन्हें वहाँ से किसी नर्सिंग होम में भेजने की सोच रहे हैं।" 'कमरा नंबर–103' में एक तरह बिगड़ते मानवीय मूल्य का चित्रण हुआ तो दूसरी तरह बिखरते भारतीय मूल्य को भी दर्शाया गया है। 'कमरा नंबर–103' भारतीय मूल्य के बिल्कुल विपरीत दशा को दर्शाया है। भारतीय मूल्य के अनुसार बुजुर्गों को अपने घरों में सबसे श्रेष्ठ स्थान दिया जाता है और बहुत ही अच्छे ढंग से उनकी देखभाल होती है। युग के परिवर्तित अवस्था एवं पाश्चात्य मूल्य का प्रभाव भारतीय प्रवासी जन समुदाय पर पड़ने का चित्रण यहां हुआ है।

सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कहानी 'अखबारवाला' में बिगड़ते मानवीय मूल्य का चित्रण मिलता है। 'अखबारवाला' में नायिका जया अपने विदेशी पड़ोसी से बातचीत करने के लिए उतावली होती है। भारतीय संस्कृति और रीति को जया के माध्यम से दर्शाया गया है। भारतीय संस्कृति एवं मूल्य के अनुसार परस्पर जुड़ाव और पड़ोसी प्यार पर ज्यादा जोर दिया जाता है। परंतु पाश्चात्य संस्कृति में अपने आस–पास के लोगों से जुड़ना, उनसे बातचीत करने की रीति बिल्कुल अजनबी है। "यहाँ आकर भी अपनी ओर से वह जानने की कोशिश करती रही है कि आस–पास कौन रहता है, कैसा है, उनके निकड़ भी जाने का प्रयास करती रहती चाहे यहाँ की सभ्यता की निमत्त वह बौड़म या पुशी ही क्यूँ न कहलाये।"

'अखबारवाला' कहानी का आरंभ जया की पड़ोसी का मौत होने से होता है। पड़ोसी होते हुए भी वह उस शख्स का नाम तक नहीं जानती। अंतिम संस्कार केलिए जब जया उनके घर जाती है तब वह पूछताछ करती है कि कैसे वह इंसान का मौत हुआ। "जया की सारी शिराएं सकते में आ गयीं। बीमार होना, दुःखी होना व्यक्तिगत मामला है? किसी का दुःख बाँटना व्यक्तिगत मामले में हस्तक्षेप हो जाता है?" अमेरिका में वर्षों से अगल–बगल में रहते हुए भी लोग आपस में नहीं जानते हैं। अमेरिकी संस्कृति में पड़ोसी प्यार और परस्पर सबंध एक खोई हुई कला है। अमेरिकी संस्कृति व्यक्तिवाद पर बल देने वाली संस्कृति है। वे ज्यादातर गोपनीयता को अधिक प्राथमिकता देते हैं जिसके कारण घर के पड़ोस में रहने वाले लोगों से उनका अच्छा संबंध नहीं रहता है। "व्यक्तिवाद अमेरिकी संस्कृति के मूल में निहित है।"

मृत्यु का निरूपण करके कहानी मानविकता एवं संवेदना पर जोर देते हैं और उससे उपजे असहज सवालों पर प्रकाश डालती है। नष्ट एवं शीर्ण होते हुए मानवीय मूल्य का झलक दिखाना 'अखबारवाला' कहानी का मुख्य परिप्रेक्ष्य है। प्रवासी कहानिकारों ने अपनी कहानियों में भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृति की तुलना करते हुए भारतीय प्रवासियों का मानसिक संघर्ष का चित्रण किया है।

जकिया जुबैरी की कहानी 'साँकल' एक माँ और बेटे की कहानी है जो विदेश में वर्षों से बसे है। भारतीय मूल्य के अनुसार बड़ों को आदर एवं सम्मान के साथ देखा जाता है। भारतीय मूल्य और संस्कृति के अनुरूप माता–पिता का सम्मान किया जाता है और माता–पिता और बच्चों के बीच का रिश्ता पवित्र एवं पावन माना जाता है। माता–पिता खुद से ज्यादा अपने बच्चों को प्यार करते है, उनको सही मार्गदर्शन, भावनात्मक समर्थन, अच्छी संस्कृति एवं शिक्षा के प्रति जागरूक करवाते है। माँ अपने बच्चों के प्रति अत्यधिक वात्सल्य भाव रखती है और

बच्चे अपने माताओं को सम्मान और स्नेह से उनका पूजन करते हैं। परंतु जकिया जुबैरी की कहानी 'साँकल' का बेटा भारतीय मूल्य के सीधा विपरीत व्यवहार करते हुए नजर आता है। धन और संपत्ति के लालच में आकर अपने माँ से दुर्व्यवहार करता है। 'साँकल' कहानी की माँ अपने बेटे से असीम प्यार करती थी। विधवा होने के कारण वह अपने बेटे से प्यार और संरक्षण की चाव रखती है परंतु जिस बेटे से उसे सुरक्षित जीवन की अभिलाषा थी वहीं बेटा उसे शारीरिक एवं मानसिक रूप से उसके साथ दुर्व्यवहार करता है। "समीर की जबान की कटुता की चोट जितनी गहरी लगी थी, उतना तो बाजुओं पर पड़े नील के निशान का दर्द भी नहीं चुभ रहा था .... अपनी जवानी का एक–एक क्षण .... एक–एक कतरा....... इकलौते बेटे नाम लिख दिया था....... सोचती थी कि बाप के वक्त की भरपाई भी वह ही करेगी। आज इस उम्र में .... माँ पर इतना बड़ा आरोप।"

बिगड़ते भारतीय मूल्य का सच्चा चित्रण 'साँकल' कहानी में किया है। जिस बेटे को वह जिंदगी की अंतिम पड़ाव में सहारा का द्वीप समझती थी, आज वही बेटे से डरती है। कहानी की माँ अपने बेटे से मृत्यु भय के कारण अपने कमरे को साँकल लगाती है और साथ ही अपने प्रेम और वात्सल्य भरी मातृ हृदय को भी साँकल लगा देती है। अतः इससे यह व्यक्त किया जा सकता है कि 'साँकल' कहानी में प्रवासी भारतीयों की बिगड़ते भारतीय मूल्य का अत्यंत स्पष्ट एवं मार्मिक दृष्टांत हुआ है।

अर्चना पैन्युली की सशक्त कहानी है 'अनुजा' जिसमें एक लड़की जो अपनी शादी और बाकी के खुशहाल जिंदगी का सपना बुनती है। मगर उसकी शादी मर्जी के खिलाफ एक तलाकशुद्धा, दो बच्चों के बाप से करवाते है। स्त्री अस्मिता और अस्तित्व बोध पर भी यह कहानी प्रकाश डालती है। भारतीय संस्कृति के अनुरूप शादी या विवाह को एक पवित्र बंदन एवं समाज की आधारशिला माना जाता है। वहीं पति–पत्नी का रिश्ता पवित्र एवं पावन माने जाते है जिसे अक्सर एक देवीय व्यवस्था के रूप में वर्णित किया जाता है। परंतु पाश्चात्य संस्कृति में विवाह को जीवनभर का रिश्ता नहीं माना जाता है। भारतीय संस्कृति के समान उन्हें 'एक आदमी एक पत्नी' का आदर्श नहीं है। अमेरिकी संस्कृति में पति का कोई धर्म नहीं है कि वह पत्नी का जीवनभर ख्याल रखेगा और पत्नी भी पति से जीवनभर उसके साथ रहने की उम्मीद नहीं करती है। जब रिश्ते में परेशानी बड़ती है तब वह आपसी सम्झौता करके अलग हो जाते है। 'अनुजा' कहानी की नायिका अनुजा अपनी भारतीय संस्कृति के साथ जब विदेश आती है तो यह जान जाती है कि उसके पति पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होकर अनेक स्त्रियों से संबंध रखने वाला एक लफंगा आदमी है। "वह खूब दारू पीता था, सारे इल्लीगल काम करता था। उसके साथ मेरी जिंदगी का कोई भी दिन अच्छा नहीं बीता।"

एक नए अपरिचित देश में ब्याह कर आयी अनुजा को सांस्कृतिक टकराव के साथ–साथ अपने पति के गैर कानूनी रिश्तों से भी जूझने के लिए मजबूर है। गैर कानूनी कामों से ढका हुआ और अवैध रिश्तों से लिप्त इंसान के साथ जीवन जीने को अभिशप्त अनुजा की संवेदनात्मक चित्रण इस कहानी का मूल आत्मा है। बिगड़ते मानवीय मूल्य एवं पाश्चात्य संस्कृति से ताल–मेल करते मूल्यहीन होते जा रहे अनेक भारतीयों का चित्रण इस कहानी के माध्यम से किया है।

निष्कर्षत :–

प्रवासी हिन्दी कहानियों में विदेशी भूमि के संस्कृति और रीति रिवाजों का चित्रण के साथ–साथ भारतीय संस्कृति का झलक भी मिलता है। दो देशों के विशिष्ट सांस्कृतिक मान्यताओं और मूल्यों का प्रतिनिधित्व करने

के लिए सशक्त पात्रों और गंभीर कथानक की आवश्यकता है जो प्रवासी कहानिकारों ने अपने रचनाओं के माध्यम से भरपूर निभाया है। प्रवासी कहानियों में वह सारा तत्व निहित है जो भारतीय मूल के प्रवासी जन समूह विदेश में रहते वक्त झेलते है जैसे सांस्कृतिक टकराहट, भाषाई समस्या, नस्ल वाद, विस्थापन की समस्या आदि। अपने मातृभूमि से बाहर रहने वाले लेखक भोगे हुए यथार्थ को कलमबद्ध करना चाहा तो वहाँ से प्रवासी साहित्य का उदय हुआ। उनके पीड़ा और झेले हुए यथार्थ को दुनिया के सामने लाने का प्रयास प्रवासी साहित्यकारों ने अपने रचनाओं के माध्यम से किया है, यही उनका दृष्टि एवं लक्ष्य है।

संदर्भ सूची :-

1. रामधारी सिंह दिनकर, आधुनिक बोध, नैशनल पंजाबी प्रकाशन, पृष्ठ 48
2. दिव्या माथुर, इक सफर साथ–साथ : वाणी प्रकाशन 2018, पृष्ठ 282
3. दिव्या माथुर, इक सफर साथ–साथ : वाणी प्रकाशन 2018, पृष्ठ 274
4. दिव्या माथुर, इक सफर साथ–साथ : वाणी प्रकाशन 2018, पृष्ठ 275
5. Robert N Bellah, Habits of Heart : Individualism and commitment in American Life, Harper and Row Publication 1985 Page 142
6. दिव्या माथुर, इक सफर साथ–साथ : वाणी प्रकाशन 2018, पृष्ठ 368
7. दिव्या माथुर, इक सफर साथ–साथ : वाणी प्रकाशन 2018, पृष्ठ 94

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 252-258

भाषा से बाजार तक : क्षेत्रीय भाषाओं में स्टार्टअप और उद्यमिता की संभावनाएं

डॉ० प्रशान्त कुमार खरे
असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, महिला कॉलेज, चाईबासा।
(कोल्हान विश्वविद्यालय, चाईबासा) पश्चिमी सिंहभूम, झारखंड।

Abstract (सारांश) :-

भारत विविध भाषाओं और संस्कृतियों का देश है जहां 22 से अधिक अनुसूचित भाषाएं और सैकड़ों गैर अनुसूचित भाषाएं बोली जाती हैं। इन भाषाओं का समाज, संस्कृति और स्थानीय बाजार में गहरा प्रभाव है। वर्तमान डिजिटल युग में क्षेत्रीय भाषाएं स्टार्टअप्स और उद्यमिता के लिए नए अवसरों के द्वार खोल रही है। देश की विशाल जनसंख्या क्षेत्रीय भाषाओं में संवाद करती है, जो एक बड़ा उपभोक्ता आधार और बाजार प्रदान करती है, तकनीकी प्रगति डिजिटल पहुंच और मोबाइल इंटरनेट की सुलभता ने क्षेत्रीय भाषाओं में कंटेंट सेवाएं और उत्पादों की मांग को बढ़ाया है। यह परिदृश्य क्षेत्रीय भाषाओं में स्टार्ट अप और उद्यमिता को एक नई दिशा दे रहा है।

Keyword (प्रमुख शब्द) :- क्षेत्रीय भाषाएं, स्टार्ट अप, उद्यमिता, स्थानीय बाजार, डिजिटल इंडिया, भाषा आधारित नवाचार, तकनीकी समावेशन, ग्रामीण भारत, उद्यम विकास।

परिचय :-

भाषा से बाजार तक क्षेत्रीय भाषाओं में स्टार्टअप और उद्यमिता की संभावनाएं विषय आज के डिजिटल और उद्यमशील युग में अत्यंत प्रासंगिक है। भारत जैसे बहुभाषी देश में क्षेत्रीय भाषाओं का प्रभाव न केवल सामाजिक सांस्कृतिक जीवन में बल्कि आर्थिक गतिविधियों में भी तेजी से बढ़ रहा है। इंटरनेट और मोबाइल तकनीक की पहुंच ने स्थानीय भाषाओं में कंटेंट सेवाओं और उत्पादों की मांग को जन्म दिया है, जिससे स्टार्टअप के लिए नई बाजार खुल रहे हैं। तो यह देखना जरूरी है कि किस प्रकार क्षेत्रीय भाषाएं उद्यमिता के लिए एक नई बाजार का निर्माण करती हैं। डिजिटल युग में इंटरनेट और स्मार्टफोन के प्रसार ने क्षेत्रीय भाषाओं को एक नई पहचान दी है। यह विषय हमें यह समझने का अवसर देता है कि कैसे क्षेत्रीय भाषाएं स्टार्टअप्स और उद्यमिता में एक सशक्त उपकरण बन सकती है और भारत में इसके लिए क्या संभावनाएं हैं, साथ ही साथ किस प्रकार उद्यमी क्षेत्रीय भाषाओं का उपयोग करके स्थानीय ग्राहकों से जुड़ सकते हैं, नवाचार कर सकते हैं और व्यापक आर्थिक विकास में योगदान दे सकते हैं।

भारत में भाषाई विविधता और डिजिटल युग :–

भारत में इंटरनेट की पहुंच तेजी से बढ़ रही है और अब भारत में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या लगभग 800 मिलियन के करीब पहुंच चुकी है। स्मार्टफोन का उपयोग भी बड़ा है, खासकर छोटे शहरों और ग्रामीण क्षेत्रों में।

डिजिटल इंडिया :– सरकारी पहलें जैसे 'डिजिटल इंडिया' और 'आधार' ने इंटरनेट और डिजिटल सेवाओं को न केवल शहरी क्षेत्रों तक बल्कि गांव तक भी पहुंचाया है।

प्रवृत्तियां और प्रौद्योगिकी :– स्थानीय भाषाओं में ऐप्स, वेबसाइट्स, और डिजिटल कंटेंट के बढ़ते उपयोग से यह स्पष्ट है कि उपभोक्ता क्षेत्रीय भाषाओं में बात करना और समझना पसंद करते हैं। इसके परिणाम स्वरुप स्टार्टअप्स के लिए क्षेत्रीय भाषाओं में सेवाएं देने का बड़ा अवसर है।

उद्यमिता और भाषा के बीच संबंध :–

भाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं बल्कि एक ब्रांड की पहचान ग्राहक के साथ संबंध और व्यापार की दिशा तय करने का एक प्रमुख कारक है।

ग्राहक की समझ :– जब स्टार्टअप अपनी सेवाओं को क्षेत्रीय भाषाओं में पेश करता है तो यह ग्राहक को स्थानीय संस्कृति और आदतों से जुड़ा हुआ महसूस कराता है।

ब्रांड में विश्वास :– एक स्थानीय भाषा में आधारित ब्रांड अपने उपभोक्ताओं के बीच अधिक विश्वास और कनेक्शन बन सकता है, जो लंबे समय तक ग्राहकों को बनाए रखता है।

संचार और समावेशन :– क्षेत्रीय भाषाओं का उपयोग करने से व्यवसाय अधिक समावेशी बनता है, जिससे न केवल शहरी बल्कि ग्रामीण और छोटे शहरों में भी ग्राहक जुड़ते हैं।

इस प्रकार प्रभावित भाषा उद्यमिता में स्पष्ट और प्रेरणादायक संवाद के लिए जरूरी है। सही शब्दों और भाषा शैली से ग्राहक से जुड़ाव बनता है। स्थानीय भाषा और संस्कृति की समझ बाजार में सफलता की कुंजी हो सकती है। संबंध बनाने और बनाए रखने में भाषा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

इस प्रकार भाषा उद्यमिता को मजबूत आधार प्रदान करती है और उसे सफलता की ओर अग्रसर करती है।

क्षेत्रीय भाषाओं में स्टार्टअप्स के अवसर :–

भारत में डिजिटल क्रांति के कारण विभिन्न क्षेत्रों में क्षेत्रीय भाषाओं में स्टार्टअप्स के लिए कई संभावनाएं पैदा हो रही हैं।

एडटेक :– शिक्षा के क्षेत्र में क्षेत्रीय भाषाओं में सामग्री का निर्माण एक प्रमुख अवसर बन चुका है। ग्रामीण इलाकों में शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारने के लिए क्षेत्रीय भाषाओं में शैक्षिक सामग्री और कक्षाएं उपलब्ध कराई जा रही हैं।

फिनटेक :– ग्रामीण क्षेत्रों में वित्तीय साक्षरता को बढ़ावा देने के लिए क्षेत्रीय भाषाओं में डिजिटल वित्तीय सेवाएं और भुगतान समाधान एक नई दिशा प्रदान कर रहे हैं।

हेल्थटेक :– स्वास्थ्य सेवाओं का क्षेत्रीय भाषाओं में विस्तार जैसे टेली मेडिसिन और डिजिटल स्वास्थ्य मंच उन लोगों के लिए सहायक साबित हो रहे हैं जिनकी प्राथमिक भाषा अंग्रेजी नहीं है।

ई-कॉमर्स :- ऑनलाइन शॉपिंग प्लेटफार्म जैसे Flipkart, Amazon और अन्य स्थानीय मार्केट प्लेस ने क्षेत्रीय भाषाओं में प्लेटफार्म उपलब्ध कराए हैं जो स्थानीय ग्राहकों को बेहतर सेवाएं प्रदान कर रहे हैं।

एग्रीटेक :- कृषि से जुड़े क्षेत्र में किसानों के लिए क्षेत्रीय भाषाओं में सूचना और सलाह उपलब्ध कराना इनके उत्पादन और आमदनी में सुधार ला सकता है।

कंटेंट क्रिएशन और न्यूज :- स्थानीय भाषा में ब्लॉग, वीडियो, पॉडकास्ट या न्यूज प्लेटफार्म।

वॉयस टेक्नोलॉजी और AI चैटबॉट्स :- क्षेत्रीय भाषाओं में वॉयस असिस्टेंट और चैटबॉट सेवाएं।

लोकल सोशल नेटवर्क और कम्युनिटी प्लेटफार्म :- स्थानीय भाषा में संवाद और कनेक्शन के लिए सोशल ऐप्स।

क्षेत्रीय भाषाओं में स्टार्टअप्स की चुनौतियां :-

अनुवाद और स्थानीयकरण :- क्षेत्रीय भाषाओं में गुणवत्ता वाले अनुवाद की कमी है। टैक्नोलॉजी कंपनियों के लिए या एक बड़ी चुनौती है क्योंकि सही और सटीक अनुवाद करना कठिन हो सकता है।

निवेश की कमी :- निवेशक आमतौर पर बड़े शहरों और अंग्रेजी–भाषी क्षेत्रों में अधिक रुचि रखते हैं, और क्षेत्रीय भाषाओं वाले स्टार्टअप्स को प्राथमिकता नहीं देते हैं।

डिजिटल साक्षरता :- ग्रामीण गैर मेट्रो क्षेत्र में डिजिटल उपकरणों और सेवाओं का सीमित ज्ञान विकास में बाधा डालता है।

सरकार की योजनाएं और नीतियां :-

भारत सरकार ने क्षेत्रीय भाषाओं में स्टार्टअप और उद्यमिता को बढ़ावा देने के लिए कई योजनाएं और नीतियां बनाई है :–

1. **स्टार्टअप इंडिया योजना (Startup India initiative) :-** इस योजना की शुरुआत 2016 में की गई। इस योजना का उद्देश्य युवाओं को नया बिजनेस शुरू करने के लिए प्रोत्साहित करना है। इस योजना के तहत वेबसाइट और डॉक्यूमेंट हिंदी, तमिल, तेलुगू, मराठी, बंगाली सहित कई भाषाओं में उपलब्ध है। इस योजना के तहत कुछ सुविधा दी गई है, जैसे– टैक्स में छूट, आसान पंजीकरण, सरकारी मदद और मार्गदर्शन।
2. **प्रधानमंत्री मुद्रा योजना (PM Mudra Yojana) :-** इस योजना का उद्देश्य छोटे व्यापारियों और स्टार्टअप्स को बिना गारंटी के लोन देना है।

लोन के प्रकार :-

शिशु (Shishu) :- रू. 50,000 तक

किशोर (Kishor) :- रू. 50,000 – रू. 5 लाख

तरूण (Tarun) :- रु. 5 लाख – रू. 10 लाख

इस योजना के तहत बैंक और योजना की जानकारी स्थानीय भाषाओं में दी जाती है।

3. **अटल नवाचार मिशन (Atal innovation mission & AIM) :-**

इस योजना का उद्देश्य स्कूलों और कॉलेज में इनोवेशन और स्टार्टअप कल्चर को बढ़ावा देना है। योजना के तहत छात्रों को स्थानीय भाषा में ट्रेनिंग दी जाती है। जैसे उदाहरण के लिए अटल टिकरिंग लैब्स (ATL) में हिंदी, मराठी, कन्नड़ आदि भाषाओं में सामग्री मिलती है।

4. Bhashini प्रोजेक्ट (National language translation mission & BHASHINI) :-

इस योजना का उद्देश्य सरकारी और स्टार्टअप पोर्टल को 22 भारतीय भाषाओं में उपलब्ध कराना है। इस योजना के तहत लोग अपनी भाषा में बिजनेस जानकारी पढ़ सकते हैं और योजना समझ सकते हैं।

कुछ सफल क्षेत्रीय स्टार्टअप्स के उदाहरण :-

भारत में कई क्षेत्रीय स्टार्टअप्स ने अपनी पहचान बनाई है, जो न केवल स्थानीय बाजारों में बल्कि राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी सफल हो रहे हैं। कुछ प्रमुख क्षेत्रीय स्टार्टअप्स के उदाहरण इस प्रकार है :-

1. Razorpay (बेंगलुरु) :-

Razorpay एक भारतीय Fin Tech स्टार्टअप है ,जो ऑनलाइन भुगतान समाधान प्रदान करता है। यह व्यापारी को डिजिटल भुगतान स्वीकार करने के लिए सरल और सुरक्षित तरीके प्रदान करता है।

Razorpay ने बेंगलुरु से अपनी शुरुआत की और अब भारत में सबसे बड़े भुगतान गेटवे में से एक बन चुका है, और उसने कई वैश्विक निवेशकों से फंडिंग प्राप्त की है।

2. Swiggy (बेंगलुरु) :-

Swiggy एक ऑनलाइन फूड डिलीवरी सेवा है जो बेंगलुरु में शुरू हुई थी। यह ग्राहकों को रेस्टोरेंट से भोजन मंगवाने की सुविधा देती है।

Swiggy ने भारतीय बाजार में अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त की और इसे विभिन्न क्षेत्रों में विस्तारित किया। इसका मॉडल स्थानीय स्टार्टअप्स से लेकर बड़े शहरों तक सफल रहा है।

3. Zomato (दिल्ली) :-

Zomato एक भारतीय ऑनलाइन रेस्टोरेंट डिस्कवरी और फूड डिलीवरी सर्विस है। यह उपयोगकर्ताओं को रेस्टोरेंट के बारे में जानकारी और ग्राहक समीक्षाएं प्रदान करता है।

Zomato ने वैश्विक स्तर पर विस्तार किया है और भारत के विभिन्न शहरों में मजबूत उपस्थिति बनाई है। यह एक प्रमुख स्टार्टअप है जो अब न्यूयॉर्क और अन्य अंतरराष्ट्रीय बाजारों में भी सक्रिय है।

4. Urbanclap (अब Urban Company) (दिल्ली) :-

Urbanclap एक सेवाएं प्रदान करने वाली प्लेटफार्म है, जहां ग्राहक घरेलू सेवाएं जैसे की ब्यूटी, सफाई, मरम्मत आदि के लिए प्रशिक्षित पेशेवरों को आसानी से नियुक्त कर सकते हैं।

Urbanclap ने विभिन्न शहरों में अपने नेटवर्क का विस्तार किया है और अब यह एक बड़े बाजार में स्थानीय सेवाओं की सुविधा देने में सफल है।

2016 से अक्टूबर 2024 तक मान्यता प्राप्त स्टार्टअप्स द्वारा सृजित रोजगार :-

भारत में DPIIT (Department for promotion of industry and internal trade) द्वारा मान्यता प्राप्त स्टार्टअप्स ने 16.6 लाख से अधिक प्रत्यक्ष रोजगार सृजित किए हैं। इस अवधि में स्टार्टअप्स की संख्या लगभग 500 से बढ़कर 1.59 लाख तक पहुंच गई है, जिससे भारत दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा स्टार्टअप इकोसिस्टम बन गया है।

प्रमुख आंकड़े :-

कुल प्रत्यक्ष रोजगार – 16.6 लाख से अधिक।

प्रमुख उद्योगों में रोजगार वितरण :–

IT सेवाएं :– 2.04 लाख।

स्वास्थ्य और जीवन विज्ञान :– 1.47 लाख।

व्यावसायिक और वाणिज्यिक सेवाएं :– 94,060।

शिक्षा :– 90,414

निर्माण :– 88,702

खाद्य और पेय पदार्थ :– 88,468

कृषि :– 83,307

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस :– 23,918

वर्षवार रोजगार सृजन (30 जून 2024 तक):

वर्ष	सृजित प्रत्यक्ष नौकरियाँ
2016	306
2017	51,980
2018	1,00,646
2019	1,63,463
2020	1,81,404
2021	2,10,545
2022	2,74,685
2023	3,91,943
2024*	1,78,316

वर्ष 2016 से 2024 (30 जून तक) तक DPIIT मान्यता प्राप्त स्टार्टअप्स द्वारा उत्पन्न नौकरियों का बार ग्राफ। प्रत्येक बार संबंधित वर्ष में उत्पन्न प्रत्यक्ष रोजगार को दर्शाता है।

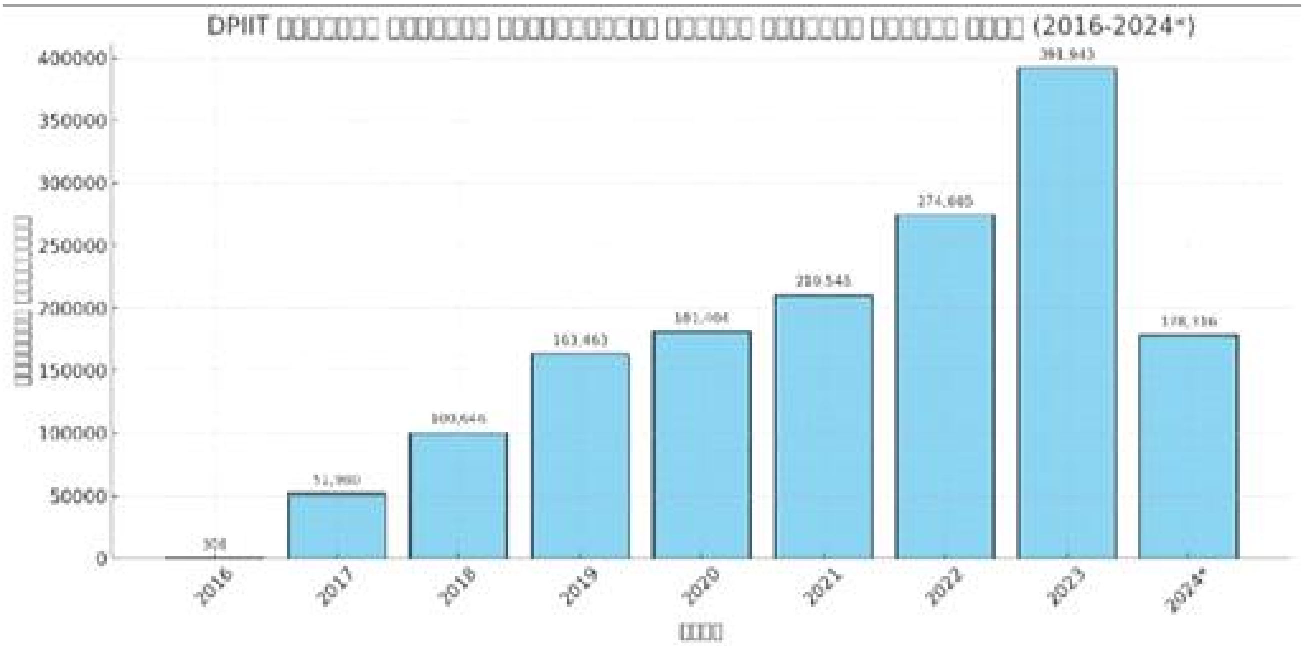

समाधान और सुझाव :–

क्षेत्रीय भाषाओं में स्टार्टअप और उद्यमिता की संभावनाओं को यदि देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि इन भाषाओं का प्रोत्साहन और विकास न केवल सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा करता है, बल्कि स्थानीय व्यवस्थाओं और बाजारों के लिए भी नए अवसर उत्पन्न कर सकता है। इस दिशा में कुछ समाधान और सुझाव दिए जा सकते हैं जो इस प्रकार है :–

1. भाषाई अनुकूल एप्स और प्लेटफॉर्म्स का विकास :–

क्षेत्रीय भाषाओं में डिजिटल प्लेटफॉर्म्स एप्स और सेवाओं का विकास करना जिससे स्थानीय लोग आसानी से उनका उपयोग कर सकें। उदाहरणस्वरूप अगर कोई कृषि आधारित स्टार्टअप है तो उसे क्षेत्रीय भाषाओं में जानकारी और मार्गदर्शन देना बहुत लाभकारी हो सकता है।

स्थानीय भाषाओं में शिक्षा स्वास्थ्य और सरकारी सेवाओं के लिए ऐप्स विकसित करें, जो स्थानीय बाजारों को लाभ पहुंचाएंगे और उद्यमिता को बढ़ावा देंगे।

2. स्थानीय भाषा में सामग्री का उत्पादन :–

कंटेंट की दुनिया में क्षेत्रीय भाषाओं का स्थान बढ़ाने के लिए लेखन ब्लॉक्स और डिजिटल मीडिया का निर्माण करें इससे उद्यमियों को अपने उत्पादों और सेवाओं को स्थानीय दर्शकों तक पहुंचाने का अवसर मिलेगा।

क्षेत्रीय भाषाओं में ब्लॉग्स, पॉडकास्ट और यूट्यूब चौनल शुरू करें जो स्थानीय समस्याओं को हल करने वाले उत्पाद और सेवाएं प्रस्तुत करें।

3. स्थानीय कार्यबल के लिए प्रशिक्षण और सशक्तिकरण :–

स्थानीय भाषा में व्यावसायिक कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जा सकता है, ताकि स्थानीय लोगों को रोजगार और उद्यमिता के लिए तैयार किया जा सके।

क्षेत्रीय भाषाओं में ऑनलाइन प्रशिक्षण कोर्स और कार्यशालाओं का आयोजन करें ताकि लोग अपनी व्यावसायिक क्षमता को पहचान सके और उसे आगे बढ़ा सके।

4. सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ का उपयोग :-

क्षेत्रीय भाषाओं और संस्कृतियों को व्यवसायों में एकीकृत करना एक प्रभाव प्रभावी तरीका हो सकता है जैसे कि पारंपरिक कला हस्तशिल्प और स्थानीय उत्पादों को बढ़ावा देना।

उत्पादों और सेवाओं में स्थानीय संस्कृति और भाषा का समावेश करें जिससे वे अधिक ग्राहकों को आकर्षित कर सके और स्थानीय बाजारों में अपनी मजबूत पकड़ बना सकें।

5. स्थानीय सहयोग और नेटवर्किंग :-

क्षेत्रीय भाषा के स्टार्टअप्स और उद्यमियों के बीच नेटवर्किंग और सहयोग को बढ़ावा देना, ताकि वह अपने विचारों और संसाधनों को साझा कर सकें।

स्थानीय स्तर पर उद्यमिता को बढ़ावा देने के लिए इनक्यूबैटर्स, हैकथॉन और व्यावसायिक नेटवर्किंग इवेंट्स आयोजित करें जो क्षेत्रीय भाषाओं में संवाद को बढ़ावा दे सकते हैं।

निष्कर्ष :-

इस विषय पर निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि क्षेत्रीय भाषाओं में स्टार्टअप और उद्यमिता के लिए व्यापक संभावनाएं हैं। स्थानीय बाजारों का उपयोग करने से उद्यमियों को अपने लक्षण समुदाय से बेहतर जुड़ाव और समझ मिलती है, जिससे उत्पादों और सेवाओं को प्रभावित ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है। इसके अलावा या क्षेत्रीय बाजारों में रोजगार के अवसर भी उत्पन्न करता है और क्षेत्रीय संस्कृति और पहचान को बढ़ावा देता है। इसके लिए सरकार की नीति निदेशकों का समर्थन और डिजिटल प्लेटफॉर्म का सुलभता महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

संदर्भ सूची :-

1. कुमार संजय। (2021). भाषा और विकास : भारतीय भाषाओं का आर्थिक परिप्रेक्ष्यः नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन।
2. सिंह रेखा 2020 भारतीय भाषाओं में डिजिटल उद्यमिता एक समीक्षात्मक अध्ययन भाषा एवं अर्थव्यवस्था खंड 8 (अंक 1), पृष्ठ 34–41
3. जोशी, मीनाक्षी। (2022). भारतीय स्टार्टअप्स में क्षेत्रीय भाषाओं की भूमिका भारतीय नवाचार और उद्यमिता पत्रिका, खंड 5 (अंक 2) पृष्ठ 22–30
4. स्टार्टअप इंडिया। (2024). उद्यमियों के लिए क्षेत्रीय भाषा समर्थन. https://www.startupindia.gov.in
5. मेहता, अर्चना। (2019). भारतीय बाजार में क्षेत्रीय भाषाओं की बढ़ती भूमिका।
6. राव, प्रवीण। (2021). स्थानीयकरण और स्टार्टअप भाषा की शक्ति को उजागर करना। भारतीय व्यापार और भाषा पत्रिका खंड 3 (अंक 1) पृष्ठ 10–18

मोबाइल नंबर– 7488260651

ई मेल : pkhare.khare3@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 259-262

राकेश कुमार सिंह की रचनाओं में आदिवासी जीवन यथार्थ : 'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास के संदर्भ में

हरिता कुमारी जे.
शोधार्थी, हिंदी विभाग, केरल विश्वविद्यालय।

शोध सार :–

लेखक राकेश कुमार सिंह जी आदिवासी जनजीवन के संघर्ष और अमर्ष का यथार्थपरक चित्रण अपनी रचनाओं के जरिए प्रस्तुत किया है। 'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास ईस्ट इंडिया कंपनी और वहाँ के महाजनों और ठेकेदारों के शोषण से त्रस्त झारखंड के आदिवासी जीवन की कहानी है। स्वतंत्रता पूर्व अंग्रेजों द्वारा और स्वतंत्रता के बाद भारतीय पूँजीपति लोगों द्वारा शोषित आदिवासी समाज का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत उपन्यास का विषय है।

बीज शब्द :– आदिवासी, संस्कृति, विद्रोह, शोषण, संघर्ष।

आदिवासी, समाज के उन लोगों को कहा जाता है जो किसी देश या प्रान्त में बहुत पहले से ही निवास करते आए हैं। भारत की सामाजिक सांस्कृतिक संरचना में आदिवासियों ने न केवल अपना योगदान दिया अपितु मातृभूमि की रक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। रामायण और महाभारत जैसे पवित्र ग्रंथों में आदिवासियों के महत्त्व एवं सामर्थ्य को अंकित किया है। आदिवासी लोग प्राचीन काल से लेकर आज तक छल–कपट, उपेक्षा, शोषण, तिरस्कार और अपमान के शिकार होते रहते हैं। इन लोगों की दयनीय अवस्था, सामाजिक व्यवस्था एवं संस्कृति आदि को साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। इसके फलस्वरूप साहित्य के क्षेत्र में आदिवासी विमर्श का अपना महत्वपूर्ण स्थान है।

जीवन और संघर्ष को लेखनबद्ध करने वाले आदिवासी साहित्यकारों में राकेश कुमार सिंह जी का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने अपनी रचनाओं में झारखण्ड के विभिन्न आदिवासी समाज को बखूबी से चित्रित किया है। आदिवासी समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं यथार्थ के विभिन्न चेहरों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास राकेश जी ने किया है। उनकी रचनाओं की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वे अपने पात्रों के जरिये आदिवासी समाज में व्याप्त शोषण, अंधविश्वास, विस्थापन, भ्रष्टाचार आदि को प्रस्तुत करते हैं साथ ही दूसरे पात्रों के जरिये उसका पर्दाफाश भी करते हैं।

स्वतंत्रता पूर्व अंग्रेजों द्वारा और स्वतंत्रता के बाद भारतीयों अर्थात पूँजीपति वर्ग द्वारा शोषित आदिवासी समाज एवं इसके विरुद्ध लड़ने वाले आदिवासी लोगों को चित्रित करने वाले राकेश जी के बहुत चर्चित इतिहास

परख उपन्यास है 'जो इतिहास में नहीं है'। अपने समाज एवं अपनी मातृभूमि से अंग्रेजों को निकालने के लिए आदिवासी समाज द्वारा किया गया 'हूल' यानी युद्ध है इस उपन्यास का मुख्य विषय। जिस प्रकार भारत के अन्य स्वातंर्त्य सेनानियों ने अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए लड़े हैं। उसी प्रकार आदिवासी लोगों ने भी अंग्रेजों के विरुद्ध लडाई लड़ी है, लेकिन उनके बारे में किसी भी इतिहास में उल्लेख नहीं मिलता है। इतिहास द्वारा बहिष्कृत एवं समाज द्वारा तिरस्कृत उन लोगों के जीवन यथार्थ को राकेश जी ने उपन्यास के जरिये पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है।

ब्रिटिश सरकार का दमन, आदिवासियों पर किया गया अत्याचार, भ्रष्ट दरोगा की क्रूरता, नव निर्माण रेल परियोजना में जंगल को नष्ट करना, आदिवासी औरतों पर अधिकारियों द्वारा शोषण आदि घटनाओं का चित्रण लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में किया है। पूँजीपति लोग या सभ्य कहने वाले लोग किस प्रकार आदिवासी लोगों का फायदा उठाते है इसका उदाहरण प्रस्तुत उपन्यास में हैं। महाजनों की लूट, जमींदारों का अत्याचार, पुलिस व कोर्ट–कचहरी का भ्रष्टाचार, महिलाओं के साथ हुए अनाचार व इसके विरुद्ध उनका संघर्ष आदि इस उपन्यास का वर्ण्य विषय हैं।

उपन्यास की एक पात्र है 'नंगला', वह अपने जरुरत के लिए महाजन के पास अपना जमीन गिरवी रखकर कुछ पैसा उधार लेता है। नंगला को पूरा विशवास था कि इस पैसे को वह सूद के साथ महाजन को वापस दे पाऊँगा क्यों कि नंगला का जो जमीन था उसमें बहुत अधिक अनाज उगने वाले है। उस अनाज की बिक्री से प्राप्त होने वाले धन से महाजन का कर्ज ब्याज सहित चुका सकते हैं। लेकिन महाजन नंगले के साथ प्रेमपूर्वक रहकर दो साल तक उनसे कर्ज नहीं लेता है। यह इसलिए कि कुछ दिनों में उसका कर्ज सूद के साथ बहुत बड़ा बन जाए। और नंगला वह पैसा वापस नहीं दे सके। महाजन को नंगला से अपना जमीन पैसे के बदले चाहिए था। इस कारण से महाजन नंगला से स्नेह पूर्वक व्यवहार कर रहे थे। एक दिन महाजन अचानक पहुँचकर नंगला से सारा कर्ज चुकाने को कहता है। नंगला कर्ज न चुकाने का अपनी मजबूरी महाजन को बताता है। मौके का फायदा उठाकर महाजन उससे अपना खेत छोड़ देने के लिए कहता है। "इतनी मकई से तो मेरा सूद भी पूरा नहीं होगा। खेत छोड़ दे तो कर्च चुक भी जाए। तु खेत छोड ... मकई हम तुडवा लेंगे।"[1] प्रस्तुत प्रसंग से यह पता चलता है की भोले–भाले, अशिक्षित आदिवासी लोगों को अन्य लोग ने किस प्रकार शोषण कर रहे हैं। इस प्रकार की अनेक घटनाएँ लेखक ने उपन्यास में चित्रित किया है।

जमींदार और पुलिस वाले मिलकर आदिवासियों का शोषण करते हैं। ये लोग अपने काम एवं फायदे के लिए आदिवासी लोगों का उपयोग करते हैं और आदिवासी औरतों की शारीरिक शोषण भी करते हैं। अगर कोई इनके विरुद्ध खड़ा हुआ तो उन पर झूठा आरोप लगाकर दंड दिलवा देते हैं। भ्रष्ट पुलिस का काम महाजनों के व जमींदारों के इशारों पर आदिवासी लोगों को तंग करना है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने पुलिस द्वारा आदिवासी लोगों पर किए जाने वाले शोषण का खुला चित्रण प्रस्तुत किया है। उपन्यास के पात्र दरोगा महेश आदिवासी नायक गोके और उनके मित्र को गिरफ्तार कर लेता है क्योंकि गोके और उनके मित्र हमेशा वहाँ के जमींदार के विरूद्ध खड़े होते हैं और अपने साथ हो रहे अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए प्रेरित करते हैं। गोके और उनके मित्र के इस परिश्रम से आदिवासी लोगों पर बदलाव आने लगता है। वे लोग जमींदार के अत्याचार के विरुद्ध एक होकर आवाज उठाने लगते हैं। यह देखकर महाजन और जमींदार पुलिस का सहारा

लेते हैं। इसलिए जमीनदार की सहायता के लिए दरोगा महेश जंगल की जमीन पर घर बनाने की इल्जाम लगाकर गोके को गिरफ्तार करता है। "गुरमेंट– दरोगा से बिना पूछे घर छावा लिया तो पाँच सन्थाल भाई के डांड में पुलुस ने रस्सा पहिरा दिया।"[2]

महाजन के विरुद्ध कोई आदिवासी लोग खड़ा हुआ तो पुलिस वाले सतर्क हो जाते और आदिवासियों को गिरफ्तार कर लेते हैं। और उनको थाने में मार–मार कर उसे अधमरा कर देता है। लेखक कहते है "पशु की भांति हारिल मुर्मू के गर्दन में रस्सी डाले सिपाही उसे रगड़ते हुए थाना तक ले गये थे। हारिल घिघियाता रहा। अपने निरपराध होने की दुहाई देता रहा पर उसकी हर विनती के बदले में पीठ, कंधे, नितंब और पिंडलियों पर पड़ती रही थी पुलिस की लाठी।"[3] पुलिस द्वारा आदिवासियों पर किए जाने वाले शारीरिक शोषण एवं क्रूरता को चित्रित करते हुए लेखक लिखते है "रात भर लातेहार थाना में हारिल मुर्मू की दुर्गति होती रही थी। सूअर की भाँति अंग–अंग में लाठी कोंचते सिपाही...गालियों की बौछार......... लाल–पीला होता दरोगा...दांत पीसते सिपाही ... लात ...जूते ... लाठी! गीली मिट्टी की भाँति हो जाता हारिल मुर्मू।"[4] पुलीस द्वारा किए जाने वाले अत्याचार एवं शोषण के विविध रूप लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित किया है।

आदिवासी महिलाओं के शोषण से संबंधित अनेक प्रसंग प्रस्तुत उपन्यास में देख सकते है। सरकार की नई योजना से संबंधित बाहर से आए ठेकेदार आदिवासी युवतियों को खींच ले जाकर उनपर अत्याचार करते थे। गैर आदिवासी लोगों द्वारा आदिवासी औरतों पर करने वाले अत्याचार को चित्रित करते हुए लेखक कहते है "सामूहिक बलात्कार की शिकार बनती आदिवासिनों की चीखें, क्रंदन और कराहें पिघले राँगे की भाँति पुरुषों के कानों में गिरतीं और बहती उतर जातीं भीतर। जल जाती आत्मा भी। शेष रहती थीं हड्डियों की चलती–फिरती ठठरियाँ जिन पर मांस–मज्जा मानो प्रत्यारोपित थी।"[5]

इस तरह वन – विभाग के दारोगा व अधिकारी भी आदिवासी औरतों पर अत्याचार करता है । जिस अधिकारी लोगों को सरकार ने वन एवं वनवासियों की सुरक्षा के लिए नियुक्त किया है वही लोग आदिवासी औरतों की यम बन रहा है। बाधामुण्डी गाँव की गर्भवती चंपिया अपनी सहेलियों के साथ जंगल में लकड़ी काटने जाती है। उस समय वन–विभाग की सुरक्षा कर्मी उसे खींचकर डाक बाँगला में ले जाता है। वहाँ अधिकारियों एवं सुरक्षा कर्मियों ने मिलकर उनपर बलात्कार करके उनके लाश को फेंक जाता है "गाँव लौटी थी चंपिया की लाश। वनमानुषों के द्वारा नुची–चूँथी देह संथालों को डाकबाँगले से कुछ दूर पड़ी मिली थी ३चंपिया की देह मानो किसी सियार ने झँझोड़ डाली थी।"[6]

आदिवासी स्त्रियों का मूल्य उनके नजरों में शून्य रहा। अंग्रेजों और जमींदारों के लिए वह भोग की ही वस्तु थी। अंग्रेजी पदाधिकारियों के मनोरंजन हेतु आदिवासी स्त्रियों को गाँव के जमींदार के आदेश से जबरन बुलाई जाती थी और उन्हें अपनी देह से प्रसन्न करने हेतु विवश किया जाता था। कोई भी औरत स्वेच्छा से अपनी देह का सौदा नहीं कर देती है। आदिवासी समाज की विवशताएँ, जमींदारी और अंग्रेजी शासन के अत्याचार व अन्याय के कारण उसे अपनी देह के साथ समझौता करना पड़ता था । जमींदार, साहू व अंग्रेज अधिकारियाँ आदिवासी स्त्रियों को अपनी कामुकता व भोग विलासिता का शिकार बनाकर उन्हें दर्दनाक मृत्यु के हवाले कर देते हैं। आदिवासी नारी के इस दर्दनाक शोषण का चित्रण राकेश जी ने इस उपन्यास में किया है।

आदिवासी लोगों के साथ होने वाले शोषण के साथ–साथ उनके द्वारा किए जाने वाले विद्रोह की

घटनाओं को भी लेखक ने चित्रित किया है। यह विद्रोह अंग्रेजी अत्याचार से मुक्ति पाने के साथ–साथ जमींदारों और महाजनों के शोषणकारी अत्याचारों से मुक्ति पाने के लिए है। आदिवासी लोग अपने जमीन के लिए अंग्रेजों और महाजनों से करने वाले संघर्ष को भी लेखक ने चित्रित किया है। लेखक के शब्दों में "अंग्रेजी सत्ता के दुर्ग पर पहली चोट पड़ चुकी थी। सखुए की डाली गाँव– गाँव घूमने लगी थी। अंग्रेजों को भारत से भगाने की प्रथम जनक्रांति प्रारंभ हो चुकी थी। जिसका पहला गोला संथालों ने दाग दिया था।"[7]

राकेश कुमार सिंह के 'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास में लेखक ने ईस्ट इंडिया कंपनी के शोषण और अत्याचार से त्रस्त आदिवासी जीवन को बखूबी से चित्रित किया है। इस उपन्यास में शोषण एवं हूल के कथा के बीच राकेश जी ने हारिल मुर्मू और लाली की प्रेम कथा को भी व्यक्त किया है। हारिल मुर्मू और लाली के प्रेम एवं वैवाहिक जीवन को चित्रित करने से लेखक ने संताल समाज की संस्कृति, विवाह की परम्परागत पद्धतियाँ, समाज व्यवस्था आदि को पाठक से परिचय करवाते है। इसके साथ–साथ आदिवासियों के लोकगीत, लोककथाएँ धार्मिक विश्वास, अंधविश्वास आदि को भी चित्रित किया है।

संदर्भ सूची :-

1. जो इतिहास में नहीं है – पृष्ठ 59
2. वही , पृष्ठ 177
3. वही, पृष्ठ 414
4. वही, पृष्ठ 414–415
5. वही, पृष्ठ 52
6. वही, पृष्ठ 146
7. वही, पृष्ठ 40

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 263–267
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

वृद्ध विमर्श : कल, आज और कल

डॉ. रंजीता कटकवार
अतिथि प्राध्यापक (हिंदी विभाग), शा.एम.एम.आर. पी.जी. महाविद्यालय, चांपा (छत्तीसगढ़)

सारांश :–

जीवन के आपाधापी में मनुष्य का जीवन–चक्र सदैव एक सामान नहीं होता है। खिलौनों की मोह में बचपन बीता तो नौकरी एवं जिम्मेदारियों के बोझ से जवानी गुजरी और वृद्धावस्था सहारा तलाशती है।

बुढ़ापा मनुष्य का वह आईना होता है जहाँ बीते हुए लम्हों की याद दिलाता है, मनुष्य जीवन के हर परिस्थितियों से तालमेल करके जीवन जीते रहता हैद्य वृद्धावस्था जीवन की वह इकाई होती है जहां लोग शांति और अपनो का साथ चाहता है।

प्रस्तावना :–

पहले के जमाने में बड़े बुजुर्गों के बिना घर आँगन सुना रहता था जैसे–जैसे हम विकास की ओर आगे बढ़ते गए लोग अपनी संस्कृतियों को पीछे छोड़ते गए भारतीय संस्कृति की गौरवगाथा में बुजुर्गों का आदर सम्मान करना हमारी परम्परा रही है। हमारे देश की प्रथा में संयुक्त परिवार की गाथा पुरे विश्व में प्रचलित है संयुक्त परिवार में दादा–दादी, नाना–नानी न हो तो वह परिवार अधुरा सा लगता है। घर के प्रत्येक कार्य में बुजुर्गों की सलाह लेना आदर और सम्मान होता है। मानवीय परम्परा जीवन की सादगी व्यवस्था से परिपूर्ण होता है और वही व्यवस्था कायम रहती है जहां सादगी मनुष्य के जीवन में झलकता है।

भारत एक ऐसा देश है जिसमें गांवों में संस्कृति झलकती है और गांवों की पहचान भी बड़े–बुजुर्गों से होती है और वही बड़े–बुजुर्ग होते है जो परिवार और समाज का जड़ होते है जब जड़ मजबूत होगा तभी वृक्ष की मजबूती होती है।

साहित्य में वृद्ध विमर्श :–

साहित्य जगत में विभिन्न लेखकों और कवियों ने अपनी कलम चलाकर वृद्धों का स्पष्टतः चित्रांकन किया है। वृद्धावस्था वह अवस्था होती है जिसमें केवल जिहवा–स्वाद लेना चाहता है परंतु संवेदनाओं से भी भरा होता है। मुंशी प्रेमचंद की कहानी "बूढ़ी काकी" में लेखक ने बुढ़ापा को बचपना के समान बताया है :– 'बुढ़ापा बहुधा बचपन का पुनरागमन हुआ करता है। बूढ़ी काकी में जिहवा–स्वाद के सिवा और कोई चेष्टा शेष न थी और न अपने कष्टों की ओर आकर्षित करने का, रोने के अतिरिक्त कोई ओर दूसरा सहारा न था। समस्त इन्द्रियाँ, नेत्र, हाथ और पैर जवाब दे चुके थे। पृथ्वी पर पड़ी रहती और घरवाले कोई बात उनकी इच्छा के प्रातिकुल करते, भोजन का समय टल जाता या उसका परिमाण पूर्ण न होता अथवा बाजार से कोई वस्तु आती और उन्हे न

मिलती तो वे रोने लगती थीं। उनका रोना– सिसकना साधारण रोना न था, वे गला फाड़–फाड़कर रोती थी।[1]

बचपन और बुढ़ापा दोनों असहाय और निर्बल होते हैं। जिस प्रकार छोटे बच्चे किसी कार्य को करने के लिए अक्षम होते है किसी भी चीज की जरूरत होती है तो बच्चे रोना चिल्लाना शुरू कर देते है उसी प्रकार 'बूढ़ी काकी' कहानी में बूढ़ी काकी भी निर्बल हो गई थी कोई भी कार्य वह स्वयं नहीं कर पाती थी किसी चीज की जरुरत होती थी तो वह जोर–जोर से रोने लगती थी।

वृद्धावस्था में बहुत सारे वृद्धजनों के शारीरिक गतिविधियां रूक जाती है वह कोई कार्य नहीं कर पाते अपने दुखों और कष्टों को व्यक्त करने के लिए हो रोकर अपनी प्रतिक्रिया देते हैं लेखक वृद्धावस्था को बाल्यावस्था का दुरागमन मानते है। वृद्धजन भले ही बच्चों के जैसे व्यवहार करने लगते है परंतु कही न कही उन्हें अपने किये पर पश्चाताप और आत्मग्लानि होती है। 'बूढ़ी काकी' कहानी में वृद्ध विमर्श स्पष्टः परिलक्षित होते हैं।

बुद्धिराम के बड़े लड़के का तिलकोत्सव था तो घर में अच्छे–अच्छे पकवान बन रहा था पकवानों की खुशबू बूढी काकी को सता रही थी और वह उखडू बैठकर हाथों के बल सरकती हुई बड़ी कठिनाई से चौखट से उतरी और धीरे–धीरे रेंगती हुई कड़ाह के पास जाकर बैठ गई। उतने में रूपा उसे देख ली फिर बूढी काकी को बहुत खरी खोटी सुनाई फिर बूढी काकी न रोई न कुछ बोली चुपचाप रेंगती हुई अपनी कोठरी में चली गई। संवेदना, करूणा से काकी का मन भर आया था और अपने किये गये कार्य पर पश्चाताप भी उन्हें हो रहा थाः– बूढी काकी अपनी कोठरी में जाकर पश्यताप् कर रही थी कि मैं कहां से कहां आ गई। उन्हें रूपा पर क्रोध नहीं था अपनी जल्दबाजी पर दुख था । सच ही तो है जब तक मेहमान लोग भोजन न कर चुकेंगें, घर वाले कैसे खायेंगे मुझसे इतनी देर भी न रहा गया। सबके सामने पानी उतर गया! अब जब तक कोई बुलाने नहीं आएगा, न जाऊंगी।[2]

वृद्धावस्था मनुष्य की वह अवस्था होती है जिसमें ज्यादा सोचने समझने की शक्ति कम हो जाती है जो दिल करता है वह कार्य वृद्धजन करने लगते है। भूख, सुगंध काकी को खाने की तरफ खिंची ले गई परंतु अपने किये पर उन्हें दुख और पछतावा भी होने लगा। बड़े बुजुर्गों की करुणा और संवेदनाओं को हर कोई नहीं समझ पाता है।

आज की वर्तमान परिस्थितियों में वृद्धजनों को बोझ समझा जाता है संयुक्त परिवार खंडित होकर एकल परिवार हो गया है। परिवार के सदस्य अपने ही बुजुर्गों को घृणा की दृष्टि से देखने लगते हैं। चाहे खुद की मां हो बाप हो उन्हें बिल्कुल अलग और पराया समझते है। ऐसी स्थिति में वृद्धजन मानसिक तनाव से गुजरते है सामने में कुछ नहीं बोल पाते किन्तु मनःस्थिति प्रतिकूल होती है। भीष्म साहनी की कहानी 'चीफ की दावत' में वृद्ध महिला की स्थिति का वर्णन लेखक ने बड़ी ही मार्मिक ढंग से किया है। मिस्टर शामनाथ अपने दफ्तर के चीफ को दावत देते हैं परंतु शामनाथ अपनी मां को समस्या के रूप देखते है जब चीफ आयेंगे तो माँ कहां रहेगी इस समस्या से ग्रसित दिखाई पड़ते है और अपनी मां से कहते है – "और माँ, हम लोग पहले बैठक में बैठेंगे। उतनी देर में तुम यहाँ बरामदे में बैठना। फिर जब हम यहाँ आ जायें, तो तुम' गुसलखाने के रास्ते बैठक में चली जाना।"[3]

मिस्टर शामनाथ के जैसे ऐसे बहुत सारे लोग है जो अपने वृद्ध माँ बाप को समस्या मानकर किसी दूसरे

के सामने लाना नहीं चाहते है। आज की परिस्थितियों में मनुष्य केवल एकल परिवार में ही रहना पंसद करता है जिसमें बड़े बुजुर्गों की आवश्यकता महसूस नहीं करते हैं। सामाजिक दायरा में रहकर मनुष्य अपनी स्थिति सुधार लिया है। परंतु आज भी सोच संकीर्ण है। भीष्म साहनी की कहानी चीफ की दावत में वृद्ध विमर्श में की झलक दिखाई देती है। वृद्ध की संवेगात्मक और भावनात्मक का चित्रण स्पष्टः देखने को मिलता है :– नहीं बेटा, अब तुम अपनी बहू के साथ जैसा मन चाहो रहो। मैंने अपना खा–पहन लिया। अब यहाँ क्या करूँगी। जो थोड़े के दिन जिन्दगानी के बाकी है, भगवान का नाम लूंगी। तुम मुझे हरिद्वार भेज दो।[4] बच्चे जैसे भी रहे परंतु मां का मन अपने बच्चों के लिए हमेशा चिंतित रहता है।

वृद्ध लोगों की संख्या में लगातार होने वाली वृद्धि :-

आज दुनियाँ भर में बूढ़े लोगों की संख्या लगातार बढ़ रही है। सापेक्षतया अधिक विकसित राष्ट्रों जैसे जापान, अमेरिका, इग्लैण्ड, आस्ट्रेलिया इत्यादि में बूढ़े लोगों की जनसंख्या पहले से ही अधिक तेजी से बढ़ रही है। इक्कीसवीं शताब्दी में अधिकतर विकसित और विकासशील देशों में बूढ़े लोगों की संख्या तेजी से बढ़ने की सम्भावना है। सारे विश्व में चीन तथा भारत दो ऐसे देश हैं जिनमें बूढ़े लोगों की कुल जनसंख्या बहुत बड़ी है।[5]

कल का वृद्ध विमर्श :–

भारतीय परंपरा में वृद्धजन :-

प्राचीन भारत में वृद्धजन को ज्ञान, अनुभव और आध्यात्मिकता का पर्याय माना जाता था। धर्मशास्त्रों में वर्णित चतुर्वर्ण आश्रम व्यवस्था के अंतर्गत 'वृघ्द्धाश्रम' जीवन का अंतिम चरण था, जिसमें व्यक्ति सांसारिक कर्तव्यों से मुक्त होकर आत्मिक उन्नति के पथ पर अग्रसर होता था (शर्मा, 2005 : पृ. 45)। संयुक्त परिवार प्रणाली में वृद्धजनों की देखभाल परिवार का अनिवार्य दायित्व थी। उनकी भूमिका निर्णायक थी – परिवार का नेतृत्व, निर्णय प्रक्रिया और सामाजिक परंपराओं के संरक्षण में।

पाश्चात्य दृष्टिकोण :-

यूनानी दार्शनिक प्लेटो और अरस्तू ने वृद्धावस्था को अनुभव और संयम का काल बताया (Baltes & Baltes, 1990)। रोमन सभ्यता में भी वृद्धजन सीनेट जैसे संस्थानों के केंद्र में थे। परंतु मध्यकालीन यूरोप में वृद्धजनों को हाशिये पर डाल दिया गया, विशेषकर प्लेग जैसी महामारियों के बाद, जब मृत्यु दर में वृद्धि हुई।

औद्योगीकरण और सामाजिक परिवर्तन :-

18वीं और 19वीं सदी में औद्योगिक क्रांति ने परिवार की पारंपरिक संरचना को तोड़ दिया। युवा श्रमिक शहरों की ओर पलायन करने लगे, और वृद्धजन गांवों या घरों में निर्भरता की स्थिति में रह गए। इसने वृद्धों की सामाजिक स्थिति और स्वायत्तता को गंभीर रूप से प्रभावित किया (Moody, 2002)।

आज का वृद्ध विमर्श :-

जनसांख्यिकीय परिवर्तन :

विश्व स्तर पर वृद्धजन आबादी में निरंतर वृद्धि हो रही है। भारत में भी 2011 की जनगणना के अनुसार, वृद्धजनों (60 वर्ष से अधिक) की संख्या 10.38 करोड़ थी, जो 2050 तक लगभग 32 करोड़ होने का अनुमान है (National Policy for Senior Citizens, 2011)।

विश्व स्तर पर वृद्धजन आबादी में निरंतर वृद्धि हो रही है। भारत में भी 2011 की जनगणना के अनुसार,

वृद्धजनों (60 वर्ष से अधिक) की संख्या 10.38 करोड़ थी, जो 2050 तक लगभग 32 करोड़ होने का अनुमान है (National Policy for Senior Citizens, 2011)।

सामाजिक, आर्थिक और स्वास्थ्य सम्बन्धी चुनौतियाँ :-

1. **एकाकी जीवन** – एकल परिवारों के बढ़ते प्रचलन के कारण वृद्धजन सामाजिक अलगाव और अकेलेपन का शिकार हो रहे हैं (डॉ. एम.एल. शर्मा, 2002 : पृ. 170)।
2. **आर्थिक निर्भरता** – सेवानिवृत्ति के बाद पर्याप्त आय स्रोत न होने से आर्थिक संकट उत्पन्न हो रहा है।
3. **स्वास्थ्य सेवाओं की कमी** – वृद्धजन विशेष स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव, जटिल बीमारियों का उपचार महंगा और कठिन।
4. **मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ** – अवसाद, चिंता विकार, डिमेंशिया जैसी मानसिक स्थितियों में वृद्धि।
5. विश्व स्तर पर वृद्धजन आबादी में निरंतर वृद्धि हो रही है। भारत में भी 2011 की जनगणना के अनुसार, वृद्धजनों (60 वर्ष से अधिक) की संख्या 10.38 करोड़ थी, जो 2050 तक लगभग 32 करोड़ होने का अनुमान है (National Policy for Senior Citizens, 2011)।

सरकारी और गैर-सरकारी प्रयास :

भारत सरकार ने विभिन्न योजनाएँ लागू की हैं, जैसे कि :-

1. वरिष्ठ नागरिकों का भरण–पोषण और कल्याण अधिनियम, 2007
2. राष्ट्रीय वृद्धजन नीति, 1999
3. प्रधानमंत्री वय वंदना योजना।
4. आयुष्मान भारत योजना में वरिष्ठ नागरिकों के लिए विशेष प्रावधान।
5. NGOs जैसे Help। हम India भी वृद्धजनों के अधिकारों और कल्याण के क्षेत्र में कार्यरत हैं।

कल का वृद्ध विमर्श :-

तकनीकी नवाचार की भूमिका :

1. भविष्य में वृद्धावस्था के जीवन को बेहतर बनाने में तकनीकी नवाचार महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे।
2. **स्मार्ट हेल्थ डिवाइसेज** – स्वास्थ्य निगरानी के लिए पहनने योग्य उपकरण।
3. **रोबोटिक्स** – दैनिक जीवन में सहायता करने वाले सहायक रोबोट।
4. **टेलीमेडिसिन सेवाएँ** – चिकित्सा सुविधाओं की पहुँच को आसान बनाना।
5. AI आधारित एप्लिकेशन वृद्धजनों की मानसिक स्वास्थ्य आवश्यकताओं को भी पूरा कर सकते हैं।

सामाजिक नीतिगत परिवर्तन :-

1. **वृद्धजन अधिकारों की रक्षा** – वृद्धजनों के लिए कानूनी संरक्षण को सशक्त बनाना।
2. **उम्रदराज श्रमिकों के लिए पुनः प्रशिक्षण** – फ्रीलांसिंग, आंशिक रोजगार के अवसर बढ़ाना।
3. वृद्धजनों के अनुकूल आवासीय और सार्वजनिक ढांचे का विकास।

वृद्ध विमर्श में सांस्कृतिक पुनर्मूल्यांकन :-

भविष्य में, वृद्धावस्था को सामाजिक बोझ के रूप में देखने के बजाय इसे ज्ञान, अनुभव और योगदान के अवसर के रूप में पुनर्परिभाषित किया जाएगा। अंतर–पीढ़ी संवाद को बढ़ावा देना, वृद्धजनों को सामुदायिक

नेतृत्व में शामिल करना आवश्यक होगा।

निष्कर्ष :–

ढलते हुए दिन, गुजरता हुआ समय जैसे ही ढलती हुई उम्र होती है। हर किसी को इस अवस्था से गुजरना होता है। परंतु वर्तमान के युवा लोग इस बात से भली–भांति परिचित होते हुए भी वृद्धजनों को हेय की दृष्टि से देखते है और उनका आदर सम्मान नहीं कर पाते परंतु वे इस बात में भूल जाते हैं कि भविष्य में, वे भी वृद्ध होंगे। आज के बदलते हुए परिवेश में वृद्धों की सामाजिक स्थिति सोचनीय हो गई है जहाँ पुराने जमाने में वृद्धों के बिना समाज में किसी कार्य का आरंभ नहीं किया जाता था परंतु आज के वर्तमान परिदृश्य में वृद्धों की सलाह लेना उचित नहीं समझा जाता है। क्योंकि युवा पीढ़ी को लगता है कि वे अपनी पुरानी सोच को नई आने वाली पीढी से जोड़ नहीं पाएंगे। इसलिए आज के नए सामाजिक दौर में वृद्धों को पीछे छोड़ दिया जा रहा है।

वृद्ध विमर्श का विकास मानव सभ्यता के इतिहास के साथ जुड़ा रहा है। अतीत में वृद्धजन सामाजिक संरचनाओं के केंद्र में थे, वर्तमान में वे अनेक चुनौतियों से जूझ रहे हैं, और भविष्य में उनकी स्थिति समाज के नीतिगत निर्णयों, तकनीकी विकास और सांस्कृतिक दृष्टिकोण में बदलाव पर निर्भर करेगी। वृद्धावस्था को गरिमापूर्ण, सुरक्षित और सक्रिय बनाने के लिए बहुस्तरीय प्रयासों की आवश्यकता है। यदि हम आज से ठोस पहल करें, तो वृद्ध विमर्श कल के समाज को अधिक समावेशी और संवेदनशील बना सकता है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. प्रेमचंद मुंशी–बूढ़ी काकी (प्रेमचंद की कहानियाँ) समाज शिक्षा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–03
2. प्रेमचंद मुंशी–बूढ़ी काकी (प्रेमचंद की कहानियाँ) समाज शिक्षा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–10
3. साहनी भीष्म कहानिया, राजकमल पेपरबॉक्स, पन्द्रवां संस्करण, पृष्ठ–16
4. साहनी भीष्म कहानिया, राजकमल पेपरबॉक्स, पन्द्रवों संस्करण, पृष्ठ–22
5. सिंह सुरेन्द्र, पालीवाल सौरभ–भारत में समाज कार्य का क्षेत्र, पृष्ठ–6.2
6. मिश्रा, सुधा. (2010). वृद्ध विमर्श, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
7. शर्मा, एम. एल. (2002). समाजशास्त्र में वृद्धावस्था, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृष्ठ 20–192।
8. शर्मा, रेखा. (2005). वृद्धावस्था– एक सामाजिक अध्ययन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृष्ठ 45–67।

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 268-272

संजीव की कहानियों में पारिस्थितिक संवेदना (चुनी हुई कहानियों के सन्दर्भ में)

ASWATHI. C. K.
RESEARCH SCHOLAR, DEPARTMENT OF HINDI,
UNIVERSITY OF CALICUT, THENHIPPALAM, MALAPPURAM, KERALA-673635

पर्यावरण के प्रति संवेदनशील जागरूकता हमें वैदिक काल से मिलती है। प्रकृति और मनुष्य के बीच क्या संबंध है? इसके बारे में ऋग्वेद में इस प्रकार लिखा है कि 'माता भूमि : पुत्रोदहं पृथिव्याः' (ऋग्वेद –1.191.6) यानि भूमि माता है, में पृथ्वी का पुत्र हूँ। प्रकृति, मानव एवं सम्पूर्ण चराचर में एक अनुपम संतुलन था। पारिस्थितिकी का अस्तित्व पारिस्थितिक तंत्र एवं पारिस्थितिक संतुलन पर आधारित है। कब मानव ने अपने पारिस्थितिक परिवेश से नाता तोडना शुरू कर दिया? मानव और उनके पारिस्थितिक परिवेश के बीच का अलगाव एक क्रमिक प्रक्रिया है जो कृषि के साथ शुरू हुई और औद्योगिक क्रांति, शहरीकरण और प्रौद्योगिकी के बढ़ते प्रभाव के साथ महत्वपूर्ण रूप से तीव्र हुई। जब मानव अपने पारिस्थितिक वातावरण से अलग हो जाता है, तो कई नकारात्मक परिणाम उत्पन्न होते हैं, जिनमें पर्यावरण का क्षरण, जैव विविधता का नुकसान, बढ़ते प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन आदि शामिल हैं। समकालीन कहानी में प्रकृति चित्रण पारिस्थितिक यथार्थ को उजागर करने वाला है। समकालीन कहानी में मुखरित पारिस्थितिक समस्याओं का चित्रण मृदुला गर्ग, संजीव, स्वयं प्रकाश, कैलाश वनवासी, मैत्रेयी पुष्पा आदि की रचनाओं में देखी जा सकती हैं।

आदिवासी जन जीवन को केंद्र में रखकर लिखा गया संजीव की 'टीस' नामक कहानी में समकालीन भारतीय व्यवस्था का यथार्थ चित्रण है। आदिवासी लोग विकास के बंधन में नही बाँधना चाहते है। उसे सरकार के बड़े–बड़े अनुदानों से कोई मोह नहीं हैं, बड़े–बड़े कारखानों से लगाव नहीं हैं। वह धरती, पेड़, पर्वत, नदी और पशु–पक्षियों से जुडकर सुखी जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। आदिवासी समाज की अर्थ व्यवस्था प्रकृति पर आधारित रही हैं। भोजन घरेलू सामग्री, कृषि, शिकार, मच्छली पकड़ना आदि प्रकृति से प्राप्त होती है। अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में संजीव कहते हैं : "मुझे शाल के पत्तों में भुनी या तली मछलियाँ देकर मताई मिट्टी की हांडी से सीझा पसावन युक्त भात एलुमिनियम की पिचकी थाली में निकाल लची। काका तब तक प्याज, नमक, मिर्च ले आते। पत्थर की सकाबी में गोगुला (केकड़ा) और मच्छली परसी जाती और पति–पत्नी एक ही थाली में खाने बैठ जाते।"[१]

शहरीकरण, औद्योगीकरण आदि की वजह से हवा, मिट्टी, जल सब प्रदूषित हो रहे हैं। प्रदूषण से हमारी जैव व्यवस्था बिगड़ जाती है। भौतिक सुख सुविधाओं के पीछे दौड़ने की वजह से मानव अपनी प्राकृतिक संसाधनाओं का नष्ट–भ्रष्ट कर रहे हैं। अतः यह मानव के लिए चिंता का विषय हैं। निर्वनिकरण, खनन, उत्खनन, प्रदूषण आदि के माध्यम से मानव प्रकृति के जैविक एवं अजैविक पदार्थों पर हानी पहुंचता रहता है। संजीव ने अपनी कहानी में प्रकृति पर पूँजीवाद का वर्चस्व और औद्योगीकृत समाज में मानव के विविध क्रिया कलाप किस प्रकार प्रकृति पर हानि पहुंचाकर उसे प्रदूषित कर दिया जाता है। इसका यथार्थ चित्रण किया हैं। पूँजीपतियों ने प्राकृतिक संसाधनों को केवल एक उपभोग वस्तु के रूप में देखते है। उनका लक्ष्य लाभ है, लेकिन इसका परिणाम पर्यावरण का नाश है।

गाँव में खदान की आगमन से अपनी तबाही पर तड़पने वाले आदिवासियों की व्यथा को बड़ी दुःख के साथ प्रस्तुत किया हैं। आदिवासियों के बस्ती के पास खदान शुरू करके उनको बेदखल कर दिया है। पृथ्वी पर कुछ अप्राकृतिक कार्य होने से हमारी पारिस्थितिकी असंतुलित होने लगी। कहानी के नकारात्मक पात्र है पुजारी पंचानन भट्टाचार्य जो पूँजीपति का प्रतीक है। पूँजी के बल पर संपूर्ण क्षेत्र यानी हमारी प्राकृतिक संपत्ता पर अपना वर्चस्व स्थापित करके वे लोग जनता को गुलाम बनाता है। साधारण जनता की स्थिति ओर दयनीय हो जाती है। पूंजीवादी व्यवस्था में प्रकृति और स्त्री किस प्रकार शोषित होते है। इसका चित्रण भी कहानी में संजीव ने किया है। जमीन पर पूरा अधिकार पूंजीपति को है। वहां काम करने वाले औरतों पर भी उनका अधिकार है पूँजी के समक्ष औरतों की विवशता को यहां हम देख सकते है। प्रकृति और स्त्री पर अपना आधिपत्य स्थापित करके ये लोग उसे अपने वश में रखकर गुलाम बनाकर शोषित करते है। नारी और प्रकृति को सिर्फ भोगवादी दृष्टि में देखते हैं। प्रकृति और स्त्री का दमन संजीव ने बहुत अच्छी ढंग से कहानी में अभिव्यक्त किया है।

'टीस' में देश की प्रगति को लक्ष्य बनाकर आये औधोगिक और शहरी विकास का बुरा असर किस प्रकार हमारी प्राकृतिक संसाधनों पर पड़ा है, इसका वास्तविक वर्णन हुआ है। कहानी विकास से प्रदूषित पारिस्थितिक तंत्र, देश की संस्कृति और राजनीति की गिरावट और मनुष्य की अमानवीयता का संकेत देती है।

पूँजी के माध्यम से प्रकृति का शोषण, जल और जमीन से वंचित मनुष्य की व्यथा को संजीव ने 'हत्यारे' कहानी में चित्रित किया हैं। पारिस्थितिक सजगता के बारे में जनता की चेतना को जगाने वाली यह कहानी 'जूठी है तेतरी दादी' कहानी संग्रह में संकलित है। इनमें विकास, पर्यावरण और आम आदमी से सम्बन्धित बातें बताया गया हैं। हम जानते है कि जनता के हित को लक्ष्य बनाकर भारत सरकार ने कई योजनायें बनाती है। इनमें से प्रमुख है सरकार की बूट योजना। जनता की हित को लक्ष्य बनाकर बनाए गये यह योजना किस हद तक लोगों तथा पर्यावरण पर हानि पहुंचाकर साधारण जनता का शारीरिक और मानसिक शोषण करते हैं यह सोचने की बात है। वर्तमान समय में औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के चंगुल में फँसकर हमारी भूमि, जल, वनस्पति आदि का प्रदूषण हो रहा है। नदी की उर्वरता नष्ट हो रहा है। नदी सूख रही है। पानी हमारी बुनियादी चीजों में सबसे महत्वपूर्ण है। पानी के बिना मनुष्य और जीव जन्तुओं का अस्तित्व मुमकिन है। प्रकृति पर मनुष्य की अमानवीयता

का खुला चित्रण संजीव ने कहानी में प्रस्तुत किया हैं। बूट योजना के कारण साधारण लोगों को अपना भूमि नष्ट हो जाता है। वे भूमिहीन बन जाता है। भूमंडलीकरण और औधोगीकरण का प्रभाव मनुष्य पर अधिक पड़ा है।

मनुष्य भौतिक सुख–सुविधाओं के पीछे अंधे होकर दौड़ रहे है। वह प्रकृति को विकृत बनाकर उस पर क्रूर विनोद करता है। कहानी में रतना नदी जो बिसुनपुर से बहने वाली नदी है। सरकार की बूट योजना के तौर पर आदिवासी जनता के क्षेत्र में कोयला खोदकर नदी की गति को उसकी संरक्षण तथा विकास के लिए अधिकारियों ने बदलने की योजना बना रहे है। इससे वहां की प्राकृतिक वातावरण बिगड़ जाता है और साधारण लोगों को भूमि खोना पड़ता है। यह औद्योगीकृत पूंजीकृत समाज व्यवस्था का लक्ष्ण है। मनुष्य अपनी सुख–सुविधाओं की पूर्ति के लिए प्राकृतिक संसाधनों का दुरूपयोग करके सबको अपने मुट्टी में बाँधने की कोशिश में लगा हुआ है। बूट योजना की अवधि पांच साल है। तब तक नदी पर पूरा अधिकार रतनलाल गोयनका नामक सरकारी अधिकारी को है जो वर्तमान समय के पूंजीपति के लिए उत्तम उदाहरण है। कर्मचारियों को काम बांटते वक्त नदी के बारे में वह कहते है कि "यह रही नदी, चलो ऐसा करते हैं नदी के टुकड़े कर आपस में बांटे लेते हैं। यह रहा पहला टुकड़ा लाल गांठ माने बगल की लाल माटी का पहाड़, माने लोहा, सिंहा जी का।

दूसरा टुकड़ा काली गांठ माने नदी के नीचे का कोयला, यह रहा अग्रवाल साहब का। तीसरा टुकड़ा हीरा, प्रसाद जी पकड़िए, हीरा बहुत कड़ा होता है और बाकी बचा पानी हम उसी में संतोष कर लेते हैं।"[२] उनके इस कथन को भूमंडलीकरण की विकास योजनाओं से जोड़कर हम विचार कर सकते है। पूंजीवादी प्रकृति को सिर्फ एक उपभोग वस्तु के रूप में देखकर उससे सब कुछ छीनकर उस पर क्रूर व्यवहार करके उससे मुनाफा कमाते हैं। सिर्फ प्रकृति को नही चाहे नारी हो या जीवजन्तु हो सभी पर उनकी दृष्टि उपभोगवादी दृष्टि है।

अब पूंजीपति रतना नदी की स्वामी बन गई हैं। क्योंकि नदी पर संपूर्ण अधिकार उनको हैं। चाहे वह कुछ भी कर सकते है। नदी के प्रति मनुष्य की अमानविक प्रवृत्ति को देखकर संजीव बहुत चिंतित हैं। कहानी का मुख्य पात्र सिंहा के शब्दों से हम यह बात समझ सकते हैं। सिंहा कहते है कि "क्या करते हैं, क्या? इधर से हजारों एकड़ उपजाऊ खेत नदी के पेट में समा जायेंगे।"[३] गाँव की भविष्य पर हम सूचना चाहिए। आदिवासी लोगों की पेशा खेती–बाड़ी है जो नदी पर निर्भर है। सिंचाई के बिना खेती न मुमकिन हैं। आदिवासियों को अपनी बुनियादी जरूरतों को खोना पड़ता हैं।

खनन के माध्यम से मानव प्रकृति के जैविक एवं अजैविक पदार्थों में हानि पहुँचाता है। बूट योजना की वजह से खुदाई का बुरा प्रभाव हमारी विस्तृत भूभाग की मृदा, जैव वैविध्य आदि पर पड़ता है। खुदाई से पर्यावर्णीय समस्याएं उभर आयेगी। पर्यावरण प्रदूषित होती है। खनन की प्रक्रिया का प्रभाव भूगर्भ की जलस्रोत की सुविधाओं को नष्ट करके उसे अनुपचाऊ बना देना है। कहानी में कुंकिग कोल जलाने से अंतरिक्ष में उससे उत्पन्न कार्बन की मात्रा बढ़ जाती है। कोयले खुदाई से वायु प्रदूषित होती है। यह अमीर आबादी से ज्यादा गरीब आबादी के जीवन को अधिक नुकसान पहुंचाता है। अंतरिक्ष में कार्बन की मात्रा बढ़ने से अस्थमा, कैंसर, हृदय और फेकड़ों की बीमारियों का उदय हुआ है। कहानी में गाँव वालों के प्रति सरकार द्वारा किये गये अत्याचारों

के बारे में भी संकेत दिया है। जीव जन्तुओं को नदी से पानी पीते समय पकड़ते है, मछुआरों की नाव को हटाकर उसके स्थान पर मोटरबोट रख दिया। होस पाइप जब्त किया, नदी के पास साईन बोर्ड रखकर दूसरों का प्रवेश बंद कर दिया।

साईन बोर्ड में इस प्रकार लिखा है :–"सर्वसाधारण को सूचित किया जाता है कि आज दिनांक १० जून से रतना नदी को इसके सर्वस्तरीय विकास के लिए सरकार की बूट योजना के तहत अधिकतर पांच साल के लिए रतनलाल गोयनका को सौंप दिया गया हैं। नदी के जल या नदी की किसी भी संपत्ति का, बिना अनुमति के उपयोग नहीं किया जा सकता। ऐसा करने वाले दण्डित होंगे।"[४] इससे गाँव में पूंजीवादी व्यवस्था का वर्चस्व हम समझ सकते हैं। पूंजीपति जल, जमीन, पानी, जीव जन्तु, आम आदमी सबको अपना कब्जा कर रहा है। मनुष्य अपनी करतूतों से प्रकृति को मैला कर दिया है।

अंत में पूंजीपतियों के खिलाफ खासकर सरकार की बूट योजना के प्रति आम जनता का आक्रोश हम देख सकते है। वे एक साथ खड़े होकर एक ही शब्द में कहते है : "भाईयो–बहनों, रतना हमारी माँ है, हम सब उनके बच्चे। कुछ मुनाफाखोर देश की पूरी सम्पत्ति को औने–पौने दाम में बेचकर अपनी जेब भरना चाहते है। उनकी लाल टपक रही है, कहते हैं रतना, रतना की खान है। इसके नीचे कोयले हैं, सोना है, हीरा है। हमें न कोयला चाहिए, न हीरा, न सोना, वह सब आगर है तो पूरे देश की संपत्ति है, हमें तो सिर्फ रतना का पानी चाहिए पानी।"[५]

रतना नदी को माँ के रूप में लोग देखती थी। अनुमति के बिना हम नदी के जल तथा नदी की किसी भी संपत्ति का उपयोग नहीं किया जा सकते। तकनीकी विकास के कारण मनुष्य सिर्फ रतना नदी को ही नही वहाँ के जीव–जन्तु, जनता, पूरे गाँव की पारिस्थितिक संतुलन को बिगाड़ा हैं।

झूठी है तेतरी दादी में संकलित संजीव की एक और महत्वपूर्ण कहानी है 'नायक–खलनायक'। सिंचाई, जल विद्युत का उत्पादन, औद्योगिक क्षेत्र में पानी की उपलब्धि जैसे उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बांधों में बड़ी संख्या में निर्माण होता है। कहानी में बाँध के निर्माण से उत्पन्न भीषण समस्या का चित्रण हुआ है। बांधों में बड़ी मात्रा में पानी का जमाव होना भूकम्प की संभावना को बढ़ाता है। संजीव कहानी में डैम को एक विनाशकारी चीज के रूप में चित्रित किया है। लेखक कहते है कि "वह प्रलयंकर बारिश थी। डैम लबालब भर गया था। बाँध के फाटक खोलने नहीं गये कि कहीं हमारा शहर न बह जाये पूरा का पूरा। रोज–रोज यज्ञ और अनुष्टान किये जा रहे थे।....रंजीत ने सबको ललकार कर इकट्ठा किया। रस्से बस को बाँधा। सड़क काटकर पानी को कोलियारी की ओपेन कास्ट मांझा की ओर मोड़ा। डैम के सातों फाटक खोल दिए गये। बाप रे ! वह दृश्य याद करते ही कलेजा मुँह को आ जाता है। हरहराता और खौलता–सा उच्छल खाता धुआं–धुआं होता लाखों क्यूस्क पानी। थोड़ी देर में हुई होती तो डैम टूट जाता और हजारों लोग जल समाधि ले लेते।....और हम सही–सलामत बच गये। डैम बच गया। शहर बच गया। बच्चे बच गये।"[६] चाहे मनुष्य हो या जीव–जन्तु हो सब के लिए डैम के निर्माण जैसी विकास योजना खतरनाक है जिसकी निर्माण प्रक्रिया हमारी पारिस्थितिक संतुलन को बिगड़ते है।

बाँध की वजह से विस्तृत भूभाग की मृदा, जैव वैविध्य सदा–सदा के लिए दूर हो जाते है तथा इसका बुरा प्रभाव भूमि के उपरी तल पर भी पड़ता है। यह पारिस्थितिक विध्वंश का सूचक है। आने वाले कल की पारिस्थितिकी भीषणता पर लेखक चिंतित हैं। कहानी में लेखक इस सच्चाई को सिद्ध किया है कि बाँध मुनाफे से ज्यादा हमें हानि पहुँचाता है तथा पारिस्थितिकी को बनाए रखने के लिए उसकी संरक्षण और नियन्त्रण अत्यंत अनिवार्य है।

निष्कर्ष :–

प्रकृति और मानव का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। गोविन्द चातक ने बताया है कि मन का प्रदूषण ही प्रकृति, जन, समाज और संस्कृति के संकट का कारण है। अतः प्रकृति के प्रति मनुष्य का मनोभाव पहला बदलना चाहिए। नकारात्मक पारिस्थितिकीय प्रभावों से बचने के लिए, हमें सतत् विकास पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, प्रदूषण कम करना चाहिए और पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखना चाहिए। संजीव की कहानियों में प्रकृति के साथ मानव के संबंधों को दर्शाती हैं और दिखाती है कि कैसे मानव गतिविधियाँ पर्यावरण को नुकसान पहुँचाती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

१. संजीव, संजीव की कथा–यात्रा (पहला पड़ाव, टीस) पृ. 62

२. संजीव, झूठी है तेतरी दादी, पृ. 56

३. वहीं, पृ. 57

४. वहीं, पृ. 57

५. वहीं, पृ. 58

६. वही, नायक–खलनायक, पृ. 63

CONTACT NUMBER : 9048702495

EMAIL ID : aswathick1996@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 273–277

सविता सिंह की कविताओं में नारी का प्रतिरोधी स्वर

प्रवीणा. सी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, कोच्चिन विज्ञान व प्रोद्योगिकी विश्वविद्यालय, कोच्चिन–22, 682022, केरल।

समानता समाज का संतुलित विकास का मूल तत्व है। स्त्री और पुरुष मानव जाति का समकक्ष इकाई है। दोनों समान रूप से अवसर, प्रतिष्ठा, न्याय मिलने के अधिकारी है। लेकिन सदियों से लेकर आज तक स्त्रियों की स्थिति में कोई बदलाव नहीं आई है। उनके ऊपर होने वाले शोषण नीतियाँ आज नए–नए रूप लेकर उभर रही है। पुराने सामाजिक व्यवस्था में नारी सिर्फ पितृसत्तात्मक व्यवस्था के चंगुलों में तड़प रही थी। लेकिन तत्कालीन युग में नारी पुरुषवर्चस्व के क्रूर व्यवहारों के साथ ही साथ बाजारीकृत समाज की झूठी व्यापार संस्कृति की दमनकारी नीतियों का भी शिकार है। घरवाली महिलायें आर्थिक निर्भरता को ही अपनी सपनों की दुनिया का नींव मानकर सदियों से बैठी थी। लेकिन वर्तमान समाज में आकर कामकाजी महिलाओं की बुरी हालत देखकर यह समझ सकते है कि स्त्रियाँ अभी भी अपनी अस्मिता की तलाश में हैं। जिन शोषण नीतियों से समकालीन समाज में आधुनिक नारी लड़ रही है, वे पुरानी स्थितियों से कई दफा अलग है। घर, समाज, दफ्तर कहीं पर भी हो, जिस तरह की कुटिलताओं के बीच पितृसत्ता ने नारी को दखेल दिया है, और शारीरिक हो या मानसिक हो जिस तरह की प्रतिकूल परिस्थितियों में आज नारी संघर्ष कर रही है।

उन स्थितियों का विश्लेषण करते समय पता चलेगा कि कभी–कभी ये स्थितियाँ पुराने समय से भी ज्यादा बिगड़ गई है। लेकिन नारीवादी आंदोलनों के प्रचार–प्रसार, शिक्षा, प्रगतिशील बोध, आर्थिक निर्भरता आदि ने आधुनिक नारी के सोच और स्वर को सुदृढ़ बना दिया है। कामकाजी होने की वजह से सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था में प्रत्यक्ष रूप से शामिल होने का जो अवसर उन्हें अब मिला है उससे उनकी क्षमता और क्रियाशीलता का उपयोग करने का खुले वातावरण मिल गया। इसलिए समकालीन नारी का हरेक कदम अधिक सशक्त और समझदार है। वे अपनी वजूद की काबिलयत को पहचान लिया है। वे यह समझ लिया है कि सिर्फ आर्थिक रूप से निर्भर होकर चुपचाप खड़े रहने से फायदा नहीं बल्कि इन बढ़ती हुई अत्याचारों और अनीतियों से लड़ने के लिए आंतरिक रूप से भी सशक्त होने की जरूरत है। अपनी अधिकार और प्रतिष्ठा के लिए स्वयं निडर होकर आगे आना है। इसलिए आधुनिक नारी का मूल स्वर प्रतिरोध है।

समकालीन हिन्दी कविता साहित्य में कवयित्री सविता सिंह आधुनिक नारी की इस प्रतिरोधी चेतना को अपनी कविताओं के जरिए बुलंद किया। अपनी अस्मिता की प्रतिष्ठा के लिए लड़ती नारी का घोर आक्रोश उनकी वाणी से चिनगारियाँ उड़ाती है। उनकी कविताएं नारीवादी चेतना से भरी हुई है जो नारी के अस्तित्व की प्रतिष्ठा

के लिए संघर्षरत है। उनका जन्म 5 फरवरी, 1962 में बिहार के आरा में हुआ। अपने जैसा जीवन (2001), नींद थी और रात थी (2005) और स्वप्न समय (2013) आदि उनकी प्रमुख तीन काव्य संग्रह है। रोविंग तुगेदर (अंग्रेजी – हिन्दी), ज स्वी ला मेजों दे जेत्वाल (फ्रेंच : हिन्दी 2008) ये दोनों उनकी द्विभाषिक संकलन है। प्रमुख हिन्दी आलोचक मैनेजर पाण्डेय की राय में सविता सिंह जी अपनी कविताओं में स्त्री की जो स्वायतत्ता बोध दिखाई है, उस बोध से ही स्त्री पराधीनता के परम्पराजनित शाप से मुक्त होती है। साथ ही पाण्डेय जी के अनुसार उनकी कविताओं में स्त्री की वैयक्तिक बोध के साथ सामूहिक चेतना के महत्व की पहचान भी देख सकती है।

स्त्री स्वयं शक्ति और सृष्टि का मूल आधार है। सम्पूर्ण मानव जाति का अस्तित्व और विकास स्त्रियों पर निर्भर है। स्त्री शक्ति नैसर्गिक रूप से मानव जाति का अस्तित्व को बचाने और उनके आंतरिक संबंध को पोषित करके एक साथ आगे ले जाने में काबिल है। पितृसत्तामक समाज ने कूटनीतियों के जरिए उनकी वजूद की असलियत को उनसे छिपाकर उसे सिर्फ एक सेविका की भूमिका दिया। सालों से पुरुष वर्चस्व के अधीन गुलाम बनकर जीने के लिए मजबूर किया। क्योंकि उसे अपनी काबिलियत को समझने और दिखाने का अवसर उससे छीनकर समाज ने उसके साथ धोखा दिया। स्त्री को अपने अधिकारों से वंचित करके समाज में हो या परिवार में हो दोयम दर्जे का स्थान मात्र दिया। इसका परिणाम यह हुआ है कि स्त्री स्वयं अपने आपको पुरुषों के अधीन समझने लगी। पुराने समाज की स्त्रियाँ पति और परिवार की सेवा करना अपना कर्तव्य समझती थी। परिवार के अंदर भी वे सुरक्षित नहीं थी, उनके साथ होने वाले सभी मानसिक, शारीरिक अत्याचारों को वे चुपचाप सहती थी। वे अपनी सारी खुशियों और सपनों को त्यागकर अपनी सेहत को भी भूलकर परिवार की सेवा में अपने आपको समर्पित करने वाली थी। किसी की बहन, पत्नी, माँ से बढ़कर अपनी खुद की अस्मिता की पहचान भी वे खो गई थी। लेकिन आधुनिक युग की महिलायें ऐसी नहीं है। वे अपनी अस्मिता पर चोट पहुँचने वाले किसी स्थितियों को बर्दाश्त नहीं करेगें। अपने अधिकारों से वंचित होकर रहना वे कभी स्वीकार नहीं करती। अपने सामाजिक प्रतिष्ठा और स्थान के प्रति वे हमेशा सतर्क है। किसी की भी हाथों की कठपुतली या किसी की भी सेविका बनकर रहने के लिए वह आज तैयार नहीं। आधुनिक नारी अपना पहचान खुद बनाना चाहती है। अपने ऊपर होने वाले सभी अत्याचारों के प्रति लड़ने के लिए वे आगे आती हैं। खुद के लिए आवाज उड़ाना वे सिख लिया है। किसी भी प्रतिकूल स्थितियों में भी वे अपनी खुशियाँ और सपनों का कुर्बानी नहीं करेगी। सविता सिंह जी आधुनिक नारी की इस प्रतिरोधी रूप को 'मैं किसकी औरत हूँ 'कविता में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है।

'मैं किसी की औरत नहीं हूँ
मैं अपनी औरत हूँ
अपना खाती हूँ
जब जी चाहता है तब खाती हूँ
मैं किसी की मार नहीं सहती
और मेरा परमेश्वर कोई नहीं।'[1]

आधुनिक युग में अधिकांश स्त्रियाँ खुद कमाने वाली है। कामकाजी होने की वजह से वे आत्मनिर्भर है और परिवार को आर्थिक रूप से संभालने में भी वे काबिल है। इसलिए परिवारों की पुरुषसत्तामक व्यवस्था की

जड़ें भी हिलने लगी। घरेलू शोषण की पीड़ाओं से वे धीरे–धीरे मुक्त होने लगी। लेकिन रसोई की चारदिवारी कैद से बाहर निकलकर अपनी स्वतंत्रता और अस्मिता को ढूँढ़कर निकलने वाली कामकाजी महिलायें बिल्कुल बाहर सुरक्षित नहीं है। उनके साथ कार्य क्षेत्रों में होने वाले शारीरिक और मानसिक अत्याचार और अन्याय कई हदें पार चुकी है। बाजारीकृत सामाजिक व्यवस्था स्त्री देह को सिर्फ एक यौन वस्तु समझते है। बाजारी नीतियों ने लोगों को अपनी व्यापारिक षडयंत्रों में फँसने की एक योग्य विज्ञापन वस्तु की तरह स्त्री की देह, उनकी स्वर और चेष्टाओं का उपयोग करते है। कंपनियों की दृष्टि से आर्थिक लाभ, मालों की बिक्री सिर्फ ये दोनों मानदंड महत्वपूर्ण है। समाज अभी भी इतनी मानसिक प्रगति हासिल नहीं की है कि वे स्त्री को भी एक व्यक्ति के रूप में स्वीकार करें। स्त्री अस्मिता अब भी एक सवाल बनकर रही है। गरीबी, महंगाई आदि की वजह से कभी–कभी पारिवारिक स्थितियाँ इतनी बिगड़ी हुई होती है कि लड़कियाँ स्वयं अपनी वजूद को खोकर देह प्रदर्शन के लिए मजबूर होती है। क्योंकि उनके सामने ओर कोई रास्ता नहीं होती है और व्यापारी लोग उनकी इस विवशता का फायदा उड़ाते है। पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण और बाजारी संस्कृति के खोखले मूल्यों में फँसकर इस समाज में कुछ स्त्रियाँ इतनी नासमझदार भी हो गयी कि देह प्रदर्शन में ही वे अपनी आधुनिकता समझती है। इसलिए वे अपने को अस्वस्त महसूस करते समय भी एक प्रदर्शन वस्तु बनने के लिए खुद तैयार होती है। सविता सिंह आधुनिक युग में स्त्रियों के ऊपर होने वाले इस तरफ के यौन शोषण के प्रति उन्हें जागृत करने का प्रयास 'चित्र में लड़कियाँ' नामक कविता में किया है। अपनी वजूद पर किसी भी तरफ की आघात पहुँचने वाले स्थितियों को खुद छोड़कर आगे जाने के लिए कवयित्री प्रेरित करती है।

'मैंने उस चित्र को जब दोबारा देखा
उसमें मुझे कई और लड़कियाँ दिखीं
ढँके बाँहों से कभी मुख कभी स्तन
ऐंठे उनके बदन पर थीं लेटी सर्प सी उनकी नसें
दिखीं वे खुद इतनी बेचैन मानो
अब उठ खड़ी होंगी और निकल जायेंगी
अपनी–अपनी खिड़कियों से बाहर
मिल जायेंगी अपने–अपने दृश्यों में'।[2]

वास्तव में स्त्री स्वयं अपनी सोचों को सही दिशा में लाने पर अपना मित्र भी बन सकती है नहीं तो अपनी शत्रु भी। अगर नारी पितृसत्ता की सारे रूढ़िवादी मूल्यों, कट्टरपंथी व्यवस्था के प्रति लड़ने के बगैर उन सभी को मानकर चुपचाप बैठी रही है तो वे खुद को स्वयं धोखे में डाल रही है। क्योंकि अपने ऊपर होने वाले समस्त अन्यायों के प्रति खुद आकर लड़ने की जरूरत है। अपना अस्तित्व और सामाजिक स्वीकृति के लिए नारी संघर्ष की राह अपनाने की हिम्मत दिखाना चाहिए। सविता सिंह जी ने भी अपनी कविताओं के जरिए स्त्रियों से मुक्ति की रास्ता खुद बनाने और नीड़र होकर उस पर चलने की प्रेरणा देती है। इस सफर में उनकी एकमात्र साथी वे खुद ही है। कवयित्री अपनी स्वत्व बोध को जाग्रत करके अपने ऊपर भरोसा रखकर आत्मशक्ति की पहचान करने की बात करते है। स्त्री अपना फूलों का बाग खुद ढूँढ़कर निकलनी होगी। किसी ओर की सहारा के लिए

इंतजार करने की जरूरत नहीं। कवयित्री विश्वास रखती है कि स्त्री स्वयं इस लड़ाई में जीतकर अपनी पसंद की रंगों की दुनिया हासिल करने के लिए सक्षम है। लेकिन प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण कभी–कभी उनको अपनी किसी निर्णयों से भी त्रस्त होने पड़ रही है है 'सपने की औरत' कविता में वे कहते है कि,

'अँधेरा कितना गहरा है अब भी मेरे रास्ते का
और उसमें उतरना और उतरते जाना ही
मेरी नियति है
कि बिना किए पार इसे
मिलेगा न फूलों का बाग मुझे
न वह आकाश
जिसका रंग ले जायेगा मुझे दूसरे रंगों तक
यह बात और है कि वह खुद है बहुत बेहाल
त्रस्त अपनी ही पंसद के रंगों से।'[3]

समकालीन सामाजिक माहौल में स्त्री की सुरक्षा खतरनाक स्थिति में है। हर दिन उनके साथ होने वाले यौन शोषण खबरों के बिना कोई भी अखबार इस देश में निकलते नहीं हैं। हालत इतनी बिगड़ गई है कि घर और समाज दोनों में भी छोटी बच्ची से लेकर बूढ़ी औरत भी यौन अत्याचार का शिकार होती जा रही है। देश का एक नागरिक होने के नाते स्त्रियों की सुरक्षा, स्वतंत्रता, समानता आदि के अधिकार संभालने में समाज और शासन व्यवस्था अभी भी असफल रहे है। अपनी सीमाएं तोड़कर बाहर आने वाली एक स्त्री को समाज की बुरी नजरों से बचे रहना आज उतना आसान नहीं है। अगर पुरुष लोग समझते है कि स्त्रियाँ पर अपनी झूठी हुकुमत दिखाने से वे डरने वाली नहीं है, तो बदले में उनपर अपनी काम पूर्ति फायदा उड़ाके भी वे लोग स्त्रियों को दमित करना चाहते है। एक बच्ची का जन्म लेते ही उनकी जिंदगी में आने वाले पीड़ाओं के बारें सोचते हुए इस देश में हर माँ का दिल तड़पने लगता है। इसलिए सविता जी को 'नमन करूँ छोटी बेटियों को' कविता में इस तरह कहना पड़ रही है कि,

'नमन करूँ इस देश को
जहाँ मार दी जाती हैं हर रोज
ढेर सारी औरतें
जहाँ एक औरत का जीवित रहना
एक चमत्कार की तरह है।'[4]

निष्कर्षतः दुनिया की सबसे बढ़ी लोकतांत्रिक देश में स्त्रियों को अभी भी जीने के लिए कई तरह की परेशानियों का सामना करना पड़ता है। उनकी जिंदगी मुसीबतों के बीच की लड़ाई है। शोषणों की गर्त से स्त्रियों का उत्थान समाज की आगामी भविष्य की भलाई के लिए अत्यंत आवश्यक है। अगर स्त्रियाँ सुरक्षित नहीं है तो इस मानव राशि का अस्तित्व भी खतरे में है। आधुनिक नारी का स्वरूप पुरानी पीढ़ियों की नारी की तुलना में काफी सशक्त और सुदृढ़ है। वे अपनी अंतसत्ता की ऊर्जा को पहचान लिया है इसलिए वे खुद अपने लिए

प्रतिरोध और संघर्ष की रास्ता चुन लिया है। नारी की इस प्रतिरोधी चेतना को सविता जी ने अपनी कविताओं के जरिए और तीव्र बनाई है। अन्यायों के प्रति चीखने वाली नारी स्वर की शक्ति उनकी काव्यवाणी में गूँज उड़ती है। नारी संघर्ष का तीखा आक्रोश दिखाकर स्त्रियों का अस्तित्व का संकट में कविता को अपनी हथियार बनाकर सविता जी खुद लड़ रही है। स्त्री भाषा, प्रतिरोधी स्वर, सरलता, सामाजिक यथार्थ का खुला चित्रण आदि उनकी कविताओं की विशेषताएं है। स्त्रियों के साथ होने वाले सभी अत्याचारों के लिए में यह पूरा समाज जवाबदेही है। मानवराशी का सुन्दर भविष्य के लिए नारियों का उत्थान जरूरी है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2018, पृ. 40
2. वही, पृ. 43
3. वही, पृ. 24
4. वही, पृ. 45

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 278-281

स्त्री विमर्श की विविध छवियाँ : समकालीन स्त्री कथाकारों की दृष्टि में

डॉ. पुष्पांजलि रंजन
सहायक प्रोफेसर, सौंदर्या इंस्टीट्यूट ऑफ मैन्ट एण्ड साइंस
प्रकृति लेआउट, सिडेदहल्ली, नागसान्द्रा पोस्ट, बेंगलुरु –५६००७३

सारांश :–

'समकालीन' शब्द का अर्थ हिंदी साहित्य में 'वर्तमान समय के अनुसार' या 'समकाल' से जुड़ा हुआ लिया जा सकता है। यह शब्द उस साहित्यिक या सांस्कृतिक प्रवृत्ति की ओर इंगित करता है जो अपने समय की समस्याओं, परिस्थितियों, विचारधाराओं और सामजिक मुद्दों को प्रतिबिंबित करती है। समकालीन हिन्दी साहित्य में स्त्री–विमर्श एक अति महत्त्वपूर्ण विषय रहा है।

स्त्री विमर्श का आदान–प्रदान 19वीं सदी में हुआ, जब समाज में महिलाओं की स्थिति और समाजिक परिपेक्ष्य में उनकी भूमिका पर सवाल उठने लगे। इस समय के बड़े साहित्यकार जैसे कि मुंशी प्रेमचंद, शरतचंद्र चट्टोपाध्याय आदि ने अपनी रचनाओं के माध्यम से महिलाओं के सामाजिक स्थान को व्यक्त किया और उनके जीवन की चुनौतियों को प्रकट किया। स्त्री विमर्श एक ऐसा विमर्श है जो जाति, धर्म, वर्ग, प्रांत और देश आदि से पृथक है। यह केवल एक मुद्दा नहीं है, बल्कि स्त्रियों की चेतना की जागृति का विषय है।

प्रस्तावना :–

स्त्री–विमर्श दो शब्दों से मिलकर बना है – स्त्री और विमर्श। स्त्री का अर्थ महिला, नारी, लड़की और औरत है तथा विमर्श का अर्थ होता है – बहस, संवाद, वार्तालाप या विचारों का आदान–प्रदान। अतः स्त्रियों को लेकर होने वाली चर्चा को स्त्री विमर्श कहते हैं। पितृसत्तात्मक समाज के दोहरे नैतिक मापदंडों, मूल्यों व अंतर्विरोधों को समझने व पहचानने की यह एक गहरी अंतर्दृष्टि है।

प्रेमचंद से लेकर आज तक अनेक पुरुष लेखकों ने नारी समस्या को अपना विषय बनाया है लेकिन उसे उस रूप में नहीं लिखा गया है जिस रूप स्वयं महिला लेखिकाओं ने लिखी हैं। अतः स्त्री विमर्श की शुरुआती गूंज हमें पश्चिमी साहित्य में देखने को मिलता है। हिन्दी कथा साहित्य नारी–मुक्ति को लेकर स्त्री–विमर्श की अनुगूँज १९६०–६५ के बाद दिखती है।

जिनमें उल्लेखनीय हैं – उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी एवं शिवानी आदि हैं। बीसवीं सदी तक आते–आते इसने एक आंदोलन का रूप ले लिया – यथा ममता कालिया, कृष्णआ अग्निहोत्री, चित्रा मुद्गल,

मृदुला गर्ग, मृदुला सिन्हा, मैत्रेयी पुष्पा, मृणाल पांडे, प्रभा खेतान, सुधा अरोड़ा, नसीरा शर्मा, अलका सरावगी, महरुनिशा परवेज, सुनीता जैन, नमिता सिंह, अर्चना वर्मा, रमणिका गुप्ता आदि।

इन्होंने नारी के मन के छिपे शक्तियों को पहचाना और नारी की दिशाहीनता, दुविधाग्रस्तता, कुंठा आदि का विश्लेषण किया। स्त्री कथाकारों द्वारा स्त्रियों की पीड़ा की अभिव्यक्ति ने इस विमर्श को नया आयाम दिया। स्वयं का भोग हुआ यथार्थ और देखा–समझा महसूस किया हुआ यथार्थ में वही अंतर है जो आसमान में उड़ना और उड़ने की कल्पना में है। जब दर्द शब्दों में समाहित होकर लेखनी से चलता है तो वह पाठकों के हृदय पर अमिट प्रभाव छोड़ता है। मीरा के दर्द से भरे गीत इस बात को प्रमाणित करते है।

"घाइल की गत घाइल जाणै, हियड़ों अगठा सँजोय।
जौहर की गत जौहरी जाणै, क्या जाण्या जिण खोय।।"[1]

बीज शब्द :– पितृसत्ता, विमर्श, सामाजिक, आर्थिक, पीड़ा, स्तर आदि।

भूमिका :–

अक्सर जब हम स्त्री विमर्श की बात करते है तो ज्यादातर लोग इसे नकारात्मक या विवादास्पद ही लिया जाता हैं। किन्तु स्त्री विमर्श का अर्थ यहाँ महिलाओं के जीवन, उनके अनुभवों, संघर्षों और समाज उनकी स्थिति का अध्ययन और अवलोकन करना। नारी की सामाजिक, परिवारिक एवं आर्थिक पीड़ा का चित्रण अनेक स्तरों पर मिलता है। असल में स्त्री विमर्श का उद्देश्य स्त्री के सम्पूर्ण अस्तित्व को उसके मौलिक रूप में स्थापित करना है। अर्थात आर्थिक, मानसिक, शारीरिक अवस्थाओं पर विचार करते हुए एवं इन तमाम चिंतनों के द्वारा नारी को उसकी गरिमा के साथ स्थापित करना। स्त्री–विमर्श वस्तुतः स्वतंत्रता के बाद की संकल्पना है। नारियों का सबसे बड़ा अभिशाप वस्तुतः उनकी अशिक्षा थी जो उनकी आर्थिक परतंत्रता का प्रमुख करण रही है। आज की स्त्री तो जमीन से लेकर आसमां तक अपनी सफल भागीदारी निभा रही है।

विषय वस्तु :–

हर देश और समाज में स्त्री संघर्ष का अपना इतिहास है। आदि काल से हम देखते हैं कि जरूरत पड़ने पर स्त्री ने अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया है, फिर भी इन्हें साधना में बाधक ही समझा गया गया। हम जिसे माँ, बहन, पत्नी और बेटी के रूप में देखते हैं, वही स्त्री बचपन में पिता, जवानी में पट्टी और बुढ़ापे में बेटे या बेटी के सहारे जंदगी गुजरती थी। मगर अब वह अपने अस्तित्व के प्रति सचेत होने लगी है। जिसके परिणाम स्वरूप वर्तमान समय में स्त्री की हर बंदिशें बारी–बारी से टूट रही हैं। जैसे शिक्षा से संविधान तक उसके पक्ष में खड़ा है। समकालीन महिला साहित्यकारों ने उसकी अनुभूतियों को, उसके प्रश्नों और उसकी समस्याओं को बखूबी अपने कथा साहित्य में उठाया है।

सुधा अरोड़ा की कहानी 'रहोगी तुम वहीं' की नारी उच्च शिक्षित हो कर भी परुष सत्तात्मक व्यवस्था की गुलाम बनी हुई है। पहले के जमाने में स्त्रियों को घरेलू काम थे, लेकिन आज के जमाने में को बच्चों का ट्यशून भी ही खुद लेना है, उनके भविष्य की ओर ध्यान देना आदि कम भी बढ़ गए हैं। जैसे "अब मुझसे उम्मीद मत करो कि मैं थका माँदा लौटकर बच्चों को गणित पढ़ाने बैठूँगा, एम.ए. की गोल्ड मैडलिस्ट हो, तुमसे अपने ही बच्चों को पढ़ाया नही जाता?"[2]

मैत्रेयी पुष्पा जी यह कहती हैं कि–स्त्री अगर घर में रहे तो उसे 'कुछ नहीं करती' का लेबल लगाकर

लज्जित करते हैं और कुछ करने जाए तो अनेक समस्यों से घिर जाती है। मैत्रेयी जी की कृति 'इदन्नमम्' (१९९४) नामक उपन्यास में 'प्रेम' नामक चरित्र शारीरक एवं आर्थिक दोनों तरह के शोषण का शिकार है। मानसिक अस्वस्थता, अकेलेपन और शारीरिक विखंडन से संघर्ष करती स्त्री अंदर से टूटती जाती है। इस स्थिति को उद्‌बोधित करते हुए मैत्रेयी पुष्पा कहती हैं– "दहयुक्त स्त्री देहमुक्त हो ही नहीं सकती।"[३]

इसी प्रकार उनकी एक अन्य कहानी 'तुम किसकी हो बिन्नी' में शहर में रहने वाले परिवार गोपाल, उसकी पत्नी आरती तथा तथा दी बेटियों के बाद पुत्र प्राप्ति की लालसा में तीन बार गर्भपात करवाती है तथा तीसरी डिलीवरी में डॉक्टर की गारंटी के बाद भी बेटी पैदा हो जाती है। आरती का मातृत्व इतना कठोर हो जाता है कि वह अपनी बच्ची से छुटकारा पान चाहती है। उसकी नफरत इतनी बढ़ जाती है कि पड़ोसियों को भी पता चल जाता है कि 'वही तीसरी पीट रही होगी'। "दीठ कहीं की! कंजरिया! थप्पड़ों की दर्दीली बौछार! –––––– चिखों भरा रुदन घर में फैल गया।"[४]

यहाँ लेखिका ने एक बच्ची के ऊपर हो रहे अत्याचार के पीछे एक स्त्री को ही दिखाया है। ऐसा अत्याचार कोई शत्रु पर भी नहीं करता, फिर आरती तो अपनी माँ थी। गोपाल २१वीं सदी का पति जो पत्नी के आगे बोल नहीं पता। छोटी से बिन्नी का जिसने भी विरोध किया वे सभी स्त्रियाँ ही हैं। अंत में बिन्नी के जीवन को सँवारने वाली भी एक स्त्री ही रहती है, जो उसकी दादी है।

चित्रा मुद्‌गल जी की प्रसिद्ध उपन्यास आँवा में मजदूर वर्ग या निम्न वर्ग से संबंध रखने वाली स्त्रियों पर हो रहे यौन–उत्पीड़न को बखूबी दर्शाया गया है, जो राजनीतिक और सामाजिक स्तर पर सूक्ष्मता के साथ परत–परत हटता है। फोन पर नमिता के मुख से गर्भपात का समाचार सुनते ही संजय बौखला जाता है और क्रोध में राज उगल देता है– "जानती हो बाप बनने के लिए मैंने तुम्हारे उपेर कितना खर्च किया? उस मामूली औरत अंजना वासवानी की क्या औकात है कि तुम्हारे ऊपर पैसा पानी की तरह बहा सके? उसका जिम्मा सिर्फ इतना भर था कि वह पिता बनने में मेरी मदद करे और सौदे के मुताबिक अपना कमीशन खाए। जिस टुच्चे से कैरियर के लिए तुमने गर्भ गिराया......क्या कमा लोगी तुम दो कौड़ी की डिजाइनर बनकर नमी.........मैं घृणा करता हूँ तुमसे।"[५]

'पचपन खम्भे लाल दीवार' में उषा प्रियंवदा जी ने एक ऐसी नौकरी पेशा युवती की त्रासदी को दर्शाया है, जो अपने परिवार के भरण–पोषण हेतु अपनी तमाम इच्छाओं का दमन कर लेती है। सुषमा की पीड़ा अव्यक्त पीड़ा है। वह चाहकर भी नील से विवाह नहीं कर पाती। सुषमा कॉलेज में प्राध्यापिक तथा गर्ल्स हॉस्टल में वार्डन है के रूप में काम करती है। समूचा परिवार मानो सुषमा को हाड़–माँस की व्यक्ति न मानकर मात्र धनोपार्जन का साधन भर मानता है। बह कहती है "मेरी जिंदगी खत्म हो चुकी है। मैं केवल साधन हूँ। मेरी जिंदगी में भावना का कोई स्थान नहीं है।"[६]

वस्तुतः आधुनिक जीवन की यह बहुत बड़ी विडंबना है कि जिस कार्य को हम करना नहीं चाहते अथवा जिसे करने में हमें कष्ट होता है हम वही करने के लिए बाध्य किए जाते हैं। पद की गरिमा और पारिवारिक जिम्मेदारी की अनेक दीवारें उसके और नील के बीच खड़ी हो जाती है। उपर्युक्त लेखिकाओं कहानियों की चर्चा तो मात्र ऊपर से सुलगता हुआ धुआँ है, नारी विमर्श पर नारियों द्वारा कई महत्त्वपूर्ण रचनाएं पीड़ा की अग्नि को समेटे हुए है।

निष्कर्षः इस प्रकार समकालीन हिन्दी साहित्य में स्वयं स्त्री कथाकारों ने स्त्री–विमर्श को नई पहचान और आयाम देने में अपनी महत्त्वपूर्ण और सफल भूमिका निभाई हैं। इनके उपन्यासों में दलित, पीड़ित, भयभीत, विकासोन्मुखी और विद्रोही नारी के स्वर दिखाई पड़ते हैं। इनकी कहानियों में नारी की प्रताड़ना, वेदना, विद्रोह, कहीं परंपरागत बेड़ियों से सम्पूर्ण मुक्ति की ओर उन्मुखता से भरे हुए नारी पात्रों का सृजन हुआ है नारी की ऐसी सभी उत्पीड़न और त्रासद की गाथा समाज में व्यापक रूप से प्रसारित होनी चाहिए, तभी नारी विमर्श की सार्थकता का परिणाम हमारे समक्ष आएगा और उम्मीद कर सकते है कि वह उचित सम्मान के साथ जीवन जी सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

१. https://ncert.nic.in/textbook/pdf/khar110.pdf

२. हंस पत्रिका, राजेन्द्र यादव, पृष्ठ १५, अक्षर प्रकाशन, प्रा. लि, नई दिल्ली–110092, मई–१९९९

३. इदन्नमम्, मैत्रेयी पुष्पा, किताब घर प्रकाशन, वर्ष १९९४, पृ–१३५

४. ललमानियाँ तथा अन्य कहानियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, पृष्ठ–१२६

५. चित्र मुद्गल, आँवा, सामयिक प्रकाशन वर्ष १९९९, पृष्ठ ५३६–५४०

५. पचपन खंभे लाल दीवार, राजकमल प्रकाशन, द्वितीय संस्करण १९७२, पृष्ठ–१४

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 282–285

स्त्रीवादी चिंतनकार : अनामिका

डॉ. निशा साहू
असिस्टेंट प्रोफेसर– हिंदी, गिन्दो देवी महिला महाविद्यालय, बदायूं, उत्तर प्रदेश।

'ज्ञान उनके कंधे पर बेताल बनकर हावी नही होता बल्कि प्रकाशित होकर बिखरता है।' विदुषी अनामिका के ये शब्द उन्हीं पर लागू होते है। स्त्रीवादी चिंतन के क्षेत्र में अनामिका किसी परिचय की मोहताज नही हैं। उनका स्त्रीवादी दृष्टिकोण रचनात्मक है जिसे वह अपने ढंग से व्याख्यायित और परिभाषित भी करतीं हैं। इनके साहित्य में आक्रोश से अधिक तर्क, विश्लेषण और समाधान देखने को मिलता है।

अनामिका कहतीं हैं कि स्त्री आंदोलनों को धनी महिलाओं का कोरा वागविलास कहकर नकारने का प्रयास किया जाता है साथ ही इसे पुरुष विरोधी करार दिया जाता है। इस पर अनामिका जी स्पष्ट करतीं हैं कि स्त्री आंदोलन महज उच्च और मध्यम वर्ग तक केंद्रित नहीं है बल्कि इसके विस्तार क्षेत्र में हर उपेक्षित महिला आ जाती है और यह हर वर्ग व स्तर पर स्त्री को समेटता है। अनामिका जी स्त्री संघर्ष को पुरुष विरोधी होने के आरोप का जोरदार खंडन करतीं हैं। वे कहतीं हैं "दोषी पुरुष नहीं है वह पितृसत्तात्मक व्यवस्था है जो जन्म से लेकर मृत्यु तक पुरुषों को लगातार एक ही पाठ पढ़ाती है कि स्त्रियां उनसे हीनतर हैं, उनके भोग का साधन मात्र।"(1)

अनामिका जी का मानना है कि स्त्री और पुरुष में शारीरिक और मानसिक भिन्नताएं हैं और रहेंगी भी, पर यह भिन्नताएं शर्मनाक नहीं है कि इससे आधार पर किसी को हेय समझा जाए। स्त्री–पुरुष एक दूसरे के गुणों को अपनाकर ही संपूर्णता प्राप्त कर सकते है। स्त्री आंदोलन की समर्थक स्त्रियां पुरुष नहीं बनाना चाहतीं हैं। स्त्री की दोयम दर्जे की स्थिति की वजह पुरुष नहीं, पितृसत्तात्मक व्यवस्था है। इस व्यवस्था ने स्त्रियों के साथ–साथ पुरुषों का भी बहुत नुकसान किया है। उसे मनुष्य से पशु बनाने में इसी व्यवस्था का हाथ है। स्त्री और पुरुष की लड़ाई अन्य लड़ाइयों से भिन्न है। "कुल मिलाकर यह एक ऐसी लड़ाई है जिसमें सत्ता का हस्तांतरण उतना महत्वपूर्ण मुद्दा नही जितना दृष्टियों और व्यक्तियों का शांतिपूर्ण सह अस्तित्व और सामंजस्य का।"(2)

साथ ही वह बतातीं हैं कि स्त्रियों का पुरूषों पर अवलम्बन उतना ही है जितना पुरुषों का स्त्रियों पर और दोनों अलग–अलग भी अपने में पूर्ण और आत्मनिर्भर रह सकते हैं। वे आगे कहतीं हैं पहले स्त्रियां कलम उठातीं थीं तब उनमें एक 'पुअर लिजा कॉम्प्लेक्स' होता था। 'यह बेचारी दुख की मारी वाला भाव' एक हीनता का भाव था परंतु आज की स्थिति एकदम अलग है। "आधुनिक स्त्री लेखन आत्मविश्लेषणपरक है और उसमें मैं का विस्तार इतना बढ़ गया है कि सारी दुनिया समा गई है उसमें।"(3)

अनामिका जी स्त्रीवादी चिंतन में लिखतीं हैं कि "नारी जब अपने कोमल भावों को कुचलकर पाषाण सम पुरुष बनना चाहती है तो उसका मुख्य कारण है, उसका पाषाण हृदयों द्वारा कुचला जाना।..... मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि समकालीन समाज को बड़ा संकट यह है कि ज्यादातर पुरुष एक जिद्दी बच्चे की तरह है और स्त्रियों की मनोदशा विद्यापति की उस नायिका की तरह है जिसे छह बरस के बच्चे से ब्याह दिया गया है।"(4)

हिन्दी साहित्य क्षेत्र में स्त्री को चित्रित करने की प्रवृत्ति हमेशा से रही है। स्त्री, हिंदी साहित्य के आदिकाल में 'वीररस की विधाता' बनी तो भक्ति काल में 'कामिनी की प्रतिमा' लिए अवतरित हुए वहीं रीतिकाल में उसको 'उपभोग एवं विलास' का साधन माना गया तो आधुनिक काल आते–आते वह अपने पूर्व की छाया के साथ क्षमा, करुणा, प्रेम की देवी आदि गरिमामय रूपों को लेकर प्रकट हुईं। स्त्री चिंतनकार अनामिका ने इन्हीं साहित्यिक गतिविधियों से प्रभावित होकर स्त्री के माता, पत्नी कन्या, वेश्या, उपेक्षिता इत्यादि विविध रूपों को अपने साहित्य में चित्रित किया है।

पुत्री का जन्म समाज में लक्ष्मी, कन्या, देवी, माता का रूप माना जाता है। वहीं समाज में आज भी भ्रुणहत्या जैसे घोर अपराध, दहेज प्रथा–कोढ़ रूप में विद्यमान है। अपनी कविता 'बेजगह' में परिवार में लड़कियों की स्थिति का एक ऐसा चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करती करती है :–

"अहा, नया घर है!
राम, देख यह तेरा कमरा है!
और मेरा?
ओ पगली
लड़कियां हवा, धूप, मिट्टी होती है
उसका कोई घर नही होता।"(5)

आजकल स्त्रियों पर होने वाले हमलों के नए–नए रूप उभकर सामने आ रहे है। एसिड से हमला, डायन होने का आरोप, आबरू पर हमला, साइबर क्राइम, फतवा, जाति पंचायत आदि। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को दोयम दर्जे का मानने की मानसिकता है। 'स्त्रियां' शीर्षक कविता देखिये :–

"पढ़ा गया हमको
जैसे पढ़ा जाता है कागज
बच्चों की फटी कापियों का
चना जोर गर्म के लिफाफे बनाने से पहले।"(6)

अनामिका जी ने स्त्री द्वारा भोगे हुए यथार्थ का वर्णन बड़ी बारीकी के साथ किया है। उनकी कविता देखिए :–

"मैं एक दरवाजा थी
मुझे जितना पीटा गया
मैं उतनी खुलती गई।"(7)

इन सबके बावजूद औरतें हंसती हुई दिखाई देतीं हैं। कहा जाता है उनकी हँसी–इस जमाने का ड्रेस कोड है। अनामिका जी कहतीं हैं नए जमाने का तो घूंघट हँसी ही है। सब औरतों के मुँह पर पड़ी है, एक नए

ड्रेस कोड की तरह।"[8]

हिन्दी साहित्य में वेश्याओं की जिंदगी दूर से देखने की प्रथा चल रही थी लेकिन समकालीन रचनाकारों ने स्त्री के इस वेश्या रूप को साहित्य का विषय बनाने का प्रयास किया। 'चौदह वर्ष की सेक्स वर्कर्स' कविता में छोटी बच्चियों का जिक्र किया गया है।

"अंकल, तुम भारी बहुत हो!
पेट दुख रहा है कुछ मेरा!
अरे माहवारी का चक्कर ही होगा।"[9]

अनामिका जी वेश्याओं की निर्मित्ति का मुख्य कारण पराधीन वृत्ति को मानतीं हैं किंतु वर्तमान समय में इनकी मजबूरी समझे या कुछ और, पुरुष समाज वेश्याओं को गाली देते है मगर वेश्याओं के बिना उनकी जरूरतें पूरी भी नहीं होती।

अनामिका के साहित्य में स्त्री के रूपों में श्रमिक रूप भी है। यह गौरव की बात है कि आज स्त्रियाँ ई–रिक्शा, रेल, हवाई जहाज तक चला रहीं हैं :–

"व्यस्त वह इतना रहती थी,
जितना रहता है मिनिस्टर दौरे पर
क्षण में इधर, क्षण में उधर।"[10]

अनामिका जी ने मानवीय आश्रम व्यवस्था के अंतिम रूप वृद्धा को भी अपनी रचनाओं का विषय बनाया। वे अपनी कविता 'वृद्धाएं धरती का नमक' में कहतीं हैं :–

"वृद्धाएं घर में रहती है
लेकिन ऐसे जैसे अपने होने की खातिर हो क्षमा प्रार्थी
लोगों के आते ही बैठक से उठ जाती।
छुप–छुपकर रहती है छाया सी माया सी।"[11]

अनामिका जी स्त्री चिंतन को एक नया रूप प्रदान करतीं है। एक करुणामयी, संवेदनशील स्त्री की नजर से अपने समय तथा समाज को देखतीं हैं। स्त्री विमर्श के दौर में स्त्रियों के संघर्ष और शक्ति का चित्रण तो अपनी– अपनी तरह से हो रहा है लेकिन महादेवी वर्मा ने जिंस वेदना और करुणा को अपनी कविता के केंद्र में रखा था (वेदना में जन्म, करुणा में मिला आवास) उसका विस्तार केवल अनामिका ही कर पातीं हैं। इनके कृतित्व में वात्सल्य, क्रोध, आक्रोश भी है। ये कविता, कहानी, आलोचना, उपन्यास, विमर्श लेख, अनुवाद और साक्षात्कार इत्यादि विधाओं में रचना करतीं हैं। अनामिका ने स्त्रीवादी चिंतन के सभी पहलुओं पर सभी स्तर का गहनता से चिंतन किया है।

संदर्भ :–

1. अनामिका : स्त्रीत्व का मानचित्र, पृष्ठ 11
2. वही।
3. अनामिका : पानी जो पत्थर पीता है, पृष्ठ 11

4. डॉ. आरिफ जमादार : अनामिका समग्र साहित्य का मूल्यांकन, पृष्ठ 116
5. अनामिका : कवि ने कहा, पृष्ठ 12
6. देवेश कुमार, यति जिंदल : आजादी की आधी सदी और आम आदमी, पृष्ठ 149
7. सं. अभिषेक कश्यप : अनामिका एक मूल्यांकन, पृष्ठ 159
8. अनामिका : दूबधान, पृष्ठ 70
9. वही।
10. अनामिका : कवि ने कहा (सार्वजनिक चौका) पृष्ठ 99
11. http://www.hindwi.org

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 286–289

'हलवाहे का बेटा' उपन्यास में चित्रित नारी जीवन के विभिन्न आयाम

नंदा. एम. नायर
शोध छात्रा, हिंदी विभाग, कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कोच्चिन–22, 682022

नारी प्रकृति की क्रियात्मक वरदान है। वह सृष्टि का अनुपम माध्यम है और जीवन की सृजनकर्ता है। नारी परिवार का अभिन्न हिस्सा है, वह परिवार का ऊर्जा है जो पूरे घर को प्रेम और ममता के सूत्र में बाँधती है। उसके बिना घर अधूरा है। उनका महत्व केवल घर–परिवार तक सीमित नहीं बल्कि पूरे समाज में उसका महत्व व्याप्त है। नारी समाज की आधारशिला है, समाज के विकास और उन्नति में उनकी भूमिका अत्यंत उल्लेखनीय है। वह माँ, पत्नी, बेटी, बहन इत्यादि रूप में समाज को अच्छा राह प्रदान करने में काबिल हैं। भारतीय नारी संकल्पना में नारी देवी–देवता के नाम से जाने जाते है। समाज ने उनके स्वाभाविक मूल्यों जैसे करुणा, प्यार, ममता, सहनशीलता, त्याग, समर्पण आदि को केंद्र में रखकर उन्हें भारतीय संस्कृति का अभिन्न हिस्सा बना दिया हैं। धीरे–धीरे समाज इन मूल्यों को भारतीय नारी संकल्पना के रूप में प्रस्तुत किया। समय बदलने के साथ–साथ पुरुष सत्ता समाज ने नारी को अपने अधीन में रखने का कार्य प्रारंभ किया। पुरुष केंद्रित समाज ने अपनी स्वार्थ की पूर्ति के लिए नारी को इन स्वाभाविक मूल्यों की ढांचे में नारी को जकड़ लिया। इसके फलस्वरूप नारी घर के चार दीवारों में बांध हुआ और नारी, अपने जीवन की फैसला लेने में हिचकने लगी। इसका प्रभाव हम साहित्य में भी देख सकते है। पौराणिक काल में साहित्यकारों ने नारी की जो शक्ति और वीरता को दर्शाया है, वह आदिकाल और मध्यकाल तक आते–आते नारी सौन्दर्य और मनोरंजन के रूप में बदल गया। लेकिन आधुनिक काल में नारी प्रतिक्रियात्मक और विद्रोहात्मक रूप प्रकट होने लगा। उन्होंने अपनी अस्मिता और अस्तित्व के प्रति प्रश्न पूछने लगा और अपनी खोए हुए अधिकार को पाने की लड़ाई शुरू किया। सदियों से उन्हें द्वारा भोगे तनाव, शोषण, पीड़ा, और ग्लानि के खिलाफ आवाज उठाने लगा।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का समय नारी को अपनी ताकत और क्षमता दिखने का माध्यम बनाया। उस समय अनेक नारियों ने सामाजिक बंधनों को तोड़कर देश की आजादी के लिए निकाल पड़ा। स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेकर उन्होंने एक नया इतिहास की रचना की जो आने वाले पीढ़ी को प्रेरणा देने में सक्षम हुआ। सच में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम नारी की प्रबल शक्ति और वीरता का सबूत है। तत्कालीन समय में अनेक रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में नारी की शक्ति, क्षमता, साहस और दक्षता आदि के संबंध में जिक्र किया।

बनारसी प्रसाद भोजपुरी हिन्दी साहित्य के जाने–माने साहित्यकार हैं। वह एक ऐसे लेखक थे जो

साहित्यकार के साथ–साथ स्वतंत्रता संग्राम की सेनानी, पत्रकार, समाज सुधारक और क्रांतिकारी नेता आदि के रूप में भी मशहूर हैं। उन्होंने अपनी रचनाएं स्वतंत्रता संग्राम के समय में लिखा हुआ था इसलिए उनमें तत्कालीन भारत के विभिन्न समस्याओं और घटनाओं को दर्शाया गया हैं। मुख्य घटनाओं के साथ ही मानव के संघर्षों और तनावों को भी अभिव्यक्त करने का कार्य भी उन्होंने की हैं। नारी के संबंध में उनकी रचना विशेष प्रभावशाली और क्रियात्मक थी। समाज में नारी की भूमिका के प्रति भोजपुरी का कथन इस प्रकार है : "यदि नारी पर किसी तरह का दोष मालूम होता है तो यह मानना चाहिए कि वह पुरूष जनित है, पुरूष ने अपने कुप्रभाव से नारी में दोष उत्पन्न किया है। शास्त्रों में नारी को अर्धांगिनी कहा गया है कि जिसका अर्थ है कि यदि मानव का आधा अंग कमजोर रहेगा तो मनुष्य का पूरा अंग समझते हुए उसका आदर करना सीखना चाहिए।"[1]

स्त्री जीवन से संबंधित भोजपुरी जी की रचना शैली अलग हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में स्त्री जीवन की त्रासदी के संबंध कुछ नहीं जिक्र किया है जो अनेक रचनाकारों ने सदियों से दोहराए गए हो। भोजपुरी जी ने पुरुष सत्ता समाज में नारी द्वारा भोगे कुंठा, पीड़ा, संघर्ष, ग्लानि आदि समस्याओं को छोड़कर एक प्रगतिशील और आधुनिक पहचान देकर उनकी जिम्मेदारी, जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण, आशा–अभिलाषा, आचार–विचार, आदि को प्रस्तुत किया हैं। उनका उपन्यास 'हलवाहे का बेटा' इसका उत्तम उदाहरण है। इस उपन्यास के दो स्त्री पात्रों के जरिए भोजपुरी जी ने स्त्रीवाद का एक नया अध्याय शुरू किया हैं। उपन्यास में मुख्य रूप से दो स्त्री पात्र आते हैं। एक है माँ मुन्ना और दूसरा मेरी। माँ मुन्ना उपन्यास के नायक कृष्ण बहादुर की माँ है। वह

जन्म से अंधी थी, लेकिन वह एक ज्ञानी औरत है, समाज और जिंदगी के प्रति उनका सोच बहुत गंभीर है। भारतीय नारी के समान समाज और परिवार के प्रति वह कर्तव्य निभाती है। अपने खानदान में सुधार एवं कल्याण लाने के लिए मुन्ना बहुत कुछ करते है। वह अपने पति के प्रति आभारी है, उसको पता है कि स्त्री और पुरुष परिवार का चालक है, परिवार को आगे बढ़ाने के लिए उन दोनों की भूमिका अत्यंत उल्लेखनीय हैं। एक के बिना परिवार का संतुलन मिट जाते हैं। उपन्यास में मुन्ना और रामरूप दोनों ने अपने परिवार के प्रति जिम्मेदार हैं। रामरूप ने अपनी पत्नी की बुद्धि और प्रज्ञा से बहुत प्रभावित थे। उसके मन में छिपे अनेक समस्याओं का समाधान मुन्ना द्वारा संभव हुआ। पुरुष सत्ता समाज में प्रचलित अनेक समस्याओं जैसे स्त्री–पुरुष समानता, स्त्री मुक्ति, सामाजिक और राजनीतिक अधिकार आदि के प्रति मुन्ना जो प्रश्न उठती है वह अत्यंत महत्वपूर्ण है। एक बार रामरूप ने मुन्ना से पूछा की स्त्री घर की स्वामिनी है वह पूजनीय है इसलिए उसको अधिकार की जरूरत क्या है? इसके उत्तर मुन्ना ऐसा दिया कि स्त्री को सिर्फ मूर्ति के रूप खामोश करने से कोई फायदा नहीं। लेकिन पुरुष सत्ता समाज ने उसके खिलाफ अनेक बंधनों की स्थापना करके उसे गुलाम बनने की चेष्टा की। लेकिन स्त्री पुरुष द्वारा निर्मित इन नियमों के खिलाफ आवाज उठाने से हिचकती हैं। इसके संबंध में इस प्रकार बताया है कि : "यही तो मैं कह रही हूँ कि पुरुषों ने स्त्रियों को बराबर पराधीन रखा। दुनिया को दिखलाने के लिए देवी की उपमा वे भले ही दे लें, लेकिन व्यवहार उनका बिल्कुल उल्टा है, नहीं तो एक स्त्री के मरने पर वे दूसरी शादी क्यों करते? वे स्त्री को तो सती बनने की सलाह देते हैं, लेकिन अपने एक ही जगह अनेक शादियां करने के लिए तैयार रहते हैं।"[2] पुरुष सत्ता समाज में स्त्री की वास्तविकता की ओर इस पंक्ति इशारा करती है। इससे यह स्पष्ट होता है की समाज में पुरुष द्वारा निर्मित नीतियाँ कितना घटिया हैं।

समाज में माँ की भूमिका के प्रति भी मुन्ना के जरिए उपन्यास चर्चा करती है। व्यक्ति का विकास घर से

शुरू होता है और उसके मन में सनातन और नैतिक मूल्यों की स्थापना करने के लिए घर का वातावरण जो भूमिका निभाते है वह अत्यंत उल्लेखनीय है। ऐसा माना जाता है कि माँ का दायित्व बच्चों को पैदा होने तक सीमित नहीं बल्कि यहाँ मुन्ना ऐसे बताती है कि बच्चे के चरित्र विकास और व्यक्ति विकास में माँ जितनी कोशिश करती है उतना श्रम समाज के द्वारा ही होना अनिवार्य है। व्यक्ति विकास में समाज का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। वह अपने बेटे के प्रति अपना कर्तव्य बिना किसी समझौता के निभाते हैं। उपन्यास में मुन्ना अपने बेटे कृष्ण बहादूर के प्रति ईमानदार है। अच्छे सोच–विचार देकर मुन्ना अपने बेटे को एक अच्छे इंसान और नागरिक बनाने में सफलता पाई है। उपन्यास में मुन्ना माँ के जरिए भोजपुरी जी ने भारतीय नारी की अदम्य दक्षता और प्रखर दार्शनिकता की ओर इशारा करती है

मुन्ना माँ की तरह 'मेरी' भी एक महत्वपूर्ण किरदार निभाती है जो आधुनिक हाव–भाव से जुड़ी हुए हो। अगर मुन्ना परंपरागत भारतीय नारी की दार्शनिक पक्ष का प्रतिबिंब हे तो मेरी आधुनिक नारी की प्रगतिशील व्यक्तित्व का प्रतीक है। मेरी उपन्यास के नायक कृष्ण बहादूर की दोस्त है। वह एक पढ़ी–लिखी धनी ईसाई नारी है। एक आधुनिक लड़की होने के कारण उसके सोच–विचार भारतीय तरीकों से बहुत आगे है। भारतीय परिवार और समाज के प्रति मेरी का ज्ञान बहुत बड़ा है। इसके संबंध में उपन्यास में इस प्रकार बताते है कि : "मेरी सिर्फ मुस्कुरा रही थी। वह जानती थी कि हिन्दू परिवार में स्त्री मेहमान के साथ पुरुष मेजबान कभी भी भोजन करने का साहस नहीं करता। हिन्दू परिवार ने पुरुष और स्त्री को दो अलग विभागों में बांट दिया है। दोनों एक दूसरे के साथ स्वतंत्र रूप से घुल–मिल नहीं करते। खासकर बड़े–बूढ़ों के सामने तो स्त्री–पुरुष खुलकर बातें भी नहीं कर सकते। जो इस प्रतिबंध को नहीं मानते, उन्हें बेहया, बेशरम, नालायक और बेहूदा की उपाधियां दी जाति हैं।"[3]

उपन्यास के कई जगहों पर मेरी की इस खुली सोच प्रतिफलित होते हैं। पढ़ी–लिखी होने का कारण मेरी अपनी जिंदगी सामान्य रूप से बिताना नहीं चाहती है। वह एक ऐसी नारी है जो अपने जीवन और समाज के प्रति आभारी है। किताबों से मिली ज्ञान को वह अपने जीवन और समाज में प्रयोग करना चाहती है। मानव के दिल में होने वाले प्रश्नों का समाधान मेरी द्वारा की है। अपनी प्रबल बुद्धि के जरिए मेरी समाज द्वारा निर्मित बहुत सारे रूढ़ियों को सुधारने का प्रयास भी करती है। मेरी के जरिए भोजपुरी जी ने नारीत्व की शक्ति और गरिमा को अभिव्यक्त करते हैं। उस समय समाज के नजर में स्त्री–पुरुष की मित्रता गलत ढंग से व्याख्यायित करता था। इसलिए उस काल में स्त्री और पुरुष, मित्र बनने से हिचकते थे। लेकिन इस बात पर मेरी का राय बहुत आगे है। उसके हिसाब से स्त्री–पुरुष के बीच मित्रता होना गलत कार्य नहीं है। दोनों समाज के सदस्य हैं। इस बात को स्पष्ट करते हुए उपन्यास के नायक कृष्ण बहादूर और मेरी के बीच में जो मित्रता जन्म होते है वह अत्यंत पवित्र और शुद्ध हैं। दोनों आपस में प्रेम और आदर करते हैं। लेकिन सामाजिक और वैयक्तिक समस्याओं के कारण कृष्ण बहादूर उस मित्रता को गलत रूप में अपनाया है, उस समय भी मेरी अपने दोस्त के खिलाफ न आवाज उठती है न उसको चरित्रहीन बनाती है। उस समय मेरी उसको सुधारकर उन दोनों के मित्रता और प्रेम के प्रति समझाती है। मेरी का कहना यह है कि : "गलतियां मनुष्य का स्वाभाविक गुण है और उसमें भी वासना के समक्ष मनुष्य का स्वाभाविक गुण है और उसमें भी वासना के समक्ष मनुष्य हद से ज्यादा कमजोर साबित हुआ है। स्त्रियां स्वतः चली जाति हैं। इन दो वर्गों में एक विचित्र पारस्परिक आकर्षण है। आकर्षण के बाद वासना

का उत्पन्न होना भी स्वाभाविक ही है। कुछ दिनों के लगातार आकर्षण के बाद यदि वासना उत्पन्न होती है, तो वह खतरनाक नहीं होती, लेकिन यदि वासना के लिए ही आकर्षण होती है, तो निसंदेह वह बहुत ही खतरनाक होता है।"[4] मेरी के विचार में मानव बाहरी आकर्षण से नहीं भीतरी आकर्षण से प्रभावित होना चाहिए। मनुष्य को अपनी कमजोरियाँ समझना चाहिए, जब वह अपने कमजोरियों से पता चला तब उसकी जिंदगी में उद्धार संभव हो सकते है। मानव मन की हल्के समस्याओं को सुधारकर मेरी अपनी मित्रता को यहाँ समर्थन करती है।

अन्य नारियों के समान मेरी इस बात पर भरोसा नहीं करती है कि प्रेम का अंतिम निशाना शादी है। समाज द्वारा निर्मित उस रूढ़ि को तोड़ने का प्रयास मेरी द्वारा हुई है। मेरी की राय में जीवन का आखिरी लक्ष्य शादीशुदा होकर घर–परिवार संभालने तक सीमित नहीं है। जीवन के प्रति और अपने सपनों के प्रति हम जिम्मेदार होना अत्यंत अनिवार्य है। उनके हिसाब से शादी एक प्रकार का बंधन है जिसके कारण नारी अपने कार्य क्षेत्र से दूर हो जाते हैं। पारिवारिक जिम्मेदारियों के कारण नारी अपने आप को भूल जाता है। वह हमेशा के लिए घर के चारदीवारों के अंदर फंस जाती है। नारी स्वतंत्रता और आत्म निर्भरता की ओर से इस संदर्भ इशारा करती है। मेरी यहाँ अपने आप को सुधारने के लिए सामाजिक और पारिवारिक बंधनों को दूर ही है। अंत में मेरी राजनीति के क्षेत्र में अपना कदम रखकर नारीत्व की नई कहानी शुरू करती हैं। मेरी यहाँ अपने आपको साँचे में ढालकर खुद को असीमित बनती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि नारी किसी से काम नहीं है। ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जिसमें अपना स्वामित्व स्थापित नहीं कर सके। नारी शक्ति, मुक्ति और सुधार का संदेश इससे संभव हो जाता हैं।

निष्कर्ष में कहे तो बनारसी प्रसाद भोजपुरी जी ने अपना उपन्यास 'हलवाहे का बेटा' तत्कालीन भारतीय परिप्रेक्ष्य में लिखा हुआ है। अपने उपन्यास में भोजपुरी जी स्वतंत्रता पूर्व भारत की अनेक समस्याओं को दर्शाने की कोशिश की हैं। लेकिन स्त्री को केंद्र में रखकर भोजपुरी जी ने इस उपन्यास में जो कुछ लिखा वह अत्यंत महत्वपूर्ण है। अन्य साहित्यकारों से सिवा भोजपुरी जी ने उपन्यास में नारी को संघर्षों के भीतर तड़पने वाली एक कठपुतली के रूप में नहीं बल्कि समाज के सामने निर्भयता पूर्व अपने दृष्टिकोण प्रस्तुत करने वाली शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। उपन्यास में मुन्ना माँ और मेरी दोनों दो पीढ़ी की नारी है, लेकिन वह अपने आप पर भरोसा करके अपने सपनों और जिम्मेदारियों को पूरा करने में सफलता प्राप्त करती हैं। प्रस्तुत उपन्यास के जरिए भोजपुरी जी स्त्री शक्ति और मुक्ति को रेखांकित करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. (सं) अरविन्द कुमार : बनारसी प्रसाद भोजपुरी रचनावली खंड–1, अभिधा प्रकाशन, नई दिल्ली–2019, पृ. सं–13
2. वही : पृ. सं–55
3. वही : पृ. सं–86–87
4. वही : पृ. सं–126

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 290-292

भाषा शिक्षा और ज्ञान प्रणाली

Jaishri Gupta
Ast Pro. Zoology, Shashidhar Panda Govt College, Sariya.

भूमिका :-

भाषा, शिक्षा और ज्ञान प्रणाली किसी भी देश के विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। भाषा न केवल संचार का माध्यम है, बल्कि यह संस्कृति, परंपरा और ज्ञान की धरोहर का वाहक भी है। भाषा से ही हम अपने जीवन के महत्वपूर्ण लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल होते हैं। भाषा शिक्षा और ज्ञान प्रणाली के माध्यम से हम अपनी सोच सामाजिक मूल्य एवं सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित एवं विस्तारित करते है।

भारत जैसे विशाल बहुभाषी और बहुसांस्कृतिक सभ्यता में भाषा शिक्षा की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है।

मातृभाषा में शिक्षा अवसर एवं चुनौतियां :-

मातृभाषा में शिक्षा को NEP-2020 में विशेष तौर पर शामिल किया गया है। बच्चों को मातृभाषा में अगर शिक्षा दी जाये तो अवधारणाओं को अच्छी तरह सक समझ सकते हैं। प्रारंभिक प्राथमिक शिक्षा में मातृभाषा में शिक्षण से बच्चों को विशेषकर भारत जैसे कृषि प्रधान देश में जहाँ की लगभग आधे से अधिक आबादी गाँवों में निवास करती है, और जहाँ आज भी उनकी मातृभाषा में पकड़ अच्छी है। UNESCO 2003 के एक सर्वे के अनुसार अनुसंधान से यह स्पष्ट हुआ है कि प्रांरभिक शिक्षा मातृभाषा में प्राप्त करने वाले छात्रों के अकादमिक प्रदर्शन में सुधार होता है और वह उच्च शिक्षा के भी अच्छे परिधाम प्राप्त करते हैं। मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करने से सीखने की प्रक्रिया सहज होती है, परन्तु इसके साथ ही चुनौतियाँ भी है।

आज के तेज रफ्तार की रसे मे वैश्विक भाषाओं और रोजगार हेतु विदेश प्रवास पर जाने एवं अपने देश में ही अन्य राज्यों में रोजगार हेतु जाने के कारण लोगों का राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं को सीखने की निजान आवश्यकता है जिसकी वजह से मातृभाषा का प्रभाव सीमित होते जाता है। अंग्रेजी और अन्य विदेशी भाषाओं की मांग के कारण मातृभाषा की प्राथमिकता कम होने जा रही है। Annamalai 2016 केन्द्र और राज्यों की भाषा नीतियों में अंसगति के कारण मातृभाषा में शिक्षक का समुचित क्रियान्वयन नही हो पाता।

NEP-2020 एवं भारतीय भाषाओं की भूमिका :-

NEP-2020 के अनुसार शिक्षा एंव सार्वजनिक सेवा है।

गुणवतापूर्ण शिक्षा तक पहुँच को प्रत्येक बच्चे का भौतिक अधिकार माना जाना चाहिए। बहुभाषिकता और अध्ययन अध्यापन के कार्य में भाषा की शक्ति को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। भारत एक बहुभाषी देश है।

हमारे अलग–अलग राज्यों की अपनर एक अलग भाषा एवं पहचान है। भारत की भाषाएं दुनिया में सबसे समृद्ध, सबसे वैज्ञानिक, सबसे सुंदर और सबसे अधिक अभिव्यंजक भाषा मे से है जिसमें प्राचीन और आधुनिक साहित्य (गद्य और कविता दोनों) के विशाल भंडार हैं। इन भाषा में लिखी गयी फिल्म, संगीत और साहित्य भारत की राष्ट्रीय पहचान और धरोहर है। सांस्कृतिक और राष्ट्रीय एकीकरण की दृष्टि से सभी युवा भारतीयों को अपने देश की भाषाओं के विशाल और समृद्ध भण्डार और इनके साहित्य के खजाने के बारे में जागरूक होना चाहिए। अतः यह कहा जा सकता है कि हमारी शिक्षा पद्धति में हमारी भारतीय भाषाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। **NEP-2020** में उच्च शिक्षा स्तर पर कम से कम एक भारतीय भाषा के अध्ययन को अनिवार्य करने का प्रावधान है।

भारतीय ज्ञान परंपरा एवं आधुनिक शिक्षा प्रणाली :-

भारत की एक प्राचीन और समृद्ध ज्ञान प्रणाली है, जो वैदिक काल से चली आ रही है यह ज्ञान परंपरा ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, कला, कौशल और अनुसंधान जैसे विविध क्षेत्रों में अपना प्रभाव रखती हैं। वेद, पुराण और अन्य विभिन्न प्रकार के वैदिक साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल श्रोत हैं। आयुर्वेद, खगोल विज्ञान, गणित और ज्योतिष जैसे विज्ञानों में भारत का योगदान सदियों से रहा है। भारतीय योग, दर्शन ध्यान और विभिन्न आध्यात्मिक परंपरा शामिल हैं, व्यक्ति और समाज में विकास के महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

भारतीय कला, साहित्य, संगीत, नृत्य और रंगमंच में विविधता और समृद्धि है जो हमारी प्राचीन ज्ञान परंपरा का हिस्सा है। हमारे प्राचीन ज्ञान के केन्द्र जैसे तक्षशिला, नालंदा और विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालयों में भारत को ज्ञान के केन्द्र के रूप में स्थापित किया है। भारतीय ज्ञान परंपरा में प्राचीन एवं आधुनिकता का सम्मिक्षण है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में भारतीय ज्ञान परंपरा के समन्वय के लिए विश्वविद्यालयों में ''संस्कृत वि. वि. ''वेशें का अध्ययन केन्द्र आदि स्थापित कियें है। इसके अतिरिक्त UNESCO की intangible Cultural Heritage List में संस्कृत पाठशालाएं भी शामिल हैं। (UNESCO 2019), भारतीय ज्ञान परंपरा को विज्ञान, प्रौद्योगिकी और आधुनिक मैनेजमेंट से जोड़ा जाना चाहिए। विभिन्न प्राचीन भारतीय भाषाओं जैसे संस्कृति, पाली, प्राक्त ग्रथों की डिजिटल आर्काविंग किया जा रहा है।

अपने देश की भाषाओं के विशाल और समृद्ध भण्डार और इनके साहित्य के खजाने के बारे में जागरूक होना चाहिए। अतः यह कहा जा सकता है कि हमारी शिक्षा पद्धति में हमारी भारतीय भाषाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। **NEP-2020** में उच्च शिक्षा स्तर पर कम से कम भारतीय भाषा के अध्ययन को अनिवार्य करने का प्रावधान है।

डिजिटल शिक्षा और भारतीय भाषाओं का भविष्य :-

आजकल प्रतिस्पर्धा का दौर चल रहा है। शिक्षा विभाग भी डिजिटल होता जा रहा है। डिजिटल शिक्षा युग में विभिन्न भारतीय भाषाओं मे ऑनलाईन प्लेटफॉर्म पर शिक्षण पाठ्यक्रम उपलब्ध कराये जा रहे है। जैसे DIKSHA, SWYAM और विभिन्न MOOCS आदि। भाषा संसाधन तकनीक जैसे NLP Chaltural Language मशीन ट्रांसलेशन स्पीक टू VDs स्ट और Proccesing भाषा शिक्षण एप्स में भारतीय भाषाओं को डिजिटलीकरण की दिशा में अग्रसर किया है। ओपन एजुकेशन रिसोर्सेस (OER) विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में OER सामग्री का निर्माण किया जाता है। शिक्षकों, विद्वानों और भाषा प्रेमियों से सामुदायिक अनुवाद और सामग्री निर्माण किया जाना चाहिए।

भाषा शिक्षा एवं ज्ञान प्रणाली भारत की बहुआयामी पहचान का केन्द्र बिन्दु है। मातृभाषा में शिक्षा से विद्यार्थियों का संज्ञानात्मक और सांस्कृतिक विकास होता है। **NEP-2020** में भाषा शिक्षा के महत्व को स्वीकारते हुए बहुभाषावाद को बढ़ावा दिया है, किन्तु क्रियान्वयन में चुनौतियाँ की अडिंग है। डिजिटल शिक्षा तथा भाषा संसाधन सख्ती के भविष्य की आशा है, जो भारतीय भाषाओं को वैश्विक मंच पर प्रतिष्ठित करेगी। साथ ही भारतीय ज्ञान परंपरा का आधुनिक शिक्षा प्रणाली से समन्वय संतुलित और सांसगिक शिक्षा सुनिश्चित करेगा।

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 293–297

हिन्दी साहित्य में स्त्री चिन्तन की समस्याएँ

प्रियंका मिश्रा
आनंद आर्ट्स कॉलेज सरदार पटेल यूनिवर्सिटी, आनंद, गुजरात।

हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री चिंतन मुख्य विषय है। साहित्य समाज का दर्पण है उस दर्पण को अपने लेखनीय द्वारा विमर्शी रूप से आईना दिखाने का बहुत ही अच्छा कार्य महिला लेखिकाओं ने किया है तथा पाठक को मनोरंजन के लिए उपयोगी तथा समाज के समस्याओं को सबके सामने रखती है तथा नारी को जागरूक करती है। तथा उन्होंने नारी को निरन्तर संघर्षरत देखा जिसके कारण आज की नारी जागरूक हो गई हैं, तथा वह पुरूष से किसी भी प्रकार तथा किसी भी क्षेत्र में कम नहीं है। हिन्दी कथा साहित्य में विविध स्त्री विमर्श की समस्याएँ है। नारीवाद शब्द से 1910 तक समाज अछूता था सन् 1913 में पहली बार नारी शब्द का प्रयोग किया गया नारीवाद से अभिप्राय है।

पुरूषों की पुरूष प्रधान वाले मनोवृत्ति को परिवर्तित करना रहा है। डॉ0 बच्चन सिंह ने अभिव्यक्त किया है कि स्त्रीवाद स्त्रियों के दमन के विविध रूपों का अध्ययन करता है और दमन से उन्हें मुक्त कराने की पहल करता है, यह स्त्री की वैयक्तिकत राजनीतिक एवं दार्शनिक समस्याओं से जुड़ा हुआ है।[1]

बच्चन सिंह ने अपने उपरोक्त कथन के माध्यम से यह दर्शाने का प्रयत्न किया है कि शोषण उनका अनेक स्तरों पर होता है तथा शिक्षा के द्वारा उन समस्याओं से नारी अपने आप को सशक्त होकर तमाम समस्याओं से निजात पाती है। तथा उन समस्याओं ने नारी को चिन्तन के लिए विवश किया है।

प्रश्न जहां शोषण का होती है वहां चिन्तन होना अति आवश्यक हो जाता है। नारी अस्मिता की अपनी–अलग पहचान है। अस्मिता का अर्थ खुद की पहचान जो की पिता, पति तथा बेटा से ना जुड़ा हो तथा महिलाओं ने अपना पहचान साहित्य के क्षेत्र में बनाया है। जैसे मृदुला गर्ग ममता कालिया, मेहरूनिशा, परवेज, कमल कुमार मालती जोशी, मैत्रेयी पुष्पा, कृष्णा अग्निहोत्री मन्नू भण्डारी इत्यादि लेखिकाओं ने अपने शोषणकारी स्थिति तथा परिस्थितियों से जूझते हुए तथा अनेक समस्याओं तथा संघर्षों का सामना करते हुए साहित्य में अपना एक मुख्य पहचान कायम किया है। जोकि अपने परिवारों से संघर्षरत होते हुए देश और विदेशों में अपनी प्रसिद्धि हासिल की है। जहां तक पुरूष को तो सारी सुविधायें उपलब्ध होती है। अगर वह कहीं भी विशेष है तो उसे हर कदम पर सुविधायें उपलब्ध होता है। इसी परिपेक्ष्य में आधुनिक नारी 47 वर्षों के भीतर अनेक क्षेत्रो में अपनी

स्वतंत्र पहचान बनाने के लिए छटपटा रही है। इस बदलती स्त्री को महिला कथाकारों ने बाखूबी रेखांकित किया है। उसकी छटपटाहट पूरे तीखेपन के साथ व्यक्त हुई।"[2] नारी को अपनी पहचान के लिए इधर–उधर भटकना पड़ता है। क्यों ना भट्के क्योंकि उसका विरोध करने वाले घर समाज परिवार लोग परम्परा संस्कार सभी उसका विरोध करते उसके बावजूद भी वह अपना पहचान कायम की है। यह अपने आप में पुरूष समाज के लिए चुनौति एवं चिन्तन का विषय है। जहां तक नारी आर्थिक स्तर पर पुरूषों से आगे हैं।

आधुनिक समय में क्योंकि वह सशक्त रहना चाहती हैं किसी के सामने झुकना उन्हें अच्छा नहीं लगता तथा उनके शिक्षा का तौहीन हो अगर वह सभी के सामने आर्थिक स्तर पर झुकती रहेगी तो समाज उन्हें जीने नहीं देगा। इसी आर्थिक समस्या को नासिरा शर्मा की कहानी दहलीज की नायिका पात्र अपने दादी से कहती है कि "दादी मैं उन पर बोझ नहीं बनूंगी टयूशन करके फीस का पैसा निकाल लूंगी आप की बात अब्बू टालते नहीं मेरी अच्छी दादी"[3] नासिरा शर्मा की नायिका पात्र जो कि अभी छोटी बच्ची है। उसके पिता की आर्थिक स्थिति ठिक न होने को दर्शाता है। जिससे यह मालूम होता है कि वह अपने पिता के आर्थिक कमजोरी को कैसे दूर करने की कोशिश करती है तथा अपने आप को कैसे शिक्षा से जोड़े रखने का रास्ता ढूंढती है। उपरोक्त कथन आधुनिक नारी को पुरूषों का आर्थिक रूप से मदद को दर्शाता है तथा अपनी शिक्षा में आयी रूकावट को कैसे दूर करती है। उपरोक्त कथन महिला पर पुरूषों द्वारा लगाये जाने वाले पाबन्द एक तरीके से अपनी आर्थिक अवरूद्धता को दर्शाता है। अतः इससे स्पष्ट होता है कि नारी को शिक्षित तथा जागरूक होना अति आवश्यक है तथा पुरूष द्वारा शिक्षा का विरोध नारी के लिए चुनौति तथा चिन्तनीय विषय है हम नारी को सही शिक्षा देने के पहल को उद्घाटित करना मेरा दायित्व है।

परम्परागत रूप से नारी के लिए परम्परायें, संस्कार, धर्म, विवाह, जाति–पाति, भेद–भाव यह सब नारी संघर्ष तथा शोषण को उद्घाटित करने का माध्यम तथा साधन है। नासिरा शर्मा की कहानी दहलीज के माध्यम से परम्परायें नारी के जीवन की सबसे बड़ी चिन्ता का विषय है। और प्रश्न भी व्यक्ति स्वतंत्र पैदा होता है लेकिन नारी के ऊपर परम्परायें लादी जाति है पर पुरुष अपने इच्छाओं की पूर्ति स्वतंत्र रूप से करता है। उनके ऊपर परम्परायें हावी नहीं हो सकती है। वह जो चाहे वह कर सकता है। पर नारी के ऊपर समाज परिवार सब हावी होने लगते हैं। जिस मिट्टी में अंकुर फोड़ती है वहाँ से निकाल उसे जिस आंगन में लगा दो पूरा दरख्त बन जाती है।"[4] यहाँ पर औरत को जड़ के रूप में चित्रित किया गया है। क्योंकि कम पढ़ी लिखी नारी के लिए चिन्ता का विषय है। उसे परिवार तक ही सीमित रह जाना पड़ता है। उपरोक्त कथन प्रश्न चिन्ह तथा चिन्ता का विषय है। नारी के लिए परम्परायें उन पर हावी होगा तब यह सिर्फ जड़ और शाखा ही रहेगी वह विदेशो या देश में प्रसिद्धि तथा प्रेरणा की श्रोत न रह सकेगी। अतः उन्हें परम्पराओं से स्वतंत्र होकर प्रेरणा का स्रोत बनना है। तथा पुरूष के सामने उनका प्रवास्रोत करें।

सामाजिक स्तर पर नारी की यदि चाश्या किया जाये तो उसे पुरूषों के समकक्ष नहीं पाया जा सकता है। यह भी हमारे समाज में आधुनिक नारी की समस्याएँ हैं। जिसे इस कथन के माध्यम से अभिव्यक्त किया जा

सकता है। ''स्त्री समुदाय की असमानता पूर्ण सामाजिक स्थिति का मूल कारण स्त्री शरीर की प्राकृतिक दुर्बलता में निहित है। स्त्रियाँ स्वाभाविक और प्राकृतिक तौर पर पारिवारिक जिम्मेदारियों प्रजनन और शिशुपालन आदि के लिए ही बनी है और कभी वे सामाजिक तौर पर पुरूषों के समकक्ष नहीं हो सकती।''[5] उपरोक्त कथन समाज तथा नारी के लिए सार्थक सिद्ध नहीं होती है क्योंकि आधुनिक नारी पुरूषों के बराबरी में है बस यह दैहिक स्तर पर नहीं है पर आधुनिक पुरूष प्राकृतिक रूप से पुरूष होने के साथ साथ अपने लिंग में परिवर्तन करके वह स्त्री बन सकता है। उपरोक्त कथन महिला के लिए चिन्तन का विषय है।

'पुरूष महिला बन कर जो महिलाओं की सुविधा प्राप्त है या आरक्षण प्राप्त है वह भी अपनाने के लिए तैयार बैठा है। जहां तक यह नारी वाद की गम्भीर समस्या तथा महिला के लिए चुनौति प्रश्न इत्यादि।

स्त्री के परिपेक्ष्य में प्रभा खेतान की पुस्तक 'बाजार' के बीच बाजार के खिलाफ ने भूमंडलीकरण और स्त्रियों पर हावी प्रभाव का आकलन बड़ी तनमयता से करती है। समाज में शोषणकारी शक्तियों का सामना नारीवाद कैसे कर रहा है ? या फिर बाजार के सम्मुख स्त्री किस हाल में खड़ी है?

भूमण्डलीकरण का प्रभाव स्त्री पर किस तरह पड़ रहा है। यह प्रभाव केवल निषेधक है या फिर स्त्री भूमण्डलीकरण से कोई ताक भी पा रही है?

उपरोक्त समस्याएं नारी के चिन्तन का विषय है। लेखिका के कथन के मतानुसार ''पूंजीवादी पढ़े–लिखे समाजों में स्त्री पर भूमण्डलीकरण का बहुआयामी असर पड़ा है। नागरिक सामज में स्त्री की भागीदारी भले ही बढ़ी हो पर राजनीतिक समाज में यानी वास्तविक नीति निर्माण प्रक्रिया में वह अनुपस्थित है।''[6]

यहां पर भूमण्डलीकरण में स्त्रियों को ही बाजार वाद का विषय क्यों बनाया जाता है। पुरूष को भी बनाया जा सकता है। प्रकृति रूप से वह बाजार के अयोग्य है। वैसे हमारे समाज ने उन्हें भी बाजारवाद में वस्तु की तरह अपनाने तथा इस्तेमाल करना प्रारम्भ कर दिया है। इंसान वस्तु बन गया है। समाज के सामने उसका क्रय विक्रय होने लगा है। जिसके समस्याओं को साहित्य ने उभारा है। प्रेम के सन्दर्भ में मन्नु भंडारी की कहानी यही सच है के माध्यम से अंत द्वंदः की अभिव्यक्ति को चित्रित तथा परिभाषित किया गया है।

''अट्ठारह वर्ष की आयु में किया हुआ प्यार भी कोई प्यार होता है भला। निरा बचपना होता है, महज पागलपन। उसमें आवेश रहता है, पर स्थायित्व नहीं गति रहती है पर गहराई नहीं। जिस वेग से वह आरम्भ होता है जरा–सा झटका लगने पर उसी वेग से टूट भी जाता है।''[7] उपरोक्त कथन में प्यार का सही उम्र 20 वर्ष नहीं है जहां तक मेरा मानना है कि शिक्षा प्राप्ति और जीविकोपार्जन आर्थिक रूप से मजबूत होने का टाईम है। 20 वर्ष में व्यक्ति की सही समझ नहीं होती है। इश्क ऐसा एहसास ही है जो एक बार पसन्द आये तो वहीं जिन्दगी चाहे उम्र कोई भी हो अगर इस कहानी की नायिका दो इंसानों के बीच फंसी है तो कही न कही लेखिका ने स्त्री की चरित्र पर उंगली उठाती है। क्योंकि एक से ज्यादा 10 लोगों के साथ मेरा दिमाग मैच हो रहा है तो यह शायद औचारिकता मात्र लगता है। व्यक्ति आत्मिक रूप से सिर्फ एक के पास समर्पित हो सकता है। दो तीन चार या उससे अधिक में फसता है। तो उसके संस्कार में और परिवरिश में वैश्यालय की बू आती है। जहां

तक यह समाज और व्यक्ति के लिए चिंतन का प्रश्न उठाता है। वह उपहास में जीवन यापन करती है।

आधुनिक समाज में बलात्कार जैसी घटनाएं आम हो गई है। ''बलात्कार इतना बड़ा लांछन है कि स्त्री इसे ऊपर लगा ऐसा धब्बा मान लेती है जिसके दाग अमिट है। शुक्र है ऐसे मामलों में अब हम थोड़ी संवेदनशीलता का परिचय देना सीख रहे हैं। अखबारों ने पिछले दिनों घटित बलात्कारों की रिपोटिंग में इज्जत लूटना अस्मत और आवरू खोने जैसे शब्दों से परहेज किया।''[8] पर आधुनिक युग में इतना ज्यादा कानून बनने के बाद भी अत्यधिक रूप से बलात्कार हो रहा है। उपरोक्त कथन में शब्द सम्बोधन को चिन्ता का विषय बनाया गया है। जो आज के समय में बलात्कार जैसा कुकर्म इतना तीव्रगति से हो रहा है कि इसे अपने शब्दों में लेखनीय के द्वारा अभिव्यक्त करना घृणा सा महसूस करवा रहा है। यह हमारे समाज में स्त्रियों के लिए चिन्ता का विषय है। प्रश्न और चुनौतिया हैं।

हिन्दी साहित्य में स्त्री चिन्तन बहुत गम्भीर विषय तथा ज्वलन्त विषय के आधुनिक समय का गम्भीर समरूा है। आज व्यक्तिवादी भौतिकवादी चिन्तन ने स्त्री–पुरुष दोनों के अहं को इतना उग्र व प्रखर बना दिया है कि व्यक्ति शनैः अमानवीय होता जा रहा है। आपका बंटी, उपन्यास की नायिका पात्रा शकुन की मन की वेदना की बेचैनी इस कथन के माध्य से स्पष्ट हौ कि ''सच पूछा जाये तो अजय के साथ न रह पाने का दंश नहीं यह वरन अजय को हरा पाने की चुभन है। यह जो उसे उठते–बैठते सताती रहती है।''[9] इस कथन में माता–पिता और पुत्र के त्रिकोणात्मक संबंधों की परस्पर टकराहट जितनी महत्वपूर्ण है।

त्रिकोणात्मक प्रेम आधुनिक समाज की गम्भीर समस्या है बालक के जीवन चर्या तथा उसका भरण पोषण तथा मातृत्व व पितृसत्तात्मक समाज से बच्चा वंचित हो जाता है और उसकी शिक्षा तथा व्यक्तित्व पर गम्भीर प्रभाव पड़ता है। समाज के लिए चिन्तन का विषय है। उपरोक्त कथन माता–पिता के असंस्कार तथा विकृत मानसिकता को उजागर करती है। उपरोक्त उपन्यास सन्देश देती है पर उपरोक्त कथन आधुनिक युग के स्त्रीयों के लिए चिन्तन का विषय है।

''स्त्रियों की रचनाओं में अक्सर निजी जीवन के अनुभवों व रोजमर्रा की गृहस्थी की बातों की भरमार होती है। वे परिवार से उपजी परिस्थितियों व सुख–दुख के एक साझे प्लेट पर खड़ी है। इसलिये प्रायः इनकी रचनाओं में एक साझा अनुभव परिलक्षित होती है।

उपरोक्त कथन में स्त्री शोषण को दर्शाया गया है। ब्राह्मणवादी सोच रखने वाले जो पैदा हुए हैं उनका भ्रम अतिक्रमण प्रेमचन्द्र जी ने किया है। प्रश्न बनता है कि ऊँची जाति किसी भी धर्म जाति की महिलाओं को बुरी दृष्टि से देखने से पहले अपनी जाति और उसकी श्रेष्ठता को देखना आवश्यक है। फिर हम निगाह डाले किसी पर जहां तक मेरा मानना है ब्राह्मण क्षत्रिय ही सर्वाधिक स्त्री शोषण, दलित शोषण अन्य गम्भीर उत्पीड़न को करने में सर्वप्रथम है। हिन्दी साहित्य में दलित विमर्श सर्वाधिक अत्याचार से सहन करके सृजन में सम्मिलित है। उनका हर जगह शोषित किया जाता है। आज के समाज की गम्भीर समस्या तथा चुनौतियाँ हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. बच्चन सिंह– आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीच, पृ0 141
2. विमल सहाबुद्ध– हिन्दी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक चित्रण, पृ0 22
3. नासिरा शर्मा की चुनिन्दा कहानियाँ, नासिरा शर्मा, पृ0 96
4. नासिरा शर्मा की चुनिन्दा कहानियाँ, नासिरा शर्मा, पृ0 103
5. विनय कुमार पाठक, स्त्री विमर्श, पुरूष रचना धर्मिता के विशेष संदर्भ में, पृ0 72
6. देह धरे को दण्ड, प्रीति चौधरी, पृ0 88
7. यही सच है, कहानी मन्नू भंडारी, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण, 2004, पृ0 139
8. देह धरे को दण्ड, प्रीति चौधरी, पृ0 21
9. ममता कालिया का कथा–साहित्य कथ्य और शिल्प, डॉ0 रमेश बी0 बड़गावे, पृ0 91

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 298-301

हिन्दी साहित्य : आदिवासी विमर्श एवं अवधारणा

डॉ. पूनम कुमारी
सहायक प्रोफेसर (हिंदी विभाग), राजकीय महाविद्यालय रिठौज, गुरूग्राम।

शोध सारांश :–

भारतीय भौगोलिक व सांस्कृतिक दृष्टि से एक विविधता संपन्न देश है। अनेकानेक सभ्यता और संस्कृति इस देश के आँचल में खिली व पली है। कहीं सनातन व सदाजीवी संस्कृति का शौर्य बिखर रहा है तो कहीं विनाश की कगार पर खड़ी मरनासन्न आदिवासी जनजातियाँ। प्रकृति की गोद में पलने वाले आदिवासी समुदाय की अपनी अलग जीवन शैली, परम्परा, धर्म, भाषा एवं सामाजिक संरचना है। विकास की मूलधारा से अछूते आदिवासी समुदाय को ब्रिटिश काल से लेकर स्वतन्त्रता व उसके बाद लगातार हाशिए पर धकेला गया है। जल, जमीन व जंगल की लड़ाई के साथ ये आदिवासी समुदाय अपनी अस्मिता की लड़ाई भी लड़ रहा है। अस्मिता आघातों के उपजा आदिवासी विमर्श आज साहित्य संदर्भो में उतना ही विचारणीय और विशेष है, जितना दलित या स्त्री विमर्श।

बीज शब्द :– आदिवासी विमर्श, अनुसूचित जनजाति, हाशिए, अस्मिता, मूलधारा, सनातन, मरनासन्न आदि।

प्रस्तावना :–

आदिवासी समुदाय वैश्विक धरातल पर अपनी एक अलग पहचान रखता है। संसार में भारत भूमि पर अनेक आदिवासी समुदाय सभ्यता दृष्टत्व्य होती है जो अफ्रीका के बाद दूसरे स्थान पर है। विश्व में लगभग 3 अरब 70 करोड़ की आबादी वाले इन आदिवासी समुदायों को विद्वानों ने अलग–2 नाम दिए है। पाश्चात्य लेखकों के अनुसार, ''आदिवासी शब्द का अर्थ सामान्यतः भौगोलिक दृष्टि से विलग अथवा अर्द्ध–विलग एक नृवंशी समूह है जिन्हें एक निश्चित सीमा की परिधि में पहचाना जाता है और जिसकी सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक परम्पराएं तथा प्रथाएँ भिन्न है।''[1] सन् 1931 की जनगणना के अध्यक्ष जे0 एच0 हट्न ने इन समूहों को 'आदिम जाति (Primitive Tribe) का नाम दिया। एल्विन (Elvin) ने सभ्यता का सबसे मौलिक प्रतिनिधि मानते हुए इनके लिए 'आदिनिवासी' अथवा 'आदिवासी (Aboriginals) शब्द का प्रयोग है।.....अनेक मानवशास्त्रीयों ने इनके लिए 'घुमन्तू आदिवासी (Wondering Tribe) तथा 'पहाड़ी आदिवासी' (Hill Tribe) जैसे शब्दों का भी प्रयोग किया है।[2]

साहित्य में 'विमर्श' से तात्पर्य है कि समाज के किसी विशिष्ट विषय पर गहराई से चिंतन–मनन, सोच–विचार व चर्चा–परिचर्चा करते हुए विषय के विभिन्न पक्षों को भिन्न–2 दृष्टिकोणों से देखते हुए उन्हें उजागर करना है। नब्बे के दशक में हिन्दी साहित्य में मुख्यतः दो विमर्श सामने आते हैं–दलित विमर्श और स्त्री

विमर्श। ये दोनों ही विमर्श राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी उपस्थिति दर्ज करवाते है। दलन, शोषण, पीड़ा और अधिकारों से वंचित ये विमर्श आज भी चर्चा–परिचर्चा का विषय है। विमर्श की दुनिया में ''आदिवासी विमर्श'' सबसे नया विमर्श है।

लगभग पिछले ढाई–तीन दशकों में वैश्वीकरण, पूँजीवाद, उदारीकरण व भौतिकवादी प्रक्रियाओं के प्रभाव स्वरूप आदिवासी जन जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। जल, जमीन और जंगल पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बढते प्रभाव ने आदिवासी जीवन को अभावमय बना दिया है। पारम्परिक अधिकारों के हनन से एक ओर जहाँ ये समुदाय अपनी सांस्कृतिक व भाषायी पहचान खो रहे है, वही इनकी अस्मिता व अस्तित्व को भी विकट खतरा बना हुआ है। वस्तुतः हिन्दी साहित्य में आदिवासी विमर्श की एक लम्बी परम्परा अनादि काल से देखने को मिलती है। 'रामायण' में केवट 'मल्लाह' तथा शबरी व महाभारत में सुतपुत्र कर्ण व एकलव्य आदिवासी परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

हिन्दी साहित्य जगत के प्रतिष्ठित साहित्यकारों ने भी आदिवासी समाज को मुख्यधारा से अलग रखा। उपन्यास व कहानी विद्या के सम्राट प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास व कहानियों में आदिवासी वर्ग पर केवल इतनी ही दया दृष्टि दिखाई कि समाज में उनके होने का अहसास आंशिक मात्र है। 'गोदान' में जिस 'वन कन्या' का वर्णन प्रेमचन्द ने किया उसमें उस पात्र का नाम तक भी नहीं लिया गया। यद्यपि 'सद्गति' कहानी अवश्य ब्राह्मणवाद के वर्चस्व के विरोध में दलित व आदिवासी समुदाय की एकता को दिखाती है। हिन्दी उपन्यास जगत में सर्वप्रथम आदिवासी समाज को परिचित करवाने का कार्य 'रेणु' जी ने अपने आंचलिक उपन्यास 'मैला आंचल' में किया है। यह उपन्यास संथालों की जमीनों हकों की लूट, उनके प्रति अन्यास और संघर्षो की वेदना का चित्रण तो करता है किन्तु उपन्यासकार का मूल उद्देश्य स्वच्छंद प्रेम की घोटुल–प्रथा पर ही रहा है। इस श्रेणी में महाश्वेता देवी ने पहली बार आदिवासी समाज के नक्सलवादी रूप को एक अलग व नई छवि के साथ सशक्त रूप में हिन्दी साहित्य में प्रवेश दिलाया है। जंगली व बर्बर समझने जाने वाले इस वर्ग की नक्सली हिंसा को इन्होंने एक लम्बी अन्यायपरक परिपाटी की उपज माना है। इन्हीं के सहानुभूति सहयोग से आदिवासी जन चेतना के महानायक बिरसा मुण्डा भी साहित्य आलोक में आए। हिन्दी साहित्य जगत के प्रमुख साहित्यकारों प्रेमचन्द व फणीश्वरनाथ 'रेणु' के द्वारा रचित साहित्य भले ही आदिवासी समाज का साहित्य न हो किन्तु महाजनी जैसी प्रथाओं के विरोध और विद्रोह का स्वर अवश्य अनुगुंजित हुआ है।

साहित्य बाजारवाद व उपनिवेशवाद से दूर समाज का आईना है। फिर कैसे समाज का एक हिस्सा विकास से दूर उपेक्षित रहा? कैसे प्रेमचन्द व उनकी परम्परा वाहक साहित्यकारों ने आदिवासी समाज को हशिये पर धकेल दिया? अतः उपेक्षा से पूर्ण अभिशप्त जीवन को पूर्णता में परिवर्तित करने के लिए स्वयं आदिवासी लेखकों को साहित्य दंगल में प्रवेश करना पड़ा है। इस संदर्भ में हरिराम मीणा ने कहा है–''हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठित लेखकों से हमें अपेक्षा थी कि वे स्त्री, दलित, अल्पसंख्यक, आदिवासी एवं हाशिए पर डाली जा रही अन्य अस्मिताओं को अपेक्षित अभिव्यक्ति देते वह अपेक्षा पूरी नहीं हुई। यही वजह है कि इन अस्मिताओं से जुड़े लेखकों को एक मुहिम के तौर पर हिन्दी साहित्य में हस्तक्षेप करना पड़ा और अपनी पहचान बनाने के लिए जूझना पड़ा।''[3]

साहित्य जगत में आदिवासी विमर्श की दस्तक 1980 में सुनाई देती है। नब्बे के दशक में उदारीकरण

व भूमण्डलीकरण के प्रभाव स्वरूप आदिवासी जन–जीवन को उसकी मूल प्रकृति से दूर करने का षडयन्त्र रचा गया। अतः प्रतिशोध प्रक्रिया में इन लोगों के हृदय से अस्मिता व अस्तित्व रक्षण के लिए जो रचनात्मक ऊर्जा निकली वह आदिवासी विमर्श का आधार बनी है। कविता, उपन्यास व कहानियों के माध्यम से इन आदिवासी लेखकों ने अपनी उजड़ती संस्कृति के रक्षण आवाज उठाई है। संथाली कवयित्री निर्मला पुतुल ने अपनी कविताओं के माध्यम से आदिवासी समाज की संघर्ष कथा, विस्थापन व नारी की संघर्ष वेदना को सार्थक स्वर दिए हैं :–

''उस देश में ब्याहना
जहाँ ईश्वर कम आदमी ज्यादा रहते हों
बकरी और शेर
एक घाट पानी पीते हो जहाँ
वहीं ब्याहना मुझे।''[4]

गोंडी समाज से संबंधित भुजंग मेश्राम ने अपनी कविताओं में षडयन्त्र रचते एन.जी.ओ. के देवताओं तथा छल–छद्म करते ईसाई पादरियों की घृणित सहानुभूति का पर्दापाश किया है। इनकी कविताओं 'प्रतिशोध' और स्वाभिमान के स्वर से परिपूर्ण है–

''वे आए–लोहे की चोंचो वाले बुलडोजर लिए,
हमारी झोपड़ियों को रौंदते हुए,
हमारे खेतों पर कंटीले तार बिछाते हुए।
हम चिल्लाए
धरती हमारी माँ है,
नदी हमारा रक्त है,
जंगल हमारी सांसें है।''[5]

भारत भूमि पर अनादि काल से जंगलों में जीवनयापन करने वाले आदिवासियों को ब्रिटिश उपनिवेशवाद द्वारा अनुसूचित जनजाति वर्ग में रखा गया। परिणामस्वरूप आदिवासी समाज ने अपनी मूल अस्मिता को खो दिया। इनके मतानुसार आदिवासी समाज आर्यो से पूर्व का मानव समूह है। इस संदर्भ में महात्मा ज्योतिबा फूले जी ने भील, गोंड व करेली आदि के लिए मार्मिक वचन कहे है :–

'गोंड भील क्षेत्री ये पूर्व स्वामी
पीछे आए वही इरानी
शूर, भील मछुवारे मारे गए रारों में
ये गए हकाले जंगलों गिरिवनों में।''[6]

रणेन्द्र का उपन्यास 'ग्लोबल गाँव का देवता' भी आदिवासी समाज के विस्थापन के संघर्षो की जीती–जागती तस्वीर खींचता है–''हम वैदिक काल सप्तसिंधु इलाके से लगातार पीछे हटते हुए आजमगढ़, शाहबाद, आरा, गया, राजगीर से होते इस वन–प्रांतर कीकट, पौंड्रिक, कोकराह या चुटिया नागपुर पहुँचे। हजार सालों से कितने पंडवों, कितने सिंगबोंगा ने कितनी–कितनी बार हमारा विनाश किया, कितने गढ़ ध्वस्त किए,

उसकी कोई गणना किसी इतिहास में दर्ज नहीं है।

केवल लोककथाओं और मिथकों में हम जिंदा है।.....लेकिन बीसवीं सदी की द्वार हमारी असुर जाति की अपने पूरे इतिहास से सबसे बड़ी हार थी। इस बार कथा–कहानी वाले सिंगाबोंगा ने नहीं, टाटा जैसी कंपनियों ने हमारा नाश किया।"[7]

उपन्यास के साथ कहानी विद्या भी अपनी दखल से आदिवासी विमर्श को साहित्य क्षेत्र में हस्तक्षेप करने का प्रयास तो किया किन्तु उपन्यास भी भांति सफल नहीं हो पाई है।

निष्कर्ष :-

उपरोक्त अध्ययन के बाद यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी समाज की आदिम जाति होने के बाद भी साहित्य के क्षेत्र में एक नया विमर्श है जो आदिवासी साहित्यकारों द्वारा रचित है। सदियों से हाशियें पर धकेले गए इस समाज की अर्न्तव्यथा की अनुगुंज इनके रचित रचनाओं में झलकती है। विद्रोह, चेतना, संघर्ष, स्वाभिमान अस्मिता, अस्तित्व व विस्थापन आदि विषय इसके केन्द्र में हैं। आदिवासी विमर्श आदिवासी समाज के आत्म रोष से उपजी अस्तित्व रक्षण की खोज है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. एस.एल. दोषी, पी.सी. जैन, भारतीय समाज संरचना और परिवर्तन, पृष्ठ संख्या–151
2. आचार्य (डॉ0) गोपाल कृष्ण अग्रवाल, समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, पृष्ठ संख्या–11–12
3. हिन्दी साहित्य में आदिवासी–विमर्श, सार्थक संवाद, 2 सितम्बर, 2018
4. निर्मला पुतुल, नगाड़े की तरह बजते शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, संस्करणः 2005, पृष्ठ संख्या–49
5. भुजंग मेश्राम, विस्थापन, पृ0 संख्या 27, विद्रोही प्रकाशन, 2004 नागपुर
6. रमणिका गुप्ता (सम्पादक), आदिवासी कौन, राधाकृष्ण पेपर बैंक, नई दिल्ली, संस्करण 2022, पृ0 संख्या–27
7. रणेन्द्र, ग्लोबल गांव का देवता, पृ0 संख्या–83

Email: anujdgrt1987@gmail.com

Mobile No. 9050560954

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 302-306

Tale of Shashi Deshpande & Alice Walker on Feminism in their works

Priya
Research Scholar, Om Sterling Global University.

Abstract :-

This paper tries to critically analyse the works of Shashi Deshpande, who is a famous Indian English writer, and Alice Walker, an Afro-American writer and view them in the light of feminist perspective. Women since ancient times have been discussed and portrayed by different writers according to their thoughts, the culture they were born in and the time period in which they existed. Shakespeare's portrayal of women is quite complex one who challenges the traditional roles and also presents the expectations of that time. Alexander Pope born some years later comments on societal norms that restrict women as well as ridicules them for being conniving, illogical and presents them as inferior to men. Writers of different ages, times presents women in different shades, shapes, colors and sizes. This paper tries to examine the portrayal of women by two women writers who are acknowledged, & widely read & celebrated among literary circles.

Keywords : Shashi Deshpande, Feminism, Alice Walker, Shakespeare, Women, Women Portrayal.

Introduction :

Literature is said to be the mirror of the society, capturing the issues prevalent in which it is written. It is a social commentary which is not seperate from society. In this view, it will would not be wrong to say or put forth that writers observe the society, societal norms, beliefs & all these things shapes their writings. Shashi Deshpande an Indian writer is a famous novelist who won Sahitya Academy award for her work "That Long Silence". In it she portrays the life of Indian women through protagonist. In her varied works it is found that the portrayal of characters has been beautifully and very innovatively done. Alice Walker on the other hand is an Afro-American writer, who is also quite realist in the presentation of things in her works. The portrayal of different characters in not fictitious one but is deeply rooted in reality. She too takes up the themes related to the society and on that plain she draws

the lively characters. Walker for her work "The Color Purple" won Pulitzer Prize in which the theme, characterization, plot construction, style everything was spic and spank but what made the novel a masterpiece was the beautiful and accurate presentation of woman's life.

Ms Shashi born in 1938 saw the plight of women in her house, neighbours & other adjacent women who came in her contact. She drew the intricate family relationship offering a lens through which one can peep inside the complex roles which a woman in the society as well as at home is expected to play. In her thirteen novels their is rigorous presentation of internal struggles and societal constraints faced by young, educated women who are trapped in the dilemma of leading a traditional role or to seek an independent life.

Walker born 6 years later is an Afro American social activist, a novelist and poet. They both share same age but fight for same things. Black women of her community are too suppressed and down trodden, they do not have their own rights & identity, thus Alice, being an educated individual raises voice for them. She actively participates in different movements and expresses her deepest feelings in her works.

Feminist Point of View of Shashi Deshpande :

Shashi Deshpande plays vital role in the field of feminism. Her works are often women centric exploring their aspirations, relationships and struggles. The limitations which are imposed on a woman by the patriarchal society are deeply explored.

There is a nuanced understanding of feminist consciousness & its complexities in Shashi. Her female characters deal with the issues like societal expectations, their personal desires, gender inequality. There is a tension between tradition & one's own freedom. Females in her works challenge and navigate the patriarchal norms with which surrounds them and sets up their own autonomy on fronts. Shashi delves into complexities of relationships, and emotions, gender identity & power dynamics. *"Roots & Shadows"* is a work exploring the journey of self discovery of the protagonist – Indu. The protagonist fights to understand her identity with societal expectations & traditional family dynamics. She goes into her family history and stories trying to connect with ancestry and understanding how it is shaping her.

She says – ***"I want to be somebody... I want to have an identity of my own."***

That Long Silence" is a work in which gender is reimagined & feminist consciousness is examined through the journey of protagonist. The struggles and triumphs of the protagonist presents gender dynamics as well as feminist thought. Jaya confronts patriarchal norms and seeks for her own autonomy. She declares – ***"I have found my voice. I will not be silenced."***

She says she will work for her personal fulfilment & self expression and won't be accepting

the roles meekly. ***"I have to be myself, I have to find a way of being myself in a world that wants me to be someone else!!"***

The traditional way of dealing with a man has been rejected. Jaya decided to live in the marriage but she will keep her points, desires, emotions in front of Mohan she decides to speak & listen.

Dark Holds No Terror is again a novel which talks about a woman's freedom & identity. The protagonist Sarita wants personal freedom and fulfilment. She says "I want to be myself, no more no less." This statement shows her eagerness, zest to break free from societal expectations & set standards. She is seen questioning herself again & again "Who am I? Who am I really?" Sarita rejects the set norms and says "I am not a shadow. I am not an echo. I am not a reflection of others." Deshpande here in the novel does not speak on outer plain but she goes deeper beyond the surface exploring gender roles, selfhood and presenting them in multiple dimensions. A very thought provoking exploration into the complexities has been done by Shashi which makes the novel ***"Dark Holds No Terror"*** a powerful testament trying to transform the life of women.

Shashi Deshpande in her novels use the theme of rebellion & resistance against the structures which suppress women. The feminist consciousness is present in all the works but they have varieties of demonstration patterns in which diverse experiences and journeys of female characters is evident.

Feminist Perspectives in Alice Walker's works :

Alice Walker just like Shashi Deshpande has greatly contributed in feminist literature. She has been an activist who actively fought for females and their written rights. When adopted to writing she vented out her most personal thoughts on women. Her writings focus on intersectionality of race, gender, class; portraying the female characters who go far to gain self-acceptance and self-identity.

The themes of female consciousness, liberation, resilience and transformation are most evident. As a modern feminist she wrote the works like ***The Color Purple***, ***Possessing the Secret of Joy***, ***Meridian & The Third Life of Grange Copeland*** which include Black American women and their experiences. In a racist & sexist society how females are treated, what they face and the struggles they have gone through. Walker identifies herself as Black Feminist or more of a womanist. ***The Color Purple*** published in 1982 is a famous novel encompassing the complexities of patriarchy and white racism. The central theme includes fight against racism, sexism and a society that is violent & hostile towards women. She delves deep into the complicated web of female kinship.

In the novel the protagonist faces injustice and suppression from male counterpart. Women are expected to submit without any question to male sex desire. Celie says –

"Me – come git me to take care his rotten children. He never ast me nothing 'bout myself. He clam on top of me & fuck & fuck even when my head bandaged."

Celie at first is unaware of herself. She surrenders herself meekly and does not know how to fight for her own self. When Nettie tells her to fight she exclaims –

"I don't know how to fight. All I know now to do is to stay alive."

This statement is universal including all black women, it shows their survival instincts as well as their submissive nature. In the later part of novel the protagonist learns about herself and how to verbalise her own independence, she founds a new strength in herself & becomes an entrepreneur who knows to fight and stand for herself.

Through the heroine Walker conveys centuries long oppression, marginalisation and multi faced exploitation being done by males on females. Sexual assault is too common with the females which is presented in the novel. Celie's mother who was on her death bed is assaulted by Fonso rather than finding in her pride. Fonso later assaults Celie. Later Sophie is seen being assaulted by Harpo. As females go through liberation movement it is easy to draw parallels b/w the characters of real life females.

Alice Walker is of the view that "Black women now offer varied, live models of how it is possible to live. We have made a new place to move." (quoted in Washington 1979: 146) Suspended black women are presented in the novel ***Meridian.*** She is a lonely, crazy woman who is physically and psychologically abused. She is the one who gets opportunity through Civil Rights Movement to liberate herself. Alice in the novel fights against the myths related and attached to black motherhood who are epitome of strength, self abnegation and sacrifice.

Possessing the Secret of Joy published in 1992 is a very latest work which fairly & clearly talks about genital mutilation; how a woman's body & soul is torn & tormented by this process it is shown through the main character Tashi. She belongs to Olinka Tribe where it is their tradition to do circumcision; Alice describes the cause & effect of this cultural practice.

Alice Walker's ***The Temple of My Familiar*** discusses the history of black people; a feminine ancestral figure is at the center who tells the stories having different perspectives. Wounds of different people especially women are presented in the work through dream of memory technique.

The novel ***The Third Life of Grange Copeland*** (1970) gives a critique of gender and race relations. She anticipates a very strong female protagonist Ruth in it. Here also the suffering of women is presented how they got killed at the hands of men.

Walker used / coined the term 'Womanism' enabling black women to articulate their promise for gender liberation and not leaving behind the racial liberation. It was a mixture of various liberation ideologies that has been repetitively invoked to present complex interplay between race & gender faced by Afro-American women.

Conclusion :

Both the writers Alice Walker & Shashi Deshpande demonstrate a remarkable hold on showcasing the political realities of oppression. Their works embody some of the most profound & deep insights; they both have left a whole load of legacy for emerging writers and contributed to the art of writing off & on the screen. Alice Walker & Shashi Deshpande have presented women in all sorts of true and fact based colures. Alice presents the rich cultural heritage of Black women including their traditions, rituals and practices similarly Deshpande has portrayed Indian culture & tradition with respect to women. They both portray women as complex, multifaceted individuals who are strong as well as vulnerable. They both successfully explore the experiences of women & highlighting their struggles & triumphs in their works.

References :

Primary Source

1. Deshpande, Shashi. *That Long Silence*. New Delhi: Penguin Book India, 1988.
2. Deshpande, Shashi. *Roots & Shadows*. New Delhi: Penguin Books India, 1988
3. Deshpande, Shashi. *Dark Holds No Terror*. New Delhi: Penguin Books India, 1990.
4. Walker, Alice. *The Color Purple*. New York: Washington Square Press, 1982

Secondary Sources

1. Rawa Lata, Suman. *Reimagining Gender: Exploring Feminist Consciousness in Shashi Deshpande's Literary Landscapes – A Comparative Study of Three Novels. International Journal for Research*, January 2024
2. blog.oup.com https://blog.oup.com/2020/12/women-and-literature-alice-walker

Contact No. : 9499264360

Email : priyaa20133@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
SANGAM
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 307-315

Reframing Urban Waste Management in India: Integrating Environmental Discourse and Policy Innovation

Monika, Research Scholar,

Dr. Rupali Bhouradia, Associate Professor

Department of Political Science and Public Administration, Banasthali Vidyapeeth, Newai, Rajasthan.

Abstract :

In the current era of environmental crises and sustainability concerns, waste management has emerged as a central theme within contemporary environmental discourse. As cities grapple with increasing urbanization, consumerism, and resource depletion, sustainable waste management has become imperative for environmental protection, public health, and urban resilience. This paper critically examines the role of municipal solid waste management within the broader narrative of environmental governance, focusing particularly on the challenges and innovations in urban India. Using Jaipur as a case study, the paper analyzes the effectiveness of local governance mechanisms, public awareness, infrastructure, and technological integration in managing urban waste. It also explores the role of policy frameworks, community participation, and behavioral change in aligning waste management practices with the goals of sustainable development. The paper argues that for waste management to become an effective tool in environmental conservation, a shift in public discourse from disposal to resource recovery, from compliance to consciousness is essential. In the context of escalating environmental challenges and the pursuit of sustainability, municipal solid waste management has become a pivotal aspect of urban governance in India. It highlights the importance of inclusive policy frameworks, and community engagement in transforming waste from a problem of disposal to a resource opportunity. The analysis underscores the urgency of shifting from linear waste models to circular approaches that prioritize recovery, reuse, and environmental sustainability.

By linking waste governance with broader ecological and developmental objectives, the paper advocates for a comprehensive reimagining of urban waste management as a core component of

sustainable urban development in India.

This paper explores how waste management is being reimagined as part of India's environmental priorities, particularly through the lens of urban challenges and policy frameworks. The paper argues that a paradigm shift in public and policy perception—from linear to circular waste thinking—is essential to address the growing waste crisis, and that integrating waste governance with environmental discourse offers new pathways for sustainable urban development.

Keywords : Sustainable Waste Management, Resource Recovery, Environmental Discourse, Inclusive Policy, Environmental Crises, Urban Pollution,

Introduction :

Environmental degradation has emerged as a defining concern of the 21st century. As climate change, pollution, and resource depletion escalate, environmental discourse has evolved to address not only the consequences but also the socio-political dimensions of ecological crises. Waste management, though often viewed as a technical or civic issue, lies at the heart of this discourse due to its direct impact on public health, urban sustainability, and environmental integrity.

In India, the growing urban population and changing consumption patterns have led to an exponential rise in the generation of municipal solid waste. The challenge now is not merely disposing of waste, but managing it sustainably through integrated approaches that reflect ecological consciousness. This paper examines waste management as a vital component of contemporary environmental discourse, particularly in the Indian urban context. The contemporary era is marked by unprecedented ecological challenges, ranging from global warming and biodiversity loss to urban pollution and resource depletion. Within this environmental discourse, municipal solid waste management occupies a crucial space, especially in urban settings where population density and consumption levels are significantly high.

India, as one of the fastest urbanizing countries, is witnessing an alarming rise in waste generation, estimated at over 62 million tons per annum, with projections suggesting a doubling of this figure by 2047 (Central Pollution Control Board [CPCB], 2020). Waste management has therefore emerged not just as a service function of municipalities but as an environmental imperative demanding policy attention, citizen engagement, and technological innovation.

This paper aims to situate waste management within the larger environmental discourse of our times, exploring its socio-political, infrastructural, and ecological dimensions, particularly in the context of Indian urban governance.

Waste Management in Contemporary Discourse :

Environmental discourse today transcends traditional conservationism. It encompasses issues

of sustainability, justice, and governance, focusing on human interaction with the environment in everyday life. Waste, often considered a byproduct of development, is now being seen as a critical indicator of ecological sustainability and public responsibility. Contemporary environmental discourse has moved beyond mere conservation efforts to include issues such as waste generation, pollution control, and circular economy models. Waste management has evolved from being a sanitation issue to a matter of sustainable development, resource conservation, and climate mitigation. Public debates, civil society activism, and media coverage have also helped to reframe waste as a resource one that must be reused, recycled, and recovered.

Policy frameworks such as the Swachh Bharat Mission, Solid Waste Management Rules (2016), and Sustainable Development Goals (especially SDG 11 and 12) have brought waste management to the forefront of India's environmental agenda.

The Solid Waste Management Rules (2016) marked a significant policy milestone in India, advocating for segregation at source, scientific processing, and integration of informal waste workers (Ministry of Environment, Forest and Climate Change [MoEFCC], 2016).

Coupled with national missions like Swachh Bharat Abhiyan and Smart Cities Mission, waste management has been repositioned as a priority area for urban reform and environmental sustainability (Ministry of Housing and Urban Affairs [MoHUA], 2021).

This shift reflects the growing understanding that improper waste handling contributes to air, water, and soil pollution, greenhouse gas emissions (especially methane from landfills), and public health hazards. Within global frameworks like the Sustainable Development Goals (SDG 11: Sustainable Cities and SDG 12: Responsible Consumption and Production), waste management is now central to achieving sustainable urban futures (UNDP, 2020).

Urban Waste Management in India: The Current Scenario :

India's urban areas generate approximately 160,000 metric tons of solid waste daily, of which only about 20% is scientifically processed (CPCB, 2020). Most cities rely heavily on open dumping, unsegregated collection, and informal labor for recycling. Urban Local Bodies (ULBs) face challenges related to manpower, logistics, segregation, and infrastructure. A combination of administrative fragmentation, limited funds, and low public compliance has undermined effective implementation of waste policies.

In Jaipur, managed by the Jaipur Municipal Corporation (JMC), municipal waste management has seen gradual improvements, especially with door-to-door collection, GPS tracking of waste vehicles, and pilot projects on waste segregation (JMC, 2023). However, ground realities still reflect major gaps :

- Mixed waste is collected despite segregation drives.
- Informal waste pickers remain unrecognized in policy frameworks.
- Landfills like Langadiyawas are overburdened and poorly maintained.

Only 30–35% of waste in Jaipur is currently processed through composting or recycling, while the rest is dumped or incinerated (JMC, 2023).

Challenges in Urban Waste Management :

Despite reforms, policy interventions and increased funding, several challenges hinder effective waste management and urban waste management in India faces deep-rooted challenges, categorized as follows :

Infrastructural Constraints : Insufficient waste treatment plants, poor storage facilities, and outdated collection vehicles limit operational efficiency. Many cities lack Material Recovery Facilities (MRFs), composting units, or engineered landfills. Even where infrastructure exists, it is underutilized or poorly maintained (NIUA, 2022).

Manpower and Operational Gaps : Sanitation workers often lack adequate training and protective gear, leading to health hazards and inefficiencies. Most sanitation workers are contractual and underpaid. Occupational safety is minimal, leading to high health risks and worker demotivation (Sharma & Raj, 2021).

Behavioral and Awareness Deficits : A lack of awareness among citizens about segregation and composting results in unscientific disposal. Public compliance with waste segregation is low due to inadequate awareness and behavioral inertia. Households often mix wet and dry waste, making downstream processing difficult (UNDP, 2020).

Policy and Institutional Fragmentation : Waste management involves multiple actors—municipalities, contractors, NGOs—often operating without coordination (Sharma & Raj, 2021). Moreover, lack of decentralized governance hinders effective monitoring and innovation.

Environmental and Health Risks : Unscientific disposal leads to leachate formation, groundwater contamination, vector-borne diseases, and methane emissions, exacerbating climate and public health concerns (CPCB, 2020).

Policy and Implementation Gaps : Discrepancies between policy intent and ground-level execution reduce the impact of environmental governance.

Informal Sector Neglect : Informal waste pickers, who play a critical role in recycling, are often excluded from formal systems.

Community Participation and Environmental Awareness :

Community involvement is vital for sustainable waste management. NGOs, Self-Help Groups

(SHGs), and Community-Based Organizations (CBOs) can bridge the gap between authorities and the public. Community engagement is a game-changer in waste management. Active public participation can drastically improve waste segregation, recycling, and composting. Models such as Resident Welfare Associations (RWAs) managing community composting, or SHGs creating eco-products from recycled materials, are being successfully implemented in cities like Pune, Indore, and Jaipur (NIUA, 2022). Jaipur has seen initiatives where citizen-led drives and local campaigns have contributed to better waste practices. Jaipur has witnessed the involvement of NGOs like Centre for Advocacy and Research (CFAR) and Bhartiya Mazdoor Sangh, who have worked with informal waste workers and slum communities to promote waste segregation and hygiene practices (Chaturvedi, Arora, & Saluja, 2019). Education and awareness campaigns especially in schools, colleges, and via local media are essential to instill eco-friendly behaviors. These can include :

- Green curriculum in schools.
- 'No Plastic' pledges and cleanliness drives.
- Incentivized recycling programs.

Environmental education in schools, public workshops, and media engagement can further reinforce behavioral change. When citizen view waste not just as garbage but as a resource or environmental concern, their actions align better with sustainable goals.

Innovations and Sustainable Practices :

Reimagining waste management requires a transition from linear 'collect and dump' systems to circular models emphasizing Reduce, Reuse, Recycle (3Rs). Innovative practices being adopted in India include :

Decentralized Waste Processing - community composting, biogas units, and ward-level MRFs reduce transport costs, support local soil regeneration and increase efficiency (NIUA, 2022).

Digital and Smart Technologies - GPS-based tracking of waste vehicles, mobile apps for complaint redressal, and sensor-based bins are transforming urban waste systems. Cities like Indore and Bengaluru are using mobile apps for waste reporting, RFID-based vehicle tracking, and smart bins with sensors (Sharma & Raj, 2021).

Extended Producer Responsibility (EPR) - In managing plastic and e-waste. producers are being held accountable for the lifecycle of their products, especially in managing e-waste and plastic waste (MoEFCC, 2016).

Integration of Informal Sector into formal governance mechanisms - Recognizing and formalizing the work of informal waste pickers not only improves recycling rates but also ensures social justice (Chaturvedi et al., 2019).

Zero Waste Pilots - certain wards in Jaipur have started piloting zero-waste concepts, aiming for 100% waste segregation and localized composting (MoHUA, 2021).

Waste Segregation at Source - segregating biodegradable and non-biodegradable waste ensures better recycling and composting outcomes.

Recycling and Upcycling - Promoting local recycling units helps in resource recovery and employment generation.

Waste-to-Energy Projects - While controversial in terms of emissions, they offer alternatives where landfill space is limited.

Conclusion and Recommendations :

Waste management is a profound issue that intersects with environmental sustainability, public health, and social justice. In the past, waste was often viewed merely as a byproduct of urbanization and industrialization, something that could be dealt with by simply removing it from sight. However, in light of growing environmental concerns, particularly climate change, pollution, and resource depletion, this perspective needs to evolve. Waste is now understood as a vital component of the environmental ecosystem, a resource that, if managed properly, can contribute to ecological sustainability and urban resilience.

Reimagining waste management as part of contemporary environmental discourse is essential for transitioning to a more sustainable and responsible society. This includes embracing the idea that waste is not simply something to be discarded but rather something that can be recovered, reused, or recycled. This shift in perspective encourages a more holistic approach to managing urban environments, one that integrates circular economy principles, promotes sustainability, and supports the creation of green jobs and equitable opportunities for all.

The experiences of Indian cities like Jaipur highlight both the complexities and the potential of waste management reforms. Jaipur's efforts to improve waste segregation, composting, and integrating technology into waste management systems offer valuable lessons. However, the city's ongoing challenges, such as underutilized infrastructure, informal labor, and inadequate public compliance, demonstrate the deep-rooted need for broader systemic reforms.

To build a resilient and sustainable urban future, waste management must not only be redefined but also integrated with other key areas such as public health, urban governance, and economic development. As India grapples with rapid urbanization, shifting consumption patterns, and the urgency of addressing environmental crises, waste management must be prioritized as a crucial element in the broader sustainability agenda. Effective waste governance requires inclusive, decentralized, and participatory models that foster collaboration between governments, communities, businesses, and

civil society.

Core Principles for Future Waste Management :

- **Participatory Governance** : waste management must evolve from a top-down bureaucratic model to a participatory governance system where local communities, NGOs, self-help groups (SHGs), and informal waste pickers are actively involved in decision-making processes. Citizens must be viewed not just as recipients of waste services but as active contributors to waste segregation, reduction, and recycling. Empowering communities to manage waste locally increases awareness, strengthens ownership, and encourages sustainable practices at the grassroots level. Involving local stakeholders also helps tailor solutions to specific regional contexts, making waste management more effective and contextually relevant.
- **Decentralized Systems** : the success of urban waste management lies in creating decentralized systems that reduce dependency on centralized facilities and landfills. Decentralized waste processing—such as local composting units, community recycling centers, and biogas projects—promotes self-reliance, reduces transportation costs, and minimizes the environmental impact of large-scale waste facilities. Empowering local bodies and communities to manage their waste ensures that solutions are implemented efficiently and suited to local needs, fostering innovation at the community level. This approach also aligns with the principles of a circular economy, wherein waste becomes a resource that can be reused or repurposed.
- **Inclusivity in Waste Governance** : one of the key challenges in urban waste management is the exclusion of informal workers, such as waste pickers, from formal systems. Informal workers contribute significantly to waste segregation, recycling, and reducing landfill loads. However, they are often underpaid, lack recognition, and face hazardous working conditions. Institutionalizing informal workers by providing them with formal recognition, fair wages, health benefits, and training will not only improve their working conditions but will also enhance the overall efficiency of the waste management system. Ensuring that waste management policies are inclusive and recognize the contributions of marginalized groups is essential for achieving social justice and improving recycling rates.
- **Technology Integration** : in the modern era, technology has the potential to revolutionize waste management. Digital tools such as GPS tracking for waste collection vehicles, mobile apps for citizen engagement and complaints, and smart bins equipped with sensors to monitor waste levels, can enhance efficiency and responsiveness. The use of Artificial Intelligence (AI) and data analytics to predict waste generation patterns, improve logistics, and optimize resource allocation can make waste management systems more efficient. Additionally, block chain technology can be used to track

waste streams and ensure transparency in recycling and waste disposal processes. By leveraging these technological innovations, cities can improve operational efficiency, reduce costs, and make waste management more transparent and accountable.

- **Circular Economy and Resource Recovery** : a paradigm shift from linear waste systems to circular models is crucial for sustainable urban waste management. A circular economy approach promotes waste minimization, reuse, recycling, and resource recovery, turning waste into a valuable resource rather than a problem to be discarded. This model emphasizes extending the lifecycle of products, designing for longevity, and reducing waste at the source. Urban waste management strategies should focus on encouraging the reuse of materials, establishing local recycling industries, and implementing waste-to-energy (WTE) projects that convert non-recyclable waste into energy. The integration of Extended Producer Responsibility (EPR) programs for plastics, e-waste, and packaging waste will also drive the industry to take responsibility for the entire lifecycle of their products.

Policy Recommendations :

- Mandatory segregation at source with strict monitoring mechanisms.
- Incentives for decentralized composting and waste-to-energy initiatives.
- Institutional recognition and training of informal waste workers.
- Mass awareness campaigns using schools, local leaders, and digital media.
- Public-private partnerships to fund and manage sustainable infrastructure.
- Strengthen decentralized waste management infrastructure.
- Ensure regular training and protection for sanitation workers.
- Institutionalize informal waste pickers into formal systems.
- Promote public awareness through targeted campaigns and education.
- Encourage research and development in low-cost, eco-friendly waste technologies

Reimagining waste management as an integral part of environmental discourse is not only necessary for ecological sustainability but also for achieving a just, healthy, and inclusive urban future. By embedding sustainability, inclusivity, and innovation in waste governance, India can reimagine waste management not merely as a service function but as a transformative tool in environmental conservation and urban resilience.

References Section :

- Central Pollution Control Board. (2020). *Annual Report on Municipal Solid Waste Management*. New Delhi: CPCB.
- http://cpcb.nic.in/uploads/MSW/AnnualReport_2020_MSW.pdf

- Ministry of Environment, Forest and Climate Change. (2016). *Solid Waste Management Rules, 2016*. New Delhi: Government of India.
- https://moef.gov.in/wp-content/uploads/2017/07/SWMrules2016.pdf
- Ministry of Housing and Urban Affairs. (2021). *Swachh Bharat Mission – Urban 2.0: Guidelines*. New Delhi: Government of India.
- https://swachhbharaturban.gov.in
- Chaturvedi, B., Arora, R., & Saluja, M. (2019). *Waste Pickers and the Circular Economy in India*. New Delhi: Observer Research Foundation.
- https://www.orfonline.org/research/waste-pickers-and-the-circular-economy-in-india-51793/
- National Institute of Urban Affairs. (2022). *Decentralized Waste Management: Best Practices from Indian Cities*. New Delhi: NIUA.
- https://niua.in
- United Nations Development Programme (UNDP). (2020). *Segregation at Source: Behavior Change for Waste Management*. New York: UNDP.
- https://www.undp.org/india
- Sharma, M., & Raj, A. (2021). Urban Solid Waste Management in India: Challenges and Policy Review. *Journal of Environmental Policy and Urban Development*, 12(3), 102–118.
- Jaipur Municipal Corporation. (2023). *Annual Sanitation and Waste Management Report*. Jaipur : JMC.

monikarathi97@gmail.com
7597925476

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 316-319

सथ्यू और बेनेगल की फिल्मों में विभाजन पश्चात समस्याओं का वास्तविक अंकन

समीना नायकवडी
शोधार्थी, हिंदी विभाग चर्चगेट, श्रीमती नाथीबाई ठाकरसी महिला विश्वविद्यालय, मुंबई।

सारांश :-

ऐतिहासिक परिघटना, भारत विभाजन ने तात्कालिक एवं वर्तमान दोनों ही संदर्भों में अनेक जटिल समस्याओं को जन्म दिया। जिस सांप्रदायिकता ने इस विभाजन को प्रेरित किया, वह आज भी भारतीय समाज में गहरी पैठ बनाए हुए है। यह विडंबना न केवल तत्कालीन सामाजिक ताने–बाने को छिन्न–भिन्न करने का कारण बनी, अपितु वर्तमान में भी सामाजिक सद्भाव एवं राष्ट्रीय एकता के समक्ष एक महत्वपूर्ण चुनौती प्रस्तुत करती है। इस समस्या का गहन विश्लेषण एवं समाधान ढूंढना अनिवार्य है। भारतीय हिंदी सिनेमा ने देश विभाजन पर आधारित फिल्मों का निर्माण करके, विभाजन से उत्पन्न हुई समस्याओं के समाधान को फिल्मों के माध्यम से खोजने का प्रयास किया है। इन फिल्मों ने विभाजन की पीड़ा, विस्थापन और मानवीय त्रासदी को दर्शाते हुए, समाज में एकता और सामंजस्य स्थापित करने का संदेश दिया है। सिनेमा ने विभाजन के अनुभवों को जीवित रखने और आने वाली पीढ़ियों को इतिहास से अवगत कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

बीज शब्द :- विभाजन, फिल्म, वास्तविक समस्या आदि।

प्रस्तावना :-

सिनेमा, कला और प्रौद्योगिकी का एक सशक्त संगम है, जो हमारी संस्कृति को संरचित करने समाज को प्रतिबिंबित करने और पूर्वाग्रहित दृष्टिकोण को रूपांतरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह केवल मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि मूल्यों का दर्पण है। जो हमें नवीन विचारों के प्रति उन्मुख करता है और प्रायः सामाजिक मान्यताओं को प्रभावित करता है। सिनेमा और समाज के मध्य एक गहरा संबंध विद्यमान है। सिनेमा समाज का प्रतिबिंब होने के साथ–साथ उसे प्रभावित भी करता है। सिनेमा, समाज को आकार देने और सामाजिक परिवर्तन को प्रोत्साहित करने में एक महत्वपूर्ण उपकरण सिद्ध होता है। फिल्मों के माध्यम से जागरूकता बढ़ाना दूसरों के प्रति सहानुभूति का निर्माण करना और प्रेरणा प्रदान करना इसके प्रमुख कार्य हैं। भारतीय हिंदी सिनेमा जगत में समाज की विभिन्न समस्याओं को चित्रित किया गया है। स्वतंत्रता के पश्चात, फिल्मों में देश विभाजन की सामाजिक और ऐतिहासिक घटना को लेकर अनेक हिंदी फिल्में निर्मित हुईं, जिन्होंने विभाजन से उत्पन्न तात्कालिक और दीर्घकालिक परिणामों को दृश्यांकित कर सामाजिक एकता पर बल दिया

और सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। विशेष रूप से गर्म हवा और मम्मो जैसी फिल्मों के संदर्भ में। प्रस्तुत लेख में सांस्कृतिक प्रभाव दर्शकों के साथ भावनात्मक संबंध नई तकनीकों के माध्यम से फिल्म देखने के अनुभव को बेहतर बनाने के तरीके और इन फिल्मों ने सामाजिक परिवर्तन में कैसे योगदान दिया, जैसे विषयों पर विवेचन किया गया है।

मैसूर साथ्यू 'गर्म हवा' में विभाजन से उत्पन्न देश की वास्तविक समस्याओं का दृश्यांकन :-

भारतीय सिनेमा के इतिहास में फिल्म निर्माता मैसूर श्रीनिवास सथ्यू का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिसका श्रेय उनकी फिल्म कृति 'गर्म हवा' 1973, को जाता है। यह फिल्म विभाजन के कारण उत्पन्न विकृत मानसिकता का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करती है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय सिनेमा ने समकालीन विषयों पर फिल्में बनाना शुरू किया। 1947–60 के दौरान, सामाजिक मुद्दों पर केंद्रित कई फिल्में बनाई गईं। यह बदलाव देश के सिनेमा उद्योग में एक महत्वपूर्ण कदम था।[1] गरम हवा सलीम मिर्जा और उनके परिवार के जीवन में घटित होने वाली लगातार त्रासद घटनाओं को चित्रित करती है। इसका उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि ये विपत्तियाँ उनकी मानवीयता और उस आत्मविश्वास को क्षीण नहीं कर पातीं, जो उन्हें 1947 के बाद विध्वस्त हुए सामाजिक भारत में बने रहने के लिए आवश्यक है। आगरा, वह शहर है जहाँ मिर्जा परिवार की कई पीढ़ियाँ विभाजन की भयावहता से पूर्व निवास करती थीं। यह फिल्म विभाजन की विभीषिका के परिणामस्वरूप मानवीय मूल्यों पर पड़ने वाले गहन प्रभाव को मार्मिक ढंग से दर्शाती है। 'गर्म हवा' विभाजन के सामाजिक, राजनीतिक और भावनात्मक आयामों की जटिलताओं को उजागर करने वाली एक महत्वपूर्ण कृति है।

'गर्म हवा' फिल्म अपने आरंभिक दृश्यों में ही विभाजन के बाद निर्मित मुस्लिम समुदाय की पहचान का संकट और पराएपन दंश की समस्याओं का चित्रण करती है। सलीम मिर्जा द्वारा अपनी बहन को पाकिस्तान जाने के लिए छोड़ते समय तांगेवाले द्वारा किराए में वृद्धि की मांग करना और उस पर बहस छिड़ने पर यह कहना कि 'आठ आने में जाना है तो, जाओ पाकिस्तान......।'[2] विभाजन के बाद भारतीय आवास को चुनने वाले मुसलमानों के सामाजिक स्तर पर अनुभव किए गए अलगाव को दर्शाता है। यह स्थिति वर्तमान समय में सांप्रदायिक ध्रुवीकरण के मामलों में अक्सर देखी जाती है, जहाँ उनकी राष्ट्रीय पहचान को संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। सलीम मिर्जा को अपनी पैतृक हवेली छोड़कर किराए का आवास खोजने के लिए विवश होना, फिल्म का एक महत्वपूर्ण दृश्य है। इस दृश्य में उन्हें सांप्रदायिक पूर्वाग्रह के कारण आवास ढूंढने में कठिनाई होती है, जो मुस्लिम समुदाय के पलायन की समस्या को उजागर करता है। फिल्म मुस्लिम समुदाय के पलायन से जुड़ी सामाजिक धारणाओं को सच्चाई से चित्रित करती है। जैसे कि विभाजन केवल मुसलमानों का मामला नहीं था, बल्कि एक राजनीतिक निर्णय था। फिल्म एक तटस्थ दृष्टिकोण अपनाती है और वास्तविकता के साथ गहराई से जुड़ती है। आज भी, भारतीय मुसलमानों को आवास ढूंढने में वैसी ही समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जैसी सलीम मिर्जा ने की थी। यह फिल्म इस महत्वपूर्ण सामाजिक मुद्दे पर प्रकाश डालती है और दर्शकों को इस पर विचार करने के लिए प्रेरित करती है।

'गर्म हवा' फिल्म केवल सामाजिक वास्तविकता को ही नहीं दर्शातीय बल्कि उस समय की दोहरी राजनीतिक नीतियों को भी उजागर कर यह फिल्म देश की वास्तविक समस्याओं को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास करती है। सिनेमैटोग्राफी ने आगरा और फतेहपुर सीकरी के दृश्यों का कुशलतापूर्वक चित्रण किया है।

जो भारतीय संस्कृति के प्रभाव को स्पष्ट रूप से दर्शाता है। सलीम मिर्जा का पुत्र सिकंदर, रोजगार की खोज में सांप्रदायिकता जैसी सामाजिक बाधाओं का सामना करता है। उसे रोजगार प्राप्त करने के लिए पाकिस्तान जाने का सुझाव दिया जाता है, जो तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों को उजागर करता है। यह फिल्म न केवल सांप्रदायिकता को दर्शाती है बल्कि सिकंदर के चरित्र के माध्यम से बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद, सिफारिश नीति, और रिश्वतखोरी जैसी देश विभाजन पश्चात की महत्वपूर्ण समस्याओं का भी चित्रण करती है।

इस प्रकार यह फिल्म भारतीय समाज की जटिलताओं का एक गहन विश्लेषण प्रस्तुत करती है और दर्शकों को सोचने पर मजबूर करती है। सलीम मिर्जा द्वारा भारत में निवास करने का निर्णय उनके और उनके परिवार के साथ घटित हुई त्रासदी को दर्शाती है। यह फिल्म एक ओर विभाजन के दुष्परिणामों को उजागर करती है, वहीं दूसरी ओर इस त्रासदी के माध्यम से दर्शकों–विशेष रूप से हिंदू और मुस्लिम समुदायों के मध्य सहानुभूति और समझ की भावना उत्पन्न करने का प्रयास करती है। फिल्म अंततः अल्पसंख्यक समाज में असुरक्षा की वर्तमान समस्या के समाधान के लिए अल्पसंख्यक समुदाय को संगठित होकर अपने अधिकारों के प्रति जागरूक रहने के लिए प्रेरित करती है। यह फिल्म एक प्रेरणादायक संदेश देती है कि एकजुटता और जागरूकता के माध्यम से अल्पसंख्यक समुदाय अपनी चिंताओं को दूर कर सकता है और समाज में एक सुरक्षित और सम्मानजनक स्थान प्राप्त कर सकता है।

बेनेगल 'मम्मो' में विभाजन से उत्पन्न देश की वास्तविक समस्याओं का दृश्यांकन :-

सिनेमा निस्संदेह, मनोरंजन का एक शक्तिशाली उपकरण है। हालाँकि, एक कुशल फिल्म निर्माता वह होता है, जो मनोरंजन के तत्वों को बनाए रखते हुए भी समाज की ज्वलंत समस्याओं को प्रभावी ढंग से उजागर करने के लिए इसका उपयोग करता है। श्याम बेनेगल जैसे निर्देशकों ने अपनी फिल्मों के माध्यम से इस दृष्टिकोण को सफलतापूर्वक प्रदर्शित किया है। वे फिल्म को केवल मनोरंजन के साधन के रूप में नहीं देखते थे। श्याम बेनेगल, गुरु दत्त के निकट संबंधी थे और उनसे प्रेरित थे। उनका उद्देश्य ऐसी फिल्में बनाना था, जो दर्शकों को एक नई दुनिया से परिचित कराएं। अंकुर, मंडी, कलयुग, जुबेदा, सरदारी बेगम, मम्मो, निशांत, मंथन और भूमिका जैसी उल्लेखनीय फिल्मों का निर्माण करके, वे उस युग के नए, सार्थक फिल्म आंदोलन में अग्रणी बन गए। उन्होंने इन फीचर फिल्मों के माध्यम से जीवन की कई जटिल वास्तविकताओं को अपने अनूठे तरीके से प्रस्तुत किया, जिसे वे एक महत्वपूर्ण उपलब्धि मानते हैं। सामाजिक–राजनीतिक आंदोलनों की पृष्ठभूमि पर आधारित उनकी कई फिल्में इस बात का प्रमाण हैं।[3] वर्ष 1994 में प्रदर्शित फिल्म मम्मो विभाजन के पश्चात मुस्लिम समुदाय की पहचान के निर्माण में उत्पन्न हुई जटिलताओं के साथ मम्मो के जीवन की यात्रा को चित्रित करती है। यह फिल्म राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (National Register of Citizens) के संदर्भ में उत्पन्न होने वाली चुनौतियों का व्यापक और यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत करती है। मम्मो, एक पाकिस्तानी नागरिक, विभाजन उपरांत लगभग 47 वर्षों के अंतराल पर भारत में प्रवासित हुई हैं।

उनकी वर्तमान इच्छा भारत में स्थायी रूप से निवास करने की है तथा वे पाकिस्तान लौटने की इच्छुक नहीं हैं। ऐसी स्थिति में, उनका प्रत्यावर्तन भारतीय नागरिकता अधिनियम के अंतर्गत जटिलताएं उत्पन्न कर सकता है। उल्लेखनीय है कि श्याम बेनेगल द्वारा निर्देशित इस फिल्म की पटकथा, खालिद मोहम्मद के जीवन से प्रेरित है। परिणामस्वरूप, फिल्म न केवल वास्तविक समस्याओं को चित्रित करने में सक्षम है, अपितु मम्मो की

भारत में जीवन यापन के लिए संघर्ष को भी दर्शाती है। इस कारण जॉन डब्ल्यू. हूड इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मम्मो का सिनेमाई यथार्थवाद साहित्यिक यथार्थवाद की तुलना में कम महत्वपूर्ण है।[4] यह फिल्म उन व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करती है, जिन्होंने पाकिस्तान के निर्माण के पश्चात भी उस राष्ट्र को अपना नहीं माना और भारत को ही अपनी मातृभूमि के रूप में स्वीकार किया।

निष्कर्ष :-

उपर्युक्त विश्लेषण से यह निर्विवाद रूप से सिद्ध होता है कि भारतीय सिनेमा, विशेष रूप से गर्म हवा और मम्मो जैसी फिल्मों के माध्यम से सामाजिक वास्तविकताओं और समस्याओं को प्रभावी ढंग से उजागर करता है। ये फिल्में न केवल विभाजन के परिणामों को दर्शाती हैं, बल्कि अल्पसंख्यक समुदाय की पहचान, असुरक्षा और सामाजिक समरसता के मुद्दों पर भी प्रकाश डालती हैं। इन फिल्मों का गहराई से विश्लेषण करने पर यह भी स्पष्ट होता है कि सिनेमा एक ऐसा माध्यम है, जो समाज में सहानुभूति और समझ को बढ़ावा देता है। इसके माध्यम से दर्शकों को अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों का एहसास होता है और वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होते हैं। इस प्रकार, सिनेमा न केवल मनोरंजन का साधन है, बल्कि यह सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण उपकरण भी है। एम.एस.सथ्यू और श्याम बेनेगल जैसे फिल्म निर्माताओं ने इस दृष्टिकोण को अपनाते हुए समाज की जटिलताओं को प्रस्तुत किया है, जो दर्शकों को विचार करने और जागरूक होने के लिए प्रेरित करता है।

सन्दर्भ :-

1. लेखिका : शिवानी राकेश, पुस्तक : सिनेमा को पढ़ते हुए, प्रकाशन : लोकभारती प्रकाशन प्रकाशन वर्ष : 2005, ISBN: 9348229907, 9789348229908
2. फिल्म : गर्म हवा, निर्देशकः एम.एस.सथ्यू प्रदर्शित वर्ष 1973।
3. पत्रिका–आजकल दिसंबर 2024, हिंदी, प्रकाशक : प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय।
4. लेखक : विवेक सचदेव, पुस्तक : श्याम बेनेगल्स इंडिया अल्टरनेटिव इमेजेज, प्रकाशक : रूटलेज, न्यूयॉर्क, प्रकाशन वर्ष 2020, ISBN: 978–0–367–89806–9

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 320-324

किन्नर जीवन और भारतीय ऐतिहासिकता : एक झलक

उषाबेन परमार
शोधार्थी

शोध-सारांश :-

किन्नर जैसे समाज उपेक्षित और वर्जित मानता है, उसकी उपस्थिति विश्व के सभी देशों में हैं। भारत जैसे सांस्कृतिक महत्व वाले देश में ये धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्व भी रखते हैं। किन्तु किन्नरों की गतिविधिओं एवं दैनिक व्यवहार को देखने पर हमारे मस्तिष्क में की प्रश्न और संशय पैदा होता है। इसके लिए किसी देश–विशेष तथा समाज–विशेष की विचारधाराओं, ऐतिहासिक सामाजिक दृष्टिकोण को समझना परमावश्यक हैं। भारतीय परिवार में स्त्री–पुरुष के अस्तित्व को प्राकृतिक मानकर समाज की व्यवस्था के एक स्वस्थ जीवन का आदर्श माना है। ऐसे में किन्नर (हिजड़ा) के प्रति भारत का सामाजिक दृष्टिकोण विचारणीय है। प्राचीन, मध्यकालीन एवं आधुनिक दृष्टिकोण में जो समानता तथा भिन्नताएँ हैं उसको स्पष्ट करने की तथा वर्तमान/आधुनिक भारतीय सामाजिक दृष्टिकोण के तथ्य को उजागर करने की कोशिश की है।

शोध-पत्र :-

प्राचीन भारतीय किन्नर जीवन :

प्राचीन काल में रचित संस्कृत धार्मिक ग्रंथों में किन्नरों से संबंधित कई कथाएँ और उपकथाएँ प्राप्त होती है, जिससे हम किन्नरों के जीवन से जुड़ी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं या किन्नर जीवन के प्राचीन तथ्यों को उजागर कर सकते हैं। प्राचीन ग्रंथों में किन्नरों की उत्पत्ति को दैवीय माना है। जिसमें 'शिवपुराण' की कथा उल्लेखनीय है। 'शिवपुराण' की कथानुसार ब्रह्माजी ने जब सृष्टि की रचना करने लगे तो उनको इस कार्य में बहुत समय लगने लगा। इसलिए ब्रह्माजी ने भगवान शिव से मदद मांगी। शिव ने ब्रह्माजी की मदद करने के लिए अपने शरीर को आधे स्त्री और आधे पुरुष के रूप में बदलकर स्त्री–पुरुष की रचना करने लगे। इस कार्य को करते समय शिव आधे स्त्री और आधे पुरुष रूप में थे। इसलिए इन्हें अर्धनारीश्वर कहा गया, जिसे वर्तमान में किन्नर अपना प्रारम्भिक बिन्दु एवं उत्पत्ति स्थान मानते हैं।

इसके अतिरिक्त 'महाभारत' में वर्णित अर्जुन के बृहन्नला प्रसंग में अज्ञातवास के दौरान एक बार विराट राजा की राज्य मे अनुपस्थिति के दौरान विराट राजा के पुत्र कुमार उत्तर तथा कौरवों के बीच गायों की मुक्ति को लेकर युद्ध छिड़ जाता है तब बृहन्नला (अर्जुन) कुमार उत्तर का सारथी बनकर युद्ध लड़ने जाता है और युद्ध में विजीत होते हैं। कथा में किन्नर की शारीरिक एवं मानसिक मनोबल और प्रतिभा को उजागर करने का प्रयास किया गया है। किन्तु जब युधिष्ठिर विराट राजा के सामने बार–बार बृहन्नला वेशधारी अर्जुन की प्रशंसा करते

हैं तब राजा बहुत क्रोधित होते हुए युधिष्ठिर को अंतिम चेतावनी देते हुए कहते है कि "अधम ब्राह्मण! तू मेरे बेटे की प्रशंसा एक हिजड़े के साथ कर रहा है?...... मित्र होने के कारण मैं तेरे इस अपराध को क्षमा करता हूँ किन्तु यदि जीवित रहना चाहता है, तो फिर कभी ऐसी बात न कहना।"

इससे यह ज्ञात होता है कि एक किन्नर सभी गुणों से सम्पन्न होने के बावजूद भी सिर्फ उनकी कुछ शारीरिक अथवा जननांगों से संबंधित खामी के कारण उन्हें प्राचीन समय में राजनैतिक और सामाजिक गौरव तथा प्रशंसा से नितांत वंचित रखा जाता था। प्राचीन काल में तत्कालीन समय की तरह उन्हें उपेक्षा तो सहन नहीं करनी पड़ती किन्तु उन्हें किसी वीरताध् शोर्य के सम्मान के पात्र भी नहीं माना जाता था। किन्नरों को कला क्षेत्र में निपूर्ण मानकर उन्हें सिर्फ कला में ही क्रिया–कलाप की स्वतंत्रता दी जाती है। उनके लिए अन्य क्षेत्र जैसे राजनैतिक शासन, युद्ध–संबंधित, आर्थिक, व्यावसायिक आदि क्षेत्रों पर प्रतिबंध थे।

इसके अतिरिक्त 'श्रीमद्भागवतमहापुराण', 'विष्णुपुराण', 'कामसूत्र', रामायण आदि प्राचीन ग्रंथों में किन्नरों से संबंधित प्राचीन साक्ष्य मिलते हैं, जिसमें किन्नरों की उत्पत्ति, सामाजिक, राजनैतिक स्थिति का चित्रण किया गया है। जहाँ एक ओर किन्नर समाज में रहते तो थे किन्तु उन्हें समाज में अन्यों की तरह सम्मानीय पद प्राप्त नहीं होते थे वही दूसरी ओर शिव और विष्णु (मोहिनी अवतार) से संबंधित कथाओं में ये पूजनीय एवं दैवीय स्थान पर विराजित है।

मध्यकालीन भारतीय किन्नर जीवन :

मध्यकालीन भारत में मुगलशासन काल के दौरान अलाउद्दीन खिलजी ने हिजड़ों को प्रमुख पद सौंपे थे, जिसमें मलिक काफुर का नाम प्रसिद्ध है। मलिक ने भारत के कई राज्यों को जीतने में खिलजी की मदद करके अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। इसके अतिरिक्त "गुजरात के सुल्तान मुजफ्फर ने अपने शासनकाल में मुदित–उल–मुल्क नामक हिजड़े को अपना कोतवाल बनाया था। इसके अतिरिक्त मुगल बादशाह जहाँगीर के शासन काल में ख्वाजासरा हिलाल और इफ्तियार खान नामक हिजड़े भी प्रमुख पदों पर आसीन थे। इफ्तियार खान को जागीरदार भी बनाया गया था।"

वही "मुगल बादशाह औरंगजेब ने अपने पिता शाहजहाँ को कैदखाने में परेशान करने के लिए एक हिजड़ा नियुक्त कर रखा था। तुर्की और बाल्कन साम्राज्यों में भी किन्नरों को कोतवाल, सुरक्षाकर्मी, पहरेदार और जासूसी से जुड़े कार्यों के लिए नियुक्त किया जाता था।" इसके अतिरिक्त इस काल में "मुगल शहजादियों के अपने अंगरक्षक ख्वाजासरों से भी यौन संबंध बनाने के चर्चे आम थे। ऐसे ख्वाजासरा किन्नर य हिजड़ा समूह कई तरह के होते थे। कुछ जन्म से पुरुष होते थे, लेकिन हरम में ख्वाजासरा का पद पाने के लिए कपूर की गोलियों का सेवन कर नपुंसक बन जाते थे। कुछ जन्मजात किन्नर/हिजड़े होते थे और कुछ स्वयं अपना लिंग–विच्छेदन करवाकर किन्नर बन जाते थे।"

इस प्रकार मध्यकाल में किन्नरों की स्थिति सुधारवादी थी तो वही राज सत्ता में उनका सत्ता के नाम पर शारीरिक शोषण भी होता था। समाज में इनको लेकर एक मिश्र प्रतिक्रिया थी, जिसमें एक तरफ तो गरीब परिवार ऐसे बच्चे को आय का अच्छा साधन मानते हुए उन्हें शाही हरमों को सौंप देते थे वही दूसरी तरफ इन्हें शंका की दृष्टि से देखा जाता था।

ब्रिटिश शासन के दौरान किन्नरों का जीवन :-

ब्रिटिश शासन के दौरान ऐसी जानकारी प्राप्त की गई थी कि हिजड़ा अब भारत में से विलुप्त हो चुके है किन्तु ऐसा नहीं था। एक केस के माध्यम से हिजड़ों का मुद्दा समाज के समक्ष उपस्थित हुआ था, जिसमें १८५२ में भुराह नामक एक हिजड़े की मेनपुरी जिले में हत्या कर दी गई थी।

इस काल में भी हिजड़े बच्चों के जन्म पर, शादियों में तथा सार्वजनिक स्थलों पर बधाई मांगकर अपना जीवनयापन करते हुए मिलते थे। यह ध्यान देने योग्य बात है की १८६० के दशक में बहुत कम ऐसे बच्चे (हिजड़े) थे, जो किन्नर समाज या टोली के साथ रहते थे। क्योंकि वर्तमान समय की तरह ऐसे बच्चे को टोली को न सौंपकर उसका लालन–पालन परिवार वाले करते थे। वास्तव में इस दौर में बच्चों के अपहरण होने की संख्या बढ़ गई थी जिसका बाद में लिंगोछेदन कर टोली में शामिल कर दिया जाता था। भुराह जो हिजड़ा समाज का ही एक गुरु होता है, जिसका चेला दुल्लाह था। जब भुराह की हत्या की जांच की गई तो पाया गया कि ये अली बक्स नामक पुरुष प्रेमी के साथ रहती थी, किन्तु हत्या के कुछ दिन पहले ही दूसरे पुरुष प्रेमी के साथ रहने चली जाति है, जिससे अली बक्स और भुराह के बीच लड़ाई हो जाती है। इसी लड़ाई में अली बक्स भुराह की हत्या कर देता है।

इस केस के कारण तथा अन्य दूसरे कारणों से १९वीं सदी में कई औपनिवेश अधिकारियों के मतानुसार हिजड़े न केवल सार्वजनिक नैतिकता के लिए खतरा थे बल्कि इन औपनिवेशिक राजनैतिक सत्ता के लिए भी खतरा था। लिंग और उपनिवेशवाद में विद्वता के बढ़ते प्रमाण के बावजूद भी इस सदी के उत्तरार्ध में हिजड़ों की औपनिवेशिक आरक्षण की भूमिका नहीवत थी।

उन्नीसवी सदी के हिजड़ों के बारे में अधिकांशतः जीवन संघर्ष संबंधित जानकारी किन्नरों के रजिस्टरों और किन्नरों के पास मौजूद संपति के रजिस्टरों में दर्ज की गई थी, जिसे उत्तर पश्चिम प्रांत की पुलिस ने सन् १८६५ में संकलित किया गया था ऐसे जिला रजिस्टर उपयोगी जानकारियों की औपनिवेशिक श्रेणियों के अनुसार दर्ज किए गये व्यक्तिगत जीवन के नौकरशाही खाते में सुरक्षित थे।

वर्तमान समय में किन्नर जीवन :-

भारत में १९६० के बाद आधुनिकरण और शहरीकरण के कारण समाज में मध्य वर्ग का प्रभाव बढ़ने लगा था। तथा गद्य साहित्य के विकास के चलते समाज में वर्षों से दमित वर्गों को आवाज मिलने लगी थी। जिसमें स्त्री, कृषक और दलित जीवन प्रमुख थे, किन्तु अब तक किसी का भी ध्यान किन्नर पर नहीं पड़ा था। किन्तु साहित्य में वर्णित दमित वर्ग की चर्चा ने धीरे धीरे समाज में सुधारात्मक कार्य को प्रोत्साहन दिया है।

२०वीं सदी के अन्त तक समाज का वर्जित वर्ग किन्नर धीरे धीरे सामने आने लगा था। क्योंकि इस समय तक अधिकतर किन्नर जो यौन–व्यापार से जुड़े थे वह एड्स ग्रसित हो जाते हैं तथा जहाँ वे घर–घर जाकर शुभ–अवसरों पर बधाई मांगने जाते थे वही महंगाई के समय में अब बस स्टेशन, रेलवे स्टेशन, ट्रेन आदि में भीख मांगने लगते है। परिणाम स्वरूप वर्तमान में उन्हें देखकर सामान्य समाज अजीब स घृणास्पद व्यवहार करते हुए उन्हें उपेक्षित दृष्टि से देखते हैं। इस समय किन्नर का जन्म अब समाज में एक अभिशाप माना जाने लगा। जब कोई घर में किन्नर बच्चा जन्म लेता तो उसे तुरंत ही किन्नर डेरे को सौंप देते या फिर मार डालते हैं। जिससे हमें तत्काल समाज की ओछी सोच का पता चलता है। जब विभिन्न एनजीओ और साहित्यकारों का इस ओर

ध्यान गया, तो उन्होंने समाज में इनकी स्थिति को सुधारने के लिए प्रयत्न प्रारंभ कर दिए। इसके अतिरिक्त स्वयं किन्नर समाज के कई किन्नर भी अपने आत्म सम्मान की लड़ाई लड़ने के लिए सामने आए। जिससे समाज में किन्नर को लेकर सुधारात्मक पहल हो सके।

किन्तु सामाजिक संस्थाओं एवं एनजीओ द्वारा कीये जाने वाले प्रयास किन्नरों के उत्थान के लिए पर्याप्त नहीं है, इसके लिए कानूनी पहल भी आवश्यक है। क्योंकि भारतीय समाज तो उन्हें इंसान मानने से ही इनकार कर दे रहा है, ऐसे में एक स्वतंत्र व्यक्ति के सम्पूर्ण अधिकारों की किन्नर तक पहुँच बनाने के लिए कानून होना अतिआवश्यक हैं। वर्तमान में इस दिशा में "हिजड़ों के लिए कानून बन जाना निश्चय ही एक ऐतिहासिक कदम है परन्तु उसके साथ ही यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि उनके बारे में समाज के चित्त में एक स्वीकार्यतापूर्ण सकारात्मक बदलाव आना।...... जो वर्ग न जाने कब से समाज के हास–परिहास और उपहास का विषय बना रहा हो उसके प्रति सोच में एकाएक सकारात्मक परिवर्तन आ जाना कठिन है।"

निष्कर्ष :–

वर्तमान में किन्नरों को लेकर जो दृष्टिकोण है वह भी भूतकाल की परिस्थियों से प्रभावित हैं, जिसमें प्राचीनकाल में वे समाज के अभिन्न अंग के रूप में सामान्य जीवन व्यतीत करते थे। इन्हें समाज में एक सामान्य नागरिक की तरह सभी अधिकार प्राप्त थे, किन्तु उनको किसी बड़े पद एवं जिम्मेदारियाँ नहीं सौंपी जाती थी। किन्तु ब्रिटिश काल में इनकी स्थिति बिगड़ने लगती है, इस दौर में किन्नर अपने पारंपरिक व्यवसाय बधाई माँगने के जरिए गुप्तचर की भूमिका निभाते थे, जिससे ब्रिटिश शासकों में यह भय पैदा हुआ की ये हमारे शासन में खतरा बन सकता है। इसलिए इन्होंने धीरे–धीरे किन्नरों को आपराधिक श्रेणी में रख दिया, तथा समाज के लिए इन्हें अशांतिपूर्ण, अनैतिक एवं बच्चों के अपहरणकर्ता के रूप में वर्णित किया गया था। जिससे प्रभावित होकर शिक्षित वर्ग ने इसकी भरपूर निंदा की और उन्हें समाज से उपेक्षित, वर्जित और असभ्य बना दिया। स्वतंत्रता पश्चात भी भारतीय समाज इन्हीं विचारों से ग्रसित थी, जिससे किन्नरों का समुदाय आर्थिक तंगी एवं सामाजिक वर्जना के कारण बधाई माँगने के अतिरिक्त यौन–व्यापार में भी बढ़ी मात्रा में सक्रिय होने लगे।

आधुनिकरण के चलते समाज ने नए विचारों एवं दमित वर्गों के पुनरुत्थान के लिए सकारात्मक पहल की, जिसके परिणामस्वरूप किन्नर जो कई वर्षों से उपेक्षित, वर्जित एवं समाज के एक नागरिक के तौर पर सभी अधिकारों से वंचित थे, उनके उत्थान के लिए सामाजिक, न्यायिक, राजनीतिक पहल की जा रही है। जिसके लिए स्वयं किन्नर भी अपनी सक्रिय भूमिका निभा रहा है। वर्तमान में धीरे–धीरे समाज का दृष्टिकोण किन्नरों के प्रति बदल रहा है, अब उन्हें विभिन्न जगहों पर नौकरी भी दी जा रही है, शिक्षा के लिए भी सरकार सकारात्मक पहल कर रहे हैं। जिसके परिणाम के रूप में नजदीकी भविष्य में किन्नर भी समाज में एक जिम्मेदार नागरिक के रूप में स्वतंत्र रूप से जीवनयापन कर सकते हैं और समाज का दृष्टिकोण भी उनके प्रति सहृदयता पूर्ण, सम्मानीय एवं सम्पूर्ण रूप से सकारात्मक होगा।

संदर्भ सूची :–

1. श्रीमन्महर्षि वेदव्यासप्रणीत महाभारत (द्वितीय खण्ड), अनुवादक–साहित्याचार्य पण्डित रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम'। विराटपर्व, पृष्ठ–१२०२

2. हिन्दी कथा साहित्य में ट्रांसजेंडर, डॉ. अभिषेक सिंह, मूल संदर्भ– मध्यकालीन भारत का इतिहास, सतीश चन्द्र, एस. के. पांडे, पृष्ठ–११२–११३
3. हिन्दी कथा साहित्य में ट्रांसजेंडर, डॉ. अभिषेक सिंह, मूल संदर्भ– किन्नर समाज संदर्भ–तीसरी ताली, पार्वती कुमार, पृष्ठ– ३७
4. मुगल हरम, किशोरी सरन लाल, पृष्ठ–१८८
5. किन्नर नहीं हिजड़ा समुदाय (कुछ तथ्य, कुछ सत्य), नीरजा माधव, संस्करण– प्रथम, २०१६ ई., पृ. २७

ईमेल आईडी : parmarusha1397@gmail.com
मोबाइल नंबर 7777952329

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 325–331

तुलसी विरचित रामचरितमानस में पर्यावरण विमर्श

डॉ. दिलीप सिंह राजपूत
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, रानी पद्मावती महाविद्यालय लोरमी, जिला– मुंगेली (छ.ग.) 495115

भारतवर्ष के वैदिक एवं लौकिक साहित्य में प्रारंभिक काल से ही संस्कृति एवं पर्यावरण संरक्षण का भाव समाहित है। किंतु वर्तमान समय में मानव की विनाशक प्रवृत्तियों ने पर्यावरण को नुकसान ही पहुँचाया है। जब किसी समाज के क्रियाकलापों से पर्यावरण के प्रति बुद्धि–विहीन आचरण होने लगे, मानव प्रकृति को दूषित करने लगे, वह विलासितापूर्ण जीवन जीने के लिए प्रकृति का अंधाधुंध दोहन करने लगे तब उसके हित के लिए निर्मित पर्यावरण विनष्ट होने लगता है। ऐसे समय में पर्यावरण को संरक्षित करने में तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' हमारा मार्गदर्शन कर सकता है। गोस्वामी जी के समय में पेड़, पौधों, नदी, जलाशय, पर्वत तथा वनों के प्रति जो आदर भाव था, जैव–सत्ता के प्रति जो संवेदनशीलता थी, उसकी मूल भावना के प्रति ध्यान आकर्षित कर पर्यावरण के प्रति जागरूकता लाने का प्रयास गोस्वामी जी ने किया है। 'मानस' में वे कहते हैं कि मानवता तथा पर्यावरण को हानि पहुँचाने पर पृथ्वी को जितना कष्ट होता है, उतना जलस्रोतों, पर्वतों, नदियों, समुद्र आदि का बोझ वहन करने में नहीं होता–

गिरि सरि सिंधु भार नहि मोही। जस मोहि गरूअ एक परद्रोही।।

पर्यावरण का संरक्षण, उसे आधुनिक जीवन–शैली से संबद्ध करना तथा प्रकृति पूजा की जो शिक्षा हमें अपने पूर्वजों से प्राप्त है, उसके प्रति सजग रहकर अच्छे पर्यावरण निर्मित करने का संदेश हमें रामचरितमानस में मिलता है। वन के सुरम्य वातावरण में निवास करके राम ने एक आदर्श एवं कल्याणकारी संस्कृति की स्थापना की। उन्होंने व्यावहारिक चेतना का संचार करके मानव मन में नई ऊर्जा भर दी। इस ऊर्जा को समाज की सहज मनोवृत्तियों के साथ जोड़कर तुलसी की कला कौशल ने राम–रसायन के साथ प्रकृति–प्रेम के अनेक रंग भरे हैं। आज अनेक प्रकार के महामारी, भीषण गर्मी, सूखा जैसे जो संकट आया है, उसके मूल में पर्यावरण पर मानव द्वारा किया गया अत्याचार है । जबकि हमारी भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता पूर्णतः पर्यावरण पर आश्रित है। इसके पीछे मानवोन्नति हेतु विकसित किया गया एक विराट एवं उन्नत वैज्ञानिक दृष्टि है। हमारे आर्य ग्रंथों के निर्माता ऋषि–मुनियों ने चिरकाल तक अपने आश्रमों में कठिन तपश्चर्या द्वारा जो आदर्श जीवन शैली निर्मित की, वह मानव के सर्वतोभद्र कल्याण की भावना से परिपूरित थी। हमारे ऋषियों द्वारा निर्मित वेद–वेदांगों में संपूर्ण जीवन के मूल में पर्यावरण के क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर नामक पंच–महाभूतों की महत्ता स्वीकार की गई है।

वेदों को भारतीय वाङ्मय के प्राथमिक ग्रंथों के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। पंच–महाभूतों में अग्रणी पृथ्वी को वैदिक साहित्य में माता के रूप में पूज्य माना गया है। यजर्वेद में 'पृथ्वी माता द्यौः पिता' तथा अथर्ववेद

में 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' कहकर पृथ्वी और मनुष्य में माता–पुत्र का संबंध स्वीकार किया गया है, जबकि आकाश को पिता कहा गया है।

पृथ्वी के क्षरण को रोकने के लिए वेदों में वृक्षों को काटने का निषेध किया गया है और जल, अग्नि तथा वायु को देवरूप में महत्ता प्रदान की गई है। इन सबसे मनुष्य के कल्याण की आशा ही नहीं, अपितु 'द्यौः शांतिः अंतरिक्ष शांतिः पृथिवी शांतिः' कहकर वेद में उनकी सम्यक स्थिति के लिए शांति की कामना पर्यावरण संतुलन के लिए की गई है। इसके अतिरिक्त वृक्षों, वनस्पतियों और औषधियों आदि की शांति हेतु कल्पना की गई है। वेदों में पृथ्वी की रक्षा करने वाले ओजोन परत को 'उल्ब' कहा गया है। वहां पर्यावरण शोधन के लिए यज्ञों का विशेष विधान है। वेदों की अनेक ऋचाएं, संहिताएं, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक उपनिषद् आदि अनेक ग्रंथ पर्यावरण शोधन के महात्म्य से भरे पड़े हैं।

तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' भारतीय संस्कृति एवं जन–जीवन की संपूर्ण उपलब्धियों की महागाथा है। इस ग्रंथ में भारतीय गरिमा व संस्कृति की महिमा के साथ–साथ प्रकृति और पर्यावरण के मनोहारी स्वरूप का अंकन है। प्राकृतिक दृश्यों को जीवन के शाश्वत मूल्यों के साथ पिरोकर तुलसी ने 'मानस' में पर्यावरण के प्रति प्रेम प्रदर्शित किया है। मानव–मस्तिष्क ने जो कुछ भी सर्वोत्तम सृजित किया है, उसकी सर्वोत्तम अभिव्यक्ति 'रामचरितमानस' में उपलब्ध है। लोकमंगल, राष्ट्रमंगल एवं पर्यावरण की दृष्टि से वर्तमान समय में यह ग्रंथ विशेष प्रासंगिक है। मानस के सभी कांडों में रीति, नीति एवं लोकसिद्धांतों के साथ प्रकृति की अनुपम छटा विद्यमान है। मानस में वन का महात्म्य, वन वैभव, पवित्र नदियाँ, पर्यावरण, प्रकृति के मानवीकरण के साथ समुद्र, पर्वत, उपवन, वाटिका आदि का मनोहारी वर्णन मिलता है।

गोस्वामी जी ने रामकथा को प्रकृति के साथ समन्वित रूप में प्रस्तुत किया है। उनकी तूलिका रामकथा का वर्णन करते समय प्राकृतिक तत्त्वों के साथ एकाकार हो गई है। यह निश्चय करना कठिन है, कि रामकथा में प्रकृति तत्त्व या प्रकृति तत्त्व में रामकथा विरचित की गई है। मानस के प्रारंभ में भूमि, जल, मेघ, उदधि, सर–सरोवर, ताल, कमल, सीप, पराग, मकरंद, अलि, हंस, मीन, जलचर, तड़ाग, जल–विहग, भ्रमर, लता, बसंत, फल–फूल, शुक–पिक–काग, ऋतुएं, वाटिका, वन, बाग, माली, सुमन आदि प्राकृतिक अवयवों को रामकथा के साथ तुलसी ने सजाकर रखा है। अपने आराध्य को केंद्र में रखकर गोस्वामी जी ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि बिना पर्यावरण के जीवन संभव नहीं है। जिस प्रकार मानसिक संतुष्टि के लिए विचारों की शुद्धता आवश्यक है उसी प्रकार संपूर्ण जीवमात्र के लिए शुद्ध निर्मल जल, वायु, प्रकाश आदि प्राकृतिक अवयवों का संतुलन पृथ्वी पर आवश्यक है। इसीलिए प्रकृति–प्रेमी गोस्वामी जी ने 'मानस' के अधिकांश कथानकों के साथ प्रकृति के रंग बड़ी कुशलता से भरे हैं। सुंदर सुहावनी स्वच्छ नदी की पवित्रता को ऋतुओं के साथ तादात्म्य स्थापित करके राम के जन्म से लेकर राज्याभिषेक तक एवं शिवजी के विवाह का वर्णन तुलसी की रचना–प्रकृति की दिव्यता एवं विशिष्टता का परिचायक है :–

कीरति सरित छहूँ रितु रूरी। समय सुहावनि पावनि भूरी।
हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू। सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू।।
बरनब राम विवाह समाजू। सो मुद मंगलमय रितुराजू।
ग्रीष्म दुसह राम बनगवनू। पंथकथा खर आतप पवनू।।

बरषा घोर निसाचर रारी। सुरकुल सालि सुमंगलकारी।

राम राज सुख बिनय बड़ाई। बिसद सुखद से सरद सुलई।।

अर्थात् यह कीर्ति रूपिणी नदी छहों ऋतुओं में सुंदर है। ऋतुओं के समय आने पर यह बहुत सुहावनी और पवित्र हो जाती है। इसमें शिव–पार्वती का विवाह हेमंत ऋतु है। श्रीराम का सुखदायी जन्मोत्सव शिशिर ऋतु है। श्रीराम के विवाह–समाज का वर्णन ही आनंद–मंगलमय ऋतुराज वसंत है। श्रीराम जी का वनगमन दुःसह ग्रीष्म ऋतु है और मार्ग की कथा ही कड़ी धूप और लू है। राक्षसों के साथ घोर युद्ध ही वर्षा ऋतु है, जो देवकुलरूपी धान के लिए सुंदर कल्याण करने वाली है। रामजी के राज्यकाल का जो सुख, विनम्रता और बड़ाई है वही निर्गत सुख देने वाली सुहावनी शरद ऋतु है। 'रामचरितिमानस' में अनेक स्थानों पर राजसत्ता के द्वारा कुएं, तालाब, बावड़ी आदि के निर्माण के साथ बगीचे लगाने का कार्य भी विधि–विधान से किया जाता था।

राजा प्रतापभानु ने भी जल संरक्षण एवं प्रकृति संरक्षण के अनेक उपाय किए तथा राजधर्म का निर्वाह करते हुए पर्यावरण के प्रति प्रेम प्रदर्शित किया था। उसने ब्राह्मणों के लिए घर और देवताओं के लिए सुंदर विचित्र मंदिर सब तीर्थों में बनवाए थे :–

नाना बापीं कूप तड़ागा। सुमन बाटिका सुंदर बागा।।

बिप्रभवन सुरभवन सुहाए। सब तीरथन्ह विचिन बनाए।।

भारतवर्ष में पर्यावरण का मूलाधार प्रकृति की पूजा अनादिकाल से होती रही है। वैदिक ऋषि प्रकृति के अनन्य उपासक थे। प्रकृति की पूजा भगवान के रूप में की जाती है। जल, वायु, अग्नि हमारे देवता माने गए हैं। यह प्रकृति पंच–तत्त्वों में स्थित है। प्रकृति से अलग रहकर मानव एक क्षण भी सुरक्षित नहीं रह सकता। हमारा जीवन निर्वाह प्रकृति के बिना संभव नहीं है। आज प्रकृति का अंधाधुंध दोहन मानव द्वारा किया जा रहा है। पंचतत्त्वों के असंतुलन पर्यावरण को असंतुलित कर रहा है जिसके कारण बड़ी तीव्र गति से प्रदूषण बढ़ रहा है।

जब मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम वनवास काल में वन, तालाब और पर्वतों के सुंदर दृश्यों को देखते हुए वाल्मीकिजी के आश्रम में पहुँचते हैं, तो श्रीराम ने मुनि के आश्रम में सुहावने प्राकृतिक दृश्यों का अवलोकन किया, जहाँ पर सुंदर पर्वत, वन और स्वच्छ जल विद्यमान है, जहां सरोवरों में कमल और वनों में वृक्ष फूल रहे हैं और मकरंद–रस में मस्त हुए भौरे सुंदर गुंजार कर रहे हैं। बहुत से पशु–पक्षी कोलाहल कर रहे हैं और वैर से रहित होकर प्रसन्न मन से विचरण कर रहे हैं–

देखत बन सर सैल सुहाए। वाल्मीकि आश्रम प्रभु आए।

राम दीख मुनि बासु सुहावन। सुंदर गिरि काननु जलु पावन।।

सरनि सरोज बिटप जन फूले। गुंजत मंजु मधुप रस भूले।

खग मृग विपुल कोलाहल करहीं। बिरहित मेरे मुदित मन चरहीं।।

राम ने मुनिवर को प्रणाम करने के पश्चात् अपने निवास के लिए स्थान पूछा। मुनि ने अनेक आध्यात्मिक स्थानों का परिचय देते हुए एक स्थान ऐसा भी बताया, जहाँ पर लोग नदियों, सरोवर, झीलों को गंदा करते हों, उनका निरादर करते हों तथा पृथ्वी तत्त्व के सौंदर्य को नष्ट करते हों, उन स्थानों को आप भ्राता व पत्नी सहित सुरक्षित करिए–

निदरहिं सहित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु, जल होहिं सुखारी।

तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक।।

इस प्रकार मुनिवर वाल्मीकि जी ने अनेक स्थानों के विवेचन के साथ पर्यावरण तथा पृथ्वी तत्वों की सुंदरता बिगाड़ने वालों को शिक्षित करने का उपदेश देते हुए अंत में कहा, कि आप चित्रकूट पर्वत पर निवास कीजिए, जहाँ पर सुहावना पर्वत है, सुंदर वन हैं तथा हाथी, सिंह, हिरन और पक्षियों का विहार स्थल है–

चित्रकूट गिरि करहु निवासा। तहँ तुम्हार सब भांति सुपासू।

सैलु सुहावन कानन चारू। करि केहरि मृग बिहरा बिहासू।।

वाल्मीकि जी ने राम से कहा, तुम उन लोगों के पास जाकर रुको, उन्हें समझाओ, शिक्षित करो, जो नदी, समुद्र, सरोवर, झील, झरना आदि जलस्रोतों को मलिन करते, उसका निरादर करते एवं पृथ्वी तत्त्वों के सौंदर्य को बिगाड़ते हैं। उनसे कहो, कि वे पर्यावरण को दूषित न करें। तात्कालीन ऋषि–मुनि पर्यावरण के प्रति कितने सजग थे, जो जलस्रोतों की सुरक्षा का उपदेश करते थे। ऋषि वाल्मीकि ने कुछ जड़ी–बूटी राम को दिया होगा, जिसकी एक बूंद से जल की सफाई हो जाती रही होगी। इस एक बूंद की विवेचना गोस्वामी जी ने राम के रूप में बिंदु रूपी जल को समाहित करके भक्त की पराकाष्ठा व्यक्त की है। तत्कालीन ऋषि–मुनियों के पास वैज्ञानिक शोध के सारतत्त्व विद्यमान थे जो उन्होंने राम को उपलब्ध कराये थे। राम ने उन्हीं वैज्ञानिक तकनीक का प्रयोग जन–कल्याण व पर्यावरण संरक्षण के लिए किया।

वाल्मीकि मुनि से विचार–विमर्श के पश्चात राम चित्रकूट के सुखद पर्यावरणीय वातावरण में निवास करते हैं, जहां पर्वत और सुंदर वन हैं। अत्रि ऋषि की पत्नी अनुसुइया जी के तपबल से लायी गई मंदाकिनी नदी है। अत्रि और बहुत से श्रेष्ठ मुनि वहां निवास करते हैं, जो योग, जप–तप करते हुए शरीर को कसते हैं। राम उसी पर्वत श्रेष्ठ चित्रकूट को गौरव प्रदान करते हैं–

नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रिप्रिया निज तप बल आनी।

सुरसरि धार नाउं मंदाकिनि। जो सब पातक, पोतक डाकिनि।।

अत्रि आदि मुनिबर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं।

चलहु सफल श्रम सब कर करहू। राम देहु गौरव गिरिवरहु।।

मुनि आज्ञा से श्रीराम, लक्ष्मण व जानकी सहित चित्रकूट में कुटी बनाकर रहने लगे। यह समाचार सुनकर कोल, किरात, भील आदि वनवासी लोगों ने कंदमूल, फलादि आदर सहित उन्हें प्रदान किया। वे वनवासी राम के आगमन से प्रफुल्लित हैं। ये वनवासी चित्रकूट के सुखद पर्यावरण से परिचय करते हुए राम से कहते हैं–

धन्य भूमि बन पंथ पहारा। जहँ जहँ नाथ पाउ तुम्ह धारा।

धन्य बिहरा मृग काननचारी। सफल जनम भए तुम्हहि निहारी।।

हम सब धन्य सहित परिवारा। दीख दरस भरि नयन तुम्हारा।

कीन्ह बासु भल ठाउँ बिचारी। इहां सकल रितु रहब सुखारी।।

हम सब भांति करब सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई।

बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जोहा।।

तहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउब। सर निरझर जलठाउं देखाउब।

विभिन्न प्रकार के पक्षी चित्रकूट के सुखद पर्यावरण में निवास करते हैं, जिसमें नीलकंठ, कोयल, तोते, पपीहे, चकवे और चकोर आदि पक्षी कानों को सुख देने वाली और चित्त को चुराने वाली भांति–भांति की बोलियां बोलकर मन को आकृष्ट करती हैं–

नीलकंठ कलकंठ सुक चातक चक्क चकोर।
भाँति भाँति बोलहिं बिहग श्रवन सुखद चित चोर।।

यद्यपि चित्रकुट में वृक्षों की कमी नहीं है, तथापि राजमहलों की महारानी, मखमल के गद्दों पर चलने वाली सीता ने वन में वृक्षारोपण का कार्य किया। जिसने कभी कठोर भूमि पर पैर न रखा था। राजसी वैभव में पली–बढ़ी सीता जो बंदरों के चित्र देखकर डर जाती थीं, आज वनप्रदेश के प्राकृतिक वातावरण में अत्यंत प्रसन्न हैं। वह वन के घने वृक्षों के मध्य में जहां पर राम ने पर्णकुटी बनायी है, उसके आसपास लक्ष्मण के साथ वृक्ष लगाती हैं। वृक्षों की देखभाल करती हैं। पौधों में नियमित रूप से पानी देती हैं। अपने करकमलों से वेदी बनाती हैं तथा कुटिया की साफ सफाई करती हैं–

एतरू सरित समीप गोसांई। रघुबर परनकुटी जहँ छाई।
तुलसी तरूवर विविध सुहाए। कहुँ कहुँ सियं कहू लखन लगाए।
बट छायां वेदिका बनाई। सियं निज पानि सरोज सुहाई।

श्रीराम जी ने चित्रकूट वास के दौरान वन–प्रबंधन अपने हाथों में लिया। पर्वत को राजधानी बनाकर राम के राज्य में वन की संपत्ति इस प्रकार सुशोभित है, मानो राजा राम को पाकर प्रजा सुखी हो गई हो। राज्य के सात अंगों–स्वामी (राम), अमात्य (राम का वैराग्य और विवेक), सुहद् (मुनिगण), कोष (वनसंपत्ति), राष्ट्र (सुहावना वन प्रदेश), दुर्ग (पर्वत) और सेना (गैंडा, हाथी, सिंह, बाघ, सुअर, भैंसे और बैल आदि) को पर्यावरण के विभिन्न अंगों से जोड़कर राजा वन में निष्कंटक राज्य कर रहा है। राज्य के इन्हीं सप्तांगों से नगर में सुख, संपत्ति और शांति व्याप्त है। तुलसी की दृष्टि ही ऐसी है, जो वनप्रदेश में राज्य की सर्वोत्तम पर्यावरणीय व्यवस्था की कल्पना कर सकती है–

राम बास बन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा।
सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू। विपिन सुहावन पावन देसू।
भट जम नियम सैल राजधानी। सांति सुमति सुचि सुंदर रानी।
सकल अंग संपन्न सुराऊ। राम चरन आश्रित चित चाऊ।

चित्रकूट में वन के विशिष्ट वातावरण में पशु–पक्षियों के साथ ऋषि–मुनियों की आत्मीयता के दर्शन होते हैं। पशु–पक्षी मुनियों के पास बेधड़क चले जाते हैं, परन्तु हिंसा करने वाले बांधकों को देखते ही भाग जाते हैं। आत्मीयता, प्रेम और शत्रुता का भाव पशु–पक्षी भी पहचानते हैं। फिर मनुष्य शरीर तो गुण और ज्ञान का भंडार ही है–

मुनिगन निकट बिहरा मृग जाहीं। बाधक बधिक विलोकि पराहीं।
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना। मानुष तनु गुन स्थान निधाना।

वाल्मीकि जी के समान ही अगस्त्य मुनि ने भी राम से कहा, कि हे राम! आप दंडक वन को पुनर्जीवित कीजिए, जो गौतम के कठोर शाप के कारण विनष्ट हो गया है–

दंडक वन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साथ मुनिवर कर हरहू।।

रामचरित मानस के अनुसार, दंडक वन में राक्षसों का अत्यधिक आतंक था। राक्षसों ने मुनियों के आश्रम नष्ट करके उन्हें मार डाला था। राक्षसों के आतंक से दुःखी होकर अनेक मुनियों ने आतंकी ठिकानों को नष्ट कर दिया था। आतंकी ठिकानों के नष्ट होने के साथ दंडक वन के पर्यावरण की भी क्षति हुई थी। राम ने गोदावरी नदी के समीप पंचवटी नामक स्थान में निवास कर अपना तंत्र विकसित किया। वहां पर अनेक प्रकार के पौधे लगाये। सिंचाई की व्यवस्था की। वन के मध्य में सरोवर बनवाया। अनेक पशु–पक्षी इस सरोवर का पानी पीकर प्यास बुझाते थे। राम के सुप्रबंधन से वन शीघ्र ही हरा–भरा हो गया। मुनिगण निर्भीक होकर अपनी साधना करने लगे।

गोस्वामी जी कहते हैं, कि जब से श्रीरामजी ने यहां पर आकर निवास किया, तब से मुनि सुखी हो गए, उनका भय समाप्त हो गया। पर्यावरण खिल गया। पर्वत, वन, नदी, तालाबों का जल स्वच्छ हो गया। वे दिनोंदिन सुहावने लगने लगे। पशु–पक्षियों के समूह आनंद से रहने लगे। भौरों के गुंजार से वन पुनः शोभायमान हो उठा। श्रीराम ने दंडक वन में रहकर अवर्णनीय तरीके से अनेक सुंदर एवं आकर्षक पर्यावरणीय सुधार किए–

जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भए मुनि बीती त्रासा।
गिरि बन नदीं ताल छवि छाए। दिन दिन प्रति अति होहिं सुहाए।
खग मृग बृंद अनंदित रहहीं। मधुप मधुर गुंजत छबि लहहीं।
सो बन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रगट रघुबीर बिराजा।

भरत की भूमि भारतवर्ष का भौगोलिक परिवेश प्रकृति के सुरम्य सौंदर्य से अभिमंडित है। आसेतु हिमालय तक फैले इस देश में पर्वतों की चोटियां, हरे–भरे वन, नदियां, सागर और ऋषियों के आश्रम हमारे गौरव के प्रतिपादक हैं। पर्यावरण को दोषमुक्त रखने में पर्वतों की भूमिका महत्त्पूर्ण है। पर्वत एक ओर पृथ्वी की सुरक्षा करते हैं, वर्षा होने में सहायक बनते हैं, तो दूसरी ओर शुद्ध वायु, पवित्र नदियां, औषधि और बहुमूल्य खनिज पदार्थ देकर मानवीय जीवन को सुखद बनाते हैं। पर्वत सभी प्रकार के दोषों को दूर कर प्रदूषण से हमारी रक्षा करते हैं। पर्वतों की उपयोगिता का निर्धारण एवं सबसे अधिक प्राणवायु देने वाले वृक्ष पीपल की महिमा का वर्णन हमारे ग्रथों में मिलता है। श्रीरामचरितमानस में सुमेरु, कैलाश, हरगिरि, शिवसैल, मंदाराचल, सुबेल, सृंग, विंध्याचल, उदयाचल, अस्ताचल, नीलगिरि, कामदगिरि, ऋष्यमूक आदि पर्वतों का उल्लेख अनेक स्थानों पर किया गया है। इन पर्वतों की प्राकृतिक संपदा एवं प्रकृति के सुंदर दृश्य श्मानसश में विद्यमान हैं।

रामराज्य में पर्यावरण प्रदूषित नहीं था। प्राकृतिक वातावरण सुखद था। प्रकृति उन्मुक्त भाव से सुख प्रदान करती थी। प्रकृति के दोहन की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। जल की शुद्धता थी। लोग नदियों को दूषित नहीं करते थे। वृक्ष फल–फूलों से लदे रहते थे। प्रकृति के सुगंधित वातावरण के संपर्क से वायु प्रदूषित न थी। भूमि से खाद्यान्न की उपलब्धता प्रचुर मात्रा में थी। तुलसी ने प्रकृति के साथ प्रेमपूर्वक रहने का अनोखा आदर्श प्रस्तुत किया है। इतना ही नहीं फसल, अन्न, पुष्प–पौधों, जीव–जंतुओं एवं मनुष्यों को चंद्रमा की शीतलता एवं सूर्य का ताप लाभकारी व जीवनदायी शक्ति प्रदान करने वाला था। प्रजा निरोगी तथा जीवन सुखमय था।

रघुवरपुर अयोध्या के सभी लोगों ने प्रयत्न करके पुष्पों की वाटिका अपने–अपने घरों के सामने बनाई थी। वे वाटिका की प्रतिदिन सिंचाई, निकाई, गुड़ाई करते थे, जिससे वातावरण सुहावना रहता था। किसी भी शुभ

अवसर पर पौधारोपण करना, उनकी यत्नपूर्वक देखभाल करना रामायण कालीन संस्कृति का अभिन्न अंग था–

सुमन बाटिका सबहिं लगाई। विविध भाँति करि जतन बनाई।

लता ललित बहु जाति सुहाई। फूलहिं सदा बसंत की नाई।

प्राकृतिक तत्त्वों का 'मानस' में चित्रण करके तुलसीदास जी ने भावी पीढ़ी की चेतना जागृत करने का कार्य किया है। उन्होंने यह भी संदेश दिया है कि पर्यावरण की सुरक्षा करना हमारा नैतिक दायित्व होना चाहिए। यदि हम सब रामचरितमानस का अनुसरण करें, तो आज के समय में प्रदूषण की बढ़ती समस्या से छुटकारा पा सकते हैं। प्रकृति की उपासना करने से हम सभी सुखी एवं स्वस्थ रहेंगे। स्वच्छ तथा स्वस्थ पर्यावरण के साथ हमारा पथ आलोकित हो जाएगा। तुलसीदास के प्रकृति प्रेम का अनुसरण करने पर हमारे आत्मोत्थान का मार्ग प्रशस्त होगा। इस प्रकार हम कह सकते हैं, कि रामचरितमानस हमें पर्यावरण संरक्षण की शिक्षा देने के साथ–साथ उत्तम स्वास्थ्य प्राप्ति के उपाय भी सुझाते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. दास, तुलसी (गोस्वामी), श्रीरामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करण–2014.
2. वाल्मीकि (महर्षि), रामायण, गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करण–2021.
3. दीक्षित, कृष्णगोपाल (डॉ.), तुलसी साहित्य में पर्यावरण दर्शन।
4. तुलसी : व्यक्ति और साहित्य, बहुवचन प्रकाशन वर्धा महाराष्ट्र, अंक–2023, पृष्ठ–116–123
5. त्रिपाठी, विश्वनाथ, लोकवादी तुलसीदास, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, संस्करण–1991.
6. पटेल, प्रफुल्ल, रामचरितमानस में प्रकृति चित्रण, शांति प्रकाशन, प्रथम संस्करण–2012.

पत्राचार का पता–

डॉ. दिलीप सिंह राजपूत, S/o सोमनाथ सिंह,

स्कूल पारा मजगांव, पोस्ट– लोरमी, तहसील– लोरमी, जिला– मुंगेली (छत्तीसगढ़) पिन–495115

मो.नं.– 9098771548

EMAIL : dilip61286@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 332-335

हिंदी कथा साहित्य में बाल यौन शोषण का चित्रण : बाल विमर्श के परिप्रेक्ष्य में

पारुल
पीएच.डी., शोधार्थी, डॉ. बी. आर. अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली।

प्रस्तावना :–

'बाल विमर्श' एक समकालीन गंभीर सामाजिक–साहित्यिक विषय है, जो बच्चों के अस्तित्व, अधिकारों, अनुभवों और सामाजिक संरचनाओं में उनकी स्थिति को केंद्र में रखकर विश्लेषण करता है। वर्तमान वैश्विक साहित्यिक विमर्शों में जिस प्रकार हाशिए के समुदायों की उपस्थिति, उनकी अस्मिता और उनके अनुभवों को केंद्र में लाने का प्रयास किया गया है, उसी क्रम में 'बाल विमर्श' एक नवीन एवं अत्यंत प्रासंगिक चिंतन–धारा के रूप में उभरता है। यह विमर्श उस 'बाल जगत' की ओर दृष्टि करता है, जो अब तक प्रायः साहित्यिक संवेदनाओं की परिधि में तो रहा, किंतु उसके अंतःकरण की पीड़ा, मनोभाव, स्वप्न और संघर्षों को यथोचित स्थान नहीं मिल पाया। यह विमर्श उन असहनीय यथार्थों को उद्घाटित करता है, जिनमें बाल श्रम, बाल यौन शोषण, बाल तस्करी, बाल विवाह, शैक्षिक वंचना, और घरेलू उपेक्षा जैसी सामाजिक समस्याएँ शामिल हैं। ये केवल आँकड़ों का विषय नहीं, बल्कि उन मासूम बच्चों के जीवन की त्रासदी है, जो अपने अधिकारों से वंचित रहकर भी मौन रहने को बाध्य हैं।

बीज शब्द :– बाल विमर्श, बाल यौन शोषण, संवेदना, सामाजिक हस्तक्षेप, चेतना।

साहित्य में बाल पात्रों की उपस्थिति कोई नवीन परिघटना नहीं है, किंतु उनके जीवनानुभवों को केंद्र में रखकर रचा गया साहित्य विरल है। अधिकांशतः बालक को एक भोले, निश्छल एवं ऐसे व्यक्ति के रूप में देखा गया है जिसे केवल नैतिक शिक्षा देना ही समाज का दायित्व है। बाल विमर्श इस पारंपरिक दृष्टिकोण को प्रश्नांकित करता है, जिसमें बच्चों को केवल भोले, निष्पाप और निर्बल जीव समझा जाता था। यह विमर्श इस बात पर जोर देता है कि बच्चे भी उसी समाज का हिस्सा हैं, जिसकी जटिलताएँ – वर्गभेद, जातिभेद, लिंग भेद, हिंसा और शोष उनके जीवन को गहराई से प्रभावित करती हैं। इसका आशय यह है कि उनके साथ भेदभाव, हिंसा या उपेक्षा भी हो सकती है – जैसे बाल यौन शोषण, बाल श्रम, लिंग आधारित भेदभाव आदि।

बाल विमर्श, साहित्य को केवल कल्पना का क्षेत्र नहीं रहने देता, बल्कि उसे सामाजिक हस्तक्षेप और नैतिक उत्तरदायित्व की ओर प्रेरित करता है। हिंदी साहित्य में यदि बाल विमर्श की उपस्थिति का अनुशीलन किया जाए, तो वह हमें कई महत्वपूर्ण रचनाओं की ओर ले जाता है, जिनमें बच्चों के मनोविश्लेषण, सामाजिक

स्थितियों और उनकी अस्मिता की पहचान की संघर्षशील छवियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। इस शोध का उद्देश्य केवल बाल पात्रों की उपस्थिति को सूचीबद्ध करना नहीं, अपितु उनके माध्यम से हिंदी साहित्य में उपस्थित सामाजिक संरचनाओं की परतों को उद्घाटित करना है, जहाँ बालक एक संवेदनशील इकाई के रूप में अपने समय और समाज से संघर्ष करता हुआ दिखाई देता है।

हिंदी साहित्य में बाल पात्रों की उपस्थिति चाहे कथा–साहित्य हो या आत्मकथाएं, एक लंबे समय से विद्यमान रही है। परंतु बाल विमर्श के रूप में उनका सैद्धांतिक अध्ययन अपेक्षाकृत नया है। यह विमर्श स्त्री विमर्श, दलित विमर्श तथा आदिवासी विमर्श की तरह ही एक 'वंचित अस्मिता' की खोज और पुर्नस्थापना का प्रयास है। हिंदी में बाल साहित्य का प्रारंभ मुख्यतः नैतिक शिक्षा, मनोरंजन और चरित्र–निर्माण की दृष्टि से हुआ। इस युग में बालकों के लिए कहानियाँ, लोरियाँ, कविताएँ तथा नीतिकथाएँ लिखी गईं। इस दौर में बाल पात्रों की दुनिया एक आदर्श, निर्दोष और नैतिक जगत के रूप में चित्रित होती थी। इसके बाद आधुनिक कथा साहित्य में बाल पात्रों को सामाजिक यथार्थ से जोड़ा गया। समकालीन हिंदी साहित्य में बाल यौन शोषण, बाल तस्करी, घरेलू हिंसा, शिक्षा से वंचना जैसे विषयों पर केंद्रित रचनाएँ सामने आने लगी हैं। इसे ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य में बाल विमर्श का विकास एक क्रमिक प्रक्रिया रही है – जो बच्चों की भोली–मासूम छवि से आरंभ होकर, उसकी सामाजिक उपेक्षा, पीड़ा, और प्रतिरोध तक पहुँचती है।

वर्तमान साहित्य में रचनाकार बाल पात्रों को केंद्रीय रूप में उकेर रहे हैं। विष्णु प्रभाकर, कृष्ण सोबती, प्रभा खेतान, मंजुल भगत, नासिरा शर्मा, कमल कुमार, मनीषा कुलश्रेष्ठ, आदि अन्य लेखकों ने बच्चों की समस्याओं को गहराई से रेखांकित किया है। चूँकि यह शोध–पत्र बच्चों के यौन शोषण पर आधारित है तो यहाँ इसी समस्या पर आधारित रचनाओं की चर्चा की जाएगी। इससे पहले यहाँ बाल यौन शोषण के अर्थ पर प्रकाश डालना भी जरूरी है। बाल यौन शोषण एक ऐसी सामाजिक समस्या है, जिसमें अठारह वर्ष से कम आयु के बच्चों के साथ बलपूर्वक या बहला–फुसला कर षड़यंत्र के माध्यम से लैंगिक उत्पीड़न किया जाता है। यह दुराचार केवल शारीरिक के साथ–साथ मानसिक और भावनात्मक हिंसा का रूप भी ले सकता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अध्ययन के अनुसार, 'बाल यौन शोषण एक ऐसी गतिविधि है, जिसमें शामिल बच्चा उसे पूरी तरह समझने में असमर्थ होता है। न तो वह बच्चा इस गतिविधि के लिए मानसिक तथा शारीरिक रूप से तैयार होता है और न ही वह उसके लिए सहमति देने के लिए समर्थ होता है।' बाल यौन शोषण का प्रभाव केवल तत्काल पीड़ा तक सीमित नहीं होता, बल्कि यह बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य, आत्म–सम्मान पर गहरा तथा दीर्घकालिक प्रभाव छोड़ता है। विष्णु प्रभाकर का 'अर्द्धनारीश्वर' उपन्यास मूल रूप से उन स्त्रियों पर केंद्रित है, जिनके साथ बलात्कार जैसी वीभत्स घटना हुई है। इस उपन्यास में विभिन्न बलात्कार पीड़ित स्त्रियों को दिखाया गया है, जिसमें शालिनी की कथा इसीलिए यहाँ महत्त्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि उसके साथ मात्र सात वर्ष की अवस्था में सत्तर वर्षीय वृद्ध ने यौन शोषण किया था। इसे लेखक ने बहुत गंभीरता से चित्रित किया है, जिसमें पीड़ित बच्ची पर दीर्घकालिक दुष्प्रभाव को भी मुखरता से दिखाया गया है।

इसी प्रकार कृष्णा सोबती का 'सूरजमुखी अँधेरे के' उपन्यास भी रत्ती के माध्यम से बाल यौन शोषण की व्यथा–कथा कहता है। उपन्यास में यौन शोषण की घटना के प्रभाववश रत्ती का स्वभाव आक्रामक हो जाता है, उसके मन–मस्तिष्क पर बचपन की घटना का नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। वह वयस्क होने तक भी स्वयं को

सहज महसूस नहीं कर पाती। प्रभा खेतान के 'छिन्नमस्ता' उपन्यास भी इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण हो जाता है। इसमें प्रिया का भाई ही उसके साथ यौन उत्पीड़न करता है। लेखिका ने समाज के कटु यथार्थ से पाठक को परिचित कराया है। परिवार में होने वाले यौन शोषण को इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने बेबाकी से सामने रखा है। हालाँकि उपरोक्त उपन्यास प्रत्यक्ष रूप से बाल यौन शोषण पर केंद्रित नहीं है, किंतु इनमें जिस प्रकार बचपन के खो जाने की पीड़ा को व्यक्त किया गया है, वह इस विमर्श की पृष्ठभूमि को मजबूत करता है।

उपन्यासों के पश्चात यदि कहानियों की चर्चा करें तो मंजुल भगत की 'संबंधहीन' कहानी में सड़कों पर गुजर–बसर करने वाले बच्चों के जीवन के खुरदुरे यथार्थ को चित्रित किया गया है। इसमें एक ललिता नामक बच्ची केन्द्रीय पात्र की भूमिका निभाती है, जो मात्र दस वर्ष की आयु में गर्भवती हो जाती है। यौवनावस्था में कदम रखने से पहले ही वह मातृत्व के बोझ तले दब जाती है। इस कहानी के माध्यम से यह समझा जा सकता है कि इस प्रकार सड़क किनारे रहने को विवश लोगों के साथ सुरक्षा की स्थिति कितनी चिंतनीय होती है। इसी विषय पर आधारित नासिरा शर्मा की 'फिर कभी' कहानी भी उल्लेखनीय है। यह कहानी गरीब व बेसहारा बच्चों के साथ होने वाले शोषण पर बात करती है। इस कहानी में छः बच्चों का समूह है, जो विभिन्न कारणों से अपने घर से दूर रेलवे स्टेशन पर रहने को मजबूर है। इन्हीं बच्चों में ग्यारह वर्षीय मीनाक्षी अपनी आपबीती अन्य बच्चों को बता कर उन्हें सचेत करती है। वह किसी यात्री द्वारा यौन उत्पीड़न का शिकार बन गई थी। घटना के पुनः घट जाने के भय से वह सभी को सतर्क करती दिखाई पड़ती है। कमल कुमार की 'पुल' कहानी में मानवीय सम्बन्धों की सीमा तोड़ने वाले पिता को दिखाया गया है। लेखिका ने बड़े कलात्मक ढंग से साहित्यिक मर्यादा का सम्मान करते हुए एक पिता को अपनी ही बेटी के जीवन को एक भयावह छाया से ढकते हुए दिखाया है। वह अपनी बेटी सविता का यौन शोषण करता है। लेखिका सामाजिक ढांचे की उस दरार की ओर संकेत करती हैं, जहाँ परिवार जैसे संरक्षक संस्थान भी हिंसा के स्रोत बन जाते हैं।

मनीषा कुलश्रेष्ठ द्वारा रचित 'फांस' कहानी भी पिता रूपी रक्षक के भक्षक बन जाने की कथा कहती है। इस कहानी में अंतिमा को अपने पिता द्वारा शोषित होते हुए दिखाया गया है। जब इस प्रकार की घटनाओं को 'अपने' ही अंजाम देते हैं तो इसके परिणामस्वरूप बच्चों का विश्वास छिन्न–भिन्न हो जाता है। इस घायल विश्वास की स्थिति को सुप्रसिद्ध नारीवादी– मानवाधिकार कार्यकर्ता कमला भसीन की पंक्तियों के माध्यम से समझा जा सकता है, "बदनीयत से ये डरें और हर नजर से हम डरें, फरियाद हम किस से करें गर हाथ अपनों के बढ़ें" जब बच्चे अपने खुद के ही घर में सुरक्षित नहीं हैं तो वे बाहर किस प्रकार स्वयं को सुरक्षित महसूस कर पाएंगे? इस तरह की मार्मिक कहानियाँ समाज की संवेदनाओं को भीतर तक प्रभावित करती हैं।

बाल यौन शोषण हमारे समय की सबसे भयावह और पीड़ादायक सामाजिक वास्तविकताओं में से एक है। यह ऐसा विषय है, जो सामाजिक, पारिवारिक और वैयक्तिक स्तर पर गहरे मौन, अपराधबोध और असहायता से घिरा हुआ है। बच्चों पर किया गया यौन अत्याचार न केवल उनके शारीरिक और मानसिक विकास को अवरुद्ध करता है, बल्कि उनके अस्तित्व, आत्मविश्वास और भविष्य की संपूर्ण संरचना को तोड़ देता है। भारत सरकार द्वारा 2007 में प्रकाशित "Study on Child Abuse : India 2007" रिपोर्ट के अनुसार, 53 प्रतिशत से अधिक बच्चों ने किसी न किसी प्रकार के यौन शोषण का अनुभव किया है, और इनमें से अधिकांश घटनाएँ उनके परिजनों या जानकारों द्वारा की जाती हैं। यह आँकड़ा मात्र एक संख्या नहीं है, बल्कि उन अदृश्य चीखों, टूटे सपनों और

अविश्वास के अंधकारमय गलियारों की पहचान है जिनसे समाज मुँह फेर लेता है। भारत सरकार ने बाल यौन शोषण की रोकथाम के लिए वर्ष 2012 में पोक्सों (प्रोटेक्शन ऑफ चिल्ड्रनस फ्रॉम सेक्शुअल ओफेनसेस) अधिनियम पारित किया है। भले ही सरकार ने इस समस्या से निपटने के लिए कड़ा कानून बनाया हो लेकिन व्यवहारिक स्तर पर बाल यौन शोषण पर बात करना अभी भी एक 'टैबू' है, और इसी सामाजिक चुप्पी को तोड़ने का प्रयास साहित्य करता है। साहित्य, समाज का संवेदनशील दर्पण होते हुए, ऐसे वर्जित और उपेक्षित यथार्थ को अपनी भाषा, शिल्प और प्रतीकों के माध्यम से प्रकट करता है। हिंदी साहित्य में बाल यौन शोषण का चित्रण हृदय को विदीर्ण करने वाली गहनता के साथ हुआ है। बाल यौन शोषण की घटनाओं को साहित्य में स्थान देना केवल सहानुभूति अर्जित करने का माध्यम नहीं, बल्कि एक सामाजिक हस्तक्षेप और चेतना का प्रयास भी है। बाल यौन शोषण जैसे विषय पर लिखते समय लेखक को कई स्तरों पर चुनौती का सामना करना पड़ता है— विषय की संवेदनशीलता, भाषा की मर्यादा, शोषण के चित्रण में करुणा और व्याकुलता की संतुलन–स्थिति, पाठक को विचलित किए बिना उन्हें झकझोरना आदि।

निष्कर्ष :–

बाल यौन शोषण हिंदी साहित्य के लिए एक ज्वलंत और चुनौतीपूर्ण विषय है, जो केवल भावुकता से नहीं, बल्कि वैचारिक ईमानदारी, संवेदनशील भाषा और सामाजिक सरोकार की माँग करता है। यह विमर्श एक ओर बच्चों की पीड़ा को शब्द देता है, तो दूसरी ओर समाज की चुप्पी, अपराध और पाखंड को अनावृत्त करता है। बाल यौन शोषण जैसे गूढ़, संवेदनशील और समाज में वर्जित विषय को हिंदी साहित्य ने विभिन्न विधाओं में अपने–अपने शिल्प, संवेदना और वैचारिकता के साथ उठाया है। बाल यौन शोषण का चित्रण अब प्रत्यक्ष और स्पष्ट रूप में होने लगा है। आत्मकथा, उपन्यास, और नाटक जैसे विधाओं में इस विषय को न केवल चित्रित किया गया, बल्कि इसके सामाजिक, मानसिक और संस्थागत पक्षों को भी उजागर किया गया है। हिंदी साहित्य में बाल यौन शोषण पर हो रहा लेखन मात्र करुणा या संवेदना तक सीमित नहीं है, वह एक सजग प्रतिरोध, संवेदनात्मक हस्तक्षेप और सामाजिक पुनर्रचना का आह्वान भी है। बाल विमर्श का यह पक्ष केवल अध्ययन की वस्तु नहीं, वह एक नैतिक उत्तरदायित्व भी है— जहाँ हमें न केवल पढ़ना, लिखना और बोलना है, बल्कि बचपन को बचाने के लिए खड़ा भी होना है।

सहायक ग्रंथ :–

1. बाल यौन शोषण पर पुस्तिका, कैलाश सत्यार्थी चिल्ड्रेन्स फाउंडेशन।
2. जैन, अरविन्द. (2015). बचपन से बलात्कार. नई दिल्ली. राजकमल प्रकाशन।
3. शर्मा, नासिरा (2019). गलियों के शहजादे. फिर कभी. नई दिल्ली. प्रभात प्रकाशन।
4. कुलश्रेष्ठ, मनीषा. (2012). गंधर्व–गाथा. फांस. नई दिल्ली. सामयिक प्रकाशन।
5. कुमार, कमल. (2015). कमल कुमार की लोकप्रिय कहानियाँ. पुल. नई दिल्ली. प्रभात प्रकाशन।
6. खेतान, प्रभा. (1993). छिन्नमस्ता. नई दिल्ली. राजकमल प्रकाशन।
7. प्रभाकर, विष्णु. (1992). अर्द्धनारीश्वर. नई दिल्ली. किताबघर प्रकाशन।
8. सोबती, कृष्णा. (1972). सूरजमुखी अँधेरे के. नई दिल्ली. राजकमल प्रकाशन।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 336-343

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं में मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति

अंकित कुमार सरोज, शोधार्थी
पंडित दीन दयाल उपाध्याय कॉलेज लखनऊ,
लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ, उत्तर प्रदेश

शोध सार :–

दलित साहित्य पूर्णतः मनुष्यता की अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह डॉ अंबेडकर से प्रेरित और प्रभावित है। जो समाज में स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के पक्षधर थे। सुमित्रानंदन पंत की काव्यपंक्ति "वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान" में एक–एक शब्द संवेदना की ओर ही संकेत करते हैं। इस काव्य पंक्ति के अनुसार कविता आह या दर्द से निकलती है। दर्द की अनुभूति जितनी गहरी और तीव्र होगी, कविता उतनी ही उत्कृष्ट होगी। कविता के संदर्भ में आह मुहावरा नहीं, सत्य है। दलित कविता पर एकदम सटीक बैठता है। दलित कविता दर्द से निकलती है, क्यूंकी सदियों से दलितों ने दर्द, शोषण और अन्याय का ही अनुभव किया है। दलित कविता में दर्द और अनुभव की अभिव्यक्ति प्रमुख है, इसलिए सहानुभूति और स्वानुभूति का प्रश्न दलित साहित्य में आकर दम तोड़ देता है। दलित कवि स्वानुभूति को कलम की सियाही बनाकर पन्ने पर 'दर्द के दस्तावेज' को दर्ज करता है। दलित विमर्श के अमिट हस्ताक्षर लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि का नाम अदब से लिया जाता है। उनकी कविताओं में गहराई और स्वानुभूति का प्रभावकारी वर्णन है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं का यथार्थ गहरे भावबोध के साथ सामाजिक शोषण के विभिन्न पहलुओं से टकराता है और मानवीय मूल्यों की पक्षधरता में खड़ा दिखाई देता है। प्रस्तुत शोध–पत्र में वाल्मीकि जी की कविताओं में मानवीय मूल्यों की ही पड़ताल है।

प्रस्तावना :–

मानवीय चेतना का अभिप्राय सिर्फ 'मनुष्य' तक सीमित कर देना ठीक नहीं होगा। यह शब्द मानवतावाद को दर्शन के रूप में स्वीकार करता है, जिसका तात्पर्य है 'समस्त जगत में प्राणियों के प्रति मानवीय दृष्टिकोण'। चेतना शब्द का अर्थ जितना व्यक्तिगत जागरूकता से है, उतना ही उसका संबंध सामाजिक जागरूकता से भी है। इसमें संकीर्णता के लिए कोई स्थान नहीं है। अतः मानवीय चेतना का अर्थ है– एक ऐसी चेतना, जो मनुष्यों के उत्थान एवं प्रगति में सहायक हो और जगत के हर प्राणी को सहज रूप से स्वीकार करती हो। दलित समाज के आत्मगौरव का भाव दलित साहित्य का केन्द्रीय भाव है साथ ही दलित साहित्य का वैचारिक आधार

'अम्बेडकरवाद' है। अम्बेडकरवाद 'मनुष्यता' का पक्षधर है, जिसमें समता और समानता पर विशेष बल देता है इस संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं, "दलित साहित्य का वैचारिक आधार डॉ अंबेडकर का जीवन संघर्ष एवं ज्योतिबा फूले और बुद्ध का दर्शन है।"[1]

दलित कविता हिन्दी दलित साहित्य की सशक्त विधा है। हिन्दी दलित कविता की विकास–यात्रा में ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं का एक विशिष्ट और महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी मुख्य विशेषता है कवियों की 'स्वानुभूति' जिसके कारण कविताओं में धार और व्यंग्यात्मकता आती है, इसी के चलते दलित कविता का जो अर्थबोध और शिल्प–विधान उभरता है, वह अनन्य है। दलित कविता की विकास यात्रा सरस्वती में छपी हीरा डोम की कविता "अछूत की शिकायत (1914)" से शुरू होती है। संतों में कबीर, रैदास से होते हुए वर्तमान तक पहुँचती है। दलित कविता का तेवर पारंपरिक कविताओं से बिल्कुल भिन्न है। इसमें प्रेम–वर्णन या प्रकृति चित्रण न होकर सदियों से शोषित, पीड़ित जनों की आवाज है। यह ब्राह्मणवादी, मनुवादी और क्रूर वर्ण–व्यवस्था के खिलाफ खुला संघर्ष है। यह दलितों की पहचान और अस्मिता की कविता है। दलित कविता की विस्तार पूर्वक परिचय देते हुए कँवल भारती कहते हैं–"दलित कविता उस तरह की कविता नहीं है, जिसे आमतौर पर कोई प्रेम या विरह में पागल होकर गुनगुनाने लगता है। यह वह कविता भी नहीं है, जो पेड़–पौधों, फूलों और नदियों, झरनों और पर्वतमालाओं की चित्रकारी में लिखी जाती है। यह किसी का शोकगीत और प्रशस्तिगान भी नहीं है। दरअसल यह वह कविता है। जिसे शोषित,पीड़ित, दलित अपने दर्द की अभिव्यक्ति करने के लिए लिखता है।

यह वह कविता है जिसमें दलित कवि अपने जीवन के संघर्ष को उतारता है। यह दमन, अत्याचार, अपमान और शोषण के खिलाफ युद्धगान है। यह स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व–भाव की स्थापना और लोकतंत्र की प्रतिष्ठा करती है, इसीलिए इसमें समतामूलक और समाजवादी समाज की परिकल्पना है। संक्षेप में दलित कविता जाति और वर्ग–विहीन समाज की स्थापना करने वाली दलितों द्वारा लिखी गई क्रांतिकारी कविता है"।[2] दलित कविता का क्रांतिकारी मिजाज लोकतान्त्रिक मूल्यों में विश्वास रखता है, मानव मूल्यों की स्थापना इसका मुख्य उद्देश्य है। बकौल अशोक वाजपेयी, "कविता की प्रामाणिकता किसी विचार विशेष का अनुगमन करने में नहीं, मानवीय वेदना और संवेदना को मुखरित करने में है"।[3]

ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित साहित्य के मुख्य हस्ताक्षर हैं। उनके बिना दलित कविता की कल्पना नहीं कर सकते। वर्तमान में भी दलित विमर्श पर चर्चा–परिचर्चा कहीं हो तो इनके नाम को लिए बिना पूरा नहीं होगा। वाल्मीकि जी स्वयं दलित समुदाय से हैं, इसलिए उनकी कविताओं में गहन स्वानुभूति व्यक्त हुई है। उन्होंने वर्ण–व्यवस्था आधारित भारतीय समाज में जो भोगा, देखा उसे ही कविता में व्यक्त किया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की चार कविता–संग्रह हैं– (1) सदियों का संताप (2) बस्स! बहुत हो चुका (3) अब और नहीं (4) शब्द झूठ नहीं बोलते। इन सभी संग्रहों में मानवीय मूल्यों को सूक्ष्मता से उभारा गया है, उनका मानना भी था कि, "दलित साहित्य समाज समानता, भाईचारा और मानवीय स्वतंत्रता की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध है। मनुष्य ही उसके लिए सर्वोपरि है। इस प्रकृति में जो कुछ भी हमारे सामने है, वह मनुष्य की ही देन है। इसलिए मनुष्य की महत्ता को स्वीकार करते हुए दलित साहित्य मनुष्यता का साहित्य है"।[3] कहने का अभिप्राय यह है कि दलितों के साथ जिन आधारों पर अमानवीय व्यवहार हुआ है तथा जिस कारण मानवता शर्मशार हुई है, उन सभी को गंभीरता से कविताओं में जगह दी है। इस अर्थ में ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताएं महत्वपूर्ण हैं।

शोध का विस्तार :-

भारतीय समाज वर्णव्यवस्था पर आधारित समाज है। जिसके अंतर्गत तथाकथित दलित वर्ग ने जातिगत शोषण का दंश झेला है। दलित समाज मेहनतकश रहा है, उसने हाँड़ तोड़ परिश्रम से संसाधनों को अर्जित किया है व अपने पेट भरे। वह विपरीत परिस्थिति में रहकर मेहनत करता है फिर भी उसके मेहनत के परिणामों पर उसका हक नहीं, पानी जैसी मूलभूत सुविधाओं से भी वह वंचित है यहाँ तक कि उसे पेट भरने को नहीं मिलता।

'लेखा—जोखा' कविता में ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं :—

"पसीना मिश्रित जल से
उगायीं फसलें लगाए पेड़
पल भर ठिठक कर
जानना चाहा धूप का रंग
न फसल ही अपनी हो सकी
न पेड़ ही
तपती दुपहर में
रजबाहे की नालियों में
बहते गंगाजल से
बुझायी प्यास अनेक बार
बिना हिसाब किये-
कितनी रेत समायी पेट में
कितना पानी बदल लहू में
फिर भी,
न गंगा ही अपनी हो सकी
न रजबाहे की रेत ही।"[5]

प्राचीन काल से वर्तमान में आधुनिकता के दौर में भी झूठ, पाखंड और आडंबरों का बोलबाला है। हिन्दू धर्मग्रंथों में जो कुछ भी लिखा है, उसका प्रचार—प्रसार ब्राह्मणों द्वारा किया गया। उसके कारण दलितों में भय पैदा करके उनको शिक्षा से वंचित रखा। सामाजिक रूप से हर काल में उनको उपेक्षित रखकर हाशिये पर धकेला दिया गया। दलितों का विकास सामाजिक और आर्थिक रूप से संपूर्णतः रोक दिया, वर्तमान में दलितों में जागरूक लोग उस जाल से बाहर आने में कामयाब हुए हैं लेकिन अधिक आबादी उन्हीं जालरूपी शब्दों में उलझी है, जो हिन्दू धर्म ग्रंथों में मिलती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि सवर्ण समुदाय के दोहरेपन और चरित्र जटिलताओं के चलते उनके कहे 'शब्दों' पर ध्यान केंद्रित करवातें हैं। उनके अनुसार शब्द झूठ नहीं बोलते, लेकिन हर शब्द का इतिहास होता है और उसकी विरासत होती है। शब्द मनुष्य की सामाजिक—सांस्कृतिक स्थितियों के दस्तावेज होते हैं। दलित लंबे अरसे से इन्हीं शब्दों के द्वारा छले गए हैं। कविता पढ़ते वक्त मन में सवाल आता है कि क्या शब्द झूठ बोलते हैं? उत्तर है, शब्द झूठ नहीं बोलते। पर मनुष्य शब्दों का झूठा प्रयोक्ता है। इसी से शब्द बदनाम होते हैं :—

"मेरे प्रदेश का शब्दजीवी
जाँत-पाँत नहीं मानता
ऐलान करता है
डंके की चोट पर....
रात इतनी गहरी
कि खत्म होने का नाम नहीं लेती
फिर भी
मेरे प्रदेश का शब्दजीवी
इनकार करता है
जाँत-पाँत के अस्तित्व से!"[6]

डॉ अंबेडकर जिनके विचार दलित साहित्य का दार्शनिक आधार हैं। उनके अनुसार दलितों के प्रति शोषण का मूल आधार हिन्दू धर्मग्रंथ हैं। जिसके कारण लोगों को गुलाम जैसी जिंदगी जीने को विवश किया गया। ऋग्वेद के 10वें मण्डल में व्याख्यायित वर्ण–व्यवस्था ने एक विशेष वर्ग के हाथों में सारे अधिकार सौंप दिए। परिणामतः दलित समुदाय की स्थिति पशु के समान हो गई, जो समाज में हर कहीं दिखता था, परंतु उसका हिस्सा वह नहीं बन पाया। क्यूंकी उसने तथाकथित अछूत समाज में जन्म लिया, जिसके चलते आजीविका के मूल संसाधनों को भी एकत्रित करने में जातीय दंश झेलना पड़ा। ब्राह्मणवादी और सामंतवादी तत्वों के गठजोड़ द्वारा जातिगत हिंसा की प्रक्रिया वहीं नहीं रुकी, वर्तमान में भी दलितों के साथ जारी है :–

"मेरे जिस्म के मानचित्र पर
उभर रहे हैं-
बनकर फफोले
कहीं बेल्छी
तो कहीं शेरपुर
कहीं पारस बिगहा
तो कहीं नारायणपुर
इन फफोलों को सहलाने के लिए
मेरे हाथ मेरे पास नहीं हैं
वे तो बहुत पहले
मेरे बाप-दादों ने
रख दिए थे गिरवी
किसी सेठ साहूकार की तिजोरी में
दो मुट्ठी चावल के बदले"।[7]

दलित समुदाय ने सदियों से जातिगत भेदभाव को झेलते हुए अपना विकास किया। वह उन प्राकृतिक संसाधनों को भी हासिल करने के लिए लड़ाई लड़ी, जो एक मनुष्य होने के नाते मिलनी चाहिए थी। मनुवाद

एवं ब्रह्मणवाद ने वैचारिक स्तर पर जो घृणा और नफरत फैलाई उसके चलते दलितों की स्थिति दयनीय हो गई। भेदभाव, शोषण और उत्पीड़न उनकी रोजमर्रा के जीवन में शामिल हो गया। मगर दलितों में इसके विपरीत मानवता के प्रति गहरा लगाव होने लगा, स्वयं के साथ हुए नफरती व्यवहार को भूलकर प्यार पर बल देता है। यह चेतना स्वानुभूति के कारण विकसित हुई परिणामस्वरूप मानवीयों मूल्यों को तरजीह देने लगे। दलित कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि लोगों को नफरती भाव से दूर रहने को कहता है।

"अच्छे लगते हैं पेड़
और उनका हरापन
उससे भी ज्यादा अच्छे लगते हैं
हँसते-खिलखिलाते वे लोग
जो नफरत नहीं करते
आदमी से
सपने में भी!"।[8]

क्रूर अतीत, जिसमें दलितों की स्थिति बिल्कुल मानवता के खिलाफ थी। वह कदम–कदम पर जातिगत भेदभाव का सामना करता है। शोषण तंत्र यानी ब्राह्मणवादी हिंसक तत्वों के कारण दलितों का सामाजिक जीवन बिल्कुल अस्त–व्यस्त था। इनसब के बावजूद वह बदले की भावना त्यागकर बदलाव चाहता है। 'भय' कविता में एक उम्मीद है कि काश!

"तुम्हारे हाथ बढ़े होते
मेरी ओर
प्रेम गंध का स्पर्श लेकर
सच कहता हूँ
मैं सीने से नहीं
लिपट जाता तुम्हारे कदमों से
बिछ जाता
धूल बनकर जमीन पर"।[9]

दलित वर्ग के भीतर विद्रोह और आक्रोश के स्वर रक्तपिपासू ब्रह्मणवाद के खिलाफ उठते रहे हैं। लेकिन सवाल ये है कि इस समुदाय को आखिर चाहिए क्या था? वह ऐसी भेदभाव और क्रूर व्यवस्था के सामने किन मांगों को लेकर विद्रोही तेवर के साथ खड़ा दिखाई देता है। जवाब है, सिर्फ मनुष्यता का दर्जा। 'खामोश आहटें' कविता में वाल्मीकि जी ने मनुष्यता के विकास में जरूरी मूलभूत मांगों को इन शब्दों में दर्ज किया है :–

"कभी नहीं मांगी बलिश्त भर जगह
नहीं माँगा आधा राज भी
माँगा है सिर्फ न्याय
जीने का हक
थोड़ा-सा आकाश

थोड़ा-सा पीने लायक पानी
थोड़ा-सा सुख
थोड़ा-सा चैन
थोड़ी-सी धूप
थोड़ी-सी हवा
थोड़ी-रोशनी
थोड़ी-सी किताबें
थोड़ा-सा अपनापन''।[10]

मनुष्यता के लिए संवेदना बेहद महत्वपूर्ण भाव है। समाज के लिए इसका होना कितना जरूरी मानते थे, वाल्मीकि जी की इस बात से समझा जा सकता है कि ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने उनको इतना सताया, पीड़ा दिया। शूद्र समुदाय में जन्म के कारण सामाजिक रूप से मानुवादियों के द्वारा बहिष्कृत हुए। परंतु उस व्यवस्था में जन्म लेकर जीने की इच्छा उनकी कभी नहीं हुई, बल्कि वह शुक्रगुजार हैं कि उनका जन्म उच्छवर्णीय माँ के गर्भ से नहीं हुआ।

''अच्छा ही हुआ
मैं नहीं जन्मा
उच्चवर्णीय माँ के गर्भ से
होता मैं भी
संवेदनहीन
जड़
परजीवी
फूंकता कान में मंत्र
नवजात शिशु के
जात-पाँत के प्रपंच का''।[11]

अलौकिक मान्यताओं के चलते मानवीय मूल्यों का हनन भारतीय समाज में आम बात रही है। कारणवश उपेक्षित मनुष्य का जीवन अशान्ति, द्वेष, क्रोध, स्वार्थ आदि से भर गया है। केंद्र में दलित और स्त्री का जीवन मुख्य है। दलित वर्ग से 'शिक्षा का अधिकार' जो बुनियादी है उससे सदियों तक वंचित रखा। सवर्ण मानसिकता के कारण दलित वर्ग भय के वातावरण से निकलने में वर्षों तक नाकाम रहा। उसके अंतर्मन का भय खत्म तब हुआ जब डॉ आंबेडकर जैसे बुद्धिजीवियों का साथ मिला व उनके बताए रास्तों पर खुद को ले गया। ऐसी ही व्यथा और पीड़ा का वर्णन डॉ एन. सिंह कुछ इस प्रकार करते हैं, "किसी व्यक्ति को पढ़ने का अधिकार न हो, धर्म के किसी अनुष्ठान में भाग लेने का अधिकार न हो तथा इससे भी आगे बढ़कर यदि किसी दलित के कान में वेदमंत्र भी पड़ जाए तो उसके कान में पिघला हुआ शीशा डालने जैसा क्रूर तथा अमानवीय विधान हो।"[12]

इस कथन में डॉ एन. सिंह मानवीय पीड़ा को बताते हैं जो दलित वर्ग को वेदना, प्रताड़ना, शोषण आदि के रूप में प्राप्त हुआ है जो उसे साथी मनुष्यों, समाज से प्राप्त हुए हैं। जो उनकी निर्दयी मानसिकता को दर्शाते

हैं। ऐसे ही मानसिकता का जिक्र वाल्मीकि जी ने अपनी कविता 'असहमति' में कुछ इस प्रकार से किया है–

"मैं भी चाहता हूँ
मेरे शब्द सहना सीख जाएं
विश्वस में छले गए
हताश क्षणों की पीड़ा
भूल जाएं पसीने और रक्त से भीगी
पीठ पर कोड़ों के निशान" ।[13]

उपरोक्त काव्य पंक्तियों के अनुसार दलित जुल्मों के कारण हताश हो चुका है। अतः वह हाँ में हाँ मिलाना सीख जाए और भूल जाए उन पर हुए अत्याचारों को। दूसरी ओर उन्होंने अपनी कविता 'काले दिनों में' की एक पंक्ति में मूल्यों के नकारात्मक पक्ष में दर्शाया है :–

"टीसता है दर्द पसलियों में
एक–एक शब्द का
जिसे रचा है तुमने
मेरे जिस्म पर काले दिनों में।"[14]

उपरोक्त पंक्तियों में उन्होंने स्पष्ट किया है कि उन्हें उस निर्दयी मनुवादी ब्राह्मणवादी मानसिकता के द्वारा दिए गए दर्द का का एहसास है। दलितों का इतिहास जिसमें क्रूरता केंद्र में है, उसे भूल पाना किसी के लिए भी असंभव है। साथ ही वाल्मीकि जी ने अपनी अन्य कविता 'जाति' में मनुष्य के जीवन मूल्यों को वर्णित किया है :–

"ऐसी जिंदगी किस काम की
जो सिर्फ घृणा पर टिकी हो
कायरपन की हद तक
पत्थर बरसाए
कमजोर पड़ोसी की छत पर" ।[15]

कवि ने घृणा और नफरत को दर्शाया है। बरसाए गए हिंसात्मक पत्थर एक कमजोर पड़ोसी की छत पर उस निर्दयी मानसिकता का ही परिणाम है जिससे मनुष्य के मन में भय से भरी अशान्ति घर कर गई है। ओमप्रकाश वाल्मीकि कविता के उद्देश्य को लेकर जागरूक हैं। उनका मानना है कि कविता मात्र आनंद, रस और मनोरंजन के लिए नहीं होती। कविता हमें मनुष्यता के निकट ले जाती है और मन में आशा, परिवर्तन के लिए गहरा विश्वास जगाती है। मानवीय दुर्बलताओं के प्रति सचेत करती है।

"सुबह होने से पहले
मैं तुम्हें बता देना चाहता हूँ
कि सुबह आएगी धीरे–धीरे
तेज रोशनी चारों ओर फैलाकर
अंधेरे को उजाले में बदल देगी" ।[16]

निष्कर्ष :-

ओमप्रकाश वाल्मीकि हिन्दू संस्कृति के मुखौटों में छिपे हिंसक, अनैतिक और भेदभाव आधारित क्रूर जाति–व्यवस्था को बेनकाब करते हैं। उत्पीड़न और वेदना से उपजे सवालों को अपनी कविताओं में उठाते हैं एवं उनका समाधान अंबडेकरवाद और बुद्धिज्म के रास्ते सुझाते भी हैं। जो मानवतावाद के समर्थक हैं। यह कटु सत्य है कि देश की आजादी का लाभ सभी लोगों को समान रूप से नहीं मिला। जो चाक और समर्थ थे, उन्होंने तो प्राकृतिक संसाधनों का अधिकांश हिस्सा अपने तक सीमित कर लिया मगर जो भोले–भाले लोग थे उन्हें शब्दों के जाल में उलझाकर वंचित रखा। इस कारण भारतीय समाज में लंबा अमानवीय दौर देखने को मिलता है, जिसमें दलित और माहिलाओं की स्थिति पशु से भी बददतर थी। लेकिन संविधान से आई सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था, आरक्षण से मिली कुछ हिस्सेदारी दमन और शोषण के खिलाफ संघर्ष पैदा किया। वर्तमान में कहने को तो सभी को समान अधिकार हैं, परंतु मनुष्यता लोगों में खत्म होती जा रही। ऐसे में ओमप्रकाश वाल्मीकि उस समुदाय से आते हैं, जिसने सदियों तक भेदभाव, अन्याय और उत्पीड़न को झेला। उनकी कविताएं मानवीय गरिमा पर छाए हर संकट को चित्रित करते हुए भविष्य के समाज को किसी भी तरह के हिंसा, भेदभाव, उत्पीड़न और शोषण मुक्त व संवैधानिक मूल्यों पर आधारित देखना चाहते हैं। परंतु यह कहना गलत नहीं होगा कि वर्तमान की लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था में वैधानिक रोक के बावजूद भेदभावों का जारी रहना राज्य के माथे पर धब्बा है। 21वीं सदी में भी मुक्ति की कोई राह मनुवादी मानसिकता ने नहीं छोड़ी, परंतु इनकी कविताएं आशा तो जगाती हैं।

संदर्भ सूची :-

1. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005 पृष्ठ–38, 39
2. भारती, कँवल, दलित कविता का संघर्ष, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ. 13
3. समकालीन भारतीय साहित्य, मार्च–अप्रैल, 2014, पृ.195
4. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, दलित साहित्य : अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2020, पृ.8
5. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, अब और नहीं...., राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृ. 9
6. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, शब्द झूठ नहीं बोलते, अनामिका प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ. 64
7. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, सदियों का संताप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2020, पृ. 16
8. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, बस्स! बहुत हो चुका, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ. 92
9. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, बस्स! बहुत हो चुका, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ. 90
10. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, बस्स! बहुत हो चुका, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ. 61
11. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, अब और नहीं...., राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृ. 102
12. सिंह, डॉ एन, दलित चेतना के प्रतिमान, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2012, पृ. 293
13. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, अब और नहीं...., राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृ. 81
14. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, अब और नहीं...., राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृ. 29
15. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, अब और नहीं...., राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृ.102
16. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, सदियों का संताप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2020

मोबाईल नंबर– 8486892028, ईमेल – ankitsaroj381999@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 344–348

सुरेन्द्र वर्मा के साहित्य में स्त्री के बदलते स्वरूप

सोनिया
शोधार्थी, डॉ. बी. आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

प्रस्तावना :-

प्राचीन समय से स्त्री वर्ग अपने अधिकारों, सम्मान और स्वतंत्रता पूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए संघर्षरत रहा है। रूढ़िवादी परंपराओं, प्रथाओं और मान्यताओं के नाम पर शारीरिक और मानसिक शोषण होता रहता है। उन्हें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक आदि क्षेत्रों में अपमानित किया गया। आधुनिक दौर में स्त्री का उत्पीड़न और सशक्त दोनों ही स्वरूप उद्धृत होते हैं। प्रसिद्ध लेखक सुरेन्द्र वर्मा के साहित्य में स्त्री प्राचीन और आधुनिक परिवेश के अनुसार विविध रूपों में दिखाई देती है। लेखक ऐतिहासिक और कलात्मक ढंग से स्त्री विमर्श के प्रत्येक पहलू को रेखांकित करते हैं। स्त्री अस्मिता की खोज ही स्त्री विमर्श है, इसके केंद्र में स्त्री चेतना जागृति और स्त्री स्वरूप की पहचान है। लेखक अपनी रचनाओं में पारंपरिक और आधुनिक दोनों युग बोध का प्रतिनिधित्व करते हैं। वह पहले की तुलना में आज की परिस्थितियों में स्त्री चेतना के प्रखर स्वरूप को रेखांकित करते हैं।

सुरेन्द्र वर्मा के साहित्य में स्त्री :-

भारतीय वैदिक काल में मानव–जगत की जननी, आदिशक्ति या मातृशक्ति समान स्त्री को पूजनीय समझा गया है। विष्णु के साथ लक्ष्मी, शिव के साथ दूर्गा, ब्रह्मा के साथ सरस्वती स्वरूप आदिशक्ति देखी जाती है। सुरेन्द्र वर्मा आठवाँ सर्ग नाटक में शिव पार्वती दोनों का वर्णन किया गया है। "भारतीय संस्कृति में नर–नारी दोनों को एक समान दर्जा देकर 'अर्धनारीश्वर' जैसे महासंकल्प की नींव रखी गई है। जिस का अर्थ है कि विश्वनिर्माण में नर और नारी शिव–शक्ति के रूप में एक साथ संलग्न हैं।" प्राचीन समय में नर के समान नारी को भी सामर्थ्यवान समझा जाता था। समय के परिवर्तन और परिवेश के प्रभाव से स्त्री दशा में अनेक बदलाव हुए। भारतीय महिला सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक आदि परिस्थितियों से गुजरी है। त्याग, सेवाभाव, सहनशीलता, समर्पण, करुणा आदि स्त्री की पहचान बने हुए हैं। इस तरह सुरेन्द्र वर्मा का नाटक 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' में मुख्य स्त्री पात्र शीलवती में यही गुण विद्यमान् है। लेखक की रचनाओं में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और आधुनिक दोनों स्तरों पर स्त्री के बदलते स्वरूप समाविष्ट है।

उत्तर वैदिक काल से महिलाओं की हेय दशा है। इस काल में सती प्रथा, नियोग प्रथा, बाल विवाह, बहुविवाह जैसी कुप्रथाओं के प्रचलन में वृद्धि हुई है। 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' नाटक में लेखक नियोग प्रथा का वर्णन करते हैं। वंश प्राप्ति के लिए स्त्री को अपनी पुरुषों के साथ तीन रात संभोग

करना होता है। शीलवती के माध्यम से स्त्री दशा को अभिव्यक्त करते हैं। शीलवती कहती हैं कि– "नहीं.... तुम यहाँ सारी रात जागोगे, मैं वहाँ सारी रात जागूँगी।.........वही अपमान और लज्जा और ग्लानि ....वही चिन्ता और घुटन और घबराहट.......!" राजनैतिक सत्ता के उत्तराधिकारी हेतु स्त्री की इच्छाओं और भावनाओं का दामन हुआ है। इतिहास के पृष्ठों पर स्त्री के आंसुओं का कोई मूल्य नहीं होता। उसका आजकल आंसुओं से भरा हुआ है। उसने राष्ट्रीयता के लिए वीरांगना रूप में शत्रुओं से लोहा लेते हुए भी अपनी भूमिका निभाई है।

मध्य काल में लड़कियों की उम्र में शादी और बहु पत्नी प्रथा का प्रचलन हुआ। स्त्री को भोग विलास और भौगोलिक विस्तार के लिए शारीरिक शोषण होने लगा। विधवाओं का सामाजिक समारोह में जाना निषेध किया गया। नाटक 'रति का कंगन' में मल्लिनाग की संभोग और भोगविलास वाली प्रवृत्ति को दिखाकर लेखक मध्यकालीन प्रवेश से अवगत कराते हैं। मल्लिनाग कहता है कि– "नये समीर के गवाक्ष पर साँकल नहीं लगायी जाती। जीवन अनन्त सम्भावनाओं से भरा है।" मल्लिनाग अपनी समस्याओं का समाधान भी भोग विलास को समझता है। महाकाव्य काल में अत्यंत दयनीय हो गई थी।

महाकाव्य काल में स्त्री दशा अत्यंत दयनीय हो गई। रामायण समय में धोबी के संदेह पर सीता को वनवास देना, पत्नी पर पति का आधिपत्य दर्शाता है। महाभारत काल में पांडवों द्वारा जुएँ के दाँव पर द्रौपदी को लगाना तथा कौरवों द्वारा द्रौपदी चिर हरण नारी के खंडित व्यक्तित्व, दानवी, दासी, आदि का वर्णन किया गया है। नाटक 'द्रौपदी' में सुरेखा के पति को मुखौटों के आधार पर पाँच व्यक्तित्व वाले पति के रूप में प्रकट किया हैं। "द्रौपदी उठ बैठी है जो पल–पल उस एक ही आदमी के भीतर चार–चार भूमिकाओं को निभाने वाले व्यक्तित्वों के साथ जी रही है।" मनमोहन सुरेखा को धोखा देकर अन्य स्त्री के साथ संबंध स्थापित करता है।

मनुस्मृति में नैतिकता के सभी मापदंड महिलाओं के लिए निर्धारित हुए। उनके द्वारा किए गए अपराध या अनैतिक व्यवहार पर दंड का प्रावधान किया गया। सुरेन्द्र वर्मा द्वारा लिखित नाटक 'महाभारत नाट्य चतुष्टय' में जहाँआरा और रौशन आरा जैसी साहसी स्त्री पात्रों को स्वेच्छा से विवाह करने या घर से बाहर निकलने का अधिकार प्राप्त नहीं होते था। वह स्वेच्छापूर्वक जीवन व्यतीत नहीं कर सकती थी क्योंकि स्त्री स्वतंत्रता का हनन हो गया था।

मध्य काल में स्त्री दशा अत्यंत दयनीय हो गई। मुगलों के प्रवेश से पर्दा प्रथा का प्रचलन आरंभ हुआ। स्त्रियों को घर से बाहर निकलना निषेध कर दिया गया।

नाटक कैद–ए–हयात में उमराव, आठवाँ सर्ग में प्रियंगु, द्रौपदी में सुरेखा तथा सेतुबंध में प्रभावती स्त्री पात्र घर पर रहकर कार्य करती हैं। उनके लिए घर गृहस्थी की देखरेख करना और घर की चारदीवारी ही उनकी दुनिया बनकर रह गई है। बदलते परिवेश के अनुसार सुरेन्द्र वर्मा के स्त्री पात्रों में जागरूकत स्त्री सशक्तीकरण के स्वरूप सिद्ध हुआ है।

स्वतंत्रता के पश्चात ब्राह्य परिवेश के साथ ही मानवीय अंतर्मन पर भी प्रभाव दिखाई देता है। वर्तमान समय में वह स्वयं बाल विवाह जैसी सामाजिक कुरीतियों का विरोध करती है। सुरेन्द्र वर्मा द्वारा रचित नाटक 'शकुंतला की अँगूठी' में कनक द्वारा विवाह से मना करना और माँ का बेटी कनक से विवाह के लिए लडकों के बारे में पूछना दर्शाता है कि आधुनिक काल में स्त्री की स्वेच्छा और निर्णय की महत्ता को अभिव्यक्त करता है। "माँ : चम्पा और चमेली को तो एक–एक बच्चा भी हो गया। / कनक : मेरी तरफ से चार–चार हो जाएँ।

/ माँ : अच्छा, कुन्दन के बारे में क्या राय है? : कनक : मुझे कुन्दन के बारे में राय बनाने के अलावा और भी काम हैं कुछ।" यहाँ माँ पारंपरिक व कनक आधुनिक मानसिकता का परिचय देती हैं। मध्य काल में स्त्री की कम उम्र में शादी हो जाती थी उनकी इच्छाओं का कोई महत्व नहीं होता था। स्त्री को शादी के पश्चात् मात्र गृहस्थी संचालित करने या वंश प्राप्ति के लिए बच्चे पैदा करने हेतु प्रेरित किया जाता था। उनकी स्वेच्छाओं का कोई महत्व नहीं होता था।

'शकुंतला की अँगूठी' नाटक में कनक कुमार से प्रेम करती है और उसके बच्चे की माँ बनने वाली है परंतु कुमार अपनी जिम्मेदारियों से विमुख हो जाता है। इस कारण कनक आपना गर्भपात कराती हैं। वह बच्चे को उसके पिता का नाम देना चाहती है तथा सम्मान के साथ रखना चाहती है। वह अपने जीवन संबंधित निर्णय लेने का सामर्थ्य रखती है। "स्त्रियाँ अभी भी पुरूषवादी सोच और धार्मिक अंधविश्वासों से जकड़ी हुई हैं। सशक्तिकरण की सबसे बड़ी शर्त है चेतना, स्वावलंबन और निज की पहचान यानी स्वाभिमान अर्थात् आत्मसम्मान। इनके बिना स्त्री–सशक्तिकरण सम्भव नहीं है।" कनक आत्मनिर्भर महिला है। वह कुमार द्वारा दिए गए सहनशीलता, विरह, त्याग और समर्पण को स्वीकार वहीं करती। वह आधुनिक स्त्री स्वरूप स्वेच्छा, स्वतंत्रता और समानता के साथ जीवन व्यतीत करना चाहती है। लेखक कनक को आधुनिक शकुंतला के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं।

सतयुग की शकुंतला के भोली, सरल, त्यागमय और नियति के नाम पर आगे बढ़ने के सभी रास्ते बंद हो गए थे। आधुनिक युग की शकुंतला कुमार नामक दुष्यंत के हाथों अपने जीवन की डोर नहीं देना चाहती। सुरेन्द्र वर्मा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर नवीन मानवीय मूल्यों को स्थापित करते हैं।

वर्तमान समय में स्त्री शिक्षित और आत्मनिर्भर बनकर आगे निकल रही है। वह समाज में स्वेच्छा, समानता, आत्मविश्वास, साहस, आत्मनिर्भर स्वतंत्रता, स्वाभिमान और सम्मान आदि के साथ सार्थक इकाई स्वरूप नजर आती है। लेखक छः एकांकी में से एक 'वे नाक से बोलते हैं' में आत्म निर्भर 'स्त्री' पात्र है, जो स्वयं और अपनी लड़की का पालन पोषण एवं अच्छी शिक्षा प्रदान करती है। वह शिक्षा के महत्व से अवगत है। "जीवन के महत्वपूर्ण लक्ष्यों तक या महिला सशक्तिकरण के महत्वपूर्ण लक्ष्यों की पूर्ति में शिक्षा औषधि रूप में कार्यरत होती है।" राष्ट्रीय, समाज या व्यक्ति के विकास में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

एकांकी 'नींद क्यों रात भर नहीं आती' में भी युवती नामक स्त्री पात्र को सशक्त आधुनिक स्त्री स्वरूप दर्शाया गया है। लेखक समकालीन परिस्थितियों के अनुसार पात्रों में परिवर्तन करते हैं।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य या भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति में सुधार दिखाई देने लगे हैं। वर्तमान समय में उच्च शिक्षा प्राप्त करके महिला वर्ग की चिंतन और चेतना का विकास हुआ है। महिलाओं को धार्मिक मान्यताओं के नाम पर घर की चारदीवारी में बंद करके नहीं रखा जा सकता। शिक्षा ने उनके कौशलों और योजनाओं का विकास किया है। जीवन व्यतीत करने हेतु वह सक्षम हो गई हैं।

नाटक 'रति का कंगन' के आरंभ में मध्यकालीन परिवेश दिखाई देता है। नाटक के अंत में दर्शाया गया है कि मेघाम्बरा के बलात्कार होने के पश्चात भी नए दौर से जीवन की शुरुआत करती है। वह स्वयं को इस घटका से निर्दोष समझकर स्वेच्छा से रहती है। लवंगलता आत्मनिर्भर महिला है जिसे अपनी इच्छाओं, भावनाओं और संवेदनाओं को पूरा किया। वह तुंगभद्रा का निर्भयता से सामना करती है। अपने पद का दुरुपयोग करती

है परंतु न्यायलय में अपने अपराध स्वीकार करती है। लवंगलता जागृत चेतना का प्रतीक है। "चेतना के माध्यम से व्यक्ति भले–बुरे का निर्णय कर अपने कार्यों को स्वीकार प्रदान करता है। चेतना व्यक्ति में निर्णय–शक्ति का विकास करती है, इसके आभाव में व्यक्ति निर्णय नहीं ले सकता।" आधुनिक युग में स्त्री चेतना जागृत हो रही है। वह स्वयं के हित–अहित के बारे में सोचने लगी है।

समाज में स्त्री के व्यक्तित्व का विकास अवश्य हो गया है। आधुनिक समय में स्त्री धार्मिक रूढियों की केंचुली को उतारकर अंतःप्रेरणादायी हो रही है। वह अपनी इच्छा अनुसार जिंदगी के सभी निर्णय लेने में समर्थ है। उदाहरणस्वरूप– उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' में मुख्य स्त्री पात्र वर्षा विशिष्ट अपनी अस्मिता बनाने हेतु पहले वह पारिवारिक एवं सामाजिक यातनाओं को सहन करती है परंतु परिवर्तित परिवेश और सामर्थ्य के अनुसार वह चाँद सामान अपनी पहचान बनाने में सफल होती है। "स्त्री–सत्ता के पूर्ण अस्तित्व की स्वीकृति और सहयोग के बिना किसी भी समाज की परिकल्पना नहीं की जा सकती है।"

आत्मनिर्भरता के पश्चात वर्षा का सशक्त स्वरूप दिखाई देता है।

अधिकांश गृहणियों या स्त्रियों को अनेक यातनाएं सहन करनी पड़ती है। वह आर्थिक एवं सामाजिक रूप से पति पर निर्भर रहती हैं। उदाहरण के लिए कैद–ए–हयात नाटक में मुख्य स्त्री पात्र उमराव पारंपरिक, त्याग, सहनशीलता और आत्मसमर्पण की भावना आदि पारंपरिक स्त्री का प्रतीक है। वह अपने पति के शायरी करने से परेशान है क्योंकि शायरी द्वारा घर की आर्थिक परिस्थितियों में कोई सुधार नहीं होता। घर पर प्रत्येक दिन किसी न किसी कर्जदार का आना लगा रहता है। कर्जदारों के कटाक्ष उमराव को सुनने पड़ते हैं क्योंकि वही घर पर उपस्थित होती है। "पुरूष और स्त्री दोनों इस समाज रूपी गाड़ी के दो पहिए हैं। यदि एक पहिया बिल्कुल कमजोर हो गया है और दूसरा मजबूत हैं, तो कभी वह गाड़ी ठीक–ठीक चल ही नहीं सकती। हमारे यहां की समाज रूपी गाड़ी की ठीक यही दशा है।" वह आर्थिक रूप से पति मिर्जा पर आश्रित है। मिर्जा गालिब शायर है उन्हें कातिबा नामक अन्य स्त्री से प्रेम होता है। उसके लिए वह कैद में जाने के लिए तत्पर है।

समयानुसार ब्राह्य परिवेश में परिवर्तन के साथ–साथ व्यक्ति के अंतर्मन में भी परिवर्तन होते हैं। इसी तरह परिवर्तित स्थिति के अनुसार उमराव के व्यक्तित्व में भी बदलाव दिखाई देते हैं। मिर्जा गालिब द्वारा प्रेमिका (कातिबा) के लिए जेल जाने के लिए तैयार हो जाने के बाद उमराव के विद्रोही स्वर सुनाई देते हैं। वह स्वयं पति के कैदखाने से बाहर निकलकर स्वयं जीवन निर्वाह करने में सक्षम और समर्थ होती है। नाटक के अंत में उमराव का पारंपरिक से आधुनिक स्वरूप दिखाई देता है। पति का घर छोड़कर स्वतंत्रता, आत्मसम्मान, आत्मनिर्भर, स्वाभिमान एवं स्वेच्छापूर्वक जीवन व्यतीत करती है।

निष्कर्ष :–

मोहन राकेश के पश्चात सुरेंद्र वर्मा का नाम अत्यंत प्रसिद्ध हुआ। इनकी नाट्य संरचना अत्यंत कुशल और सुदृढ़ दिखाई देती है। भाषा के माध्यम से मानवीय संवेदनाओं को सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत करते हैं। व्यक्तिगत प्रवृत्तियों को संवाद योजना द्वारा उद्घाटित किया गया है। रूढ़िवादी मान्यताओं को खंडित करके नवीन मानवीय मूल्यों को भाषा द्वारा अभिव्यक्त करते हैं। भाषा का प्रयोग वैचारिक आदान–प्रदान करने के साथ ही नवीन अवधारणाओं को रेखांकित करने के लिए हुआ। लेखक सूक्ष्म से सूक्ष्म तथ्यों को शब्द प्रदान करके स्त्री में वर्ग की चेतना जागृत करते हैं। जिस तरह समकालीन जीवन के परिवेश को प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास

मोहन राकेश अपनी नाट्य रचनाओं में करते हैं उसी प्रकार सुरेंद्र वर्मा ने किया है। सुरेंद्र वर्मा के साहित्य में सम्मिलित स्त्री पात्रों में यह विशेषताएं सम्मिलित हैं।

वह वर्तमान समय की विसंगतियों को कुरेदते हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म परिस्थितियों के प्रत्येक पहलुओं को रेखांकित किया है।

इनकी रचनाओ में ऐतिहासिक काल और समकालीन समय दोनों ही परिस्थितियों को अपनी सर्जनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत करते हैं। वह ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में उपस्थित महिलाओं का कमजोर और सशक्त व्यक्तित्व का उल्लेख करते हैं। मानव जीवन में परिवर्तन नैसर्गिक है लेकिन यह परिवर्तन स्त्री दशा में भी रेखांकित करते हैं। उनके नाटक और उपन्यास के प्रारंभ में स्त्री की सहनशीलता, साधारण, करुणा और समर्पण आदि विशेषताएं दिखाई देती है। लेखक रचना के पात्रों को नीचे से ऊपर की ओर ले जाते हैं। यथार्थ के आधार पर वह समाज के विकास में अपना योगदान दिया है।

संदर्भ सूची :-

1. स्त्री चिन्तन सामाजिक : साहित्यिक दृष्टि, डॉ. गोपीराम शर्मा और डॉ. घनश्याम बैरवा, प्रथम संस्करण– 2020, प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या– 45
2. 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक', सुरेंद्र वर्मा, चौथा संस्करण– 2020, प्रकाशक– भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या– 30
3. रति का कंगन, सुरेंद्र वर्मा, दूसरा संस्करण– 2014, प्रकाशक– भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या– 148
4. सुरेंद्र वर्मा के नाटक नयें दायरों की तलाश, मुनीश शर्मा, प्रथम संस्करण– 2013, प्रकाशक– स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या– 89
5. शकुंतला की अँगूठी, सुरेन्द्र वर्मा, प्रथम संस्करण– 2021, प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या– 49–50
6. स्त्री विमर्श कलम और कुदाल के बहाने, रमणिका गुप्ता, संस्करण– 2004, प्रकाशक– शिल्पायन, शाहदरा, दिल्ली, पृष्ठ संख्या– 15
7. महिला सशक्तिकरण : विविध आयाम, डॉ० विप्लव, प्रथम संस्करण–2013, प्रकाशक– राहुल पब्लिशिंग हाऊस, शास्त्री नगर, मेरठ, पृष्ठ संख्या– 153
8. समकालीन हिंदी नाटक चेतना के आयाम, सरला गुप्ता 'भूपेन्द्र', प्रथम संस्करण– 1987, प्रकाशक– पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ संख्या– 15
9. स्त्री–विमर्श आधुनिक युग का नया क्षितिज, डॉ. कृष्ण चन्द्र चौधरी, प्रथम संस्करण– 2018, प्रकाशक– बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, प्रेमचंद मार्ग, पटना, पृष्ठ संख्या– 1
10. स्त्री विमर्श का कालजयी इतिहास, डॉ० संजय गर्ग, प्रथम संस्करण– 2012, प्रकाशक– सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या– 65

स्थानीय पता– पवन भाटी, कुम्हार वाली गली (रामराज पब्लिक स्कूल के पास), सलारपुर, नोएडा–201304

sonia15041996@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 349-352

हिन्दी उपन्यासों में किसान विमर्श

सागर स. गेंड
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड – 580003

प्रस्तावना :–

भारत की सभ्यता और संस्कृति कृषि पर आधारित है। देश की लगभग 70: आबादी गांवों में रहती है और कृषि पर निर्भर है। प्राचीन काल से ही कृषि हमारी अर्थव्यवस्था का आधार रही है। दिन–रात खेतों में मेहनत करने वाले किसान हमारे अन्नदाता और वस्त्रदाता हैं। वे अपनी कड़ी मेहनत से विभिन्न प्रकार के अनाज उगाते हैं। संस्कृत में यह कहां गया, 'परोपकाराय सन्त विभूतायः' सदाचारी व्यक्ति का जीवन दूसरों के कल्याण के लिए होता है। यह कहावत हमारे किसान भाइयों के लिए बिल्कुल उपयुक्त है। लेकिन दिन–रात मेहनत करने वाले हमारे किसानों का जीवन आज भी विभिन्न समस्याओं से भरा हुआ है। इसी कारण मानसून पर निर्भर भारतीय कृषि को 'मानसून जुआ' भी कहा जाता है। यदि मानसून समय पर और पर्याप्त मात्रा में आ जाए तो फसलों का उत्पादन अच्छा होगा, जिससे न केवल खाद्यान्न की आवश्यकता पूरी होगी बल्कि कई उद्योगों के लिए कच्चा माल भी उपलब्ध होगा। लेकिन यदि मानसून वापस चला जाए तो कई समस्याएं उत्पन्न हो जाएंगी।

लेखकों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से किसानों और मजदूरों की दुर्दशा का चित्रण किया है। हिंदी साहित्य में किसानों और मजदूरों का जिक्र प्रेमचंद का नाम लिए बिना असंभव है, क्योंकि प्रेमचंद साहित्य में सबसे प्रमुख में किसानों के जीवन को चित्रित किया। किसानों और मजदूरों की दयनीय स्थिति उनके उपन्यास 'गोदान' और 'कफन' जैसी कहानियों में दिखाई देती है। 'गोदान' उपन्यास में 'होरी' समाज में पूंजीपतियों और धार्मिक ठेकेदारों के शोषण से पीड़ित है। और 'कफन' कहानी में घीसू और माधव के माध्यम से ठाकुरों और जमींदारों द्वारा गरीब मजदूरों पर किये जाने वाले अन्याय और शोषण को उजागर किया गया है।

देश के किसान और मजदूर आजादी से पहले अंग्रेजों से और आजादी के बाद पूंजीपतियों, ठाकुरों और जमींदारों से अन्याय झेल रहे हैं। आर्थिक असमानता के कारण गरीब किसान और मजदूर समाज के ठेकेदारों द्वारा प्रताड़ित हो रहे हैं। यही कारण है कि वे कड़ी मेहनत के बाद भी भूखे रहते हैं। यद्यपि श्रमिकों के साथ अनुचित व्यवहार किया जाता है, फिर भी वे अपने नियोक्ताओं के उत्पीड़न के विरुद्ध आवाज नहीं उठाते। उनके भ्रष्टाचार के कारण कर्ज में डूबे लोग उठ नहीं पाते। ऋण चुकाने में असमर्थ होने के कारण वे आत्महत्या कर रहे हैं। आजादी के बाद किसानों और मजदूरों की स्थिति कुछ इस प्रकार थी, 21वीं सदी में भी स्थिति वही है।

इसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

आज बड़ी कंपनियां विशेष आर्थिक क्षेत्र (एसईसी) बनाने के लिए किसानों के हरे–भरे बागानों को नष्ट कर रही हैं। वैश्वीकरण ने अपने लाभ के लिए कृषि को निशाना बनाया है। अलका सरावगी के उपन्यास 'एक ब्रेक बाद' में वैश्वीकरण से पीड़ित किसानों की कठिनाइयों को दर्शाया गया है।

शिवमूर्ति ने अपने उपन्यास 'आखिरी छलांग' में वैश्वीकरण के दमघोंटू पर्यावरणीय प्रभाव का वर्णन किया है। उपन्यास का नायक एक प्रसिद्ध पहलवान है लेकिन खराब वित्तीय स्थिति के कारण उसके सपने टूट जाते हैं। आर्थिक विपन्नता के कारण गांव के लोगों के छोटे–छोटे सपने, सपने ही रह जाते हैं। वे कभी भी उन सपनों को हकीकत में नहीं बदल पाएंगे। युवा किसान भी इस वैश्वीकरण से प्रभावित हैं। फसल उत्पादन में कमी के कारण वे अपनी बुनियादी जरूरतें भी पूरी नहीं कर पा रहे हैं। यह उपन्यास न केवल वास्तविकता बल्कि आशावाद को भी दर्शाता है। कहानीकार ने अपने उपन्यास में किसान जीवन की समस्याओं का बहुत विस्तार से चित्रण किया है। उन्होंने किसानों की बुनियादी समस्याओं जैसे खाद, पानी, बीज, बिजली की कमी, प्राकृतिक समस्याओं, फसलों का उचित मूल्य न मिलने की समस्या, कर्ज की समस्या और आत्महत्या की समस्या को बहुत विस्तार से दर्शाया है। ममता कालिया का उपन्यास 'दौड़' इसी समस्या को उजागर करता है। इस उपन्यास में वैश्वीकरण, व्यावसायीकरण, आजीविका, विज्ञापन, उपभोक्तावाद आदि का मिश्रण बन चुके एक आदमी की कहानी को बहुत प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

यद्यपि श्रमिकों, किसानों और मजदूरों का मूल लक्ष्य एक ही है, फिर भी कुछ विशिष्ट कारणों से उनके संघर्ष के तरीकों में काफी अंतर है। नागार्जुन ने 'बलचनमा' में आर्थिक विषमता के शिकार किसान वर्ग की दयनीय स्थिति की करुण जीवन कथा के माध्यम से इस वर्ग की वर्ग संघर्ष भूमिका को प्रस्तुत किया है। नागार्जुन के उपन्यास बलचनमा में किसान जागरूकता और संघर्ष का व्यापक चित्रण स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। 1937 में मिथिला के किसानों की स्थिति और किस प्रकार वहां के किसानों में जमींदारों के शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध हिंसा की भावना जड़ जमा रही थी। उपन्यास में किसान की इसी उभरती हुई विकासोन्मुख चेतना को 'बलचनमा' के चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

पंकज सुबीर ने किसानों के जीवन पर केन्द्रित उपन्यास 'अकाल में उत्सव' लिखा है। इस उपन्यास में ग्रामीण जीवन और विशेषकर किसानों के जीवन को बहुत ही सुन्दर ढंग से उजागर किया गया है। उपन्यास का कथानक इस बारे में है कि किस प्रकार किसान की सारी आर्थिक गतिविधियां उसकी छोटी जोत से प्राप्त फसल के इर्द–गिर्द केंद्रित होती हैं और किस आशा के साथ वह स्वयं को जीवित रखता है। 'रामप्रसाद' के माध्यम से पंकज सुबीर हमें बताते हैं कि आम किसान आज भी किस हद तक मौसम की दया पर निर्भर है। मौसम में उतार–चढ़ाव के साथ–साथ किसानों की उम्मीदों का ग्राफ भी उतार–चढ़ाव भरा रहता है। इन उतार–चढ़ावों के बीच किसानों को खुद को कोसते रहना पड़ता है। मैं नहीं जानता कि ज्येष्ठ मास की गर्मी कैसी होगी और माघ मास की वर्षा कैसी होगी। इस शरीर को फाड़कर देखो कि इसमें कितना जीवन बाकी है,

यह घावों से कितना टूट चुका है, मार–पीट से कितना कुचला जा चुका है। 'अकाल में उत्सव' उपन्यास को समझने के लिए, रामप्रसाद के शरीर का विश्लेषण करना होगा और देखना होगा कि उनकी इच्छाएं क्या थीं, उनके संघर्ष क्या थे, और जीवन की यात्रा के अंतिम पड़ाव पर वे किन अनुभवों और विश्वासों के साथ मरे। रामप्रसाद एक छोटा आदमी है, किसान है, और उसकी इच्छाएँ भी छोटी हैं।

रामदरश मिश्र की 'जल टूटता हुआ', मन्नु भंडारी की 'महाभोज', नागार्जुन की 'बाबा बटेरसन', और भैरव प्रसाद गुप्ता की 'सतीमैया का चौरा' कुछ महान उपन्यास हैं। इसमें किसानों की संस्कृति को उखाड़ फेंका है। ये उपन्यास न केवल आर्थिक असमानता को दर्शाते हैं, बल्कि किसानों को अपनी आजीविका कमाने के लिए जो महान संघर्ष करना पड़ता है, उसे भी उजागर करते हैं। आर्थिक तंगी, कर्ज का बोझ और छोटे–छोटे वादों की लालसा ही इन किसानों का भविष्य है। अंततः आत्महत्या करना ही उनकी नियति बन गई है। बड़े पैमाने पर समाधान ढूंढना अत्यंत महत्वपूर्ण है। तभी इस समस्या का समाधान हो सकेगा।

दरसल समकालीन हिंदी उपन्यासों में उपन्यासकारों ने किसानों और मजदूरों के जीवन के यथार्थ को इतिहास की गहरी समझ के साथ प्रस्तुत किया है। सामंती और पूंजीवादी व्यवस्था के तहत शोषित और उत्पीड़ित किसानों और श्रमिकों की स्थिति पर भी गौर किया गया है। उपन्यासकारों ने कृषि जीवन पर आधारित उपन्यासों में दिखाया है कि कृषि मजदूरों की स्थिति यनीय है। समकालीन उपन्यासों की विशेषता यह है कि उनमें चित्रित हाशिए पर पड़े किसान और मजदूर प्रेमचंद की उपन्यासों के पात्रों की तरह असहाय, शक्तिहीन और नपुंसक नहीं हैं। इसके बजाय, वे समकालीन संगठनों और आंदोलनों के साथ जुड़कर सशक्त हो रहे हैं और परिवर्तन मुक्ति के लिए साहसपूर्वक लड़ रहे हैं। समकालीन उपन्यासकारों का मूल विषय सामंती और पूंजीवादी व्यवस्थाओं के उत्पीड़न और शोषण से मुक्ति है और यही कहानियों की विशेषता भी है।

आजकल आधुनिक युग में सरकारी नीतियों के कारण किसान अपनी खेती खो रहे हैं। औद्योगीकरण के कारण किसानों की जमीन पर कारखाने स्थापित किये जा रहे हैं। प्रमुख राष्ट्रीय राजमार्गों के निर्माण के कारण किसानों को अपनी कृषि से हाथ धोना पड़ा है। खदानों के कारण लोग खनिज संपदा निकालने के लिए कृषि भूमि और जमीन को खोद रहे हैं। इसलिए कई कारणों से किसान अपनी खेती खो रहे हैं। अनेक प्रकार की मशीनों के आगमन के कारण श्रमिक बेरोजगार हो रहे हैं। मिनरल वाटर कारखानों के निर्माण के कारण भूजल स्तर में गिरावट आ रही है। यह किसानों के लिए घातक साबित हो रहा है। क्यूंकि गांवों में किसानों और मजदूरों के लिए कोई काम नहीं है, इसलिए वे शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। इससे शहरों की आबादी बढ़ रही है और शहरों के विस्तार के कारण आस–पास के गांव शहरों में शामिल होते जा रहे हैं। इससे गांवों की सुंदरता और संस्कृति को भारी नुकसान पहुंच रहा है।

निष्कर्ष :–

हमारा देश एक कृषि प्रधान देश है। किसानों और मजदूरों की हालत अच्छी नहीं है। खेतों में काम करने वाले किसानों और मजदूरों का ठाकुरों, जमींदारों और पूंजीपतियों द्वारा शोषण किया जाता है। वे उनके विरुद्ध

अन्याय और अत्याचार करते हैं। गरीब किसान पूंजीपतियों का सामना नहीं कर सकते। सरकार किसानों और मजदूरों के लिए चाहे जितनी भी योजनाएं बना ले, उनका लाभ किसानों तक नहीं पहुंचता। किसान आत्महत्या कर रहे हैं क्योंकि वे कर्ज में फंसे हुए हैं और अपना ऋण चुकाने में असमर्थ हैं। हिंदी लेखकों ने किसानों और मजदूरों के वास्तविक जीवन का अद्भुत चित्रण किया है। किसानों और मजदूरों के जीवन को साहित्य में प्रस्तुत किया जाता है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. भारतीय किसान और उनकी मुलभूत समस्याएँ : नवल किशोर।
2. बलचनमा : नागार्जुन।
3. नव विमर्श : नव चिन्तन : सं. नीता दौलतकर।
4. गोदान : प्रेमचन्द।
5. अकाल में उत्सव – पंकज सुबीर।
6. आखिरी छलांग – शिवमूर्ति।

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक SANGAM
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE Vol. 13, Issue 5
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL पृष्ठ : 353-362

आदिवासी जीवन का दस्तावेज "कलम की तलवारें" : 'आदिवासी विमर्श'

डॉ. सुपर्णा मुखर्जी
सहायक प्राध्यापक, भवंस विवेकानंद कॉलेज ऑफ साइंस,
ह्यूमैनिटीज एंड कॉमर्स, सैनिकपुरी, हैदराबाद केंद्र–500094

प्रस्तावना :-

भारत की आबादी जो अब शहरों में रहती है उनके लिए 'आदिवासी' शब्द अब एक गाली के समान है। जैसे अगर किसी को अशिक्षित कहना हो तो लोग पूछते हैं 'क्या जंगली आदिवासी' हो'? किसी को असामाजिक कहना हो तो लोग कह देते हैं 'आदिवासी जंगली जनजाति समान अपराधी है'। आदिवासियों को लेकर अनेकों कुमंतव्यों को सुना जा सकता है। कुल मिलाकर तथाकथित सभ्य समाज ने यह मान लिया है कि आदिवासी वे लोग हैं जो अशिक्षित हैं, बर्बर हैं, असभ्य हैं और अपराधी भी हैं। यह सोच ही सबसे बड़ी बाधा है आदिवासियों के विकास के बीच में। इस सोच में परिवर्तन आना आवश्यक है।

बीज शब्द – 1. आदिवासी, 2. घुमंतू, 3. मौन, 4. उपमहाद्वीप, 5. अवधारणा, 6. नस्ली 7. व्यावसायिक 8. उत्स 9. मानवशास्त्री 10. औपनिवेशिक।

आदिवासी कौन?

आदिवासी विमर्श को समझने के लिए गणेश देवी, महाश्वेता देवी, मिलिंद पाटिल, उषा किरण आत्राम आदि लेखकों को पढ़ना आवश्यक है। गणेश देवी के द्वारा लिखित पुस्तक 'घुमंतू है, चोर नहीं, आदिवासी मौन पर विमर्श' में स्पष्टया लिखित है कि, 'जाति और "जनजाति" की अवधारणाएँ भारतीय समाज में पुर्तगाली यात्री–लेखकों और धर्म प्रचारकों के आने के बाद जड़ें जमा बैठीं। वे इन शब्दों का इस्तेमाल भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न नस्ली तथा व्यावसायिक समूहों और समुदायों के लिए करते थे। आज ये शब्द लंबे समय तक पहने हुए उन मुखौटे की तरह हो गए हैं जिन्होंने असली व्यक्तित्व पर कब्जा कर लिया है'।[1] आदिवासी जीवन की सच्चाई क्या है? इनकी जीवनधारा का उत्स कहाँ है? इन प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए मानवशास्त्री लुई ड्यूमोंट के विचार को पढ़ना प्रासंगिक होगा। जाति प्रथा की चर्चा करते हुए लुई ड्यूमोंट लिखते हैं कि, 'अठारहवीं शताब्दी के अंत तक, "जाति" शब्द का प्रयोग विशिष्ट सामाजिक समूहों के लिए किया जाता था जबकि "जनजाति" शब्द उन समूहों के लिए था जो सामाजिक अनुक्रम में नीचे थे। औपनिवेशिक शासकों ने अंत में इन दोनों की समानता को कानूनी हस्तक्षेप द्वारा नष्ट कर दिया जब उनके द्वारा 1872 में भारत के समुदायों की एक

आधिकारिक सूची तैयार की गई जिसे भारत के जनजातियों की सूची करार दिया गया। तब से आज तक "जनजाति" को भारतीय समाज के एक पृथक अंग के रूप में ही देखा गया है' ।[2] इस अध्ययन से यह तो स्पष्ट हो ही गया है कि आदिवासी समूह को लेकर चिंतन प्रक्रिया केवल आज संकुचित है ऐसा नहीं है, इस संकुचित मानसिकता का इतिहास बहुत पुराना है। इस संकुचित इतिहास को वृहद बनाने, तर्कशील और सामाजिक बनाने का प्रयास भारतीय समाज में कभी किया नहीं गया इसके विपरीत प्रयास बारंबार यही किया गया कि इन्हें समाज के मूलस्रोत से दूर रखा जाए, इनके जमीन पर कब्जा कर लिया जाए। कभी इन्हें जंगली मानकर दुत्कारा गया तो कभी अपराधी मानकर उन्हें दंड दिया गया।

आदिवासी समूहों का इतिहास विश्व के प्रत्येक देश में ही पाया जाता है लेकिन कमोबेश भारतीय आदिवासियों की जीवन गाथा तुलनात्मक दृष्टि में अधिक दयनीय दिखाई पड़ती है। वैसे तो ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों पर अनेक अत्याचार किया लेकिन आदिवासियों के उत्थान के लिए जो प्रयास भारतीयों को करना चाहिए था वह प्रयास अंग्रेजों ने किया था। गणेश देवी के द्वारा लिखित पुस्तक 'घुमंतू है, चोर नहीं, आदिवासी मौन पर विमर्श' को पढ़ने से पता चलता है कि वेरियर एल्विन एक ऐसे ही आदिवासी प्रेमी ब्रिटिश थे 'जिनके आदिवासियों के बारे में हमारी वर्तमान जानकारी के लिए हम आभारी हैं, आदिवासी समुदायों के बीच एक सावधान और क्रमिक हस्तक्षेप के सिद्धांत की हिमायत की थी। जवाहरलाल नेहरू ने इस सिद्धांत को, जो उन दिनों पंचशील सिद्धांत कहलाता था, आदिवासियों के प्रति राज्य नीति के रूप में अपनाया। उन्होंने "अपराधी जनजाति" के नाम से कलंकित समुदाय की अधिसूचना रद्द करवाई। एल्विन का न्यूनतम हस्तक्षेप का सिद्धांत उनके आदिवासियों से गहरे जुड़ाव और प्रेम का परिणाम था' ।[3]

साहित्यकारों ने भी समय–समय पर आदिवासियों के घुमंतु जीवन को लेकर पर अनेक रचनाओं को रचा। ऐसी ही एक साहित्यकार है उषा किरण आत्राम। मूलतः ये मराठी भाषा की लेखिका हैं। इन्हें केवल आदिवासी जीवन को लिखने वाली लेखिका कहना गलत होगा क्योंकि उषाकिरण आत्राम द्वारा स्थापित 'आदिवासी भाषा विकास व संशोधन प्रकल्प, धनेगाँव' आदिवासी भाषा, साहित्य और संस्कृति को संरक्षण प्रदान करने में महतावपूर्ण भूमिका निभा रहा है। अर्थात, लेखिका को आदिवासी जीवन का स्वअनुभव है। यह ज्ञान ही 'कलम की तलवारें' बनकर पाठकों की चेतना को लहूलुहान करने के लिए साहित्य से जुड़ा हुआ है। उषाकिरण आत्राम ने गोंड जनजाति की जीवन शैली को अपनी कविताओं के केंद्र में रखा है। उनकी कविताओं का अनुवाद मिलिंद पाटिल ने किया है। प्रोफेसर देवराज ने अनूदित कविता संकलन 'कलम की तलवारें' की भूमिका में लिखा है, '"कलम की तलवारें" काव्य–संकलन को पढ़ना शुरू करेंगे, तो पहली कविता में ही दो स्त्रियॉ के बीच घटने वाले संवाद से साक्षात्कार होगा। इनमें, एक प्रौढ़ा है, दूसरी किशोरी। इसके आगे बढ्ने के पहले कहना जरूरी है कि इस कविता को सही–सही समझने के लिए पाठक को लोक जीवन के अपने संचित ज्ञान को सक्रिय करना होगा, क्योंकि यह कविता सीधा बयान करती है, जबकि पृष्ठभूमि को पाठक की जीवन (और काव्य) की समझ पर छोड़ देती है' ।[4]

प्रोफेसर देवराज की इस उक्ति को आधार बनाकर अनूदित कविता संकलन 'कलम की तलवारें' को पढ़ना शुरू किया तो आदिवासी विमर्श से संबंधित निम्न तथ्यों को विस्तार से समझने का अवसर प्राप्त हुआ।

रोजगार से संबंधित प्रश्न :-

आदिवासी या घुमंतु लोगों के लिए जीवनयापन की समस्या प्रतिदिन की समस्या है। ऐसा नहीं है कि ये लोग काम नहीं करना चाहते हैं। समस्या यह है कि पारिश्रमिक देकर कोई इनसे काम नहीं करवाना चाहता है। सभ्य समाज इनका शोषण करने से कभी पीछे नहीं हटता है। गणेश देवी के द्वारा लिखित पुस्तक 'घुमंतू है, चोर नहीं, आदिवासी मौन पर विमर्श' को पढ़ने से पता चलता है कि स्वतन्त्रता से पहले दृश्य यह था कि, '1871 तक अंग्रेजी शासन द्वारा अपराधी जातियों की एक आधिकारिक सूची तैयार कर ली गई तथा उसी वर्ष इनके नियंत्रण के लिए एक कानून पारित किया गया। उदाहरण के लिए भील जनजाति जिसने अंग्रेजों के खिलाफ नर्मदा तट पर खानदेश में युद्ध किया उन्हें भी भारतीय दंड संहिता (Indian Penal Code) की धारा 110 के अंतर्गत अपराधी घोषित कर दिया गया। क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट (आपराधिक जनजाति अधिनियम) के तहत सुधार बस्तियों की स्थापना करने का प्रावधान बना जहाँ तथाकथित "अपराधी" आदिवासियों को बंदी बनाकर रखा जाता और उन्हें कम वेतन पर काम करने के लिए बाध्य किया जाता। उन्हें दिन में कई बार पहरेदारों के पास जाकर हाजिरी देना जरूरी था ताकि वे इन दमनकारी बस्तियों से भागने का प्रयास न कर सकें'।[5]

गणेश देवी के द्वारा लिखित पुस्तक 'घुमंतू है, चोर नहीं, आदिवासी मौन पर विमर्श' को पढ़ने से पता चलता है कि स्वतन्त्रता के बाद 'भारत सरकार द्वारा अपराधी घोषित आदिवासियों को विमुक्त कर दिया गया, परंतु इस अधिसूचना के स्थान पर एक के बाद एक कई अन्य अधिसूचनाएं जारी हुई जिन्हें "हैबिचुअल ऑफेंडर्स ऐक्ट' (Habitual Offenders* Act) (HOA) के नाम से जाना जाता है। विमुक्तिकरण तथा HOA के पारित होने के बाद भी क्रिमिनल ट्राइब्स ऐक्ट (आपराधिक जनजाति अधिनियम या CT Act) द्वारा दंडित इस समुदाय की परेशानियों का अंत नहीं हुआ क्योंकि HOA में पिछले CT अधिनियम के काफी प्रावधान मौजूद थे सिवाय इस अंतर्निहित अवधारणा के जिसके अनुसार पूरा का पूरा समुदाय "जन्मजात अपराधी" माना जाता है'।[6]

इन दो परिस्थितियों की पीढ़ा को समझने के लिए उषा किरण आत्राम जी की कविता की पंक्तियों को देखना उचित होगा। एक माँ और उसकी बेटी का निम्न वार्तालाप को कितना सजीव हो उठा है :-

'नियति है हमारी
घी निकालना, फिर छाछ की खरीददारी करना
उसने उरसूँडी की टोकरी की रस्सी
काट डाली दाँतों से बात की बात में.....और
मन के दुख की उल्टी कर दी!
तभी हाथ में खड़िया-पाटी
थामे लड़की ने उछाला सवाल....!
माँ! परंतु हम घी क्यों निकालें,
ऊपर से खरीददारी भी क्यों करें छाछ की'?[7]

ये केवल कुछ पंक्तियाँ नहीं है बल्कि पीढ़ी दर पीढ़ी आदिवासी कैसे अपने जीविकोपार्जन के लिए संघर्षरत है। इसका सजीव चित्र प्रस्तुत करने वाला विश्लेषण है।

अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न :–

गणेश देवी के द्वारा लिखित पुस्तक 'घुमंतू है, चोर नहीं, आदिवासी मौन पर विमर्श' को पढ़ने से पता चलता है कि, 'भारत के संविधान में विद्यमान प्रतिश्रुति राज्य जनता के दुर्बल वर्गों के, विशिष्टतया, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी संरक्षा करेगा'।[8] प्रश्न यह कि क्या इस प्रतिश्रुति का पालन किया जाता है? अगर उत्तर 'हाँ' है तो प्रश्न फिर यह उठेगा कि फिर आदिवासी बच्चे स्कूली शिक्षा क्यों नहीं प्राप्त कर पाते हैं? क्यों अधिकतर आदिवासी विकृत रक्त कोशिका के रोग से ग्रस्त हैं? क्यों आदिवासी ऋण ग्रस्त हैं जबकि उनके पास तो उनके हिस्से का कोई पक्का मकान भी नहीं है? क्यों उनके प्रश्न को 'विद्रोह' कहकर दबा दिया जाता है? प्रश्न यह भी है कि भाषा विज्ञानियों का अनुसंधान कहता है कि आदिवासियों की लगभग 88 भाषाएँ हैं लेकिन उनकी किसी भी भाषा को संवैधानिक मान्यता क्यों नहीं प्राप्त हुई है? आदिवासी आज भी अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्षरत है। उनकी जीवन शैली को ही रहस्यात्तमक रूप में ऐसे प्रस्तुत किया जाता है कि जैसे वे इस धरतीवासी नहीं है। उषा किरण आत्राम जी के द्वारा रचित निम्न पंक्तियाँ इसी कटु सत्य का प्रमाण प्रस्तुत कर रही है–

'हम जन्मे माँ के पेट से ही
वे हाथ–पाँव, नाक और मुँह से
जनमने का बताते इतिहास
सच कैसे वह इतिहास?
माँ के पेट से जन्म
कैसे है झूठ?
तुम्हारी लिपि नहीं, भाषा नहीं
धर्म नहीं, संस्कृति नहीं
कहते है आप
पर आप जब पधारे पश्चिम से
तब–हम देश में अपने
गूंगे, बहरे, अंधे थे क्या'?[9]

यह कैसी विडंबना है कि अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए तथाकथित सभ्य, सुशिक्षित समाज सुव्यस्थित तरीके से आदिवासियों को साधारण मनुष्य श्रेणी से बाहर रखने के जितने हथकंडे हैं सबका प्रयोग करने के लिए तैयार है। न्याय व्यवस्था भी मौन है जबकि आदिवासी का यह कहना मिथ्या नहीं है कि :–

'देख लीजिए— मोहन : जो— दाड़ो, हड़प्पा
जिंदा है आज भी सुवर्ण इतिहास हमारा
स्वर्णिम इतिहास, लिपि का, संस्कृति का प्रगति का
उच्चतम सभ्यता का वैभव लकलक करता इतिहास
बहादुर पंडितों!
दिया धोखा कलम ने आपको
सच के महत द्वार पर ठोक ताला'।[10]

देश के स्वतन्त्रता संग्राम में बंगाल के संथाल आदिवासियों ने जिस अदम्य साहस का परिचय दिया था, 1778 में बिहार के आदिवासियों ने स्वतन्त्रता के लिए अपना सब कुछ झोंक दिया था, 1809 के भील विद्रोह के बिना क्या स्वतन्त्रता मिल सकता था? 1942 में उड़ीसा के लक्ष्मण नाइक के नेतृत्व में स्वतन्त्रता के लिए विद्रोह का स्वर मुखरित हुआ। ये सारी घटनाएँ इस सच्चाई को दिखाते हैं कि न तो आदिवासी असभ्य हैं और न ही रहस्यमय प्राणी। वे भी भारत के नागरिक हैं, उन्हें स्वस्थ जीवन प्रणाली अब तक मिल जाना चाहिए था। कि गणेश देवी के द्वारा लिखित पुस्तक 'घुमंतू है, चोर नहीं, आदिवासी मौन पर विमर्श' में उन्होंने लिखा है कि 'परंतु जब आदिवासी पहाड़ों और जंगलों में लड़ रहे थे, भारत के बाकी हिस्सों को शिक्षित और "सभ्य" बनाया जा रहा था, उनका आत्मबोध इतना अभिभूत हो चुका था कि स्वतंत्र होने के बाद भारत ने भी आदिवासियों को आदिकालीन और असभ्य समझा जो इतिहास के साथ तालमेल न बैठा सके। अधिसूचित जनजातियों की स्थिति इनसे भी बदतर थी। अगस्त 1952 तक देश में इस बात पर ध्यान नहीं दिया गया कि इन जनजातियों को अनाधिसूचित करने की घोषणा भी उसी अर्धरात्रि को होनी चाहिए थी जिस रात, नेहरू के शब्दों में, भारत ने "नियति के साथ अपना वादा" पूरा किया'।[11]

आदिवासी आज भी स्वाधीन भारत देश से प्रश्न पूछ रहे हैं कि :—

'स्वाधीनता हित दी जिन्होंने आहुति प्राणों की
कर दिए मातृभूमि के लिए अर्पित प्राण
चले गए : हो गए निश्शेष.... शहीद हो गए... लेकिन
मिला क्या उनकी पीढ़ियों को?
क्या मिला उनके रक्तदान का प्रतिदान?
क्या पाया हमने'?[12]

प्रोफेसर देवराज का यह लिखना तर्कसंगत है कि, 'आदिवासी शब्द के पूर्व—पद के रूप में स्थापित 'बेचारा' विशेषण वर्चस्ववादी वर्गों को यह स्वयंभव छद्म—छली स्वतन्त्रता प्रदान करता है कि वे परंपरागत रूप से आदिवासियों के अधिकार और संरक्षण में रहे प्राकृतिक संसाधनों का—विकास और आर्थिक प्रगति के नाम पर—मनमाना दोहन करें, आदिवासी समुदायों को अधिकारहीन बनाएँ, उनका शोषण करें। इनमें ठेकेदार, दलाल,

पूंजीपति, उद्योगपति, वैश्विक अर्थ–व्यवस्था के संचालक–नियंत्रक कार्पोरेट्स मुख्य हैं'।[13]

कहने को तो आदिवासियों के लिए अनेक प्रकार की योजनाओं को शुरू किया गया है, अनेक प्रकार के आरक्षण है। सच्चाई यह है कि उनके अस्तित्त्व को अंग्रेजी वर्णमाला के दो वर्णों ST (Schedule Tribe) के द्वारा संकुचित कर दिया गया है। इन दोनों वर्णों ने इन्हें दया के पात्र से भी अधिक रहस्यकरी अवांछित पात्र के रूप में चित्रित किया है। कवयित्री उषाकिरण आत्राम की 'कलम', 'तलवार' बनकर लिखती है कि :–

'संबोधित किया जाता हमें 'बेचारे आदिवासी'
नंगे रहते अभाव में कपड़ों के,
करते शिकार
खाते कंद–मूल
धूप और तूफानी हवाओं का
सामना करते हँसते–नाचते
वे भला बेचारे कैसे?
जाँघ पर बैठा लेता बाघ
गर्दन में लपेट लेता साँप
जंगल–गुफा–बीहड़
घूमता बिंदास
वह कैसा बेचारा'?[14]

आज अपनी अस्तित्त्व की लड़ाई लड़ता हुआ आदिवासी वर्ग भी दो भागों में विभक्त हो गया है। एक वर्ग जो कि विभिन्न योजनाओं का लाभ उठाकर सुसभ्य बनकर आज अपने को आदिवासी कहलाना पसंद ही नहीं करता है अपितु वह अपनी आदिम संस्कृति को शहरी चकाचौंध में दफना चुका है और एक वर्ग आज भी दरिद्रता से लड़ रहा है, घुमंतू जीवन बीता रहा है और कई झूठे–सच्चे आरोपों के कारण न्याय के कठघड़े में खड़ा दिखाई पड़ता है।

कवयित्री उषाकिरण आत्राम की लेखनी लिखती है :–

'जिनको सौंपे अधिकार
समाज को बचाने को
देशसेवा के–राष्ट्र रक्षा के
उन्होंने काट ली आपकी जेब, तो–
भेजो लानत उस खाकी वर्दी पर
और पान खा कर थूक दो– तिरछी टोपी पर
नहीं होते सभी पानी पेय–जल योग्य

धो डालो सब कुछ गंगा में
लड़की हमारी नहीं है, तो क्या
लूट लेगा कोई भी उसकी इज्जत'?[15]

सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान का प्रश्न :–

पिज्जा, बर्गर, डिस्को, डीजे आदि के समय में वैसे तो संपूर्ण भारतीय संस्कृति ही 'Fusion Culture' में परिवर्तित हो गई है। ऐसे में आदिवासी सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान को बचाकर रखने वाले नियमों, उत्सवों और खानपान आदि को समझना कठिन कार्य है। सबसे पहले तो यह मान लिया जाता है कि आदिवासियों की कोई संस्कृति, सभ्यता होती ही नहीं है क्योंकि वे तो जंगली हैं। यह सोच इतनी बलवती है कि इससे बाहर जाकर कोई कुछ सोच ही नहीं पाता है। कि गणेश देवी के द्वारा लिखित पुस्तक 'घुमंतू है, चोर नहीं, आदिवासी मौन पर विमर्श' में उन्होंने लिखा है कि तथाकथित सभ्य समाज को यह जानना चाहिए कि, 'संचय करना आदिवासियों की प्रवृत्ति नहीं है। धन–संपत्ति, जमीन और जानवर पर स्वामित्व उन्हें एक सीमा तक ही भाता है। अतः उनके श्रम का उद्देश्य केवल संपत्ति जोड़ना नहीं है। धनार्जन उनके परिश्रम का एकमात्र परिणाम नहीं है इसलिए वे दूसरों का काम के मामले में शोषण नहीं करते हैं। ''''''''''''''''''''''''जिन्हें हम आमतौर से आदिवासी हस्तकला समझने की भूल करते हैं, बनाते हैं। वे अपने समाज के नियमों के प्रति बहुत संवेदनशील होते हैं परंतु अन्य किसी नियम और कानून के प्रति पूरी तरह से उदासीन और बेफिक्र'।[16]

दुखद सत्य यह है कि इनकी 'समृद्ध संस्कृति' को नकारने का एक भी प्रयास सभ्य नहीं छोड़ता है। आदिवासी चीख चीख कर कहता है :–

'वे युग–युगों से ही नकारते आए हैं
सच पर खड़ा मेरा जीवन और अस्तित्व
मेरे दर्द के गाँव का रास्ता
नहीं किसी को ज्ञात
मेरे जख्मों की मालाओं का विद्यापीठ
सशक्त यथार्थ–विज्ञानवादी–सत्य।'[17]

ध्यान देने वाली बात यह है कि आदिवासी संस्कृति के नाम पर उनके नृत्य, संगीत आदि का प्रदर्शन किया तो जाता है। लेकिन, इन प्रदर्शनों में आदिवासी संस्कृति के लिए सम्मान कम और सहानुभूति अधिक दिखाई पड़ती है। आदिवासी उत्सवों में आदिवासी केवल दर्शक और नर्तक बनकर ही रह जाते हैं। उन्हीं की कहानी उनको ही बुद्धिजीवी, नेतागण भाषणबाजी के माध्यम से सुनाते हैं। इन उत्सवों की आड़ में आदिवासी स्त्रियों का शोषण किया जाता है। आदिवासी लिखने को मजबूर होता है :–

'हमारे घर में
आपका बिछोना है

उसे हम कभी भी फेंक सकते हैं
घर में घुस आने वालो, मत बोलो हमें वनवासी
वो, जो देखा ही नहीं किसी ने
कैसे कहें उसे स्वर्ग?
जीवन भर उनकी जिंदगी
दहकते कोयले का डूह
वो जलती राख कैसे नहीं पड़ती
आपकी आँखों में'?[18]

आदिवासी शोषण और कानून व्यवस्था का प्रश्न :-

आदिवासी शब्द का अर्थ केवल कोई एक समुदाय नहीं है। यह ज्ञात होना आवश्यक है कि सभी आदिवासी समुदाय एक समान नहीं होते हैं। प्रत्येक समुदाय अपने आप में अलग होता है। प्रत्येक समुदाय अपने आप में ऐतिहासिक और सामाजिक समुदायों का परिणाम है। आदिवासी समुदाय 4 विभिन्न भाषा–परिवार, अनेक अलग प्रकार के प्रजातीय वंशों और जीववादी साँचों में ढला हुआ होता है। इसलिए किसी एक समुदाय के नियम को दूसरे समुदाय के नियम के साथ जोड़ा नहीं जा सकता है। आदिवासियों की आवश्यकता एक ठोस ईमानदार कानून व्यवस्था की है। क्या आदिवासियों की इस आवश्यकता को पूरा किया जाएगा? प्रोफेसर देवराज जी ने लिखा है, 'उपनिवेशवाद ने हमारे लिए कई अनचाही विरासतें निबटाने के लिए छोड़ीं हैं। पर हमारे आत्मबोध पर उनका प्रभाव सबसे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण रहा है। "जाति" और "जनजाति" के वर्गीकरण ने भारतीय समाज के बारे में हमारी सोच पर ऐसी छाप छोड़ी है कि आने वाले समय में शायद यह संभव नहीं लगता है कि ऐसे लोगों को जिन्हें हम आदिवासी कहते हैं गैर आदिवासियों से भिन्न कर सके'।[19]

प्रोफेसर देवराज के विश्लेषण को गलत नहीं कहा जा सकता क्योंकि सच्चाई तो हम सब देख रहे हैं कि,

'बजता उनका ढोल दिल्ली से गल्ली तक
विकास! विकास! आदिवासियों का विकास!
करोड़ों, खर्च, उनके सर्वांगीण विकास पर
कुपोषण, शिक्षा, घरकुल, खिचड़ी, पत्रावली,
सुअर, मुर्गे, बकरियाँ, गाय–बैल, इत्यादि इत्यादि
सामूहिक विवाह में जनता साड़ी...
सोने का मुलम्मा चढ़ा ताँबे का मंगलसूत्र
दिया, उनके जीवन का सोना किया
सुवर्ण दिन, सुवर्ण काल, सौभागी हुए वे

बना मूर्ख, मार दिये दबा कर मुँह'।[20]

संविधान सभा के आदिवासी सदस्यों : जयपाल सिंह मुंडा, जेम्स जाय मोहन निकोलस, बोनिफास लकड़ा, रामप्रसाद पोटाई आदि ने बहुत प्रयास किया कि आदिवासी समुदाय अपनी मूल सांस्कृतिक पहचान के साथ ही संवैधानिक संरक्षण प्राप्त कर सके। दुखद सत्य यह है कि आदिवासी शोषण जो शताब्दियों से यूँ ही चल रहा था स्वाधीन भारत में इस शोषण के साथ 5 नए पक्ष जुड़ गए।

i. प्राकृतिक संसाधनों के अतिरिक्त दोहन पर आधारित विकास की उस अवधारणा का अनुकरण किया जाने लगा जिसने आदिवासियों को प्रकृति से ही दूर कर दिया।

ii. आदिवासियों ने जब भी अपनी बात को रखने का प्रयास किया उन्हें आंदोलनकारी या विद्रोही कहकर चुप करा दिया गया। अभिव्यक्ति का अधिकार उन्हें मिला ही नहीं। लेखकों, कलाकारों, प्राध्यापकों, सामाजिक जन सूचना कार्यकर्ताओं ने जब इन आदिवासियों की सहायता करने का प्रयास किया तो उन्हें 'अर्बन नक्सल' का नाम देकर उन्हें भी कानून के शिकंजे में फँसा लिया गया।

iii. आदिवासियों को धर्म परिवर्तन के लिए कभी पैसों का लालच दिया गया तो कभी उन्हें यह समझाया गया कि 'धर्म ही संस्कृति' है। इससे आदिवासी चिंतित हुए और अपनी 'सांस्कृतिक पहचान' को बचाने लिए कहीं–कहीं आक्रामक भी बन गए। बस! इन्हें दंड देने का, समाज से दूर रखने का मौका मिल गया।

iv. आदिवासियों के प्रति 'कृत्रिम सहानुभूति' दिखाने का नाटक तो चलता रहा लेकिन उनकी जीवनशैली को समझने के लिए किसी प्रकार का कोई शोधपरक प्रयास किया ही नहीं गया।

v. आदिवासी विकास की नीतियों को आकर्षक ढंग से बनाया तो गया लेकिन आदिवासी स्वयं यह कभी जान ही नहीं सके कि उनके अधिकार कौन से हैं? ऐसे में वे उन नीतियों का लाभ भला कैसे उठाते?

यह सब कुछ सोच समझकर ही किया गया। इससे यह स्पष्ट हो ही जाता है कि कानून रूपी रक्षक ही आदिवासियों के हितों का भक्षक है। कानून नहीं उषाकिरण आत्राम जैसी साहित्यकार 'कलम की तलवारें' खींचकर प्रयासरत हैं। आदिवासियों को उनके पारंपरिक जीवनशैली के साथ ही समाज की मुख्यधारा के साथ जोड़ने के लिए। आशा का साथ छोड़ना गलत है इसलिए आशा रखनी होगी कि आदिवासियों की जीवन शैली को लेकर जो भ्रम फैला हुआ है उसमें परिवर्तन अवश्य ही आएगा।

संदर्भ सूची :-

1. घुमंतू है, चोर नहीं, आदिवासी मौन पर विमर्श, गणेश देवी, पृष्ठ संख्या –11
2. घुमंतू है, चोर नहीं, आदिवासी मौन पर विमर्श, गणेश देवी, पृष्ठ संख्या –11–12
3. घुमंतू है, चोर नहीं, आदिवासी मौन पर विमर्श, गणेश देवी, पृष्ठ संख्या –13
4. कलम की तलवारें–उषाकिरण आत्राम, पृष्ठ संख्या–9
5. घुमंतू है, चोर नहीं, आदिवासी मौन पर विमर्श, गणेश देवी, पृष्ठ संख्या– 23–24
6. घुमंतू है, चोर नहीं, आदिवासी मौन पर विमर्श, गणेश देवी, पृष्ठ संख्या – 24

7. कलम की तलवारें–उषाकिरण आत्राम, पृष्ठ संख्या– 45
8. घुमंतू है, चोर नहीं, आदिवासी मौन पर विमर्श, गणेश देवी, पृष्ठ संख्या – 15
9. कलम की तलवारें–उषाकिरण आत्राम, पृष्ठ संख्या– 77
10. कलम की तलवारें–उषाकिरण आत्राम, पृष्ठ संख्या– 77–78
11. घुमंतू है, चोर नहीं, आदिवासी मौन पर विमर्श, गणेश देवी, पृष्ठ संख्या – 12
12. कलम की तलवारें–उषाकिरण आत्राम, पृष्ठ संख्या– 48
13. कलम की तलवारें–उषाकिरण आत्राम, पृष्ठ संख्या– 14–15
14. कलम की तलवारें–उषाकिरण आत्राम, पृष्ठ संख्या– 54
15. कलम की तलवारें–उषाकिरण आत्राम, पृष्ठ संख्या– 61
16. घुमंतू है, चोर नहीं, आदिवासी मौन पर विमर्श, गणेश देवी, पृष्ठ संख्या – 6–7
17. कलम की तलवारें–उषाकिरण आत्राम, पृष्ठ संख्या– 89
18. कलम की तलवारें–उषाकिरण आत्राम, पृष्ठ संख्या–86
19. घुमंतू है, चोर नहीं, आदिवासी मौन पर विमर्श, गणेश देवी, पृष्ठ संख्या – 16–17
20. कलम की तलवारें–उषाकिरण आत्राम, पृष्ठ संख्या–96

संदर्भ ग्रंथ :-

1. घुमंतू है, चोर नहीं, आदिवासी मौन पर विमर्श – गणेश देवी,
   हिंदी अनुवाद– मधु सिंह
   प्रथम संस्करण–2017
   ISBN–978–93–86689–42–9
2. कलम की तलवारें– उषाकिरण आत्राम
   कवयित्री– उषाकिरण आत्राम
   मुख पृष्ठ – माधवी ऊईके
   अनुवादक– मिलिंद पाटिल
   प्रथम संस्करण–2023
   मूल्य – 250

सचल नंबर : 9603224007

drsuparna.mukherjee.81@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 363-369

दलित स्त्री आत्मकथा में अभिव्यक्त स्त्री जीवन में पुरुषों की सहभागिता विशेष संदर्भ : 'टुकड़ा–टुकड़ा जीवन'

आकांक्षा
शोधार्थी, हिन्दी विभाग।

शोध सार :-

दलित साहित्य ने न केवल जातिगत शोषण को स्वर दिया है बल्कि दलित स्त्रियों के जीवन संघर्षों को भी मुख्यधारा में लाने का कार्य किया है। दलित स्त्रियाँ भारतीय समाज की सबसे हाशिए पर खड़ी वर्गों में से एक हैं, जिनकी अस्मिता का संघर्ष जाति, वर्ग और लिंग के तिहरे शोषण से जुड़ी हुई है। दलित स्त्री आत्मकथाएँ विशेष रूप से जाति और लैंगिक दोहरी पीड़ा के ताने–बाने को उजागर करती हैं। कावेरी की आत्मकथा 'टुकड़ा–टुकड़ा जीवन' इस संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण आत्मकथा है। इस आलेख में विश्लेषण किया गया है कि किस प्रकार पुरुष पात्रों की भूमिका दलित स्त्री जीवन को प्रभावित करती है– कहीं सहयोगात्मक तो कहीं दमनात्मक रूप में। लेखिका के जीवन में कुछ पुरुष सकारात्मक परिवर्तन लाते हैं तो वहीं पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अंतर्गत अनेक पुरुष उसके संघर्ष को और जटिल बना देते हैं। इस द्वंद को समझना दलित स्त्री विमर्श को गहराई से जानने के लिए आवश्यक है।

बीज शब्द :- दलित स्त्री विमर्श, आत्मकथा, जातिगत, लैंगिक भेदभाव, शिक्षा और दलित स्त्री मुक्ति, पितृसत्ता, पुरुष सहभागिता, 'टुकड़ा–टुकड़ा जीवन'।

भारत में विमर्श 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रारम्भ होकर शीघ्र ही विस्तृत फलक तक आ गया। वर्तमान में अस्मितामूलक विमर्श चर्चा का विषय बना हुआ है। कहीं स्त्री, किन्नर, किसान, पुरुष या पर्यावरण विमर्श पर बहस हो रहीं हैं पर दलित स्त्री विमर्श की शुरुआत होने से लगता है जैसे की आधी आबादी को आवाज मिल गयी। दलित स्त्री समाज का एक अहम हिस्सा है जिसकी किसी भी और चर्चा तक नहीं हैं। विभिन्न साहित्य विमर्श और दलित साहित्य में जैसे इनके अस्तित्व को ही मिटा दिया गया हो। क्या हमें ये कहना चाहिए की स्त्री समाज स्वतंत्र है, है तो वे कौन–सी स्त्रियाँ हैं जो स्वतंत्र हैं? क्या दलितों में दलित कहीं जाने वाली स्त्रियाँ स्वतंत्र और बेखौफ हैं? उत्तर साफ है– नहीं। आगे इस शोध आलेख से अवगत होंगे की किस प्रकार एक दलित बालिका और स्त्री को सक्षम होने में क्या–क्या प्रताड़नाएँ सहनी पड़ती है? और उनके जीवन में पुरुषों ने किस प्रकार के किरदार निभाएँ हैं।

दलित स्त्री समाज ने प्रारम्भ से ही दोहरी मार खाई है दलित और स्त्री होने का। उनका जीवन संघर्षपूर्ण

रहा है, उन्हें अपने अस्तित्व के लिए लड़ना पड़ा, कभी उन्हें अपने अधिकार के लिए तो कभी अपने स्त्रीत्व के लिए। दलित स्त्री समाज हमेशा से एक हाशिए की शिकार हुई है। वह अपनी वेदना, व्यथा, विद्रूपता को शब्दबद्ध करने लगे और समाज द्वारा दिये गए प्रताड़नाएं को उजागर कर वह समाज से साझा करने लगी हैं। दलित साहित्य ने भारतीय समाज के उस हिस्से को स्वर दिया है जिसे सदियों से मुख्यधारा से वंचित रखा गया। विशेष रूप से दलित स्त्री आत्मकथाएँ न केवल जातिगत शोषण को, बल्कि लिंग आधारित उत्पीड़न को भी उजागर करती हैं। कावेरी द्वारा रचित आत्मकथा 'टुकड़ा–टुकड़ा जीवन' एक ऐसी ही रचना है जो दलित स्त्री जीवन के संघर्षों की सजीव तस्वीर प्रस्तुत करती है। इस आत्मकथा में दलित स्त्री जीवन में पुरुषों की सहभागिता कई स्तरों पर देखने को मिलती हैकृ कहीं यह सहभागिता संवेदनशीलता और सहयोग की प्रतीक है तो कहीं यह स्त्री पर हो रहे अन्याय और शोषण की जड़ में मौजूद है। इस आलेख में इसी द्वैध भूमिका का विश्लेषण किया गया है।

समाज में कुछ लोग पुरुषों को नकारात्मक दृष्टि से देखते हैं, जिसका मुख्य कारण कुछ पुरुषों द्वारा किए गए गलत कार्य होते हैं। इतिहास में पुरुषों को अधिक अधिकार और शक्तियाँ दी गईं, जिनका कई बार दुरुपयोग भी हुआ। जैसे– महिलाओं के अधिकारों का हनन, घरेलू हिंसा, या समाज में भेदभावपूर्ण व्यवहार। इससे यह धारणा बन गई कि पुरुष ही अधिकतर समस्याओं के लिए जिम्मेदार होते हैं। समाज में बहुत से पुरुष ऐसे भी हैं जो ईमानदार, संवेदनशील और सहयोगी होते हैं। पुरुषों की भूमिका सदैव नकारात्मक नहीं होती है, कहीं–कहीं सहयोगात्मक भी होती है। जैसे– पिता, पुत्र, भाई और मित्र की भूमिका प्रायः सहयोगात्मक होती हैं। स्त्रियों को सशक्त बनाने में पुरुषों की भूमिका अहम है। पुरुषों की मानसिकता को हम सिर्फ एक ही नजरिए से देखते हैं कि वह स्त्री को भोग विलास की वस्तु समझते हैं पर कुछ पुरुष ऐसे हैं जो स्त्रियों को आगे बढ़ते भी देखना चाहते हैं। बाबा साहब डॉ. भीमराव अंबेडकर की विचारधारा ने दलित समाज में शिक्षा और समानता के प्रति चेतना उत्पन्न की, जिससे पुरुषों का दृष्टिकोण कुछ हद तक परिवर्तित हुई। उनकी प्रेरणा से दलित पुरुषों के बीच स्त्रियों के अधिकारों को लेकर धीरे–धीरे संवेदनशीलता बढ़ी है। हाल के वर्षों में दलित पुरुषों के एक वर्ग में स्त्रियों की दशा सुधारने को लेकर संवेदनशीलता बढ़ी है।

कई दलित पुरुष अब स्त्रियों की शिक्षा, रोजगार और सामाजिक हिस्सेदारी को समर्थन देने लगे हैं। कई पुरुष अब बेटियों की पढ़ाई, कामकाज और आत्मनिर्भरता को महत्व देने लगे हैं। वे चाहते हैं कि समाज में स्त्रियां पुरुषों से भी आगे जाए। अगर पुरुष अशिक्षित होने के बावजूद भी चाहता है कि उसकी बेटी, बहू या स्त्री पढ़ लिखकर समाज में आगे बढ़े तो यह एक सकारात्मक सोच को दर्शाता है। उदाहरणस्वरूप कावेरी की आत्मकथा में लेखिका के दादाजी शिक्षा के प्रति सचेत एवं जागरूक थे इसीलिए अपनी पोती के लिए वह "एक शिक्षक को खुराकी पर मुझे (लेखिका) पढ़ने के लिए रखा था। शाम को पढ़ाने आते थे और खाना खाकर जाते थे।" लेकिन जैसे–जैसे लेखिका बढ़े होने लगती है तो वही दादाजी पढ़ाई में बाधा डालने लगते और कहते हैं कि – "लड़की बड़ी हो गयी। गाँव से दूर पढ़ने जाना ठीक नहीं है। पढ़ाई छुड़ा दो। मेरी दादी भैया एवं पिताजी पढ़ाने के लिए डटे रहे।" दादाजी की सोच के कारण एक तरफ मुझे अक्षर ज्ञान हुआ तो दूसरी तरफ उनके प्रति मेरी दृष्टिकोण बदलने लगी शिक्षा ग्रहण करना उन्हीं के द्वारा संभव हुआ अब क्यों वह मेरी शिक्षा ग्रहण करने के विरुद्ध हैं। जब बात लड़की के बड़े होने और सामाजिक मान्यताओं से टकराने की आती है, तो वे मुझे शिक्षा ग्रहण करने से रोक

देना चाहते हैं। यह दोहरी मानसिकता पितृसत्तात्मक समाज की उस जकड़न को दर्शाती है, जहाँ नारी शिक्षा और स्वतंत्रता की बात तो होती है लेकिन व्यवहार में जब अपने परिवार की स्त्रियाँ आगे बढ़ने लगती हैं तो वही प्रगतिशील लोग परंपरा और सामाजिक दबावों का हवाला देकर पीछे हट जाते हैं। अजय कुमार अपने आलेख 'दलित महिलाओं का अस्तित्व, अस्मिता और सम्मान' में लिखते हैं की "महिलाओं के शोषण–उत्पीड़न से लड़ने के लिए, प्रतिकार करने के लिए महिलाओं को, विशेषकर दलित महिलाओं को शिक्षित करने की आवश्यकता है।"

लेखिका के शादी के बाद उनके ससुर ने अपने बेटे के बराबर बहू को शिक्षित किया "मेरे ससुर ने आशीर्वाद में कहा था– आपको अपने बेटे की तरह एम.ए. तक पढ़ाऊँगा। फर्स्ट ईयर में मेरा नामांकन इलाहाबाद में हुआ।"

यह एक सकारात्मक और प्रगतिशील सोच को दर्शाता है। इसका अर्थ यह है कि ससुर ने बहू को भी उतना ही शिक्षित किया जितना अपने बेटे को किया, यानी उन्होंने बहू को भी परिवार में बहू को बराबरी का सदस्य माना और उसकी शिक्षा में समान निवेश किया। इसी प्रकार लेखिका के भाई का भी अहम योगदान देखा जा सकता है की वह न सिर्फ अपने बहनों को बल्कि गाँव के लोगों में भी आत्मविश्वास जागृत करता है लेखिका लिखती है– "भैया गाँव के लोगों को ऊपर उठाने के लिए अथक परिश्रम करते। वही लुहार की दादी मरी तो मेरे भैया ने श्राद्ध में मदद किया। ऐसे भी किसी की लड़की की शादी हो या श्राद्ध हो तो उसमें मदद करते। गाँव में रात्रि पाठशाला चलाकर लोगों को साक्षर बनाया। दलित हितैषी पुस्तकालय खोलकर लोगों की पढ़ाई में रुचि जगाये। समय–समय पर वाद विवाद एवं खेल–कूद का आयोजन करवाते थे। इससे हम लोगों की वाक–पटुता बढ़ती थी। आत्मविश्वास बढ़ता था।"

पहले के जमाने में दलित लड़कियों को पढ़ाना एक बड़ा सामाजिक संघर्ष और साहसिक कदम माना जाता था। समाज की संरचना बहुत हद तक जातिवादी और पुरुष प्रधान थी और उसमें दलितोंकृखासकर दलित लड़कियोंकृके लिए शिक्षा प्राप्त करना लगभग असंभव के बराबर था। बहुत से दलित माता–पिता अपने बच्चों को पढ़ाना चाहते थे लेकिन उन्हें समाज और व्यवस्था के विरोध का सामना करना पड़ता था। फिर भी कुछ साहसी परिवारों ने इस बाधा को पार किया और आने वाली पीढ़ियों के लिए रास्ता खोला। लेखिका अपनी आत्मकथा में अपने अभिभावकों का जिक्र करते हुए लिखती हैं –" उन दिनों गाँव की लड़कियां बहुत कम पढ़ती थीं। एक–दो पढ़ीं भी तो गाँव के स्कूल पाँचवीं तक पढ़कर छोड़ दी। उनके अभिभावक और गाँव वालों की नजर हम दोनों बहनों पर होती। मानो मेरे अभिभावक बहुत बड़ा अपराध कर रहे हैं। उल्टी–सीधी लोग बातें करते। मेरे अभिभावक इन बातों से परे हम लोगों की पढ़ाई जारी रखे।"

दलित समाज की पुरुष प्रधान संरचना में स्त्रियों की भूमिका पारंपरिक रूप से घरेलू कामों, खेतिहर मजदूरी और परंपरागत कार्यों तक सीमित रही है। पुरुषों ने लंबे समय तक निर्णय लेने की शक्ति अपने पास रखी, जिससे स्त्रियों को शिक्षा, स्वास्थ्य और आत्मनिर्भरता से वंचित रखा गया। घरेलू हिंसा, बाल विवाह और सामाजिक बंधनों ने दलित स्त्रियों की स्वतंत्रता को और सीमित किया। शादी होने के पश्चात स्त्रियों के जीवन में बहुत बड़ा बदलाव आता है ऊपर से अगर वह कम उम्र में शादी हुई हो, लेखिका की शादी पंद्रह साल की उम्र में कर दी जाती हैं। लेखिका का पति बहुत ही लापरवाह किस्म का व्यक्ति होता है। जो सिर्फ शारीरिक भूख मिटाने की वस्तु समझते है लेखिका लिखती हैं "मेरे पति मुझसे बहुत प्यार करते थे। खुद के आगे मुझे एक छोटी

सी गुड़िया समझते थे। जी भर के खेलते–रौंदते। जी भर जाता तो मुझे निर्जीव की भांति परे धकेल देते।"

पुरुषों की नकारात्मक सहभागिता इस आत्मकथा में पितृसत्तात्मक सोच और जातिवादी व्यवस्था के स्वर को दर्शाता है। समाज के पुरुष वर्ग द्वारा दलित स्त्रियों को तिरस्कार और हिंसा का सामना करना पड़ता है। विवाह के पश्चात् पारिवारिक जीवन में बदलाव आता है जिससे दलित स्त्री जीवन में भी परिवर्तन आता है अब वह अपने पति पर पूर्ण रुप से निर्भर हो जाती हैं। पारिवारिक समस्याओं में दलित स्त्री को शारीरिक शोषण से अधिक मानसिक उत्पीड़न का सामना करना पड़ता ही है चाहे वह पति द्वारा हों या अन्य परिवार के सदस्यों द्वारा कावेरी अपने शिक्षित पति के नकारात्मक पक्ष को उजागर करती है की कैसे उनके शक करने की आदत से वह बार–बार आहत होती है वह लिखती हैं "रातभर बेकार की बातों से मुझे परेशान करते रहे। तुम जीजा के साथ क्यों गई? गई तो उसकी बहन के घर में क्यों ठहरी? रात में साथ में कौन सोया। इन घृणित बातों से मैं बिफर उठी।" उसी परिवार के सदस्य द्वारा जब मेरा शोषण होता, तो मेरे पति उनका सहयोग ही करते और कोई प्रतिक्रिया नहीं देते। मुझे लगता था कि वह मेरे लिए वहाँ कुछ कहेंगे मेरे हित में जवाब देंगे पर सुनने के बाद कि मेरे साथ क्या हुआ? वह शांत रहते। समाज में परिवार और पति द्वारा अधिक शोषण किया जाता है "एक दिन रात में मेरे बिस्तर पर आकार मुझे दबोच लिया। मेरे बेटी मेरे साथ थी। मैंने आंखें खोली तो देवर था। मैंने जोर से थप्पड़ जड़ दी। उठकर बरामदे में बेटी को लेकर बैठ गई। पछतावा में आँसू निकल रहे थे। शादी होकर आयी तब वह एक बार मुझ पर आक्रमण कर चुका था। मैंने अपने पति को कहा था। वे फ्रायड के नीति पर चलने वाले थे इन बातों को सहज रुप में टाल जाते।" आज स्त्रियाँ कहाँ सुरक्षित है? जब वह अपने घर में नहीं तो कहीं और क्या ही होंगी? पति का अपने भाई के प्रति कोई टिप्पणी नहीं देना यह दिखता है कि पति अपनी स्त्री की पीड़ा को कोई महत्व नहीं देता हैं, जब लेखिका को अपने घर में कोई समर्थन नहीं मिलता है खास कर अपने पति द्वारा तो वह पूरी तरह से टूट जाती हैं। अजय कुमार अपने लेख 'दलित महिलाओं का अस्तित्व, अस्मिता और सम्मान' में लिखते है की "यह सच है की मर्दों की इस दुनियाँ में उससे एक भोग–वस्तु या क्रय–विक्रय की चीज या राजनीति की शतरंज का मोहरा समझा जाता है। उसका कोई अस्तित्व नहीं, उसके अधिकार केवल मर्दों के गुलामी हैं।"

दलित स्त्रियाँ पूरी तरह सुरक्षित नहीं हैं। वे दोहरी मार झेलती हैं– एक ओर समाज में जातिगत भेदभाव और दूसरी ओर घर में पुरुषों द्वारा किया गया लैंगिक शोषण। जब कोई महिला अपने ही घर में, अपने पति और परिवार से सुरक्षा और समर्थन नहीं पा सकती, तो उसकी स्थिति बहुत ही कमजोर और असुरक्षित हो जाती है। यह भी देखा जाता है कि जब वह अपने साथ हुए अन्याय की बात करती है, तो समाज उसे चुप रहने की सलाह देता है या अनदेखा कर देता है। यह दर्शाता है कि दलित महिलाओं की पीड़ा को अक्सर नजरअंदाज किया जाता है, जिससे उनकी असुरक्षा और भी बढ़ जाती है।

आज भी दलित स्त्रियों को दलित पुरुषों से बराबरी पाने के लिए लम्बा संघर्ष करना पड़ता है। लेखिका आत्मकथा में लिखती हैं कि "जब नौकरी में आयी तो बाहरी संघर्ष जारी हो गया। सवर्ण शिक्षकों से भी अधिक सर्वगुण सम्पन्न के बावजूद हेय दृष्टि से देखा जाता है। आरक्षण शब्द को कटार बनाकर घायल किया जाता। मैंने बाहरी मुकाबला डटकर किया। परन्तु घर–परिवार ने मुझे ज्यादा घायल किया। बचपन में भैया और चाचा जल्लाद की भांति देखते थे। शादी के बाद पति। मैं अपनी मर्जी से अपना कमाया हुआ धन का उपयोग नहीं

कर सकती।" पितृसत्ता की गहरी जड़ें कई बार दलित पुरुषों को भी महिला–विरोधी दृष्टिकोण अपनाने पर मजबूर कर देती हैं। कई बार पुरुष स्वयं अपने विशेषाधिकार को छोड़ने को तैयार नहीं होते, जिससे दलित स्त्रियों की आवाज दब जाती है। शिक्षित होने के बावजूद दलित स्त्रियों को जाति के आधार पर संघर्ष करना पड़ता है। भारतीय दलित समाज का सच यह है की कोई भी दलित स्त्रियों को आगे बढ़ता नहीं देख सकता है अगर वह स्त्री अपनी मेहनत से आगे बड़े तो कार्यस्थल पर अपमानजनक भाषा या व्यवहार का सामना करना पड़ता है। महिला होने के कारण उन्हें पुरुषों से कम महत्व दिया जाता है। घर और समाज में नौकरी करने वाली दलित स्त्रियों को संदेह की निगाह से देखा जाता है। उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे सिर्फ घर की जिम्मेदारी निभाएँ। अगर वह जातिगत अपमान झेलने के बावजूद बाहर जा कर आर्थिक रुप से सक्षम होना चाहती है तो क्यों पुरुष प्रधान समाज और जातिवादी सोच के कारण दलित स्त्री पर रोक लगा दी जाती है। आज भी स्त्रियों द्वारा कमाया हुआ धन पर पुरुष का ही हक है आज भी स्त्रियाँ अपना कमाया हुआ धन स्वयं खर्च नहीं कर सकती हैं।

बच्चे हमारे समाज का आधार होते हैं। उनका स्वस्थ मानसिक और भावनात्मक विकास एक सशक्त भविष्य की नींव रखता है। लेकिन जब कोई बच्चा यौन शोषण का शिकार होता है, तो उसकी मासूमियत और मानसिक स्थिरता दोनों पर गंभीर असर पड़ता है। लेखिका बचपन में हुए शोषण का जिक्र करती है और बताती है की गर्मी की छुट्टी हुई दादी मुझे गया ले जाने वाली ट्रेन में अंदर घुस आयी बहुत भीड़ होने के कारण मैं बुरी तरह पीस रही थी "घबड़ाकर मैं चिल्लाने लगी। दादी मुझे नहीं जाना है। दादा के पास लौट जाओ। मुझे रोते देख एक ऊपर बर्थ वाला व्यक्ति ने दादी से कहा–'बच्ची को ऊपर दे दो'। उस अधेड़ का चेहरा अभी भी मेरे मानस–पटल पर छाया है। दादी सरल थी। मेरा भलाई के लिए मुझे ऊपर बर्थ पर चढ़ाकर राहत की साँस ली। उस आदमी ने मुझे बर्थ पर लिटा दिया और मेरे पेट पर हाथ फेरने लगा। मुझे अजीब लगने लगा। मैंने घबड़ा कर फिर चिल्लाना शुरू किया। दादी मुझे नीचे उतारो। वह आदमी सहानुभूति दिखने लगा। क्या हुआ बेटी! आराम से सो जाओ। नीचे भीड़ है। परन्तु मेरे चिल्लाना बंद नहीं हुआ। क्योंकि उस आदमी का हाथ मेरी जाँघिया तरफ था।" समाज में ऐसे कितने ही वहशी मानसिकता के पुरुष है जिनके कारण पूरे पुरुष प्रधान समाज पर सवाल खड़ा कर दिया जाता है।

एक अन्य घटना में लेखिका अपने बेटी के साथ हुए शोषण का जिक्र करते हुए लिखती हैं " बगल वाला कमरा में दूर का रिश्तेदार था। वह मेरे ऊपर काफी हमदर्दी दिखाने लगा। ऐसी हालत में छोड़कर नहीं जाना चाहिए था। वह मेरी बेटी को साथ खाना–खिलाकर। बाजार से कुछ न कुछ लेते आता। एक दिन उसी के कमरे में मेरी बेटी खेलते–खेलते सो गयी। जब में लेने गयी। तब उसने कहा आपकी बेटी नहीं मेरी बेटी है। आराम से सोयी है। जागेगी तब पहुँचा दूँगा। मैं बुद्धू। अपने बचपन की कथा भूल गयी थी। सबेरा हुआ। बेटी को नहलाने लगी। उसके जाँघ पर लसा जैसा पदार्थ। मेरी तो घृणा और क्रोध से मैं पागल हो गयी।" यौन शोषक जीवन भर की त्रासदी दे के चले जाते हैं। एक पल की हैवानियत किसी मासूम की पूरी जिंदगी को तोड़ देती है। बचपन, जो खेल–कूद, हँसी और सपनों से भरा होना चाहिए, वह डर, शर्म और चुप्पी में बदल जाता है। शोषक तो चला जाता है पर उस बच्चे के भीतर एक घाव छोड़ जाता है, जो न दिखाई देता है, न आसानी से भरता है और सबसे दुःखद बात ये है कि बहुत से बच्चे कभी बोल ही नहीं पाते। डर, धमकी, या ये सोचकर

कि कोई विश्वास नहीं करेगा वे चुप रह जाते हैं और ये चुप्पी धीरे–धीरे उन्हें अंदर से तोड़ती जाती है। शोषण चाहे मानसिक हो या शारीरिक दोनों तरफ से इंसान को झकझोर देता है। इस तरह के अनुभवों का असर बच्चे के पूरे जीवन पर पड़ सकता है। वे भविष्य में किसी भी रिश्तों में भरोसा नहीं कर पाते, दूसरों से मेल–जोल से बचते हैं। आत्मकथा में आए विभिन्न पुरुष पात्रों ने लेखिका के जीवन पर गहरा प्रभाव डाला। कुछ पुरुष पात्रों ने सहारा देकर, मार्गदर्शन करके या प्रेरणा बनकर सकारात्मक भूमिका निभाई, जबकि कुछ ने अपने स्वार्थ, अन्यायपूर्ण व्यवहार या उपेक्षा से लेखिका को पीड़ा दी। इन पात्रों के माध्यम से आत्मकथा यह दर्शाती है कि जीवन में हर अनुभव– चाहे वह अच्छा हो या बुराकृव्यक्ति को कुछ न कुछ सिखाता है और उसे मानसिक रूप से मजबूत बनाता है। अतः इन सभी पात्रों का योगदान लेखक के आत्मविकास में महत्वपूर्ण रहा।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि दलित स्त्री जीवन में पुरुषों की सहभागिता एक जटिल लेकिन आवश्यक पहलू है। जब तक पुरुष वर्ग अपने सोच और व्यवहार में परिवर्तन नहीं लाता, तब तक स्त्रियों की पूर्ण मुक्ति संभव नहीं है। आज दलित स्त्री, परम्पराएँ ,रूढ़ियों और प्रथाओं को खंडित कर समाज में अग्रसर हो रही हैं वह अपने अधिकारों से वंचित हैं। आज दलित स्त्री बाहर काम करने के साथ–साथ घर आकर अपने परिवार के लिए खाना पकाती है घर संभालती हैं। अब हर क्षेत्र में आगे बढ़ रहीं है। यह सहभागिता केवल सहानुभूति तक सीमित न रहे, बल्कि वह सहयोग, समर्थन और समानता की दिशा में ठोस कदमों के रूप में प्रकट होनी चाहिए।

'टुकड़ा–टुकड़ा जीवन' में पुरुष पात्र दो ध्रुवों पर खड़े हैं – एक ओर पिता जैसे संवेदनशील और प्रगतिशील पुरुष, जो स्त्री को आगे बढ़ाने में सहयोग करते हैं। वहीं दूसरी ओर समाज के रूढ़िवादी पुरुष जो जाति और लिंग के नाम पर दलित स्त्री को दोहरे अत्याचारों का शिकार बनाते हैं। इन पात्रों के माध्यम से आत्मकथा भारतीय समाज की गहरी पितृसत्तात्मक और जातिवादी संरचना को उजागर करती है। बच्चों का मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य हमारे देश का भविष्य तय करता है। यौन शोषण जैसी घटनाएं उनके विकास को गंभीर रूप से प्रभावित करती हैं। हमें मिलकर ऐसे अपराधों को रोकने और बच्चों को सुरक्षित वातावरण देने की दिशा में कार्य करना होगा। यदि दलित पुरुष नारी चेतना को पूरी तरह स्वीकार करें और उसे सामाजिक परिवर्तन का अंग मानें, तो वे दलित स्त्रियों के सशक्तिकरण में एक सशक्त भूमिका निभा सकते हैं। शिक्षा, समान अधिकारों की माँग और घरेलू हिंसा के खिलाफ खड़े होकर पुरुष एक नए, बराबरी पर आधारित समाज की नींव रख सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. कावेरी, (2017), टुकड़ा–टुकड़ा जीवन, नई दिल्ली : ईशा ज्ञानदीप, पृष्ठ संख्या–7
2. कावेरी, (2017), टुकड़ा–टुकड़ा जीवन, नई दिल्ली : ईशा ज्ञानदीप, पृष्ठ संख्या–12
3. गौतम, एस. एस. (2023), दलित महिला दशा और दिशा, दिल्ली : सिद्धार्थ बुक्स, पृष्ठ संख्या–115
4. कावेरी, (2017), टुकड़ा–टुकड़ा जीवन, नई दिल्ली : ईशा ज्ञानदीप, पृष्ठ संख्या–16
5. कावेरी, (2017), टुकड़ा–टुकड़ा जीवन, नई दिल्ली : ईशा ज्ञानदीप, पृष्ठ संख्या–11
6. कावेरी, (2017), टुकड़ा–टुकड़ा जीवन, नई दिल्ली : ईशा ज्ञानदीप, पृष्ठ संख्या–10
7. कावेरी, (2017), टुकड़ा–टुकड़ा जीवन, नई दिल्ली : ईशा ज्ञानदीप, पृष्ठ संख्या–87

8. कावेरी, (2017), टुकड़ा–टुकड़ा जीवन, नई दिल्ली : ईशा ज्ञानदीप, पृष्ठ संख्या–23
9. कावेरी, (2017), टुकड़ा–टुकड़ा जीवन, नई दिल्ली : ईशा ज्ञानदीप, पृष्ठ संख्या–31
10. गौतम, एस. एस.(2023), दलित महिला दशा और दिशा, दिल्ली : सिद्धार्थ बुक्स, पृष्ठ संख्या–117
11. कावेरी, (2017), टुकड़ा–टुकड़ा जीवन, नई दिल्ली : ईशा ज्ञानदीप, पृष्ठ संख्या–87
12. कावेरी, (2017), टुकड़ा–टुकड़ा जीवन, नई दिल्ली : ईशा ज्ञानदीप, पृष्ठ संख्या–9
13. कावेरी, (2017), टुकड़ा–टुकड़ा जीवन, नई दिल्ली : ईशा ज्ञानदीप, पृष्ठ संख्या–32

ई–मेल : akank199@gmail.com
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 370-376

वर्तमान दौर के विमर्श : महिला विमर्श के संदर्भ में

डॉ. कंचन आर्या
सहा. प्राध्यापक (अतिथि व्याख्याता) हिंदी विभाग डी.एस.बी.परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल (उत्तराखंड)

सार :–

महिला विमर्श का मुख्य सार है स्त्री के प्रति समाज में मौजूद असमानता और शोषण का विरोध करना। यह विमर्श महिला को समाज में समान अधिकार और स्वतंत्रता दिलाने की दिशा में काम करता है। महिला विमर्श समाज में स्त्री और पुरुष के बीच मौजूद असमानता और भेदभाव को उजागर करता है और नारीवाद इसका विरोध करता है तथा नारी विमर्श महिला के जीवन, समाज, संस्कृति, साहित्य में उनके अनुभवों की व्याख्या करता है तथा जो स्त्री–पुरुष समानता की वकालत करता हैं। अतः स्त्री विमर्श स्त्रियों के जीवन, स्थिति, समस्याओं और अधिकारों पर विचार करना, चर्चा करना एवं उनकी स्थिति को बेहतर बनाने के लिए संघर्ष करना, स्त्री के प्रति सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक दृष्टिकोणों को समझने और चुनौती देने का एक प्रयास है।

स्त्री की स्थिति एवं विकास – "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।"[1]

भारत में महिलाओं की स्थिति समय–सयम पर परिवर्तित होती रही है। प्राचीन काल में नारियों को समाज में उच्च स्तर प्राप्त था। उन्हें सुख–समृद्धि, शांति, वैभव और ज्ञान का प्रतीक माना जाता था, इसीलिए दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती के रूप में उनकी पूजा करने का विधान रहा है। मनुस्मृति के अनुसार– **"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। यत्रैतास्तु न पूजयन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।"** अर्थात् जहां नारियों की पूजा होती है वहां देवता निवास करते हैं और जहां इनकी पूजा नहीं होती वहां सभी कार्य निष्फल होते हैं, परंतु धीरे–धीरे समाज में नारियों का सम्मान कम होता चला गया।

भारतवर्ष में सामाजिक परिवर्तन के साथ–साथ स्त्रियों की कार्य–भूमिका भी तेजी से बदल रही है। खासकर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद स्त्री तथा पुरूष दोनों की मानसिकता में बहुत परिवर्तन आया है। स्त्रियों में समानता का जुनून बढ़ रहा है, वे अपने अधिकार के प्रति जागरूक हुई हैं और अपनी स्वतंत्रत पहचान के प्रति उनमें ललक पैदा हुई हैं। देश की लगभग सभी पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीणों के सर्वांगीण विकास को प्रमुख स्थान दिया गया है, परंतु इस दिशा में अपेक्षाकृत कम ही लाभदायक परिणाम सामने आए हैं, क्योंकि इसमें महिलाओं की आधी दुनिया का कार्यक्रम क्रियान्वयन में प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया। देश की प्रगति में पुरूषों के साथ–साथ महिलाओं की भागीदारी अत्यावश्यक है। वे देश के कल्याण एवं विकास में अहम भूमिका निभाती हैं। चूंकि महिलाएं समाज का महत्वपूर्ण अंग हैं, इसलिए ग्रामीण विकास हो या शहरी विकास, महिलाओं के बिना अपेक्षित विकास नहीं किया जा सकता।

नारीवादी विचारों का आरंभ इस विश्वास के साथ होता है कि स्त्रियां पुरूषों की तुलना में अलाभ की स्थिति में हैं और उसका प्रमुख कारण शारीरिक विभिन्नता से उत्पन्न नहीं अपितु वे कारण हैं जो कृत्रिम हैं, समाज द्वारा निर्मित हैं और जिन्हें चुनौती दी जानी चाहिए व परिवर्तित करना चाहिए। एक राजनीतिक विचारधारा के रूप में यह स्त्रियों की समस्याओं को राजनीतिक समस्याओं का केंद्र मानती है, इसलिए राजनीति के क्षेत्र और प्रकृति को पुनर्परिभाषित करने की मांग रखनी है। स्त्रियों की असमानता, दमन और अधीनता के कारणों, प्रकारों और समाधानों के बारे में नारीवादियों के मध्य मतभेद हैं और इस कारण उन्हें अलग–अलग नामों से जैसे उदारवादी, मार्क्सवादी, अतिवादी, समाजवादी, ब्लैक या उत्तर आधुनिकवादी के रूप में परिभाषित किया जाता है।

इक्कीसवीं सदी आने पर भी ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के विकास में अनेक तत्व बाधक हैं :–

1. हमारा सामाजिक ढांचा समाज में पुरूष और महिलाओं की अलग–अलग भूमिकाएं निर्धारित करता है। विश्व के लगभग सभी समाजों में महिलाओं का स्तर पुरूषों के समान नहीं है।
2. स्त्री–पुरूष भिन्नताओं का प्रारंभ पुरूष वरीयता और पितृसत्ता से प्रारंभ हुआ। यह एक ऐसी विचाराधारा है जो पुरूषों को श्रेष्ठ मानने पर आधारित है, इसलिए पुरूषों को अधिक अधिकार, संसाधन और निर्णय लेने की शक्ति प्राप्त है। महिलाओं को परंपरागत भूमिकाएं सौंपी गई हैं–वे हैं माता, पत्नी बनाम गृहिणी, रसोइया और बाल देखभाल करती। फिर भी महिलाओं ने अपनी परंपरागत भूमिकाओं के साथ समाज में प्रत्येक क्षेत्र में कदम आगे बढ़ाया है जबकि उनके साथ कदम–कदम पर भेदभाव किया जा रहा है।
3. गांवों में महिलाएं खेती का अधिकांश कार्य–बीज छींटना, पौधारोपण, निराई–गुड़ाई, खाद–पानी, फसल की कटाई एवं घर लाने तक सभी कार्य करती हैं। इसके बावजूद महिलाओं को कृषक श्रेणी में नहीं रखा गया है, केवल पुरूष ही कृषक श्रेणी में आते हैं।
4. एक समान कार्य के लिए पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं को कम वेतन, कम मजदूरी दी जाती है। (बीड़ी बनाने वाले, ईंट–भट्टा आदि पर कार्यरत पुरूष–महिला मजदूरों की मजदूरी में अंतर)।
5. नौकरियों में भर्ती/पदोन्नति में भी भेद–भाव किया जाता है।
6. समान शैक्षिक योग्यता, समान पद के बावजूद विवाह के समय दिया जाने वाला दहेज समाज में महिलाओं की स्थिति स्वयं चरितार्थ करता है। साथ ही महिला उत्पीड़न, बलात्कार, भ्रूण हत्याओं का सिलसिला समाज में महिलाओं की निम्न स्थिति का द्योतक है।
7. असमान स्तर के कारण उन्हें शारीरिक एवं मानसिक हिंसा का शिकार होना पड़ता है।
8. आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने पर भी घर के मुख्य निर्णयों की जिम्मेदारी उन्हें नहीं सौंपी जाती। यद्यपि निर्णय लेने वाले निकायों और राजनीति में महिलाओं की सहभागिता में वृद्धि हुई है, तथापि इन स्थितियों में अभी भी महिलाओं का प्रतिशत कम है।
9. एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार महिलाएं सारी दुनिया में किए गए काम के घंटों में 60 प्रतिशत से अधिक का योगदान करती हैं, जबकि उन्हें दुनिया की कुल आय का मात्र 10 प्रतिशत प्राप्त होता है और वे केवल 1 प्रतिशत सम्पत्ति की मालिक हैं।
10. पूरे विश्व में सिर्फ 14 प्रतिशत महिलाएं उच्च प्रबंधकीय पदों पर हैं। 1995 की संयुक्त राष्ट्र परिषद् विकास रिपोर्ट के अनुसार।

11. विश्व के 70 प्रतिशत सबसे गरीब और अनपढ़ लोगों में महिलाएं आती हैं।

स्त्री विमर्श एवं साहित्यिक आंदोलन की अवधारणा :-

स्त्री विमर्श उस साहित्यिक आंदोलन को कहा जाता है जिसमें स्त्री अस्मिता को केंद्र में रखकर संगठित रूप से स्त्री साहित्य की रचना की गई। हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श अन्य अस्मितामूलक विमर्शो की भांति ही मुख्य विमर्श रहा है जो कि लिंग विमर्श पर आधारित है। शुरूआत में हिंदी में इसके लिए नारीवाद या मातृसत्तात्मक शब्द प्रचलन में रहा है स्त्री विमर्श को अंग्रेजी में फेमिनिज्म कहा गया है। इसलिए नारीवाद/स्त्री विमर्श को हम अलग–अलग अवधारणाओं या सिद्धांतो में समझ सकते हैं।

सिद्वांत : स्त्री विमर्श :-

नारीवादी सिद्धांतों का उद्देश्य लैंगिक असमानता की प्रकृति एवं कारणों को समझना तथा इसके फलस्वरूप पैदा होनी वाले लैंगिक भेद–भाव की राजनीति, शक्ति संतुलन के सिद्धांतों पर इसके अवसर की व्याख्या करता है। स्त्री विमर्श संबंधी साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक प्रचारों का जोर प्रजनन संबंधि अधिकार, मातृत्व अवकाश, समान वेतन, घरेलू हिंसा संबंधित अधिकार, यौन उत्पीड़न, भेदभाव रहा है।

स्त्रीवादी विमर्श संबंधी आदर्श का मूल कथ्य यही रहता है कि कानूनी अधिकारों का आधार लिंग न बने। हालांकि जमीनी स्तर पर स्त्रीवादी विमर्श की अपनी खास समस्याएं होती हैं।

समाजशास्त्री अवधारणा :-

स्त्री–पुरुष दोनों ही समाज के अभिन्न अंग हैं। दोनों के बिना समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। समाज रूपी रथ के यह दो पहिए हैं। अगर समाजवादी रथ को आगे बढ़ाना है तो ''स्त्री–पुरुष इन दोनों पहियों की अत्यंत आवश्यकता है। दोनों की स्थिति अपने शरीर के दो पैरों जैसी होनी चाहिए किंतु विडंबना यह है कि ऐसी होती नहीं है।[3] मराठी साहित्यकार पुल देशपांडेजी ने कहा है :–

''चलने वाले दो पैर कितने विसंगत,
एक आगे और एक पिछे।''

आगे वाले को न अहं है, न पिछे वाले का अभिमान, क्योंकि उन्हें पता है कुछ क्षणों में ही है बदलाव उसी का नाम है जीवन।''[4]

जीवन जीना एक कला है जो सामाज से ही सीखी जा सकती है। अतः समाज और साहित्य एक–दूसरे के पूरक हैं। उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। क्योंकि साहित्य में समाज का रूप प्रतिबिंबित होता है। आज साहित्य जगत में सर्वाधिक चर्चा दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श तथा बजार विमर्श इन मुददों पर हो रही है। अतः इनमें भी दलित विमर्श और स्त्री विमर्श पर सर्वाधिक। अतः आज स्त्री विमर्श, दलित विमर्श जैसे विषयों पर देशभर के साहित्य जगत में, चिंतन–मनन का विषय बनाया है।

पुरुष सत्तात्मक समाज में महिलाओं की स्थिति अत्यंत जटिल है। उन्हें तरह–तरह की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं। समान नागरिक संहिता के संवैधानिक प्रावधानों का महिलाओं के संदर्भ में आंशिक क्रियान्वयन, लिंगभेद के आधार पर उन्हें समानता के विभिन्न अवसरों से वंचित रखना, सहभागिता और प्रतिनिधित्व में उनकी अवहेलना, शिक्षा, स्वास्थ्य की सुविधाओं और विकास की प्रक्रिया में उनकी कम हिस्सेदारी, कन्या भ्रूण हत्या, दहेज हत्या और प्रसव काल में या तदुपरांत पौष्टिक भोजन उपलब्ध न कराए

जाने के कारण जच्चा–बच्चा दोनों में रक्ताल्पता और यहा तक कि उसके कारण अंततः मृत्यु आदि महिलाओं से जुड़ी प्रमुख समस्याएं हैं।[5]

जैविक प्राणी के रूप में पुरुष और नारी में केवल लैंगिक अंतर है किंतु सामाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से इनमें कोई लैंगिक अंतर नहीं है। उनमें किया जा रहा अंतर सामाजिक संरचना के विकास के फलस्वरूप जनित है। लिंगभेद प्रारंभ से ही समाज के उस मानसिक सामाजिक–सांस्कृतिक दृष्टिकोण पर आधारित था, जो महिलाओं को अक्ष्म और कमजोर मानता था। इस दृष्टिकोण से यह विश्वास जन्मा कि विभिन्न शारीरिक और मानसिक विशेषताओं के कारण पुरुष और महिलाएं प्राकृतिक रूप से भिन्न हैं और यह भिन्नता अपरिवर्तनशील है। परिणामस्वरूप उनकी भूमिकाओं और स्तर को भी अलग–अलग रखने की परंपरा स्थापित हुई। परंपरागत सोच और विश्वास के अनुसार माता–पिता बच्चे–बच्चियों के लालन–पालन में भिन्न व्यवहार करने लगे। लड़के को किताब और मैदान में गेंद और लड़की को घर की चहारदीवारी के अंदर गुड़िया–पुतली खेलने के लिए और गृह कार्य, शिशु पालन और रसोईघर के प्रबंधन का दायित्व सौंपा जाने लगा। लड़के या पुरुष को अच्छा खाना, अच्छे स्वास्थ्य की सुविधा, शिक्षा का प्रबंध, गृह के स्वामित्व का प्रशिक्षण और निर्णय–निर्माण में सहभागिता के अवसर दिए जाने लगे, जबकि लड़कियों अथवा महिलाओं को इन सुविधाओं से वंचित रखे जाने की परंपरा बनी। इसी भिन्न व्यवहार क्रिया को लिंगभेद कहा जाता है जो समाज द्वारा निर्मित है।

राजनीतिक अवधारणा :–

एक राजनीतिक अवधारणा के रूप में नारीवाद 20वीं शताब्दी की देन है। 1960 के दशक के पश्चात् यह धीरे–धीरे महत्वपूर्ण बन रही है। 19वीं शताब्दी में जब नारीवाद शब्द का उपयोग किया गया, तब वह एक चिकित्सकीय अवधारणा थी, जिसका अर्थ या तो मर्द का नारीकरण होने या औरत के मर्दीकरण होने की प्रक्रिया को समझाने के लिए किया गया। आधुनिक प्रयोग में नारीवाद को महिलाओं के अधिकारों के लिए किए जाने वाले आंदोलन और उससे संबंधित चिंतन से लिया जाता है। यह मुख्यतः दो महत्वपूर्ण विश्वासों पर आधारित है। एक तो महिलाएं इसलिए कम लाभान्वित होती हैं, क्योंकि वह एक निम्न यौन से संबंधित हैं और दूसरा इस निम्नता को समाज द्वारा निर्मित किया गया है, जिसको समाप्त करना आवश्यक है।

नारीवादी पुरुष और स्त्री की असमानता के राजनीतिक कारण मानते हैं, नारीवाद की इस मूलभूत सार्वभौमिक मान्यता पर सभी नारीवादियों के सहमत होने पर भी नारीवाद एक संगठित आंदोलन के रूप में नहीं है, क्योंकि इसमें कई प्रकार की विचारधाराएं सम्मिलित हैं। हालांकि सभी प्रकार की विचारधाराएं इस बात पर सहमत हैं कि महिलाओं की स्थितियों को अच्छा बनाया जाए और इसके लिए स्त्रियों के वोट डालने के अधिकार, शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर, सार्वजनिक जीवन में महत्वपूर्ण पदों को प्राप्त करने के समान अवसर, गर्भपात का कानूनी अधिकार, स्त्रियों की वेशभूषा संबंधी नियमों में छूट इत्यादि शामिल है।[6]

नारी चिंतन के प्रति चिंता केवल 20वीं शताब्दी की देन नहीं है। 1405 में इटली में छपी पुस्तक **'बुक ऑफ द सिटी ऑफ लेडीज'**[7] में आधुनिक नारीवाद के कई विचार मिलते हैं। इसी प्रकार पहली पुस्तक मेरी वोल्स्टानकाफट' के द्वारा लिखी गई **'विंडीकेषन ऑफ द राईट ऑफ द विमेन'**[8] में भी स्त्रीयों की दशा को सुधारने की जोरदार आवाज उठी।

अब नारीवाद केवल राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं चाहता था, अपितु वह स्त्रियों के संपूर्ण स्वतंत्रता की

वकालत कर रहा था। इसके लिए उन्होंने सामाजिक परिवर्तन में आमूलचूल क्रांतिकारी परिवर्तन करने की वकालत की। इस प्रकार 1970 के दशक में नारीवाद ने अपने आपको एक विचारधारा के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। 1990 के आते–आते वह एक विचारधारा के रूप में स्थापित हो गई। 21वीं शताब्दी के आरंभ तक इस विचारधारा में कई परिवर्तन आए, जिनमें उसके उग्रवादी विचारों को संयत किया गया और इसीलिए उत्तर नारीवाद की बात भी की जाने लगी। नारीवाद में नारियों की समानता के साथ–साथ उनमें होने वाले जाति, वर्ण, राष्ट्रीयता, सम्पत्ति इत्यादि के विभाजनों से भी अलग–अलग प्रकार के दृष्टिकोण उत्पन्न हुए और नारीवाद की अपेक्षा अब लैंगिक समानता या लैंगिक सिद्धांत की बात की जाने लगी, जो अवधारणा लिंग निरपेक्ष है, क्योंकि नारीवाद का प्रयोग उसे पुरुष के विरूद्ध खड़ा करता है, जबकि समस्या पुरुष बनाम नारी न होकर असमानता को लिंग आधारित न करने की है।[9]

नारीवाद के अनुसार लिंग सामाजिक वर्ग, धर्म एवं वर्ण, नृजाति के समान एक महत्वपूर्ण सामाजिक विभाजन का आधार है, इसलिए नारीवादी वर्ग, वर्गीय राजनीति की तरह लैंगिक राजनीति की अवधारणा देते हैं। वे लिंगवाद को – जातिवाद या जातिवाद की तरह एक दमन करने का तरीका मानते हैं। परंपरागत राजनीतिक चिंतन में लिंग आधारित शोषण को स्वीकार करते हुए भी लिंग को एक महत्वपूर्ण राजनीतिक अवधारणा नहीं मानते। नारीवादी इसलिए पितृसत्तात्मकता को स्त्री और पुरुष के मध्य के संबंधों को निरूपित करने के लिए एक महत्वपूर्ण अवधारणा मानते है। **कैट मिलेट**[10] 1970 ने इसीलिए पितृसत्तात्मक सरकार को परिभाषित करते हुए लिखा है कि यह वह संस्था है जिसमें आधी जनसंख्या जो स्त्री है वह बाकी आधी जनसंख्या (जो पुरूष है) के द्वारा नियंत्रित होती है इसको वृहद् रूप से लेन पर पितृ सत्तात्मकता का अर्थ यह भी है कि स्त्रियां पुरुष के आधिपत्य में रहें और युवा बड़ी उम्र वाली पुरुषों के आधिपत्य में रहे इसलिए पितृ सत्तात्मकता एक पद सोपानीय समाज को जन्म देता है जिसमें पीड़ियों के आधार पर और लिंग के आधार पर आधिपत्य स्वीकार किया जाता है।

हालांकि नारीवाद यह मानता है। कि सभी संस्कृतियों में और अलग–अलग समय में पितृसत्तात्मक सिद्धांत समान रूप से नहीं पाया जाता और स्त्री वर्ग के शोषण या स्त्री पर आधिपत्य की प्रक्रिया सभी में समान नहीं है। पश्चिमी देशों में 20वीं शताब्दी में स्त्रियों की दशा में बहुत सुधार आया है। इसका कारण वोट देने के अधिकार, शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार, विवाह एवं तलाक के कानूनों में परिवर्तन, गर्भपात का वैधिकीकरण इत्यादि है। विकासशील राष्ट्रों में अभी भी पितृसत्तात्मकता का प्रभुत्व है। वहा पर परिवर्तन की प्रक्रिया धीमी है। इन समाजों में कुछ सामाजिक प्रथाएं हैं, जो महिलाओं के अधिकारों को वंचित करती हैं, जैसे दहेज–प्रथा, बाल विवाह इत्यादि, इस प्रकार सभी नारीवादी पितृसत्तात्मकता की अवधारणा पर सहमत नहीं होते, लेकिन इसके मूल विचार पर सहमत हैं कि इसके द्वारा स्त्रियों पर आधिपत्य जमाया जाता है और उनका शोषण किया जाता है। उदार नारीवादी अधिकारों के असमान वितरण को इस प्रक्रिया में महत्वपूर्ण मानते हैं वहीं समाजवादी नारीवादी आर्थिक असमानता को इसका महत्वपूर्ण कारण मानते हैं और यह भी मानते हैं कि यह वर्ण विभेद से उत्पन्न होता है, लेकिन उग्र नारीवाद पितृसत्तात्कता को एक अलग संवर्ग मानने पर जोर देता है।

अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक अवधारणा :–

अनेक नारीवादियों के अनुसार, विमुक्ति की दृष्टि से, विशेषकर महिलाओं के उद्धार की दृष्टि से लैंगिक

व्यवस्था के प्रति जागरूकता का निर्माण करना नारीवादी सिद्धांत का प्रमुख उद्देश्य है। इसका उद्देश्य लैंगिक व्यवस्था के मुददे पर मौलिक रूप से पुनः अभिविन्यास निर्धारित करना भी हैं। मार्क्सवादी परंपरा में समालोचनात्मक सिद्धांत के साथ–साथ उत्तर आधुनिकतावाद ने भी नारीवादी साहित्य को अभिव्यक्ति प्रदान की है। नारीवादी समालोचनात्मक सिद्धांतवादियों ने पारिवारिक महिलाओं की विमुक्ति पर बल दिया है। दूसरी ओर उत्तर आधुनिक नारीवादी विचारक लिंग व्यवस्था पर अधिक ध्यान केंद्रित करते हैं अर्थात् किस प्रकार पुरुष एवं स्त्री का वर्गीकरण शक्ति सोपानिक व्यवस्था का निर्माण करता है जिसमें प्रथम को दूसरे से अधिक महत्व दिया जाता है। वे उन कारकों पर ध्यान केंद्रित करते हैं जिनके द्वारा ये प्रतिपक्षी शक्ति को आधार प्रदान करते हैं। नारीवादी दृष्टिकोण के समर्थक उन कारकों पर नजर डालते हैं जिनमें महिलाओं पर उचित प्रकार से ध्यान नहीं दिया गया है। तथा वे यह भी अवलोकन करते हैं कि किस प्रकार लिंग व्यवस्था की उपेक्षा की गई है। यद्यपि व्यापक रूप से युद्धों का संचालन पुरुष करते हैं, परंतु वे महिलाएं ही होती हैं, जो इस असैनिक दुर्घटना की दुर्दमनीयता का सबसे बड़ा शिकार होती है।

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के नारीवादी विचारकों का दृढ़ विश्वास है कि अनेक रूढ़िवादी अंतर्राष्ट्रीय विचारक जिस ढंग से विश्व राजनीति के अध्ययन के प्रति अपना दृष्टिकोण रखते हैं, उससे लैंगिक मानसिकता स्पष्ट दिखाई देती है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की मूल संकल्पनाओं जैसे–कि हिंसा, विवाद, सुरक्षा, शक्ति एवं प्रभुसत्ता इत्यादि को लैंगिक दृष्टिकोण से पुनर्परिभाषित करने की आवश्यकता है।

नारीवादी समीक्षकों का प्रस्ताव है कि लैंगिक मुद्दे पर ध्यान दिया जाना चाहिए। नारीवादी आर्थिक विकास के क्षेत्र में लंबे समय से लैंगिक मुददों पर कार्य कर रहे हैं और उन्होंने व्यापक प्रगति प्राप्त भी की है पर अभी भी बहुत कुछ करना बाकी है। अल्प विकसित देशों की समस्याओं के विश्लेषण में महिलाओं के दृष्टिकोण व कार्यों पर निरंतर ध्यान दिया जा रहा है, फिर भी यह कहना गलत न होगा कि अभी भी सामान्यतया पुरुष–प्रभुत्व कायम है। चूंकि कठोर पुरुष–प्रधान संस्कृतियों के भीतर महिलाओं की स्थिति बदली है इसलिए अनेक महत्वपूर्ण उलझनें भी उत्पन्न हो गई है। जिन पर अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था की संरचना के भीतर औपचारिक रूप से विचार करने की जरूरत है।[11]

निष्कर्ष रूप में सामाजिक, राजनीति में अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में नारीवादी निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र के विभेद को समाप्त कर सार्वभौमिक नियमों और मूल्यों को दोनों क्षेत्रों में समान रूप से क्रियान्वित करने पर बल देते हैं, जिससे स्त्री और पुरुषों के मध्य के कार्यों में निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के आधार पर भेद न किया जा सके। नारीवादी यह भी मानते हैं कि उनका उद्देश्य स्त्रियों को पुरुष के समान बनाना नहीं है, अपितु प्राकृतिक विभेद को स्वीकार करते हुए उनकी सामर्थ्य का संपूर्ण उपभोग करने तथा समाज के द्वारा स्थापित कृत्रिम असमानताओं को दूर करने का प्रयास है। स्त्री–पुरुष समानता स्थापित होने पर ही समाज पूर्णता से आगे बढ़ पाएगा और एक आदर्श राज्य या समाज की स्थापना हो सकेगी। नारीवादी इस अर्थ में कई पड़ावों से गुजरते हुए आज पुरुषों को चुनौती देने की अपेक्षा उनके साथ सहयोग कर स्त्री–पुरुष की समानता को स्थापित करने का प्रयास कर रहे हैं। अतः स्त्री विमर्श लैंगिक असमानता को खतम करने के लिए महत्वपूर्ण है। यह महिलाओं के अनुभवों और मुददों को जानने के बारे में एक माध्यम है, जो महिलाओं के अधिकारों स्वतंत्रता और समानता के लिए संघर्ष करता है तथा महिलाओं के लिए एक न्यायसंगत समाज का निर्माण करता है।

संदर्भ :-

1. डॉ. एस. सी. सिंहल, समकालीन राजनीतिक मुददे, पृ. 198
2. सवलिया बिहारी वर्मा, आभा नारायण पाण्डेय, शिव कुमार जालोद, ग्रामीण विकास, पृ. 183–84
3. श्री अनिल शिवाजी झोल सहायक प्राध्यापक पूणे, स्त्री–विमर्श अवधारणा एवं स्वरूप, पृ. 1
4. वही, पृ. वही
5. एल.एन. शर्मा कृष्ण मुरारी राजनीतिक समाजशास्त्र 21वीं शदी के बदलते संदर्भ में, पृ. 186
6. नरेश दाधीच समसामयिक राजनीतिक सिद्धांत, पृ. 152–53
7. वही, पृ. 153
8. वही, पृ. 153
9. वही, पृ. 154
10. वही पृ. 156
11. तपन विस्वाल अंतर्राष्ट्रीय संबंध, द्वितीय संस्करण, पृ. 348–49

Email : Kanchan.kanchan8619@gmail.com

Mobile 7617698036

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 377-382

पर्यावरण संकट और मानवीय अस्तित्व

मन्ना राम पटेल
सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान, शा0एस0एन0जी0 महाविद्यालय मुंगेली (छ0 ग0)

शोध–सार :

प्रस्तुत शोध में पर्यावरण संकट और मानवीय अस्तित्व को रेखांकित करते हुए दोनों के गहरे संबध का विश्लेषण किया गया है। मानवीय गतिविधियों के कारण पर्यावरण में हो रहे बदलाव जैसे कि वैश्विक तापमान में वृद्धि, जलवायु परिवर्तन, ग्लेशियर का पिघलना, असमय चक्रवात, भूकंप और प्रदूषण आदि मानव के अस्तित्व को खतरे में डालते है, इन्ही चुनौतियों से निपटने के लिए हमें पर्यावरण के प्रति जिम्मेदारिंयो को समझना और उनका पालन करना होगा जिससे हम अपने और आने वाली पीढ़ीयों के लिए एक स्वस्थ और सुरक्षित पर्यावरण सुनिश्चित कर सकें।

की–वर्ड :– पागल दौड़, संचय–प्रवृति, बेहताशा, पर्यावरण, जलवायु स्थिरीकरण, आर्थिक युग, त्रासदी आदि।

पर्यावरण क्या है?

मेरी समझ से तो यह हमारा अपना घर है, जिसमें हम सभी रहते हैं। यह कुछ ऐसा नहीं है जो हमसे जुदा हो और हमारे घर के बाहर कहीं दूर स्थित हो, और जिसमें होने वाले किसी भी परिवर्तन का हम पर कोई भी प्रभाव न पड़ता हो।

सामान्यतः पर्यावरण की परिभाषा मनुष्य के संदर्भ में की जाती है। और मनुष्य को एक अलग इकाई और उसके चारों ओर व्याप्त अन्य समस्त चीजों को उसका पर्यावरण घोषित कर दिया जाता है। यह माना जाता है कि सृष्टि के निर्माण के साथ–साथ पर्यावरण का भी निर्माण हुआ जो चर–अचर जीवधारियों तथा पेड़–पौधों आदि के अस्तित्व और संतुलन को बनाए रखने के लिए आवश्यक था। पर्यावरण में समस्त प्राणियों एवं वनस्पतियों के मध्य मानव–जीवन विकसित हुआ। सच्चाई यह है कि हम खतरे के निशान को लगभग पार कर चुके हैं किंतु आज भी विकास के नाम पर हमारी दौड़ जारी है। गांधीजी के शब्दों में यह "पागल दौड़" है। विकास के नाम पर विनाश की ओर उन्मुख इस पागल दौड़ को रोकना ही होगा अन्यथा इसके भयंकर परिणाम हमें और हमारी भावी पीढियों को झेलने होंगे। दिसंबर 1948 की भोपाल गैस रिसाव त्रासदी के जख्म अभी भी भरे नहीं हैं।

आज के मनुष्य की आवश्यकताएँ इतनी बढ़ गई हैं जिनका कहीं भी ओर–छोर नज़र नहीं आता। आज के मानव की संचय–प्रवृत्ति इतनी विकराल हो गई है कि उसका कहीं अंत ही नहीं है। गाँव हो या शहर, पूरा घर फर्नीचर से इतना भर लिया जाता है कि सफाई करने को जगह न बचे। अपने आप को समृद्ध दिखाने की होड़ में बड़े–बड़े भवन बनाए जाते हैं। रहने वाले केवल दो लोग और कमरे चार–पाँच। धरती पर हरियाली की

जगह ऊँचे–ऊँचे भवन दिखाई देते हैं। सड़कों के जाल दिखाई देते हैं। गगन नीले के स्थान पर काला दिखाई देता है। बड़े शहरों में आज के समय में साँस लेना दूभर हो गया है। तेजी से बढ़ती हुई आबादी भी इसका कारण है। यही हमारी बदलती जीवनशैली है। यहीं यदि इन गगनचुंबी इमारतों को कुछ छोटा रखकर धरती पर कुछ जगह बचाई जाए तो वहाँ थोड़ी ही सही, कुछ वनस्पतियाँ जगह पा सकती हैं। दो–चार वृक्ष लग सकतें हैं जो पर्यावरण को शुद्ध वातावरण और जीवन दे सकते हैं।

पर्यावरण के असंतुलन के लिए मात्र भवन निर्माण ही उत्तरदायी नहीं हैं अपितु सड़कों पर बेतहाशा दौड़ते हल्के– भारी वाहन, रेलगाड़ियाँ और वायुयान भी हैं। समृद्ध घरानों में जितने सदस्य हैं उससे अधिक कारें हैं। वाहनों के धुएँ से भरे शहर हैं। व्यर्थ के सामानों से अड़े–पड़े बाजारों को भरने वाले कारखाने भी हैं जिनसे निकला उच्छिष्ट नदियों के जल को प्रदूषित करता है। धड़ाधड़ कटते जंगलों के कारण बंजर होती धरती है। लुप्त होती वर्षा के कारण बदलती ऋतुएँ हैं। कभी अति वर्षा और कभी सूखा। आज प्लास्टिक का भी बहुत प्रयोग हो रहा है, प्लास्टिक से प्रदूषण फैलता है, उसके इस्तेमाल को रोका जाना चाहिए। धरती पर हरियाली की जगह ऊँचे–ऊँचे भवन दिखाई देते हैं। सड़कों के जाल दिखाई देते हैं। गगन नीले के स्थान पर काला दिखाई देता है। बडे शहरों में आज के समय में साँस लेना दूभर हो गया है। तेजी से बढ़ती हुई आबादी भी इसका कारण है। यही हमारी बदलती जीवनशैली है। यहीं यदि इन गगनचुंबी इमारतों को कुछ छोटा रखकर धरती पर कुछ जगह बचाई जाए तो वहाँ थोड़ी ही सही, कुछ वनस्पतियाँ जगह पा सकती हैं। दो–चार वृक्ष लग सकते हैं जो पर्यावरण को शुद्ध वातावरण और जीवन दे सकते हैं। पर्यावरण के असंतुलन के लिए मात्र भवन निर्माण ही उत्तरदायी नहीं हैं अपितु सड़कों पर बेतहाशा दौड़ते हल्के–भारी वाहन, रेलगाड़ियॉ और वायुयान भी हैं। समृद्ध घरानों में जितने सदस्य हैं उससे अधिक कारें हैं। वाहनों के धुएँ से भरे शहर हैं।

2017 में आयी एक शानदार हिन्दी फिल्म 'कड़वी हवा' में गुलजार साहब की एक अत्यंत मार्मिक कविता है।

'बंजारे लगते हैं मौसम;
मौसम बेघर होने लगे हैं।
जंगल, पेड़, पहाड़, समंदर
इंसान सब कुछ काट रहा है,
छील–छील कर खाल ज़मी की;
टुकड़ा–टुकड़ा बाँट रहा है,
आसमान से उतरे मौसम;
सारे बंजर होने लगे हैं,
मौसम बेघर होने लगे हैं।
दरियाओं पर बाँध बने हैं;
फोड़ते हैं सिर चट्टानों से,
बंदी लगती है ये ज़मीन;
डरती है अब इंसानों से,

बहती हवा पर चलने वाले;
पाँव पत्थर होने लगे हैं,
मौसम बेघर होने लगे हैं।'

हम यदि पिछले 30–35 वर्षों में अपने इर्द–गिर्द हो रहे परिवर्तनों और उनके परिणामों पर दृष्टि डालें तो कवि द्वारा रचित शब्दों का यह खेल, क्या अत्यंत कटु यथार्थ सिद्ध नहीं होता है?

कम से कम हमारा भारतीय दर्शन तो यही कहता है। अथर्ववेद के 12वें अध्याय के प्रथम सूक्त की 12वीं ऋचा इस प्रकार उद्धृत है–

'ध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता, भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ।।१२।।'

इसका अर्थ है कि "हे देवी पृथ्वी, आपके भीतर एक पवित्र ऊर्जा का स्रोत है, हमें उस ऊर्जा से पवित्र करें। हे देवी पृथ्वी, आप मेरी माता हैं और पर्जन्य (वर्षा के देवता अर्थात मेघ) मेरे पिता हैं। आप दोनों ही मिलकर हमारा लालन–पालन करते हैं। यानि भारतीय दर्शन के अनुसार पर्यावरण से मानव का सम्बन्ध माता–पिता व सन्तान का बताया गया है, अर्थात मानव का अस्तित्व पर्यावरण पर ही निर्भर है। किंतु मानव–बुद्धि की श्रेष्ठता के अहंकार और अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी क्षमता की सफलता से ओत–प्रोत होकर इंसान ने स्वयं अपने अस्तित्व के लिये संकट खड़ा कर लिया है।

अब से लाखों वर्ष पूर्व जब हमारे पूर्वज दो पैरों पर खड़ा होना सीख रहे थे और जब उनकी पूँछ हुआ करती थी, तब से लेकर अब तक, जब हम लोग मंगल ग्रह तक पहुँच रहे हैं, पर्यावरण ही हमेशा व्यक्ति के अस्तित्व का आधार रहा है। जब मानव इस धरा पर नहीं था, वायु, जल, वन, वन्य–जीव आदि प्राकृतिक तत्व तब भी पृथ्वी पर फल–फूल रहे थे। यानि पर्यावरण से ही हम हैं, हमसे पर्यावरण नहीं है। बिना हवा, पानी, मिट्टी, वनों और जैव–विविधता के हम लोग अपने अस्तित्व की कल्पना भी नहीं कर सकते, जिसके कारण विश्व की लगभग सभी प्राचीन सभ्यताओं में इन्हें देवतुल्य मानकर इनकी उपासना की गयी है। लेकिन दुर्भाग्य यह है कि इन प्राकृतिक तत्वों में अब कुछ भी पहले जैसा नहीं रहा है वरन इन सभी की स्थिति प्रत्येक गुज़रते दिन के साथ बद–से–बदतर होती जा रही है, जिसके लिये स्पष्ट अनियोजित व अंधाधुंध मानवीय गतिविधियां उत्तरदायी हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि पर्यावरण में होने वाले इस ह्रास का सीधा प्रभाव मनुष्य पर पड़ रहा है। 2013 की केदारनाथ त्रासदी (जिसके चिन्ह आज 10 वर्षों बाद भी साफ देखे जा सकते हैं) 2022 में यूरोप की अविश्वसनीय हीट वेव (जिसने 6000 से अधिक जानें ले ली), 2023 में भारत में आया बिपरजॉय चक्रवात तो सिर्फ बानगी हैं। वास्तविकता इनसे कहीं अधिक भयानक रूप धारण कर रही है। यही कारण है कि मानव–बुद्धि की श्रेष्ठता स्थापित करने और अत्याधिक प्रौद्योगिकी विकास करने के बाद भी हमें प्रत्येक वर्ष पर्यावरण संरक्षण के लिये दुनिया भर के ताम–झाम, राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन, कॉन्फ्रेंस और सेमिनार, समझौते करने के लिये मजबूर होना पड़ता है।

वर्तमान युग आर्थिक मुनाफे का युग है। किसी भी व्यक्ति या विषय की प्रासंगिकता सिर्फ तभी सिद्ध होती है जब उससे किसी प्रकार का आर्थिक लाभ परिलक्षित होता हो। दुर्भाग्यवश हम भी शायद पर्यावरण संरक्षण के

महत्व को तभी समझ सकते हैं जब उसके आर्थिक लाभों को समझ सकें। वास्तव में पर्यावरण हमें प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से अनेक ऐसी सेवायें प्रदान करता है जिनका यदि मौद्रिक रूपांतरण किया जाये तो वह राशि इतनी अधिक होगी जिसकी भरपाई श्रेष्ठ मानव–बुद्धि व अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी द्वारा किया जाना भी असंभव होगा। इन्हें पारिस्थितिकी कहते हैं।

कृषि :–

मानव जीवन का आधार कृषि है। क्या बिना मृदा और बिना जल के कृषि कार्य की कल्पना की जा सकती है? क्या बिना प्रकाश संश्लेषण की क्रिया के खाद्यान्न फसलें, पशुओं के हरे चारे, और फलों से लदे वृक्ष हम देख सकते हैं?

लगभग इसी प्रकार स्तुति–गान हम अपनी सभी नदियों के बारे में पढ़ते–सुनते आये हैं। लेकिन वास्तव में हमने अपनी नदियों का क्या हाल बना रखा है? उत्तर प्रदेश में गोमती, सई व केरल में पेरियार, चेलियार, तमिलनाडु में ताम्रपर्नी नदियों में अवैध खनन, औद्योगिक प्रदूषण की मात्रा इतनी बढ़ चुकी है कि इन्हें जैविक आपदा घोषित किया जा चुका है। दिल्ली–मथुरा स्ट्रेच में यमुना नदी और कानपुर–वाराणसी स्ट्रेच में गंगा नदी की हालत किसी से छुपी नहीं है। जलवायु परिवर्तन जैसी परिघटना से इस आपदा की तीव्रता में और बढ़ोत्तरी ही होने वाली है, जहाँ नदियों के विलुप्त होने तक की बातें की जा रही हैं।

पशुपालन :–

बहुत दूर न जाते हुये सिर्फ कुछ उदाहरण से इसे समझते हैं। मधुमक्खियों तथा इसी प्रकार के अन्य पराग कीटों की अनुपस्थिति में शुद्ध शहद का निर्माण किस प्रकार होगा? वर्तमान में पूरे विश्व का डेयरी उद्योग दुधारू पशुओं पर टिका हुआ है। क्या कोई प्रौद्योगिकी इन कीटों या दुधारू पशुओं का स्थान ले सकती है? यदि भविष्य में ऐसा होता भी है तो उस प्रौद्योगिकी की कीमत क्या होगी?

पारिस्थितिकी संतुलन :–

यह पारिस्थितिकी सेवाओं का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है। निम्न कुछ बिंदुओं पर ध्यान देकर हम इसे समझ सकते हैं।

– खाद्य श्रृंखला व खाद्य जाल के स्थिरीकरण के संदर्भ में जैव–विविधता की महती भूमिका।
– भू–जैव–रासायनिक चक्र को संतुलित बनाये रखने में वनस्पतियों, जीवाणुओं और मृदा की भूमिका।
– वनों द्वारा वाष्प–उत्सर्जन के ज़रिये किसी क्षेत्र में बारिश लाना तथा आर्द्रता, तापमान का यथोचित स्तर बनाये रखना (माइक्रो–क्लाइमेट प्रबंधन)।

वनों द्वारा मिट्टी को बाँधे रखकर मृदा अपरदन रोकना, भूस्खलन व बाढ़ जैसी आपदाएं रोकना (मैंग्रोव्स वनों द्वारा तटीय अपरदन, सूनामी व चक्रवात से भी बचाव) और भू–जल स्तंभ रीचार्ज में भी अहम भूमिका निभाना। लेकिन वनीय विनाश और पर्यावरण प्रदूषण बढ़ते जाने से ये सारी व्यवस्थाएं छिन्न–भिन्न हो रही हैं। इनका सीधा असर मानव जीवन पर पड़ना तय है।

प्रदूषण नियंत्रण व शुद्धिकरण :–

वनों, यहाँ तक कि छोटे पौधों द्वारा भी, प्रदूषण नियंत्रण व वायु शुद्धिकरण में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जाती है जो विश्व के सर्वोत्तम एयर प्यूरीफायर द्वारा किया जाना भी असंभव है। इसी प्रकार आर्द्र भूमियों

द्वारा भी जल शोधन का सस्ता व प्रभावी विकल्प कोई भी सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट नहीं दे सकता। पूर्वी कलकत्ता आर्द्र भूमि इसका सबसे बेहतरीन उदाहरण है।

वैश्विक जलवायु स्थिरीकरण :-

हमारे महासागर तथा महासागरीय धाराएं वैश्विक जलवायु हेतु अति महत्वपूर्ण हैं। मानसून जैसी अरबों लोगों के जीवन को प्रभावित करने वाली परिघटना पूर्णतः इन्हीं पर आश्रित है। ये प्रतिवर्ष ग्रीनहाउस गैसों का 30ः भाग भी अवशोषित करते हैं। परंतु सागरीय जल के निरंतर प्रदूषित होने और लगातार बढ़ते ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के फलस्वरुप सागरीय जल के गुण–धर्म तेजी से बदल रहे हैं जिससे पूरी मानव–जाति के सम्मुख अस्तित्व का संकट आ गया है। इसके अतिरिक्त पृथ्वी का ऊष्मा बजट भी लगातार बिगड़ रहा है जिससे प्राकृतिक आपदाओं की आवृत्ति व तीव्रता भी बढ़ रही है।

पर्यावरण की उपरोक्त भूमिकाओं को देखते हुये ही 2020–2030 की अवधि को पारितंत्र पुनर्स्थापना का दशक के तौर पर पहचाना है और 2022 में विश्व के कुल 10 पारितंत्र पुनर्स्थापना प्रोजेक्ट्स को मान्यता व सहायता देने का निर्णय लिया है। इनसे विश्व में करीब 68 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर उनके खोये हुये प्राकृतिक पारितंत्र को न सिर्फ बहाल किया जायेगा बल्कि कुल 15 मिलियन से अधिक रोज़गार सृजित किये जा सकेंगे।

पृथ्वी और पर्यावरण, विश्व की साझी संपदा है। अतः इसके सुख–दुख भी साझा हैं। अतः समस्या अंतरराष्ट्रीय है तो समाधान भी अंतरराष्ट्रीय खोजने होंगे। समस्या समाधान हेतु राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर के सरकारी प्रयास के साथ–साथ प्रत्येक देश को सहयोगात्मक रवैया अपनाना ही पडेगा। संयुक्त राष्ट्र संघ को अपने प्रयासों की अपर्याप्तताएँ एवं सफलताओं को भुलाकर सार्थक प्रयास करने होंगे। कहने को तो संयुक्त राष्ट्र संघ ने वातावरण और विकास पर विश्व आयोग के माध्यम से कागजी प्रयत्न किए थे, लेकिन वे भी अपर्याप्त निकले। इनकी रिपोर्ट चालाकी भरी थी क्योंकि वह इस बारे में कोई चर्चा नहीं करती कि वर्तमान समस्याएँ किसने पैदा कीं।

विनाश रोकने के बुनियादी उपाय :-

1. सीमित संसाधनों के बेहतर इस्तेमाल का तरीका निकालें।
2. परमाण्विक क्षमता का उपयोग केवल मानव हितार्थ हो।
3. प्राकृतिक जीवन की ओर लौटें तभी रुकेगा प्रदूषण।
4. ग्लोबल वार्मिंग रोकने में राई और पहाड़ सभी के प्रयास हों।
5. जल चेतना जगाने का पांचजन्य फूँकने की आवश्यकता है।
6. कचरे को फैलने से रोकने की चुनौती स्वीकारें।
7. विकास की दीर्घकालीन रणनीति बनाएँ।
8. कोयला खदानों के आबंटन को बहुत सावधानीपूर्वक करें।
9. पारदर्शी बनकर आबंटन नीति सुधारें।
10. कच्चे तेल का दोहन सचते होकर करें।
11. रोकनी होंगी निरंतर फैलती अदृश्य किरण।
12. विकसित और विकासशील देशों की पर्यावरणिक स्थिति की तुलनात्मक वस्तुस्थिति के अनुरूप द्रुत गति

से सुधारात्मक प्रयास किए जाएँ।

आओ.....अब हम लौट चलें –पर्यावरण की प्राकृतिक जड़ों की ओर।

निवारण हेतु किए जाने वाले सार्थक प्रयास क्या हों? उन्हें अमली जामा कैसे पहनाएँ? सभी राष्ट्र इस पर गंभीरतापूर्वक विचार करें। बस ये अंतिम मौके हैं– चेतने के। अभी नही, तो कभी नहीं। मानवता आज समाप्ति के कगार पर है। वो (प्रतिपक्षी देश) भले युद्ध रचें हमें (प्रबुद्ध देश) जीवन रचना है। प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति यह संकल्प करे कि किन्हीं निहित स्वार्थों के चलते इस ग्रह को नष्ट नहीं होने देंगे। इस पृथ्वी को मनुष्य का सृजन करने में चालीस लाख वर्ष लगे वह इतना मूल्यवान है और भविष्य कहीं अधिक मूल्यवान है। मनुष्य के भावी स्वर्णिम भविष्य को बचाने के लिए वास्तव में कुछ करना ही होगा। युद्ध, धर्म युद्ध आदि के नाम पर हमने विगत तीन हजार वर्षों में पाँच हजार युद्ध लड़े हैं मानो लड़ने का नाम ही जीवन है एवं सृजन करना, प्रकृति के उपहारों का उपभोग करना जीवन का हिस्सा है ही नहीं। हजारों वर्षों से मनुष्य मनमाने ढंग और अपनी जीवन शैली से ही जीता आ रहा है और अगली पीढ़ी को उसने मनमाने ढंग से जीने के लिए बाध्य ही किया है। अब यह और आगे संभव नहीं है। हमें निवारण के लिए एक आमूल छलांग (क्वांटम लीप) लगानी होगी और वर्तमान पीढ़ी के साथ–साथ नई पीढ़ी को भी सिखाना होगा कि हम अभी तक जिस भांति जीते आ रहे हैं, अब उस भांति नहीं जीएँ। केवल तभी भविष्य बदल सकता है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. रॉचेल कार्सन, साइलेंट स्प्रिंग अर्थवाच।
2. डा0 अनिल ठाकुर, पर्यावरण विमर्श।
3. डा0 ए0 एस0 सुमेश, समकालिन हिन्दी साहित्य में पर्यावरण विमर्श।
4. डा0 घनश्याम भारती, साहित्य में पर्यावरण विमर्श।
5. डा0 अखिलेश कुमार, मानव और उसका पर्यावरण।
6. दृष्टि द वीजन, पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी।
7. डा0 प्रीतम अपछ्यांण, पर्यावरण जीवित धरती के आधार।
8. 5 जून 2024 पर्यावरण दिवस पर प्रकाशित संपादकीय पत्रिका, दैनिक भास्कर।
9. दृष्टि, मासिक पत्रिका, जून 2024

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 383-386

वर्तमान दौर के विमर्श : समकालीन हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श

डॉ. रूपा आर्या
असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी विभाग, राधेहरि राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय काशीपुर, (ऊधमसिंह नगर)

साहित्य किसी भी समस्या को उजागर करने का सबसे सशक्त माध्यम है। साहित्य के माध्यम से ही दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, स्त्री विमर्श को बल मिला है। इन विमर्शो के माध्यम से ही उन पक्षों पर विस्तार से चर्चा संभव हो पायी है जो कभी मुख्य विषय नहीं बन पाते थे। सदियों से उपेक्षित जीवन जी रहे दलितों, आदिवासियों स्त्रियों को साहित्य का मुख्य विषय बनाकर उन्हें मुख्यधारा में लाने का पुरजोर प्रयास किया गया। इस प्रयास के फलस्वरूप लोगों का ध्यान इन सभी वर्गो की समस्याओं एवं पीड़ाओं की ओर गया। अनेक साहित्यकारों ने स्त्री, दलित, आदिवासी इत्यादि विमर्शो पर लेखनी चलाई तथा समाज की मुख्यधारा से इन्हें जोड़ने का प्रयास किया, किंतु समाज में अभी भी एक वर्ग शेष है जो समाज की मुख्यधारा से विलग हाशिए पर है, वह है किन्नर समाज।

किन्नर शब्द की व्युत्पत्ति है किम् नर=किन्नर अर्थात् विकृत पुरुष, पुराणोक्त पुरुष जिसका सिर घोड़े का हो तथा शेष शरीर मनुष्य का हो। नर को इस संसार में पुंसत्व से युक्त माना गया है तथा किम् का अर्थ क्या होता है अर्थात् शब्दार्थ हुआ–क्या वो भी नर है क्या ? जिसके पुंसत्व पर प्रश्नचिह्न है, इसी अवधारणा से समाज में किन्नर शब्द प्रचलित हुआ। किन्नर शब्द का देश में प्रचलित अर्थ देखें तो यह हिमालय में निवास करने वाले वे पहाड़ी लोग हैं, जिनकी भाषा कन्नौरी, गलचा लाहौरी आदि बोलियों के परिवार की है। यदि इस शब्द को पौराणिक और ऐतिहासिक संदर्भो में देखें तो शतपथ ब्राहमण में भी अश्वमुखी मानव शरीर वाले किन्नर का उल्लेख है। बौद्ध साहित्य में किन्नर की कल्पना मानवमुखी पक्षी के रूप में की गई है।

पुराणों और महाभारत के कथा–आख्यानों में तो इनकी चर्चाएं प्राप्त होती है। जयसंहिता के दिग्विजय पर्व में अर्जुन का किन्नरों के देश में जाने का वर्णन है। अनेक साहित्यिक रचनाओं में भी इनका उल्लेख मिलता है अजंता के भित्ति चित्रों पर गुहयकों, किरातों तथा किन्नरों के चित्र हैं। कलानाम के अनुसार वह वर्ग जिनकी योनि या जननांग पूर्णतः मनुष्य से न मिलते हों और समाज अविकसित या अर्द्ध विकसित यौनांगधारियों को किन्नर, हिजड़ा और थर्ड जेण्डर की उपमा देता है। पौराणिक उल्लिखित तथ्यों के अनुसार यह वर्ग नृत्य और श्रृंगार का शौकीन होता है परंतु साथ ही अभिशप्त जीवन जीने को अभिशप्त होता है।[1]

पौराणिक काल से किन्नरों का उल्लेख अलग–अलग नामों से मिलता आया है : ''महाभारत में हिजड़े का

उल्लेख शिखंडी के रूप में मिलता है। महाभारत में भी शिखंडी नामक किन्नर योद्धा था जिसकी मदद से अर्जुन ने भीष्म पितामह का वध किया था। कहा जाता है कि अर्जुन ने भी अपने अज्ञातवास का एक वर्ष वृहन्नला नाम से किन्नर का रूप धारण करके बिताया था। राजा–महाराजा भी किन्नरों को अपनी रानियों की पहरे दारियों के लिए रखते थे, क्योंकि राजाओं को अधिक से अधिक समय युद्ध के मोर्चे पर बिताना पड़ता था। इसके पीछे उनकी यह सोच थी कि रानियां पहरेदारों से अवैध संबंध न बना सकें।''[2] मुस्लिम शासन में हरमों की सुरक्षा के लिए हिजड़े ख्वाजासरा के नाम से सुरक्षाकर्मी के रूप में तैनात किए जाते थे।

'हिचड़ों' को परिष्कृत शब्दावली में किन्नर कहा जाता है इनके अलग समाजों और भाषाओं में विविध नाम है। हिंदी में इसके लिए शिखण्डी, छक्का, कीव, खोजा, मौसी, और हिजड़ा इत्यादि अन्य नाम भी प्रचलित हैं। देश में पौराणिक काल से ही हिजड़ों का उल्लेख मिलता है। किन्नरों के संबंध में अनेक कहानियां प्रचलित है। इनमें रामचंद्र जी के वनगमन से सम्बन्धित कथा का विशेष महत्व है। वनवास के बाद राम सीता और लक्ष्मण के साथ चित्रकूट आये थे परंतु रामचंद्र जी ने उनके अनुनय–विनय अस्वीकार करते हुए सबको वापस जाने को कहा। परंतु उन्होंने हिजड़ों के लिए कुछ नहीं कहा, जब कि वे भी उन्हें मनाने हेतु वहा उपस्थित हुए थे। मान्यता यह है कि, उनके लिए उनका कोई स्पष्ट आदेश न होने के कारण उन हिजड़ों ने 14 वर्षों तक वहीं रूककर रामचंद्र जी के वापस आने तक उनकी प्रतिक्षा करने का निर्णय किया था। रामचंद्र जी वापस अयोध्या जा रहे थे तो उन्होंने इन हिजड़ों को मार्ग में चित्रकूट में अपनी प्रतीक्षा करते पाया तो उनको वरदान दिया तुम जिन्हें अपना आशीर्वाद दोगे, उनका कभी अनिष्ट नहीं होगा। महाभारत में हिजड़े का उल्लेख शिखण्डी के रूप में मिलता है।[3] साथ की किन्नर राजाओं को गुप्त सूचनाएं पहुचाने का कार्य भी किया करते थे कुछ किन्नर तो उचे–उचे ओहदों पर भी पहुंचे हैं, ऐसे ही एक अलाउदीन खिलजी का सेनापति 'मलिक काफूर 'भी था। कहा जाता है कि मध्यकाल और उससे पहले के समय में किन्नरों की स्थिति आज की तरह दयनीय नहीं थी।

साहित्य समाज का दर्पण होता है आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही लिखा है साहित्य के माध्यम से विमर्शो ने अपनी अस्मिता की पहचान की है। वर्तमान समय में लेखक, लेखिकाओं ने अपनी लेखनी के माध्यम से विमर्शो को समाज के सम्मुख बड़े ही शक्तिशाली ढंग से प्रस्तुत किया है, फिर वह चाहे स्त्री विमर्श हो या दलित विमर्श हो या आदिवासी विमर्श हो, किन्तु जब हम किन्नर विमर्श की बात करते हैं तो यह साहित्य मौन हो जाता है ऐसा नहीं है कि किन्नर के विषय में हिंदी साहित्य मे कुछ लिखा ही नहीं गया है। किन्नर को साहित्य में केवल मनोरंजन करने वाले पात्र के रूप में चित्रित किया जाता रहा है। वर्तमान हिंदी साहित्य के साहित्यकारों ने किन्नर विमर्श को अपनी लेखनी के माध्यम से समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया है। सभ्य समाज से निराकृत, बहिस्कृत एवं तिरस्कृत यह वर्ग दो वक्त की रोटी का मोहताज होने के साथ ही अकेलेपन एवं अजनबीपन की पीड़ा को झेलने के लिए भी बाध्य हैं। समाज इन्हें प्रतिपल ठोकर तो मारता ही है साथ ही भद्दी गाली और उपहास उड़ाकर पुरस्कृत भी करता है। ऐसे तथाकथित सभ्य एवं महान लोगों से अपमानित होकर इन्होंने अपने लिए एक अलग समाज की व्यवस्था कर ली है, जहाँ उन्मुक्त रूप से जीवन जीने की चेष्टा करते हैं।

हिदी साहित्य में किन्नर विमर्श की वास्तविक शुरूआत नीरजा माधव के 'यमदीप' उपन्यास से मानी जाए तो कोई अतिश्योक्ति न होगी। यमदीप हिंदी साहित्य का पहला किन्नर जीवन पर आधारित उपन्यास है। यह

उपन्यास किन्नर समुदाय की भाषा, संस्कृति संवेदना और उनके संघर्ष से मिली सफलता की कहानियों को समाज तक पहुचाने में सफल हुआ है। नीरजा माधव का 'यमदीप', प्रदीप सौरभ की 'तीसरी ताली', महेन्द्र भीष्म की 'किन्नर कथा' 6 मैं पायल', निर्मला भुराडिया की 'गुलाम मंडी', चित्रा मुद्गल का 'पोस्ट बाक्स नं. 203 नाला सोपारा', 'जिंदगी 50–50' 'अस्तित्व की तलाश में सिमरन', 'हाँ मैं किन्नर हूं' आदि किन्नरों की ज्वलंत समस्याओं को लेकर सामने आए हैं।

इन उपन्यासों की कथावस्तु किन्नर समुदाय की है जो उनकी पीड़ा व्यथा एवं भयानक त्रासदी की स्थिति को चित्रित करते हैं। नीरजा माधव द्वारा रचित यमदीप उपन्यास में किन्नर पात्र नंदरानी उर्फ नाजबीबी को जब अपने परिवार की याद आती है तो वह अपने घर फोन करती है, किंतु बदले में उसे पीड़ा ही मिलती है, उसका तिरस्कार ही किया जाता है : ''देखो तुम्हारा बार–बार फोन करना या इस परिवार से संबंध रखना, हमारी इज्जत तो बढ़ाता नहीं उल्टे तुम्हें भी दुख होता है और मम्मी पापा को भी तुम परिवार में रह नहीं सकती, हम रख भी नहीं सकते। इसलिए यह समझ लो तुम कि अनाथ हो। कोई नहीं तुम्हारा दुनिया में।''[4]

इस समाज में एक किन्नर के रूप में जी पाना कितना मुश्किल है इस का अंदाजा हम इस कथन के माध्यम से सकते हैं : ''हिजड़े का बाप कहलाना न आप बर्दाशत कर पाएंगे और न आपके परिवार के लोग। लुली–लंगड़ी होती या कानी–कोतर होती, तो भी आप इसे अपने साथ रख सकते थे.....इसलिए इसे अब उसके हाल पर छोड़ दीजिए। यही उसका भाग्य था, यही बदा था...सोच लीजिए, मर गई, सब्र कर लीजिए।''[5]

समाज में किन्नर समुदाय का तिरस्कार ही नहीं किया जाता बल्कि समाज जीवन के सभी पहलुओं पर गहरा घात–प्रतिघात करता है। और इस समुदाय को शिक्षा से भी वंचित रहना पड़ता है गुलाम मंडी उपन्यास में लेखिका अंगूरी के माध्यम से कहती है : ''कोई भरती करता क्या पाठशाला में, पहले पूछते मेल कि फिमेल। अपनी वो शर्मिला है न छोरा बनके भरती हुई थी, तो बहनजी ने एक दिन चड्डी उतरवा ली थी उसकी और जूते मारकर के स्कूल से निकलवा दिया था उसको। उमराव गुरू के कुनबे ने शरण दी उसको वरना भूखी मर जाती तो।''[6]

'तीसरी ताली' में भूख और गरीबी के कारण हिजड़े के धन्धे को अपनाने वाले लोगों की कहानी का चित्रण अत्यंत बारीकी से हुआ है। 'किन्नर कथा' में राजघराने में पैंदा हुई चंदा की कथा है। वह राजपरिवार के लिए आश्चर्यजनक घटना बन जाती है। 'गुलाम मंडी' में तिरस्कृत किन्नरों की कथा चित्रित है। 'पोस्ट बॉक्स नं. 205 नाला सोपारा' में रहने वाले छोटे लड़के विनोद उर्फ बिन्नी की कथा है। वह भी किन्नर है। उज्जैन महाकुंभ सिंहस्थ 2016 में रचित आत्मकथा 'मैं हिजड़ा में लक्ष्मी' हिंदी किन्नर साहित्य की बहुचर्चित कृति है।

किन्नर समुदाय की अपनी वेशभूषा, खान–पान और रहन–सहन और संस्कृति होती है। जिसका पालन उस समूह के सदस्यों को करना होता है। भारत के महानगरों में किन्नर समुदायों के टोले जगह–जगह दिखाई दे जाते है अक्सर यह लोग चौराहों पर वाहन यात्रियों से पैसे मांगते हुए दिखाई देते हैं इनके समुदाय शिशु जन्म के अवसर पर लोगों के घरों में बधाई गीत गाकर नवजात को आशीर्वाद देते हैं इस समुदाय का आशीर्वाद नवजात के लिए कल्याणकारी माना जाता है। किन्नर समुदाय की परिस्थितियों पर निर्मला भुराड़िया के मन में उभरते सवाल सही है वह कहते है : ''इसमें इनका क्या दोष? ये क्यों हमेशा त्यागे गए, दुरदुराए गए सताए गए अपमान के भागी बने? उन्हें हिजड़ा, किन्नर बृहन्नला कई नामों से पुकारा जाता है, मगर हमेशा तिरस्कार के साथ

ही क्यों? आखिर ये बाकी इंसानों की तरह मानवीय गरिमा के हकदार क्यों नहीं? बस यही प्रश्न हमेशा दिमाग में था।''[7]

इन सभी उपन्यासों में किन्नर समाज की व्यथा–कथा अत्यंत मार्मिक ढंग से चित्रित हुई है। उपेक्षित किन्नरों की वास्तविक स्थिति, जीवनयापन, मानसिक संघर्ष, परिस्थितियों के प्रति संघर्ष, अपने अधिकार के प्रति मांग, सामाजिक प्रतिष्ठा की मांग, शिक्षा की मांग आदि को यथावत रूप में चित्रित किया है।

हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श किन्नर समुदाय के जीवन और संघर्ष को समझने और उन्हें समाज में उचित स्थान दिलाने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। यह विमर्श समाज को किन्नरों के प्रति अपनी सोच बदलने और उन्हें मुख्यधारा में लाने के लिए प्रेरित करता है। किन्नर समाज को सिर्फ जननांग दोष के कारण समाज से पृथक करना उचित नहीं है। यह समुदाय भी हमारी तरह मानवीय संवेदनाओं से युक्त है। परिवार और समाज से बहिष्कृत होकर जीना कितना पीड़ादायक है इसकी हम कल्पना भी नही ंकर सकते। हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श का मुख्य उद्देश्य किन्नर समुदाय के जीवन संघर्ष सामाजिक स्थिति ओर उनकी पहचान उजागर करना है। यह साहित्य किन्नरों के प्रति समाज की सोच को बदलने और उन्हें मुख्य धारा में लाने का प्रयास करता है।

संदर्भ :-

1. भारतीय समाज में किन्नरों का यथार्थ, आशीष दीपांकर, पृ. 23
2. वही, पृ. 10–11
3. वही, पृ. 10
4. नीरजा माधव, यमदीप, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली, 2002, पृ. 82
5. वही, पृ. 31
6. निर्मला भुराड़िया, गुलाम मंडी, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृ. 85
7. निर्मला भुराड़िया गुलाम मंडी, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली, 2010

डॉ. रूपा आर्या, असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी,
राधेहरि राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय काशीपुर, (ऊधमसिंह नगर)
मो.नं.–8006099702
ईमेल– 11arya.rupa@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 387-390

राजकमल चौधरी के लेखन में व्यक्त स्त्री

स्नेहा. टी. एस
रिसर्च स्कॉलर, हिन्दी विभाग, श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालड़ी, केरल

हिंदी रचना संसार , बहुत अधिक प्रभावशाली रचनाकारों से संपन्न हैं। इसमें एक को चुना और उनको श्रेष्ठ माना आसानी सी बात है। क्योंकि हर एक रचनाकार अपनी शैली से अद्‌वितीय है। हिंदी साहित्य का विकास धीमी गति से हुआ है। विद्‌वानों ने इस विकास यात्रा को कई कालखंडों में विभाजित किया हैं। हर एक काल में साहित्य के साथ यहां पर महान रचनाकारों का जन्म भी हुआ हैं। इसी तरह सत्तोतरी हिंदी साहित्य के विकास यात्रा में उल्लेखनीय समय था। इस समय के रचनाकारों के बीच में राजकमल चौधरी का स्थान विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने हिंदी और मैथिली,दोनों भाषाओं में अपना रचना कर्म किया है। वह उपन्यास, नाटक,कविता,कहानी,लेखन आदि अनेकानक रचनाओं का सृजन किया हैं। निस्संदेह यह कहा जा सकता है की उनके सभी रचनाएं समय के परे है। उनका रचनाकाल हिंदी साहित्य जगत में बदलावों का समय था। सामाजिक ,आर्थिक ,राजनीतिक, सांस्कृतिक,मनोवैंजनिक और मानवीय संबंधों से संबंधित विषयों का खुला सा चित्रण इस दौर की सविशेषता हैं। यह विमर्शों का भी समय था। स्त्री विमर्श का व्यापक प्रचार - प्रसार भी इस समय में हुआ ।हिंदी साहित्य में छायावाद काल से स्त्री विमर्श का जन्म माना जाता हैं। इस समय में महादेवी जी द्‌वारा लिखित श्रृंगला की कड़ियां ' स्त्री सशक्तिकरण का सुंदर उदाहरण माना जाता है। लेकीन साटोत्तरी समय में कई लेखिकाओं का आगमन से स्त्री रचनाओं को एक नया दशा और दिशा मिला है। कहा जाता है कि नारी की कटीबताएं एवं उनकी पीड़ा को व्यक्त करने में अधिक सक्षम महिला लेखिकाओं एवं उनकी रचनाओं ने हैं। परन्तु एक पुरुष होते हुए भी इन नारी संवेदनाओं को चित्रित करने में राजकमल

ने अधिक सफल हुआ हैं। उनके अधिकांश रचनाओं का पात्र और विषय स्त्री है । फिर भी क्यों राजकमल ने स्त्रीवादी रचनाकार के रूप में मानती नही है ? यह भी आश्चर्य की बात है। समाज में एक धारणा मौजूद है की एक स्त्री द्वारा अपनी संवेदनाओं को व्यक्त करने की उतनी तीक्ष्णता जब पुरुष व्यक्त करते वक्त गायब है। शायद इसी कारण से होंगे राजकमल को एक स्त्रीवादी रचनाकार की घोषणा प्राप्त नहीं हुआ है।

राजकमल चौधरी ने सामाजिक ,आर्थिक,सांस्कृतिक,महानगरीय सभ्यताएं, बाजारीकरण की बुरी प्रभावों , पूंजीवादी संस्कृति आदि पर ठोस प्रहार करने केलिए अपनी स्त्री पात्रों का रचना किया हैं। इस में वह अत्यंत सफलता प्राप्त चुका है।बहुत लंबे समय तक स्त्री से संबंधित तथा उनकी समस्याओं में अस्लीलता और धर्म एवं संस्कृति के नाम पर स्त्रीयों के खिलाफ होनेवाली यौनिक दमन आदि का उल्लेखन कई लेखकों ने अपने सीमा के बाहर रखा था। यहां पर है राजकमल चौधरी के साहित्यिक प्रतिभा की ताकत हमें देखा जा सकता है। उन्होंने अपने रचनाओं में उन विषयों का उल्लेख किया है जो उस समय तक के साहित्यकारों केलिए अछूत एवम शरमाई की बात था । यही साठोत्तरी समय का प्रमुख विशेषता बनी है।

राजकमल की स्त्री पात्रें अपनी सामाजिक परिस्थितियों की विसंगति, विडंभना और विद्रूपता को प्रकट करने में अत्यंत सफल हैं। राजकमल चौधरी की रचनाओं एवं स्त्री पात्रों के बारे में बात करते समय सबसे पहले उनकी उपन्यासों को ले जा सकती है। क्योंकि उनकी उपन्यासों में देह की राजनीति और यौनाचार अधिक उभरकर सामने आता है । प्रथम उपन्यास है 'मछली मरी हुई '। यह नारी समलैंगिकता पर आधारित है।ये उपन्यास उस समय के सामाजिक संकल्पनाओं को तोड़ता है। वैवाहिक जीवन में स्त्री कितना अतृप्त है और पुरुषों का पशुत्व आदि का सुंदर चित्रण है। दूसरी उपन्यास 'अग्निस्नान' वैश्या वृत्ति पर आधारित उपन्यास है। महनगरीय संस्कृति स्त्री शरीर को कैसे भोग का साधन बना गया है ?और वैश्या गृहों और नाइट क्लबों की। विकास में बाजारी षड्यंत्र का स्थान आदि का उत्तम उदाहरण है ये उपन्यास। बाजारवाद के जाल में स्त्री

कैसे बंद है और स्त्री शारीर विज्ञापन और फिल्मी जगत में कैसे बिक्री का माध्यम बनाया इसका सशक्त चित्रण है 'बीस रानियों का बाईस्कोप में । वर्तमान मानव जीवन अर्थ केंद्रित जीवन बन गया है।क्योंकि आर्थिक स्थिति पर ही उसकी समाजिक प्रतिष्ठा निर्भर रहती है। समाजिक प्रतिष्ठा की स्थापना और आर्थिक कठिनाइयां को पार करने केलिए स्त्री काम करना शुरू किया है।वहां पर भी वो शोषण का शिकार है। पूंजी या सत्ता लोगों ने असहाय नारी की असहायता का लाभ उठाकर उसका शोषण करने लगे है। यही 'नदी बहती थी 'उपन्यास का आधार है। इसके नायिका सविता स्वयं अपने लता और पुरुष को वृक्ष मानते है। लता जो है वृक्ष के बिना अकेले खड़ा भी नहीं सकता है। इस उदाहरण के माध्यम से राजकमल ने भारतीय नारियों का मनोभाव प्रकट करने का श्रेय किया है। स्त्री अपने पुरुष को सर्वस्व मानता है। लेकिन पुरुष ने अपने बीवी को केवल घर संभालने का,खाना पकाने का,अपने बचाओ का पालन पोषण करने,। हैं को दमन करने का साधन मात्र मानती है। उनकेलिए वह प्रेमिका नहीं है.... सहेली नहीं है.... कुछ भी नहीं हैं। उनकी बीवी उन केलिए बीवी मात्र है...सिर्फ बीवी।

इसका उदाहरण उनकी जीभों पर बूटों की निशान' नमक कहानी में मिलती है _ "वह बालों को हल्का झटका देकर,निगाहों का टेढ़ी कर, ओंट सिकोटकर,दबी आवाज़ में बातें करना नहीं जानती है।उसमें पागल बना देने वाला हुस्न नहीं है। बेहोश कर देनेवाली अदायें नही है, क्योंकि वह बीवी है, हिंदुस्तानी बीवी जो खाना पका सकती हैं, थेक पांव दबा सकती है, पंखा झल सकती है। मगर चेहरे पार बहुत सी 5प्यार बिखराकर , सांसे गरम कर, नथुने फाड़कर, कंधे फैलाकर, आँचल बिखराकर यह नहीं कह सकती की उसे मुझसे बहुत प्यार है, बहुत बहुत। इसलिए शशि पर कोई गीत नहीं लिखा जा सकता, कोइ कहानी nahim लिखी जा सकती, कोई उपन्यास नहीं रचा जा सकता, अब तक रचा भी नहीं गया हैं।"(१)

'नदी बहती थी ' नमक उपन्यास में एक वाक्यांश होती है _ "औरत,अगर उनके पास औरत का मन है, औरत का शरीर है ,तो गरीबी क्यों सहे?(२) इसी तरह शेक्सपियर ने एक बार कहा है _ " दुर्बलता तुम्हारी नाम ही नारी हैं "।(३) समाज सदैव स्त्री को दुर्बल मानती है उसकी दुर्बलता भी अपनी शरीर एवं आर्थिक कटिनायियां है।इसमें विडंम्बना की बात यह है की ये दोनों परस्पर पूरक है।स्त्री कभी _कभी अपनी आर्थिक कठिनाइयां को पार करने केलिए देह को धनोपार्जन का मार्ग बनती है। समाज में बढ़नेवाली वेश्यावृत्ति का हेतु भी यह है। इन वेश्याओं को समाज अछूत

मानती है, लेकिन यह समाज ही उनको कलंकिनी भी बनती है।उनको कोई नाम ही नही होता है, शायद होंगे तो भी उनकी पहचान उनकी देह और नौकरी है। उदा:

“सिर्फ नहीं उसका नाम....

उसका कोई नाम नहीं है, शायद “

यथार्थ को अभिव्यक्त करने का सबसे सुगम माध्यम है साहित्य। पुरुषसत्तात्मक समाज ने सदा महिलाओं को यौन,आर्थिक,और समाजिक रूप से अपने पराधीन करने की विवश करती है।इस बात की उत्तम उदहारण की रूप में राजकमल चौधरी_की रचनाओं के ले जा सकती है। उन्होंने स्त्री पत्रों का रचना करके उस दौर के आर्थिक शोषण,शारीरिक शोषण,और मानसिक शोषण की शक्ति किन हाथों में है, उसका यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।उनकी अधिकांश रचनाओं में स्त्री और उनकी संवेदनाओं की वास्तविक रूप दृष्टव्य है।उनकी रचनाओं में आनेवाली हर एक स्त्री पात्र यहां जीवित और जीवित रहनेवाली भारतीय नारियों का प्रतीक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्निस्नान एवं अन्य उपन्यास _राजकमल चौधरी, राजकमल प्रकाशन , नई दिल्ली
2. ऑडिट रिपोर्ट_राजकमल चौधर7, सं : देव शंकर नवीन
3. नदी बहती थी _राजकमल चौधरी , वाणी प्रकाशन
4. प्रतिनिधि कहानियां _राजकमल चौधरी, राजकमल प्रकाशन
5. मछली मरी हुई है _राजकमल चौधरी, राजकमल प्रकाशन
6. विचित्रा _राजकमल चौधरी , नई दिल्ली

१: प्रतिनिधि कहानियां_राजकमल चौधरी , पृ :78

२:नदी बहती थी _रज्कमल चौधरी, पृ:124

Ph:6235364170

Mail id : www.snehasuresh8086@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 391-394

'डूब' उपन्यास में कृषक जीवन की त्रासदी

डॉ. विक्रम बालकृष्ण वारंग
हिन्दी विभाग प्रमुख, डी.बी.जे. महाविद्यालय, चिपलून, रत्नागिरी।

सारांश -

उपन्यासकार वीरेंद्र जैन 'डूब' उपन्यास में देश को प्रगति पर अग्रेसर करने हेतु सरकार द्वारा आयोजित विकास योजनाओं पर प्रश्नचिन्ह लगाते है | उपन्यासकार ने बार-बार एक ही गहन प्रश्न उठाया है कि उन विकास योजनाओं से क्या फायदा जो मनुष्य को उखाड़ दे बेघर कर दे उनकी इच्छाओं का दमन कर दे | विकास योजनाओं के लिए किसानों की उपजाऊ भूमि का अधिग्रहण किया गया,जो उनकी आजीविका का प्रमुख साधन था | यही नहीं जमीन का अधिग्रहण भी किसानों को बहुत कम मुआवजा देकर किया गया | किसान अब किसान न रहकर मजदूर बन गया था | उसे कल-कारखानों में न तो साझेदारी मिली और न ही नौकरी | वह पूर्ण रूप से आजीविका विहीन होकर दर-दर की ठोकरें खाने के लिए विवश हो गया | सरकार ने उद्योगों-खदानें, विशाल बाँधों, अभयारण्य, परियोजनाओं तथा विकास की योजनाओं के नाम पर बहुत पैमाने पर प्राकृतिक संसाधनों का अधिग्रहण करना शुरू किया | इनसे सबसे महत्वपूर्ण पीड़ादायक था नदी परियोजना में विशाल बाँध निर्माण करने का कार्य | जिसके तहत एक बहुत बड़ी जनसंख्या को अपने घर-परिवार, जमीन एवं जीविका के साधनों से वंचित होकर विस्थापन के लिए मजबूर होना पड़ा था |

कुंजीभूत शब्द–

कृषि प्रधान देश,किसान देश का अन्नदाता, रूढ़िवादी ,अंधविश्वासी, भाग्यवादी, यांत्रिकीकरण,विकास के नाम पर विनाश,राजघाट बाँध परियोजना,भूमि अधिग्रहण,मुआवजा,विस्थापन |

प्रस्तावना –

भारत एक कृषि प्रधान देश है | यहाँ की लगभग अस्सी प्रतिशत जनसंख्या गाँव में रहती है, जिसका प्रमुख व्यवसाय कृषि पर आधारित है | किसान पूरे देश का अन्नदाता है | किसानों की उन्नति से ही देश की उन्नति संभव है | 'कृषि' कृषक समुदाय के जीवन यापन का एक प्रधान साधन है | कृषि की उपज के द्वारा लोगों का जीवन-यापन होता है,दूसरे शब्दों में भूमि के साथ प्रत्यक्ष संबंध ही कृषि समुदाय की विशेषता है| भारत में जमींदारी उन्मूलन कानून लागू हो जाने के पश्चात आज भी छोटे किसानों को कोई विशेष लाभ प्राप्त नहीं हो सका है | परंपरागत भारतीय कृषक अत्याधिक रूढ़िवादी ,अंधविश्वासी, भाग्यवादी और अपनी स्थिति के प्रति निराशावादी रहे है | यांत्रिकीकरण परिणामस्वरूप कृषि श्रमिकों के सामने बेरोजगारी की समस्या और भी अधिक गंभीर हो गई है | कृषि में यांत्रिकीकरण के कारण बड़े-बड़े किसान स्वयं खेती करने लगे जिससे बटाई पर खेती करने वाले किसानों से भूमि वापस ले ली गई | पर खेती करने वाले कृषक बेरोजगार हो गए | डॉ. वर्षा मिश्र कहती है- "बाढ़, सुखा और महामारी ग्रामीणों के लिए मारक सिद्ध होते है | सरकारी योजनाएँ केवल कागज पर रही हैं, ग्राम्य जीवन को उनसे कोई राहत नहीं मिलती है | सुखा अथवा अकाल में गाँव की दशा कैसी विकट हो जाती हैं इसे जो पीड़ा भोगते हैं वही जानता है | जो वातानुकूलित कमरों में बैठकर इसके आँकड़े जमा करते है उन्हें इसका दर्द महसूस नहीं होता है|"१

भारी वर्षा होने पर बाढ़ के कारण और सूखा पड़ने पर खेती से उपज नहीं होती | इस कारण वित्त, खलिहान, मकान की बर्बादी होती है, जानवर-पशु भी मर जाते है | गाँव में चारों तरफ पानी-ही -पानी भर जाता है | लोग बीमार पड़ते है,महामारी का प्रकोप होता है | गाँव के अधिकांश किसान अपनी दयनीय आर्थिक दशा के कारण जमींदार, साहूकार, मुखिया के पास से कर्ज लेते है | मुखिया, जमींदार तो कर्ज देते हैं, परंतु किसान कोगहने या खेत गिरवी रखने पड़ते है | यह कर्ज समय पर नहीं लौटाया तो वह दुगना-तीगुना हो जाता है | गरीब किसान बेचारा अपने गहने या खेत मजबूरी वश छोड़ देना ठीक ही समझते है | गरीबों की गरीबी का नाजायज लाभ उठाकर जमीदार उनका आर्थिक शोषण करते है | भोले-भाले कृषक लोग इनके अत्याचारों को चुपचाप सहन कर लेते है | किसानों की इस स्थिति के बारे में कथाकार मिथिलेश्वर जी लिखते है- "मजबूरी और लाचारी का दूसरा नाम गाँव का किसान है | असहाय, असमर्थ अपनी पीड़ा के इजहार से वंचित जितना लूटो, जितना टैक्स लाद दो वह देगा, नहीं तो जायेगा कहाँ |"२

वीरेंद्र जैन जी ने विकास योजनाओं की चपेट में आए गरीब किसानों,मजदूरों की दयनीय स्थिति का वास्तविक चित्रण अपने 'डूब' उपन्यास में अत्यंत मार्मिक ढंग से किया है | सरकारी अधिकारी, सेठ, साहूकार आदि ने मिलकर लड़ैई गाँव के किसानों का शोषण किया | किसान तथा मजदूर तो मेहनत से रोजी-रोटी कमाते है,परंतु ये पूजीपति लोग उन पर उनका शोषण करते है | 'डूब' उपन्यास में इसी शोषण का चित्रण किया गया है -"बानियों का चारा काटने की जो मजूरी मिलती है,वह ठाकुरों से नहीं मिलती, खासकर ठाकुर देवीसिंह तो मजूरी देते ही नहीं | इलाके भर में चारा काटने वालों को मेहनताना है- रोज के रोज नगद कलदर या फिर एक सेर अनाज और चारा काटने के बाद सांज को घर जाता मजूर जितना चारा सिर पर ढोकर ले जा सके, उतना चारा ले जाने की छूट | कहने को तो सब कहीं यही मजूरी है,पर मजूर को अनाज के नाम पर मिलता हैं कूड़ा करकट वह भी तौल में सेर की जगह आधा सेर तीन पाव और चारे का गठ्ठर बाँधते समय मलिक की ना-नुकर के चलते सिर पर ढोने लायक गठ्ठर की जगह पाता हैं वह काख में दबाने लायक चारा |"३

किसानों के विकास के लिए देश की अनेक योजनाओं का शुरुआत सरकार ने की है | जिसके तहत किसानों की प्रगति के लिए सरकार दिन-रात मेहनत करती है | परंतु फिर भी किसानों की समस्याओं का अंत नहीं है | किसान संबंधित समस्या अनंत है | किसानों की समस्या कभी-कभी त्रासद रूप ले लेती है और वह पूरे गाँव को तबाह कर देती है | 'डूब' उपन्यास में किसानों से संबंधित समस्याओं का अवलोकन निम्नलिखित वाक्य से किया जा सकता है- "उनका तो फसल को लेकर सीधा-सा एक ही गणित था | साहूकार से बीज उधार लेकर बोना, उस पर हाड-तोड मेहनत करना, फिर भाग्य और भगवान के भरोसे वर्षा रानी का इंतजार करना या फिर सुखा न पड़े इसके लिए नदी और बामन महाराज को चढ़ावा चढ़ाना | फिर यदि बाढ़ या सूखे से फसल बच गई तो पक जाने पर उसे काटकर, सुखाकर, फटककर लेनेदारो का इंतजार करना | बामन, धोबी, लुहार, बढ़ई, बसोर, मंदिर- इन सब का हिस्सा देने के बाद लंबरदार को तौजी और साहूकार को सूद के बदले फसल नपवाना |"४ किसान की दुर्दशा के लिए जिम्मेदार साहूकार बढ़ा-चढ़ाकर ब्याज देते हैं और कृषक को त्रासदी देते | कृषक जीवन की विडंबना का चित्र निम्न वाक्य में किया गया है-"यह जानते हुए भी कि इसमें से ज्यादातर अनाज साहूकार ले जाएगा, वह पूरे अनाज को साफ करने का पुण्य कमाने से अपने को वंचित कैसे रखें बारहमासी तंगहाली के चलते किसानों को यह याद ही नहीं रहता कि सोने के सिक्के जैसा यह दाना,जिसे मोती साव के हाथ में देखकर उसके मुँह में पानी आ रहा हैं, जिसके वह मुँहमाँगे दाम देने जा रहा है,वह दरअसल उसी का करिश्मा है,जिसमें मोती साव की भूमिका महज इतनी हैं कि वे उस पर कुंडली मारकर बैठे हुए है |"५

किसानों की जमीन डूब क्षेत्र में आने से वे आर्थिक रूप से बुरी तरह टूट चुके थे | राजघाट बाँध परियोजना का काम शुरू होते ही मुआवजा पाने के लिए कैलवारा, बकलवारा, दैलवारा और उनसे लगे दर्जनों गाँव लोग सरकारी कार्यालय के चक्कर काटने लगे | परंतु सरकार ने घर, बाखर, खेतों में मौजूद पेड़ों की कोई कीमत नहीं लगाई थी | क्योंकि सरकार के पास

इसके लिए पैसा नहीं था | मुआवजे के नाम पर उनके हाथ थोड़ी रकम दी गई | परंतु कभी कुछ बहाना बनाकर टाल दिया जाता हैं | " घर, बाखर, खेतों में मौजूद कुएँ,पेड़ों की तब कोई कीमत नहीं आँकी गई थी | कह दिया गया था कि अभी सरकार के खजाने में रकम नहीं है | और यों भी सरकार अभी आपको गाँव से जाने को कह नहीं रही है | जाओगे तो तभी न सरकार कहीं और जमीन देगी रहने को | बस,तभी दे देगी बाकी मुआवजा भी | तब तक इतंजार करो | जैसे-जैसे सरकार को बाडू जमीन की जरूरत होती जाएगी,तुम्हे मुआवजा मिलता जाएगा |"६ मुआवजा बटवारे तथा भूमि अधिग्रहण में भी भ्रष्टाचार होता है | हीरासाव और किरोड़ीमल ने तो गरीब किसानों की जमीने हड़प ली | "जमीनों का रुपया किसानों के हाथ में आया कि बानियों की चांदी हो आई | किसानों ने हाथ में आए कलदार अपनी कट्टी के खलिते में बाद में रखे होंगे की पहले बानियों अपना अगला-पिछला हिसाब चुकता कर लिया | इस वसुली के बाद बानिया लोग तो जा बसे ललितपुर, कि झाँसी, कि बीना, कि भोपाल | और किसान रहा आया बाखर, कुआँ, पेड़ का मुआवजा मिलने के इंतजार में |"७

बाँध पर काम करने के लिए स्थानीय मजदूरों के बजाए कर उड़ीसा, केरल से मजदूरों को लाया गया ताकि इनसे कम मजदूरी पर मनमाना काम करवाया जा सके | इन बाहर के मजदूरों को सरकारी बाबू की भाषा समझ में नहीं आती थी | इस कारण केवल काम पर ही उनका ध्यान रहता था | लड़ैई के स्थानीय मजदूरों को काम पर नहीं लिया गया | "क्योंकि काम तेजी से करना हैं | यहाँ के स्थानीय आदमी मन लगाकर पूरे समय काम नहीं करेंगे | क्योंकि वे अपने तीज- त्यौहार मनाना नहीं छोड़ेंगे काम की खातिर | घर-परिवार के शादी-ब्याह में शामिल होना भी न त्यागेंगे | कोई बीमार-दुखी हुआ तो उसकी तीमारदारी में जुटना भी नहीं छोड़ेंगे | सरकारी बाबू से, कि ठेकेदार के मुँह से कोई ऊँच-नीच बात निकल गई तो उससे झगड़ने से बाज भी नहीं आएँगे |"८ इस प्रकार इस गाँव के लोग सरकारी शोषण का शिकार बने | ऊपर से अब हीरा साव, निर्मल साव, किरोड़ीमल जैसे लोगों ने मुआवजे का पैसा हड़प करना शुरू किया | लोग मुआवजा कार्यालय पहुँचे तो, खाली हाथ निराश होकर वापस आए | सरकार और साहुकार अपने-अपने ढंग से किसान और मजदूरों का शोषण करते है | जमीनों का रूपया किसानों के हाथ में आते ही बानियों अपनी वसुली शुरू की | किसानों ने पुराने हिसाब चुकते किए | साहुकारों ने उन्हें लुटना शुरू किया | इस प्रकार शोषण का चक्र कई वर्ष तक चलता रहा | "जमाना बदल गया है | अब कलयुग आ गया है- कलयुग | इस जमाने की रीति उलटी | इस युग की नीति उलटी पहले राजा को पानी की दरकार थी सो गाँव बसाया था | अब राज्य को पानी की दरकार हैं, सो गाँव उजाड रही है |"९ सरकार,हिरा साव,किरोड़ीमल गरीब भोले-भाले किसान, मजदूरों का खून चूसते है |

गाँव के साहूकार,सेठ किसानों का खूब शोषण करते है | वे बाँध के बहाने किसानों से उनकी जमीन,खेत-खलिहान खरीद लेते है | बाद में उन्हीं किसानों को मजदूर बनाकर काम पर रखते है | लाचार होकर भूस्वामी साव की शरण में चले जाते थे | किसानों की अधिकतर वस्तुएँ साहूकारों ने गिरवी रख ली | जब किसानों को मुआवजा मिला तब साहूकारों ने कर्जा बढा चढाकर बताया और मुआवजे की रकम हडप ली | "साव ले जाएँगे उसे अपने साथ अपने घर | वहाँ फैसलाएँगे उसका तमाम हिसाब | इतना घूस में दिया, इतना पिछला निकलता था तुझ पर, इतना ब्याज पिछली रकम पर, इतना घुस वाली रकम पर, इतने के तेरे गहने जो तूने हमें बेचे थे, हम वापस कर रहे है,ताकि तेरे बहु-बिटिया के काम आएँ या कल को यह रकम खरच हो जाएगी तब हमारे पास फिर से गिरवी रखने या बेचने के काम आएँ |"१०

भूस्वामी को अपनी जमीन के साथ ही रकम भी गवानी पड़ी | लड़ैई गाँव के लोगों की जमीनें डूब क्षेत्र में आ जाने से अब उनके पास अपने जीविकोपार्जन का कोई साधन नहीं बचा | इस कारण किसान फिर से अपनी आर्थिक जरूरतों को पूरा करने के लिए साहूकारों के सामने नतमस्तक होते है | सरकार केवल किसान की जमीन अधिग्रहित करने पर तुला था | सेठ-साहूकारों तथा सरकार द्वारा शोषित-पीड़ित यह किसान आज भी पैसे के लिए अपने गहने उन्हीं बानियों के पास गिरवी रखना पसंद करते है | इन किसानों की यह मजबूरी भी है | किसानों को मुआवजे की रकम मिलते ही,इन बानियों ने उनका

आर्थिक शोषण किया | उसमे मुआवजा कार्यालय के कर्मचारियों भी शामिल थे| रकम मिलते ही बानिया लोग गाँव छोड़कर शहरों में जाकर रहने लगे |

लड़ैई गाँव के किसान मुआवजा न मिलने कारण बहुत ही निराश होते है | रोजमर्रा की जरुरते पुरी करने के लिए वे फिर साव के पास चले गये | साव के पास उन्होने अपने गहने और जमीन-जायदाद फिर से गिरवी रखी | निर्मल साव,सरकारी अफसर को रिश्वत देकर किसाने ने मुआवजा प्राप्त करने की कोशिश की | परंतु जमीनें साव के पास गिरवी रखी थी, तो मुआवजा साव को ही मिल गया | जो रकम मिली उससे साव की उधारी चुकायी तथा कूछ जरूरती सामान भी खरीद लिया | कई किसानों ने फिर से मेहनत करके खेती की | फसल पूरी होते ही सरकार के अफसर उसे जप्त करने आ गए | इस प्रकार किसानों को डरा-धमकाकर, कानून का भय दिखाकर मुआवजे के नाम पर फसाया जाता है |

इस प्रकार हम देखते है कि उपन्यासकार वीरेंद्र जैन 'डूब' उपन्यास में देश को प्रगति पर अग्रेसर करने हेतु सरकार द्वारा आयोजित विकास योजनाओं पर प्रश्नचिन्ह लगाते है | उपन्यासकार ने बार-बार एक ही गहन प्रश्न उठाया है कि उन विकास योजनाओं से क्या फायदा जो मनुष्य को उखाड़ दे बेघर कर दे उनकी इच्छाओं का दमन कर दे | विकास योजनाओं के लिए किसानों की उपजाऊ भूमि का अधिग्रहण किया गया,जो उनकी आजीविका का प्रमुख साधन था | यही नहीं जमीन का अधिग्रहण भी किसानों को बहुत कम मुआवजा देकर किया गया | किसान अब किसान न रहकर मजदूर बन गया था | उसे कल-कारखानों में न तो साझेदारी मिली और न ही नौकरी | वह पूर्ण रूप से आजीविका विहीन होकर दर-दर की ठोकरें खाने के लिए विवश हो गया | सरकार ने उद्योगों-खदानें, विशाल बाँधों, अभयारण्य, परियोजनाओं तथा विकास की योजनाओं के नाम पर बहुत पैमाने पर प्राकृतिक संसाधनों का अधिग्रहण करना शुरू किया | इनसे सबसे महत्वपूर्ण पीड़ादायक था नदी परियोजना में विशाल बाँध निर्माण करने का कार्य | जिसके तहत एक बहुत बड़ी जनसंख्या को अपने घर-परिवार, जमीन एवं जीविका के साधनों से वंचित होकर विस्थापन के लिए मजबूर होना पड़ा था |

****

संदर्भ ग्रंथ सूची-

१ (डॉ. वर्षा मिश्र ,मिथिलेश्वर की कहानियों में ग्रामीण यथार्थ,क्वालिटी बुक्स (पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स) कानपुर, प्र.सं.२००४, पृ०९.सं.

२) मिथिलेश्वर,एक गाँव की अन्तकथा, मिथिलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ, मीनाक्षी पुस्तक मंदिर,दिल्ली,सं १९८० पृ.सं.२११

३) वीरेंद्र जैन,डूब, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,सं.१९९१, पृ.सं.६७

४) वही, पृ.सं.२४

५) वही, पृ.सं.२५

६) वही, पृ.सं.१९०

७) वही, पृ.सं.१९१

८) वही, पृ.सं.१९१

९) वही, पृ.सं.१९६

१०) वही, पृ.सं.२३४

भ्रमणध्वनि – ८०८७३५२४६४

warangvikram@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 395-399

साहित्यिक समानता प्रतिशत कम करने की पाँच सरल युक्तियां

डॉ. गौरव शर्मा
सहा. आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, एम. एस. कॉलेज, शाहजहाँपुर (उ. प्र.)

सार तत्त्व :–

साहित्यिक समानता वैज्ञानिक प्रारब्ध का एक रूप है जिसे किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा या स्वयं के पिछले प्रकाशनों के विचारों या शब्दों को लिखने और मूल लेखक और प्रकाशन का पूर्ण विवरण दिए बिना ऐसे काम को प्रकाशित करने के रूप में समझा जा जा सकता है। लेखकों के लिए साहित्यिक समानता से बचना आसान है, बस किसी भी मुद्रित स्रोत की नकल न करके मूल लेख को स्वयं के शब्दों को व्याख्यात्मक रूप में लिखकर, और यदि प्रकरण का अनुवचन करना आवश्यक है तो स्रोत का पूर्ण विवरण देकर अपने बत्तव्यों में जोड़ा जा सकता है परन्तु दुर्भाग्य से, इन सामान्य नियमों को कई नौनिहाल लेखकों द्वारा या तो भुला दिया जाता है या अनदेखा कर दिया जाता है, क्योंकि साहित्यिक समानता के उदाहरण पूरे साहित्यिक जगत में बहुत आम हो गए हैं।

कुछ मुख्य बिंदु :– साहित्य समानता, प्रतिशत, युक्ति।

प्रस्तावना :–

साहित्य समानता एक अधिकारिक या गैर–अधिकारिक रूप में किसी लेखक के या माहित्यिक के लिखे हुए काम को बिना उनकी अनुमति के चुराने की प्रक्रिया है। यह किसी भी रूप में हो सकता है, जैसे कि किसी किताब, कविता, उपन्यास, नाटक, या अन्य साहित्यिक रचना की प्रतिलिपि बनाना, उसे ऑनलाइन या ऑफलाइन माध्यमों पर प्रसारित करना, या उसका अपना नाम लगाकर प्रकाशित करना शामिल हो सकता है। साहित्य चोरी के कुछ प्रमुख उदाहरण शामिल होते हैं :–

1. **प्लेजियराइज्म या साहित्यिक चोरी :–** किसी लेखक की रचना को बिना यह बताए कि अमुक लेख को उद्धृत किया है, अपने नाम से प्रकाशित करना। साहित्यिक चोरी की श्रेणी में आता है।
2. **कॉपीराइट या प्रतिलिप्याधिकार उल्लंघन :–** किसी अन्य लेखक के काम को बिना किसी अनुमति के उद्धृत करना या प्रसारित करना, जिससे कि प्रतिलिप्याधिकार कानून का उल्लंघन होता है।
3. **नैतिक आदर्शों का उल्लंघन :–** किमी लेखक के विचारों या आदर्शों को अपने काम में शामिल करके उनके साहित्यिक या भौतिक उत्पाद को दुरुस्त करना।

साहित्य चोरी किसी लेखक के मेहनत, सोच, और रचनात्मकता का अपमान करने के सामान है, और यह संपूर्ण साहित्यिक समुदाय के लिए नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। यह भी कानूनी प्रक्रिया का हिस्सा हो सकता है और प्रतिलिप्याधिकार या साहित्यिक चोरी के खिलाफ कानूनी करवाई हेतु सुझाव देता है।

साहित्य चोरी या समानता से बचने का आधार किसी भी साहित्यिक गतिविधि के दौरान सावधानी और ईमानदारी में अपनाई जानी चाहिए ताकि लेखकों का सम्मान किया जा सके और साहित्यिक संपदा को सुरक्षित रखा जा सके।

सकारात्मक दृष्टिकोण यह भी है कि जो लेखक साहित्यिक समानता से ग्रसित हैं, वे इस बात से अनभिज्ञ हैं कि साहित्यिक समानता क्या होती है। साहित्य जांच के अन्तर्गत कुछ मानकों का पालन करना होता है जो शैक्षिक, सामाजिक सम्मेलन या व्यक्तिगत राय के संबंध में अपरिवर्तनीय हैं। क्योंकि विचारों को प्रकाशित करना और प्रसारित करना वैज्ञानिक प्रयास का केंद्र है। ऑकड़ों को संकलित करने और प्रकाशित करने को नियंत्रित करने वाले नियम सैद्धांतिक हैं, इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि हम सभी सहमत हों और साहित्यिक समानता के संबंध में सामान्य मानकों का पालन करें। भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका के संपादकों और प्रकाशकों के रूप में हम वैज्ञानिक पूर्णता के प्राथमिक सलाहकार के रूप में अपनी भूमिका को गूड़ता से लेते हैं। हम साहित्यिक समानता या किसी भी प्रकार के संबंधित दुर्व्यवहार को उचित नहीं ठहराते हैं, और अपने समीक्षकों और पाठकों से आग्रह करते हैं कि वे हमारे ध्यान में नैतिक प्रश्न या हमारी पांडुलिपियों और प्रकाशित लेखों में साहित्यिक समानता का क्या मतलब है, इस पर ध्यान दें।

हम अपने लेखकों से यह भी आशा करते हैं कि वे इस पर कड़ी सावधानी बरतें ताकि साहित्यिक समानता से बचा जा सके :–

1. **लेखकों के उद्धरण को लिखते समय रखें विशेष ध्यान :–** किसी अन्य दस्तावेज या पुस्तक से शब्दशः शब्दों की नकल करना (भले ही यह स्वयं आपका पूर्व में छपवाया हुआ कार्य हो) उत्तम लेखन नहीं माना जाता है। बहुत छोटे–छोटे उद्धरण तब स्वीकार्य किये जाते हैं जब इस प्रकार मे वाक्यों को उद्धरण चिह्नों के अन्दर लिखा जाए और उद्धरण के तुरंत बाद ही उसका अंकन करके उसी पाठ के नीचे पाद टिप्पणी के अन्तर्गत स्रोत का पूर्ण विवरण देना चाहिए। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उद्धरण चिहनों के बिना और उचित उद्धरणों के अभाव में किसी अवतरण को ज्यों का त्यों उतारना साहित्यिक समानता में स्वयं ही उलझने के समान है, परन्तु दुर्भाग्य से, ऐसा बहुतायत देखने को मिलता है।

2. **शब्दों को व्याख्यात्मक रूप में लिखें :–** स्वयं की सहायता के लिए किसी और के शब्दों या यहां तक कि किसी और की लेखन शैली का उपयोग किए बिना अपने अनुभव और भीतरी विचारों को व्याख्यात्मक रूप में लिखिए। इसका यह मतलब है कि आपको सामान्य तौर पर जितना संभव हो सके व्याख्या करना चाहिए। व्याख्या करना, या किसी अन्य लेखक के लेख को अपने शब्दों में दोबारा लिखना, केवल तभी स्वीकार्य है जब आपके लेख में दूसरों के शब्दशः बिचार न्यूनतम रूप में होते हैं (उदाहरण के लिए, एक गद्यांश) और मूल स्रोत को प्रकरण के अंत में उद्धृत किया गया है। यहां साहित्यिक समानता के बारे में किसी भी चिंता से बचने का सबसे आसान तरीका गूगल करके समानार्थी शब्दों को ढूंढना और जितनी अधिकतम हो सके अपने शब्दों की व्याख्या करके अपने अनुभवों को अध्ययन में प्रयोग करता है। उदाहरण स्वरूप यदि कोई वाक्य ऐसे लिखा है

कि 'पिता जी ने मुझसे कहा कि बाजार से सब्जी ले आओ' मुझे इस वाक्य को अपने अध्ययन में प्रयोग करना है तो मैं इस वाक्य को इस प्रकार से लिख सकता हूँ कि 'बाजार जाकर ताजी सब्जी देखकर लाने के लिए मुझसे से पिता जी ने कहा।' इस प्रकार से लिखने से सहित्य समानता की संदेहावस्था न के बराबर रहती है। वैसे स्वयं के विचारों को व्यक्त करने के लिए अपनी स्वयं की मौलिक 'अंतः मन' के आवाज की भाषा का उपयोग करें। उधार की ली गई साहित्य सामग्री की पूर्ण सूचना दिए बिना, मौलिक और उधार ली गई साहित्य सामग्री को कदाचित कदापि आपस में मिश्रित न करें।

3. **किसी प्रकार का सन्देह न रखें :–** स्वयं का लेखन कार्य प्रारम्भ करते समय जब किसी भी प्रकार का मंदेह हो तो अपने अध्ययन से सम्बन्धित किसी दूसरे लेखक के लेखों का अवलोकन एवं अध्ययन करें। यदि आप स्वयं को अवलोकन एवं अध्ययन के कारण अत्यधिक सन्देह की स्थिति में अज्ञानता के कारण उद्धृत करते हुए आप स्वयं को पाते हैं, तो यह एक संकेत हो सकता है कि आप अपने शब्दों में पर्याप्त नहीं लिख रहे हैं। यह एक संकेत और है कि आपको एक बार फिर से चिन्तन, मनन और गूढ़ अध्ययन करने के पश्चात अपना लेख पुनः नये सिरे से लिखने पर विचार करना चाहिए। सामान्य शब्दों और वाक्यांशों को उधृत करने या उद्धरण चिह्नों में डालने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन आम तौर पर आवश्यक सिद्धान्तों एवं अवधारणाओं की व्याख्या विस्तार से होनी चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि किसी भी विद्वान के वक्तव्य या सिद्धान्तों को ज्यों का त्यों लिखा जाये। आप आवश्यक बातों के अतिरिक्त बातों के परिणामों एवं निष्कर्षों के विषय में व्याख्या की जा सकती है।

4. **उद्धृत तकनीक :–** बिना उधृत किए अपने पहले प्रकाशित लेख में से किसी एक से वाक्यों, चित्रों, आंकड़ों, तालिकाओं या पुरे पाठ का पुनर्प्रकाशन न करें। सामान्य तौर पर, जिन विचारों को आपने पहले प्रकाशित किया है उसे पुनः प्रकाशित न करना बेहतर है। लेकिन यदि आपको करना ही है, तो चित्र या तालिका अनुशीर्षक में मूल पृष्ठ को उद्धृत करें और सुनिश्चित करें कि आपने पाठ में उल्लेख किया है कि यह आपके पहले प्रकाशन से था और यदि आपने प्रतिलिप्याधिकार बरकरार नहीं रखा है तो वास्तविक लेखक में अनुमति प्राप्त करें। लेख को एक पत्र से दूसरे पत्र में पुनरावृत्ति न करें। प्रत्येक पत्र के लिए नया लेख लिखें। अगर आप ये काम करने में असफल हो जाते हैं। आप आत्म–साहित्यिक या विचार की उद्धृत कर रहे होंगे, जो हालोंकि अक्सर जाने–अनजाने में, इसे जानबूझकर की गई माहित्यिक चोरी के समान ही माना जाता है।

5. **उचित प्रकार से अनुमति प्राप्त करें :–** यदि आप किसी सूचना का उपयोग करना चाहते हैं, जैसे तालिका, या किसी भी प्रकार की जानकारी जो पहले प्रकाशित नहीं किया गया है, और किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा निर्मित या एकत्रित किया गया है जो आपके लेख का मह–लेखक नहीं है, तो आपको निश्चित रूप में उनकी अनुमति लेनी होगी और इसका श्रेय भी उन्हें देना होगा। आवश्यकता पड़ने पर लेखक को चाहिए कि किसी लेख के वास्तविक लेखक से उसके विचार उद्धृत करने के पूर्व ही प्राथमिक तौर पर व्यक्तिगत रूप में शिष्टाचार भेंट करें और लेख व लेखक के विचारों के विषय में बृहत चर्चा करें और इसके माथ ही लेखक की अनुमति प्राप्म करें। यदि आप अपनी स्वयं की सूचना या तालिका, चित्र या आंकड़ा भूतकाल में कभी जो प्रकाशित हो चूका है और आप उसका पुनर्प्रकाशन चाहते हैं तो भी यही प्रक्रिया आप पर भी लागू होती है।

साहित्य समानता कम करने की आवश्यकता एवं महत्व :–

साहित्य समानता एक सामाजिक और वैज्ञानिक रूप से कार्य बाधा है, जो किसी लेखक के मेहनत,

विचारों, और सोच को अनधिकृत रूप से या अज्ञानता वश उपयोग करके किया जाता है। यह साहित्यिक समृद्धि को बाधित करने के साथ–साथ साहित्यिक समुदाय के विकास को भी रोकता है। इस विचार के साथ, साहित्य समानता को कम करने की आवश्यकता है।

पहली बात, हमें साहित्य स्वामित्व के महत्व को समझना चाहिए। जब एक लेखक या कवि अपने विचारों को शब्दों में प्रकट करता है, तो वह उनके साथ अपनी समय एवं श्रम का हिस्सा भी साझा करता है। साहित्य चोरी उनके समय एवं श्रम का अपमान होता है और यह उत्कृष्ठ साहित्यिक सृजन का बाधक है।

दूसरी बात, साहित्य चोरी का परिणाम साहित्यिक समुदाय के लिए नकारात्मक होता है। यदि लेखकों का साहित्य चोरी होता है, तो वे अपने काम को जारी रखने के लिए निराश हो सकते हैं। उनकी नैतिक प्रगति पर भी इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। उन्हें उनके श्रोताओं के साथ अपना सम्बन्ध तक समाप्त करना पड़ सकता है।

इस समस्या को कम करने के लिए हमें शिक्षा, संवैधानिक कदम, और साहित्यिक समुदाय के साथ मिलकर एक सशक्त कदम उठाने की आवश्यकता है। विभिन्न साहित्यिक कार्यक्रमों और साहित्यिक संगठनों के माध्यम से साहित्य चोरी या समानता के खिलाफ जागरूकता बढ़ानी चाहिए, और साहित्य को समर्थन और सुरक्षा प्रदान करने के लिए साहित्यकारों को समर्थन देना चाहिए। साथ ही, कानूनी कदम भी उठाए जाने चाहिए ताकि साहित्य चोरी करने वालों के खिलाफ सख्त कार्रवाई हो सके।

इसलिए, हमें साहित्य चोरी को निष्कर्ष रूप से निष्कर्षित करना चाहिए और लेखकों के साहित्यिक अधिकारों का सम्मान करना चाहिए। साहित्य चोरी का समर्थन करना एक साहित्यिक समृद्धि के लिए नहीं, बल्कि नैतिकता और साहित्य के सर्वसाधारण मूल्यों के खिलाफ है, जिन्हें हमें सब मिलकर सुनिश्चित करना चाहिए।

निष्कर्ष :–

साहित्य चोरी एक अत्यंत निन्दनीय और अनैतिक क्रिया है जिसमें किसी लेखक की या साहित्यिक व्यक्ति की रचनाओं को बिना उनकी अनुमति के चुराया जाता है। यह क्रिया साहित्यिक अधिकारों का उल्लंघन होता है और लेखक की मेहनत, सोच, और स्वेच्छा के साथ काम करने का परिणाम होता है। साहित्य चोरी समाज में नकारात्मक दृष्टिकोण पैदा करती है और साहित्य के क्षेत्र में निष्कलंक सत्ताओं के खिलाफ होती है।

साहित्य चोरी का परिणाम यह होता है कि लेखक अपने उत्कृष्ट विचारों को साझा करने का मौका खो देते हैं, और साहित्यिक समुदाय को उनके योगदान से महत्वपूर्ण ज्ञान और विचारों से वंचित कर देते हैं। इसके अलावा, साहित्य चोरी लेखक की आत्मविश्वास को नुकसान पहुँचाती है और साहित्यिक सृजनात्मकता को ध्वस्त करती है।

इसलिए, साहित्य चोरी कम करने की आवश्यकता हमारे साहित्यिक समुदाय की सुरक्षा और समृद्धि के लिए महत्वपूर्ण है। हमें इस समस्या के खिलाफ मिलकर काम करना चाहिए ताकि हमारी साहित्यिक धरोहर को सुरक्षित रखा जा सके और नए लेखकों को साहित्य में अपनी अद्वितीय भूमिका को प्रकट करने का मौका मिल सके।

अन्त में, यदि किसी भी व्यक्ति ने उपरोक्त बताए हुए पांच नियमों को आत्मसात करके अपना किसी भी प्रकार का लेखन कार्य किया है तो मैं यह दावे के साथ कहूंगा की आपका कार्य माहित्य चोरी या समानता की

श्रेणी से बहुत दूर और मौलिक रहेगा। क्योंकि मेरे द्वारा यह कई बार अनुभव किया गया है कि स्वयं का किया गया कार्य किसी दूसरे के कार्य से या तो निम्न कोटि का रहेगा या फिर उच्च कोटि का रहेगा। किसी के ममान कार्य कभी नहीं हो सकता। क्योंकि आपके लिखने व सोंचने की क्षमता, अनुभव करने की क्षमता एवं अपने अनुभवों को अभिव्यक्त करने की क्षमता सभी व्यक्तियों में अलग–अलग होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. Young, Jeffrey R. (2001). Plagiarism and plagiarism detection go high tech. Chronicle of Higher Education (July 6).
2. Atkins, Thomas, Gene Nelson. (2001). Plagiarism and the internet : Turning the tables. English Journal 90.4, 101-104.
3. Alfrey, Penelope. "Petrarch's Apes: Originality, Plagiarism and". MIT Communications Forum.
4. "Plagiarism Policy". Retrieved 4 November 2019.
5. Hexham, Irving (2005). "The Plague of Plagiarism : Academic Plagiarism Defined". UCalgary.ca.
6. Hansen, Brian (2003-09-19). "Combating Plagiarism". CQ Researcher. 13(32): 773-796- ISSN 1942-5635
7. "Defining and Avoiding Plagiarism : The WPA Statement on Best Practices". Princeton University. 2012-07-27
8. "The Plagiarism Spectrum". Turnitin. Retrieved 7 August 2018.
9. "What is plagiarism\" Brown University Library. 2012-07-27
10. "What is Plagiarism\" Archived 2020-05-05 at the Wayback Machine Stanford University.
11. "What is Plagiarism\" Poorvu Center for Teaching and Learning", 25 June 2015

मोबाइल :– 9335290302, 8090300424

ई–मेल :– gauravsharma0302@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 400–404

जनपक्षधरता और कविता : केदारनाथ सिंह की कविताओं में राजनीतिक संवेदना

(‘अकाल में सारस’ काव्य संकलन के विशेष संदर्भ में)

मीनु नौषाद्
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, कोच्चिन विज्ञाव व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कोच्चिन–682022

शासन करने की कला या नीति को हम राजनीति कहते हैं। यह एक ऐसी प्रक्रिया हैं, जिससे प्रायः देश का नेतृत्व चुना जाता है और समाज के शासन हेतु नीतियां बनाई जाती है। इसमें केवल शासन या सत्ता का चुनाव ही नहीं बल्कि कानून व नीति निर्धारण एवं जनता की समस्याओं का समाधान आदि भी शामिल होता है। राजनीति का मूल उद्देश्य समाज को सुव्यवस्थित एवं न्यायपूर्ण ढंग से विकास की ओर बढाना है। यह इसलिए महत्वपूर्ण भी है कि वह व्यक्ति–जीवन के स्तर से लेकर राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक सब को प्रभावित करता है। राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता बनाए रखने से लेकर, हमारे देश का आर्थिक विकास, देश–विदेश के साथ हमारा संबंध एवं सामाजिक स्तर पर न्याय एवं समानता को बनाए रखना आदि सब राजनीति का ही हिस्सा है। अर्थात् राजनीति वह माधायम है, जिसके द्वारा समाज के समग्र विकास, नागरिकों के अधिकारों की रक्षा एवं देश के भविष्य को आकार दिया जाता है।

साहित्य को समाज का दर्पण माना जाता है। और राजनीति उसी समाज को बनाए रखने की विधि है। इस प्रकार देखा जाए तो पता चलता है कि समाज एवं राजनीति दोनों का गहरा अंतःसंबंध है, दोनों एक दूसरे से जुडे हुए हैं। राजनीति जहाँ एक ओर समाज के शासन, नीति, शक्ति आदि से संबंधित होती है, वहीं साहित्य समाज की वास्तविकताओं, भावनाओं, विचारों एवं ऐसे अनेक पहलुओं से जुडा हुआ है। एक तरह से यह भी कहा जा सकता है कि राजनीति द्वारा संचालित समाज की अभिव्यक्ति, साहित्य में शामिल है। जहाँ राजनीति सत्ता के लोप में आकर समझौता भी कर सकता है, वहीं साहित्य उसका आलोतक बन, उसका पथ–प्रदर्शन का कार्य करती है। अतः राजनीति का सही समझ होना आवश्यक है। साहित्य में राजनीति इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह केवल रचनात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सत्ता, शासन, अन्याय, शोषण और सामाजिक संघर्षों की जाँच पडताल करने का माध्यम है।

कवि केदारनाथ सिंह की रचनाओं में राजनीतिक विचार प्रखर एवं तीखे ढंग से अभिव्यक्त हुई हैं। केदारनाथ सिंह हिन्दी के उन कवियों में से हैं जिन्होंने राजनीति को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में मार्मिक ढंग से अपनी कविताओं में शामिल की हैं। उनकी अधिकांश कविताओं में यह चेतना सीधे–सटीक ढंग से अभिव्यक्त न

होकर प्रतीकों एवं संकेतों के माध्यम से अभिव्यक्त होती हैं जो गहरा एवं विचारोत्तेजक हैं। उनकी कविताओं में किसी विचारधारा या दल का समर्थन या उनपर आरोप नहीं बल्कि निष्पक्ष रूप से वर्तमान राजनीति की भीषण वास्तविकताओं का अंकन हमें देखने को मिलता है। उदाहरण केलिए उनकी कविता काली मिट्टी में वह कवि प्रखर ढंग से वर्तमान युग की काली राजनीतिक चाल का पोल खोलता है। वे निडर होकर इस बात का ऐलान करते है कि आज का युगबोध काला हो चुका है। उनके शब्दों में :–

"काली बहसें काला न्याय
खाली मेज पी रही चाय
काले अक्षर काली रात
कौन करे अब किससे बात
काली जनता काला क्रोध
काला–काला है युगबोध।"

समूची कविता में काला रंग का प्रयोग बार बार आता है। वह इस बात का संकेत है कि हमारी व्यवस्था भीषण अंधकार की ओर जा रहे हैं। व्यक्ति की जीवन की हर पहलू जैसे उसकी मिट्टी, उसका घर, उनकी नदियां, बन उनका कमाया धन सब काला है। केवल वैयक्तिक स्तर पर ही नहीं बल्कि सामाजिक न्याय भी काला पडता जा रहा है। अन्याय एवं शोषण से युक्त एक व्यवस्था की समूची विडंबना को कवि प्रस्तुत पंक्तियों में उजागर करता है जिसके चलते भविष्य भी अंधकार में दिख पड़ता है।

केदारनाथ सिंह अपनी कविताओं के माध्यम से पाठकों को चेतावनी देता है कि अभी एक लंबी लड़ाई बाकी है। वे समाज में व्याप्त उन विघटनकारी शक्तियों को खुलेआम अपनी कविताओं में व्यक्त करते हैं जिनको बर्सों से हम नकारते आ रहे हैं। कवि में इतनी दीर्घ–दर्शिता है कि वह इन सबके पीछे छिपी चालाक राजनीती को समझ सकें। सामाजिक अन्याय, आर्थिक शोषण एवं जातिगत भेद–भाव आदि को बनाए रखनेवाली इस व्यवस्था को और उसके चालक नेताओं को कवि अपनी कविता में यम के रूप में चित्रित करता है। जर्जर एवं रूढ़िगत सामाजिक व्यवस्था के साथ–साथ पूँजीवादी एवं पितृसत्तात्मक व्यवस्था के गढ़जोड पर भी कवि इसमें प्रकाश डालता है। उनके शब्दों में :–

"यह जो काला धन फैला है, यह जो चोरबाजारी है
सत्ता पाँव चूमती जिसके यह जो सरमाएदारी है
यह जो यम–सा नेता है, मतदाता की लाचारी है
उसे मिटाने और बदलने की करनी तैयारी है।"

यह पंक्तियां वास्तव में राजनीतिक व्यवस्था पर तीखा प्रहार करता है। अपने को लोकतांत्रिक ठहराने वाली एक व्यवस्था में लोगों के नजर में नेता–गण यम–सा लगने लगा है, साथ ही कवि स्पष्ट शब्दों में बता रहा है कि न चाहते हुए भी इन नेताओं को झेलना मतदाताओं की लाचारी बन चुकी है। राजनैतिक सत्ताधारियों की ताकत को दर्शाने के साथ–साथ कवि आम जनता की विवशता एवं मजबूरी को भी इसमें दर्शाता है।

राजनीति का केवल एक ही मंत्र है–सत्ता प्राप्ति। भले ही राजनेता इस बात का दिखावा करें कि उनको समाज की चिंता है और लोक–कल्याण उनके जीवन का अंतिम लक्ष्य है, सच्चाई इसके ठीक विपरीत है। और

राजनीति है भी एक ऐसी शक्ति जो पूरी तरह लोगों को अपने वश में कर लेती है। कवि के राय में राजनीति एक एक–तरफा रास्ता है जहाँ जाने के बाद वापसी संभव नहीं। लोगों को वह अपने चुंगुल में फँसा लेता है। व्यवस्था के हाथों में फँसकर व्यक्ति अपना अस्तित्व खो देता है। इस बात का उल्लेख 'दानें' कविता के माध्यम से कवि पाठकों के सामने व्यक्त करते हैं जिसमें खेत के दानें बाजार में जाने से इनकार करते हैं। वे कहते हैं हम मण्डी नहीं जाएंगे, जाएंगे तो वापस नहीं आएंगे, आएंगे तो पहचान भी नहीं पाएंगे। इसमें दाने केवल अन्न की दानें नहीं है, बल्कि वह समाज की उस प्रत्येक व्यक्ति की प्रतिनिधि है, जो सत्ता एवं राजनीति के हाथों से बचे रहना चाहते है। वे जानते हैं कि राजनीति की उस चक्र में केवल लोभ एवं शोषण होता है। आम जनता का उसमें कोई स्थान नहीं है। कवि यह समझते है कि जनता, यानी साधारण जनता सत्ता के सामने केवल वोट–बैंक हैं। जनता के कलयाण के नाम पर बहसें चलते है, मत खरीद लिया जाता है, लोक–कल्याण के नारे लगाए जाते हैं। लेकिन वास्तव में उनका अस्तित्व सत्ताधारियों की नजर में तुच्छ है। साधारण जनता के प्रति इस हीन भाव को दर्शाने केलिए कवि 'जूता' शब्द का प्रयोग करते हुए, 'जूते' कविता में इस प्रकार लिखते हैं कि :–

"कितना अजीब है
कि वक्ता चले गए
और सारी बहस के अंत में
रह गए जूते
उस सूने हाल में
जहाँ कहने को अब कुछ नहीं था
कितना कुछ कितना कुछ
कह गए जूते।"

प्रस्तुत कविता के माहैल में उस पूरी सभा में अंत में वे जूते ही बचे हैं। वह धूल–भरा, उपेक्षित जूता समाज के उस वर्ग का प्रतीक है जो हताश है, निराश है, जिनके नाम पर सत्ता अपना वोट–बैंक भरता हैं। जिनके नाम पर राजनीति पूरा षडयंत्र रचते हैं वह है– आम जनता। समाज को झलने केलिए और अपना तथा–कथित देश सेवी छवी बनाए रखने केलिए राजनीतिज्ञ या सत्ताधारी विकास की नीतियों पर निरंतर बहस करते रहते हैं, जो कवि की राय में एक आदतन प्रक्रिया मात्र है। वास्तव में इन सारी झंझट के बीच साधारण जनता की मांग, उनकी बुनियादी आवश्यकताएँ एवं उनके जरूरतों पर कोई ध्यान नहीं देता। वह समाज अदेखा रह जाता है।

एक सजग कवि की यह सबसे बड़ी खासियत है कि वह अपने समय और समाज को उसकी समग्र चेतना के साथ दर्शाने में सपल रहता है। कवि का अपना रचना–काल इतनी विकट रही है कि वह समाज एवं शासन की हर अच्छी–बुरी पहलुओं से वाकिफ हैं। व्यवस्था की घिसी–पिटी ढांचे में पिस रही आम आदमी का जीवन और उसके जीवन को घेरनेवाली उस स्थाई विवशता को वह भली–भाँती जानते हैं। निस्सहाय होकर उस विवशता को ढ़ोना देश के आम नागरिक की नियती बन गई है। 'पूँजी' कविता हमारे समाज की आम आदमी की उस मानसिक एवं सांस्कृतिक थकान का बयान है, जो रोज राजनीती एवं व्यवस्था से टकराकर भी अपना

अस्तित्व बचाए रखने की तड़प से उपजी है। राजनीति जब नैतिकता से अलग हो जाती है, तो वह केवल स्वार्थ की सेवा करती है। 'पूँजी' कविता भी परोक्ष रूप में ही सही, लेकिन इस काला–कलूटा राजनीतिक व्यवस्था के मूह पर तमाचा मारने का कार्य करती है। इसमें हमारा परिचय एक ऐसा व्यक्ति से होता है जिसकी सबसे बडी और इकलौता पूँजी खुद की साँसें है। यह पूँजी रूपी साँस केवल उस व्यक्ति का नहीं, बल्कि देश की तमाम साधारण लोगों की हैं। कवि बताते हैं कि :–

"क्यों न ऐसा हो
कि एक दिन उठूँ
और वह जो भूरा–भूरा–सा एक जनबैंक है–
इस शहर के आखिरी छोर पर–
वहाँ जमा कर आऊँ
सोचता हूँ
वहाँ से जो मिलेगा ब्याज
उस परज जी लूँगा ठाट से
कई–कई जीवन"

साधारण व्यक्ति के जीवन की खुशियां भी आज दाव पर हैं। वह अपना जीवन बेचकर भी खुशियां खरीदने केलिए तैयार है, क्योंकि उसके जीवन से सारा रस निचोड़ लिया गया है। गिरवी रखने के लिए उसके पास बची पूँजी, सिर्फ अपनी साँसें है, जिसमें उसकी आशाएँ, उम्मीद, बेचैनी सब शामिल है। अब समय इस तरह बदल चुका है कि, बिना देर के यह व्यवस्था उससे उसकी पहचान भी छीन लेंगे। अतः वह इतना लाचार है यह सोचने के लिए कि उसकी खुशियाँ सत्ता को गिरवी रखकर, अपने को सत्ता का गुलाम बनाकर ही सही वह जीने की उसकी इच्छा को पूरा करें।

राजनीति की दुनिया दिखावट की दुनिया है। उसमें शामिल प्रत्येक व्यक्ति, खासकर सत्ताधारी लोग दिखावट में खुल–मिल गया है। सच्ची भावनाओं एवं संवेदनाओं का उसमें कोई स्थान नहीं है। सत्ता का, लोगों से संबंध केवल स्वार्थ का है और लोगों का, सत्ता से रिश्ता मजबूरी का। आम लोग सत्ता के लिए गुलाम है। लेकिन उनकी पीडा से सत्ता कतई प्रभावित नहीं हैं। उनका होना सत्ता के लिए अहम है, क्योंकि वे ही वह वर्ग है जिनको बेचकर वे अपना पेट भरते हैं। वह हमेशा पीछे रह जाते हैं। कवि के शब्दों में –

"कैसा रहे
बाजार न आए बीच में
और हम एक बार
चुपके से मिल आएँ चावल से
मिल आएँ नमक से
पुदिने से
कैसा रहे
एक बार...सिर्फ एख बार...।"

कविता के आरंभ में ही कवि बाजार जाने वालों से अनुरोध करते हैं कि वे आज बाजार न जाएँ, बल्कि सीधे धान की मंजरियों तक जाएँ। कविता में कवि 'दुभाषिए के बिना आमने सामने बातचीत' करने की अनिवार्यता पर भी बल देते हैं। यह वस्तुतः हमारे समाज के उच्च वर्गों से उनका अनुरोध हैं कि क्यों न एक बार अपनी अपनी दुनिया से उतरकर देश की आम जनता की ओर देखें। बाजारवादी संस्कृति हमें अपनी मोहक दुनिया में फँसाते है और हम ऐश–ओ–आराम की जीवन के तलाश में यथार्थ से बहुत दूर चले जाते है। कविता में उल्लिखित दुभाषिया वस्तुतः हमारी राजनीतिक व्यवस्था ही है और चावल, नमक, पुदीना आदि आम जनता का प्रतीक।

जब समाज में लोगों की बुनियादी जरूरतें ही पूरी नहीं होती, तब नैतिकता एवं राजनीति दोनों बेईमान हो जाता है। वर्तमान राजनीति की यह हालत है कि वहाँ हर स्तर पर हर समय जनता के कल्याण को लेकर गर्मागर्म बहसें चलती हैं, पक्ष–विपक्ष में एक–दूसरे पर आरोप लगाए जाते हैं लेकिन जनता को परेशान करनेवाली असली मुद्दे अनसुनी व अनदेखे रह जाते हैं। उनकी असली समस्याओं पर हमेशा के लिए सन्नाटा छाई रहती हैं। इस कारण कवि केदारनाथ सिंह की इन कविताओं में सर्वत्र एक अवसाद छाया हुआ है। इन कविताओं के माध्यम से कवि जिस परिवोश की रचना करते है वह स्थगित गति वाला प्रतीत होता है। उसमें एक ठहराव है जो लोगों की बेबसी, निराशा, हताशा एवं उजड़ी आकांक्षाओं से जन्मी है। उसमें भ्रष्टाचार है, एक काला युग है, कोले लोग है, बेबसी है, सर नीचे किए हुए लोग रहते है।

एक युग की मानवीय त्रासदी के साथ–साथ उसके पीछे कार्यरत राजनैतिक संदर्भों का मार्मिक अभिव्यक्ति भी केदारनाथ सिंह ने अपनी इन कविताओं के माध्यम से व्यक्त किया हैं। 'अकाल में सारस' काव्य संकलन की कविताएँ जनजीवन की जमीन से जुडी हुई हैं। यह उस भीषण समय का रचात्मक दस्तावेज भी है, जिसमें जीवन की इच्छा लगभग मरी–हुई सी लगती हैं। उनकी यह कविताएँ इस बात का मिसाल हैं कि कैसे आम बोलचाल की भाषा में भी गहरी अनुभूतियों एवं विचारों को शामिल किया जा सकता है। वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था एवं खोखले सामाजिक मूल्यों की आलोचना भी उनकी कविताओं के माध्यम से व्यक्त होते हैं।

संदर्भ :–

1. अकाल में सारस, केदारनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, 1988
2. वहीं।
3. वहीं।
4. वहीं।
5. वहीं।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 405-408

जागृत नारी चेतना

सीमा सिंह

नारी परिवार की जीवनदायिनी संजीवनी है : नारी अथवा महिला या स्त्री मानव के मादा स्वरूप को कहते हैं, जो नर का स्त्रीलिंग है। नारी शब्द मुख्यतः वयस्क स्त्रियों के लिए इस्तेमाल किया जाता है। किन्तु कई संदर्भो में यह शब्द संपूर्ण स्त्री वर्ग को दर्शाने के लिए भी प्रयोग मे लाया जाता है, जैसे : नारी–अधिकार।

चेतना कुछ जीवधारियों में स्वयं के और अपने आसपास के वातावरण के तत्वों का बोध होने, उन्हें समझने तथा उनकी बातों का मूल्यांकन करने की शक्तिका नाम है। विज्ञान के अनुसार चेतना वह अनुभूति है जो मस्तिष्क में पहुँचने वाले अभिगामी आवेगों से उत्पन्न होती है। इन आवेगों का अर्थतुरंत अथवा बाद में लगाया जाता है। नारी चेतना की आज जरूरत क्यों महसूस की जा रही है। आज की नारी को जागरुक सशक्त एवं सचेत रहना चाहिये। इसका मतलब तो यह हुआ कि वर्षों से नारी पिछड़ी हुई एवं सजग नहीं थी और यदि ऐसा है तो उसकी चेतना की सीमा कहां तक होगी? नारी चेतना का मापदंड क्या होगा? क्या उसे मर्यादा लांघ कर स्वच्छंद पाश्चात्य शैली के अनुसार रहना चाहिये? क्या उसे उसके अधिकारों से अवगत कराने के मायने ही चेतना की परिभाषा है। ऐसा है तो अपने दायित्व तथा नारी सुलभ गुणों को त्याग कर सिर्फ अधिकारों तक ही सोच रखना चाहिये? ऐसे अनेक प्रश्न है जिसके बारे में सोचना चाहिये। और यदि' कल तक वे घर की दहलीज के भीतर थीं सहमी, सकुचाई, ठिठकी–ठिठकी, आज वे दहलीज के पार हैं अपनी जमीन तलाशती, कल तक उनके सपने आँखों की पलकों पर ही चिपके रहते थे, आज वे सपने साकार बन रहे हैं, धीरे–धीरे।'

आर्यों की सभ्यता और संस्कृति के प्रारम्भिक काल में महिलाओं की स्थिति बहुत सुदृढ़ थी। ऋग्वेद काल में स्त्रियां उस समय की सर्वोच्च शिक्षा अर्थात् बृह्मज्ञान प्राप्त कर सकतीं थीं। ऋग्वेद में सरस्वती को वाणी की देवी कहा गया है जो उस समय की नारी की शास्त्र एवं कला के क्षेत्र में निपुणता का परिचायक है। अर्द्धनारीश्वर की कल्पना स्त्री और पुरूष के समान अधिकारों तथा उनके संतुलित संबंधों का परिचायक है। वैदिक काल में परिवार के सभी कार्यों और भूमिकाओं में पत्नी को पतिके समान अधिकार प्राप्त थे। नारियां शिक्षा ग्रहण करने के अलावा पति के साथ यज्ञ का सम्पादन भी करतीं थीं। वेदों में अनेक स्थलों पर रोमाला, घोषाल, सूर्या, अपाला, विलोमी, सावित्री, यमी, श्रद्धा, कामायनी, विश्वम्भरा, देवयानी आदि विदुषियों के नाम प्राप्त होते हैं।

'यत्र पूज्यंते नारी तत्र रमन्ते देवताः' ऐसा कहा जाता है कि जहां नारी की पूजा होती है वहां देवताओं का वास होता है परन्तु नारी में भी पूज्यनीय योग्यता होती चाहिये। क्योंकि नारी का मूल रूप उसका चरित्र, उसके संस्कार, लज्जा, प्रेम, स्नेह, ममता, मातृत्व और समर्पण आदि गुणों के साथ ही उसकी चेतना को सराहा जायेगा। उसे अपने मौलिक अधिकार एवं कर्तव्यों के साथ–साथ आधुनिक, सभ्य, सबल होना चाहिए।

नारी शक्ति का यह समवेत स्वर, आज युग परिवर्तन के इन महान क्षणों में अपनी यथार्थता की गूँजी के साथ सर्वत्र प्रतिध्वनित हो रहा है। विश्व के हर कोने में ऐसी हवा चल पड़ी है महिलाओं के विकास के अनुरूप वातावरण बनता जा रहा है। नारी भी अपने घर की चहारदीवारी में सिमटे दोयम दर्जे से उबरकर अंतर्निहित क्षमता, सूझ–बूझ एवं साहस का परिचय देती हुई और दृढ़ एवं आत्मविश्वास पूर्ण कदमों के साथ आगे बढ़ रही है। पुरुष प्रधान समाज में वह अपने स्वतंत्र अस्तित्व का अहसास दिला रही है। शिक्षा और तकनीकी प्रचार प्रसार के फलस्वरूप अब भारतीय नारी की स्थिति में सुधार आया है तथा वह अब पुरुषों से कम नहीं हैं। कुछ महान भारतीय नारियों उदाहरण हैं :–

इन्दिरा गाँधी – भारत की पूर्व प्रधानमंत्री।

कल्पना चावला – अंतरिक्ष वैज्ञानिक और अंतरिक्ष में जाने वाली प्रथम भारतीय महिला।

प्रतिभा देवीसिंह पाटिल– प्रथम भारतीय महिला राष्ट्रपति।

सरोजिनी नायडू – भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पूर्व अध्यक्ष।

किरण बेदी – भारतीय पुलिस सेवा (इंडियन पुलिस सर्विस) में भर्ती होने वाली प्रथम महिला।

न्यायमूर्ति एम. फातिमा बीवी – भारत के उच्चतम न्यायालय की पहली महिला जज।

पुनीता अरोड़ा – भारतीय थलसेना में लेफ्टिनेंट जनरल के पद तक पहुँचने वाली प्रथम भारतीय महिला।

मीरा कुमार – भारतीय संसद के निचले सदन, लो सभा की पहली महिला अध्यक्ष।

एनी बेसेंट – भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पहली महिला अध्यक्ष।

परिवार सामाजिक संगठन की मौलिक इकाई है यह एक ऐसी इकाई हैं जहां व्यक्ति को बहुत अधिक संतोष नवजात शिशु पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यह व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं चरित्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं। भारतीय संस्कृति में हमेशा नारी को आदर्श एवं सम्मान की दृष्टि से देखा जा सकता हैं तथा उसे अर्धांगिंनी की संज्ञाएं भी दी गई हैं। नारी की अस्मिता को मां, बहन, बेटी, बीबी और रखैल की कोटियों से बाहर लाकर स्वतंत्र रूप में निर्मित करने में मदद मिलेगी नारी की व्यक्ति के रूप में अस्मिता को स्थापित करना उसकी संवेदनाओं, भावो एवं विचारों को अभिव्यक्ति देना स्त्री साहित्य का बुनियादी दायित्व हैं। नारी की अस्मिता, उसकी समस्याओं एवं उसकी अनुभूतियों की व्याख्या पुरुष संदर्भ में करने की मानसिकता से बचना चाहिए। नारी को नारी के सामाजिक संदर्भ में विश्लेषित करने का नजरिया विकसित करना होगा। स्त्री और पुरूष अपनी नई ऐतिहासिक भूमिकाओं कें साथ एक–दुसरे के सामने खड़े हैं। हमारी ग्रंथियां इसे जटिल अवश्य बना सकती हैं किन्तु हमारा विवेक और हमारी संवेदनशीलता एक स्वच्छ और पारदर्शी स्वरूप प्रदान कर सकते हैं।

अपने देश की पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी एक क्रॉंतिकारी कदम है। 73वें संविधान संशोधन बिल के परिणामस्वरूप अधिक–से–अधिक महिलाओं को लोकतंत्र के आधारभूत स्तर पर राजनैतिक प्रक्रिया में भाग लेने के अवसर मिल रहे हैं। पंचायती राज के तीनों स्तरों–गाँव, ब्लॉक एवं जिला स्तर पर महिलाओं के लिए एक तिहाई स्थान आरक्षित किए गए हैं। अपनी भूमिका सक्षमता से निभाते हुए उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि महिलाएं किसी तरह कम नहीं है। अनुभव से ज्ञात हो रहा है कि वे बहुत अच्छा काम कर रही हैं। कहीं–कहीं तो पथभ्रष्ट पुरुष को सीधे रास्ते पर लाकर सभ्य समाज की परिकल्पना साकार कर रही हैं।

पंचायती राज से मिले एक तिहाई आरक्षण का उत्तराखंड की पहाड़ी महिलाएं भी भरपूर उपयोग कर रही

हैं। इसके परिणामस्वरूप कई महिलाएं ग्राम प्रधान, ब्लॉक प्रमुख और जिला पंचायत की सदस्य चुनी गई हैं। इनमें से कई स्वतंत्र रूप से अपने प्रभाव का उपयोग कर रही हैं। विशेषकर चेतना आँदोलन से जुड़ी महिलाएं पंचायती संस्थाओं के ऊपर अपनी छाप छोड़ती जा रही हैं। ये सभी पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों की पहचान बनाने व उनकी सामाजिक सुरक्षा दृढ़करने में संघर्षरत हैं। भ्रष्टाचार एवं शराबखोरी के विरुद्ध ये मुहिम छेड़े हुए हैं।

पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत मिले अधिकारों एवं कर्तव्यों का सदुपयोग करते हुए बस्तर जिले की ग्राम पंचायत कल गाँव की महिलाओं ने अपने पिछड़े गाँव को एक आदर्श गाँव के रूप में बदलकर एक मिसाल कायम कर दी है। 800 महिलाओं से बने महिला मंडल ने जब रचनात्मक कार्यों को हाथ में लिया तो सर्वप्रथम शराब के विरुद्ध आँदोलन छेड़ा। गाँव में शराब में डूबे पुरुषों द्वारा लड़ाई–झगड़ा एवं नारी शोषण आम बात हो गई थी। घर–परिवार की आर्थिक स्थिति बिगड़ती जा रही थी। महिलाओं के शराब विरोधी आँदोलन से शराबियों की शामत आ गई। उन्हें दंड स्वरूप 157 रुपये जुर्माना देना पड़ा था। प्रति रविवार मद्यपान, निरक्षरता एवं अंध विश्वास के विरुद्ध अभियान रूप में रैली होती थी और दिनभर गलियों की सफाई। साथ ही 'स्कूल चलो' अभियान के अंतर्गत बच्चों को स्कूल भेजा जाने लगा।

हरियाणा के पंचायती राज में महिलाओं की भूमिका पर सेंटर फॉर डेवलपमेंट एंड एक्शन ने दो वर्ष के अंतराल में एक अध्ययन किया है। इनके अनुसार एक मौन क्रॉंति का शुभारंभ हो चुका है। अधिकाँश चुनी गई महिलाएं दो वर्ष पूर्व अनपढ़ थीं, लेकिन दो वर्ष में सरकारी कागज–पत्र व दस्तावेजों को पढ़ने में अक्षम व शिक्षित पति–पुत्रों पर निर्भरता के कटु अनुभवों ने उन्हें शिक्षित होने की प्रबल प्रेरणा दी है और ये महिलाएं अपनी पुत्रियों को शिक्षित करने के लिए दृढ़ संकल्पित हैं। आरंभ में उन्हें पंचायत तंत्र का कोई ज्ञान नहीं था। आज वे इसमें सक्रियता से भाग ले रही हैं व अपनी शक्तियों का प्रयोग कर रही हैं।

सिडनी में हुए एक अंतर्राष्ट्रीय सर्वेक्षण के अनुसार पुरुषों की तुलना में महिलाएं अच्छी 'बॉस' सिद्ध हो सकती हैं, क्योंकि वे अपने काम के प्रति अतिरिक्त प्रयास के लिए तैयार रहती है और उनका सहयोगी व्यवहार आधुनिक कार्यस्थली के लिए उपयुक्त रहता है। महिला प्रबंधक अपने कर्मचारियों को ऊंचे–से–ऊंचा लक्ष्य हासिल करने के लिए प्रेरित करती है और कर्मचारियों के अच्छे कार्योंके लिए उनको प्रतिफल भी प्रदान करती है। महिलाएं अपने स्टाफ को कार्यों के संबंध में नए विचार और तरीके अपनाने के लिए प्रेरित करती हैं। सर्वेक्षण में आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, अमेरिका और कनाडा के उत्पादन और सेवा संस्थानों के 1332 से अधिक कर्मचारियों के विचार लिए गए थे। इस सर्वेक्षण से यह भ्रम तो टूटा ही है कि नेतृत्व की भूमिका के लिए महिलाएं उपयुक्त नहीं होती, सर्वेक्षण में यह भी कहा गया है कि पुरुष नेतृत्व क्षमता विकसित करने के लिए महिलाओं से सीख ले सकते हैं।

इसी प्रकार इतिहास में प्राचीन और आधुनिक काल शक्ति आराधकों के उदाहरणों से भरा हुआ है जो हमें विश्वास दिलाता है कि राष्ट्र और धर्म को बचाते हुए परम पुरुषार्थ को प्राप्त करना है तो शक्ति की आराधना करनी ही होगी। हिंदी के कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के शक्ति की पूजा काव्य में इसका विशेष महत्व आधुनिक युग के विचारकों के लिए चिंतन का विषय है। शास्त्रों के अनुसार शिव और शक्ति सनातन हैं उनकी शक्ति भी सनातन है। जिनकी आराधना करने से व्यक्ति का सभी प्रकार का कल्याण तो होता ही है साथ ही राष्ट्र और धर्म को भी

उसका पुण्य फल प्राप्त होता है।

इसी प्रकार छत्रपति शिवाजी ने भगवती भ्रमरम्वा भवानी की आराधना से शक्ति अर्जित कर अत्याचारियों से लोहा लिया। महाराणा प्रताप द्वारा भगवती चामुंडा की विशेष आराधना का उल्लेख मिलता है। गुरुगोविंद सिंह की रचना चंडी दी वार एवं उनके द्वारा कहे गए शब्द कि– मैंने पूर्वजन्म में हेमकुंड में महाकाल और कालका की आराधना से धर्म रक्षा के लिए तेग और वेग में शक्ति भरी है। आज की नारी का सफर चुनौती भरा जरूर है, पर आज उसमें चुनौतियों से लड़ने का साहस आ गया है। अपने आत्मविश्वास के बल पर आज वह दुनिया में अपनी एक अलग पहचान बना रही है। आज की नारी आर्थिक व मानसिक रूप से आत्मनिर्भर है। परिवार व अपने कैरियर दोनों में तालमेल बैठाती नारी का कौशल वाकई काबिले तारीफ है। किसी को शिकायत का मौका नहीं देने वाली नारी आज अपनी काबिलीयत व साहस के बूते पर कामयाबी के मुकाम तक पहुँची है। चुनौतियों का हँसकर स्वागत करने वाली महिलाएँ आज हर क्षेत्र में अपना लोहा मनवा रही हैं। कल तक भावनात्मक रूप से कमजोर महिलाएँ आज आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन रही हैं तथा अपनी जिंदगी के महत्वपूर्ण फैसले स्वयं कर रही हैं।

नारी के लिए लैंगिक के साथ–साथ सामाजिक व आर्थिक स्तर पर भी असुरक्षा की भावना होती है। सामाजिक स्तर पर परित्यक्ता व विधवा जैसे शब्द उसके मार्ग का रोड़ा बनकर उसे आगे बढ़ने से रोकते हैं पर इतने पर भी वह अपनी प्रतिभा को प्रदर्शित करने का सही मौका तलाश ही लेती है और कामयाबी के नित नए कीर्तिमान रचती जाती है।

नारी के साथ असुरक्षा की भावना हर जगह होती है। महानगरों में आए दिन होती छेड़छाड़, बलात्कार व हिंसा संबंधी घटनाएँ नारी को भयाक्रांत करने व अपने कदम पीछे लेने को मजबूर करती हैं परंतु उनका मजबूत मनोबल उसे हारने से रोकता है और उसका यही मनोबल निरंतर आगे बढ़ने को प्रेरित करता है। अपनी क्षमताओं से महिलाओं ने आज पुरुषों को पीछे छोड़ते हुए परिवार व समाज में एक अलग पहचान बनाई है। आत्मनिर्भर बनकर आज महिलाएँ बाजार की हर चुनौतियों का सामना कर रही हैं।

इस तरह नारी चेतना अब जाग्रत हो उठी है। जागी ही नहीं, बल्कि उठकर आगे भी बढ़ चली है। उसके बढ़ते चरणों को अब कोई रोक नहीं सकता और शीघ्र ही वह अपने गौरवमयी पद पर प्रतिष्ठित होकर रहेगी। नारी की जाग्रत चेतना ही इक्कीसवीं सदी में सतयुगी संभावनाओं का आधार बनेगी।

सन्दर्भ :–

1. दैनिक जागरण।
2. अमर उजाला।
3. समाज में नारी चेतना।

seemasinghedu13@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 409-418

Cyber crimes against children through Social media : an Analysis.

Ms. Saba Nazneen, Research Scholar
Dr.Tai Chourasiya, Dean Faculty of Law
Mansarovar University Bilkisganj, M.P. Mansarovar University, Bilkisganj, M.P.

Abstract :- We are currently in the digital age, where technological progress has significantly influenced human existence in numerous ways. In India, the swift digitalization and widespread use of smartphones have broadened the digital landscape, thereby exposing marginalized children to the risks of cyber exploitation. Recently, there has been a troubling increase in cyber-crimes targeting vulnerable groups, particularly children. Since the onset of the pandemic, children have been spending more time online for educational purposes, gaming, entertainment, shopping, and other daily activities, which has made them susceptible to various forms of cyber-crimes, including cyberbullying, sexual abuse and exploitation, identity theft, and online grooming. In response to these challenges, India has enacted several legislative measures aimed at protecting children from cyber-crime. The Information Technology Act of 2000, the Protection of Children from Sexual Offences (POCSO) Act of 2012, and the Indian Penal Code of 1860 provide a legal framework to address cyber-attacks. This research aims to identify the key patterns of cyber-crimes against children and their recent trends, evaluate the existing legal mechanisms available to combat these issues, discuss effective strategies to mitigate risks in cyberspace, and ensure the rights of children in the digital environment.

Key Words: Digital Exploitation, Law Enforcement, Vulnerability, Digital Literacy, Child Protection, identity theft, Online Safety, Cyber Crime.

Introduction:

With advancement in computer and technology, internet and internet becoming an indispensable part of our daily life, an entirely new branch of crime has appeared in recent decades. It is a crime in which an internet enabled device is used to commit crime. In past few years, this branch known as cybercrime has evolved to an extent that it has become inevitable. The penetration of social media into our lives and especially that of children, through various digital devices like smartphones, laptops, computers, tabs etc, have led to the creation of a whole new virtual world for its user base. This virtual space thus created remains untapped most of the time and thus becomes a free space for the offenders.

While the general population is at risk, children are, however, one of most vulnerable groups affected by these emerging threats. As netizens, children and adolescents engage with technology at increasingly younger ages, often without completely understanding the extent of risk involved. Teenagers around the world are addicted to social media platforms like WhatsApp, Facebook, Instagram and Snapchat and this addiction leads to exposure to risky contents, changes in behavioural patterns, inferiority complex, cyber bullying, porn addiction, stress, anxiety, cyber grooming etc. These cyber-crimes leave a deep impact on child's physical, mental and emotional wellbeing.

The paper aims at unfolding the intricate relationship between the internet and children and assessing its psychological impact on them. It examines the pattern of trauma response and explores how different types of cybercrime have different impacts on mental health of children. The study further used various quantitative and qualitative data insights and seeks to inform policy-makers, educators, mental health professionals and parents about the urgent need protective measures. Further, we will also explore various coping strategies that can be employed to address these digital threats highlighting the need of early intervention strategies and comprehensive digital literacy programs to safeguard children's wellbeing in an increasingly digitised world.

The methodology is based on the doctrinal method. The research method includes both descriptive and analytical research methods. The research is intended to analyze cyber-crime against children and different laws in India concerning cybercrimes.

What is Cyber-Crime :

Sussman and Heuston was the first to propose the term "Cyber Crime" in the year 1995.Cybercrime has no single definition; it is considered as a collection of acts or conduct- these acts are based on the material offence object and modus operandi that affect computer data or systems[1]. By definition, Cybercrimes are "criminal acts implemented through use of a computer or other form of electronic communications" (Anderson & Gardener, 2015). In simple words, acts which are punishable by the Information Technology (IT) Act, 2000 are known as "Cyber Crimes". In India, the IT Act,2000 deals with the cybercrime problems. Certain amendments were made in this Act in 2008; thereby passing the Information Technology (IT) Act, 2008 covering a wide range of area such as online commercial transactions, digital signatures, e-commerce, etc. Therefore, "Cyber -Crime" can be defined as any malefactor or other offences where electronic communications or information systems, including any device or the Internet or both or more of them are involved[2].

The **oxford Dictionary defined** the term cyber-crime as "Criminal activities carried out by means of computers or the Internet."[3]

"Cyber-crime may be said to be those species, of which, genus is the conventional crime, and where either the computer is an object or subject of the conduct constituting crime"[4]

"Cyber-crime means any criminal or other offence that is facilitated by or involves the use of electronic communications or information systems, including any device or the Internet or any one or more of them."[5]

Cyber-crime And Children –

As digital technology has become increasingly integrated into children's daily lives, from education to entertainment, the risk associated with cyber-crime among children has grown significantly. The relationship between children and cyber-crime is shaped by their vulnerability, easy access to technology and lack of awareness of digital safety. Children are both the victims and in some cases perpetrators of cyber-crime.

[1] United Nations Office on Drugs and Crime – UNODC (2013).
[2] http://cybercrime.org.za/de$nition
[3] Oxford by Lexico, https://www.lexico.com/definition/cybercrime (last visited 12th July 2021)
[4] http://www.naavi.org/pati/pati_cybercrimes_dec03.htm (Accessed on 4th January, 2016)
[5] http://cybercrime.org.za/definition (Accessed on 4th January, 2016)

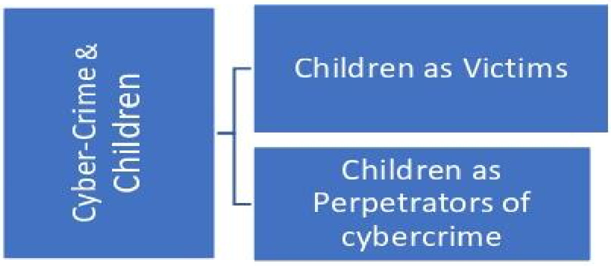

- **<u>Children as Victims</u>** :-
  Cyber-crime refers to any crime whose modus operandi is through digital devices like laptops, smartphones, tabs, computers etc. mainly operating on internet. Since most use of internet is through smartphones and given the fact that smartphones have easily become accessible to children, risk of these children being trapped in the vicious circle of cybercrime has become inevitable. Accessing smartphones have become so easy that even children of age 2 years or so have a strong presence on it.

Children as Victims of Cybercrime

In the digital age, children are growing up with unprecedented access to technology. Smartphones, tablets, and computers have become integral to education, entertainment, and social interaction. However, this connectivity also exposes young users to a dark and often invisible underworld—cybercrime. As more children engage with online platforms, their vulnerability to exploitation, abuse, and other forms of cybercrime increases. Understanding the nature, causes, impacts, and possible solutions to this phenomenon is vital to ensuring the safety and well-being of future generations.

Understanding Cybercrime and Children

Cybercrime refers to any criminal activity conducted through digital means, particularly the internet. While this includes a range of offenses like hacking, financial fraud, and identity theft, the types of cybercrime that affect children are particularly insidious. These can include cyberbullying, online grooming, child sexual exploitation and abuse (CSEA), exposure to harmful content, doxxing, sextortion, and even trafficking facilitated through online channels.

Children are especially susceptible because of their developmental stage. Their trust, curiosity, and emotional openness, while essential for learning and growth, make them easy targets for cybercriminals. Additionally, many children lack the digital literacy needed to distinguish between safe and dangerous online environments.

Cybercrimes Affecting Children:

Cyberbullying:

One of the most prevalent forms of cybercrime affecting children is cyberbullying. Unlike traditional bullying, cyberbullying can occur 24/7 and follows the victim everywhere, thanks to mobile devices. It involves harassment, threats, humiliation, or the spreading of false information via social media, messaging apps, or gaming platforms. Victims often suffer in silence, leading to anxiety, depression, and, in extreme cases, self-harm or suicide.

Online Grooming: Grooming involves an adult building an emotional connection with a child to exploit or abuse them sexually. This process often starts on social media or gaming platforms, where predators may impersonate other children or use flattery and gifts to gain trust. Eventually, the groomer manipulates the child into sharing explicit images, engaging in sexual conversation, or even arranging physical meetings.

Child Sexual Exploitation and Abuse (CSEA): This includes a range of crimes, such as the production, distribution, and consumption of child sexual abuse material (CSAM), live streaming of abuse, and coercion of children into performing sexual acts online. The rise of encrypted communication and dark web platforms has made it easier for such content to be shared anonymously, complicating detection and prosecution efforts.

Sextortion: This involves blackmailing a child by threatening to release their private or explicit images unless they provide more content or perform specific acts. Many children comply out of fear or shame, often without telling an adult.

Exposure to Harmful Content: Children may inadvertently access violent, hateful, or sexually explicit content online. Algorithms on platforms like YouTube or TikTok may even guide users toward radical or disturbing content based on their interactions.

Identity Theft and Data Exploitation: Children's personal data is increasingly being harvested through apps, games, and websites. In some cases, this data is sold to third parties or used in identity theft. Children's social security numbers and other identifiers are particularly attractive because they can go unnoticed for years.

Trafficking and Recruitment: Traffickers and extremist groups are known to use online platforms to recruit or manipulate children. They may offer false promises of friendship, fame, or financial gain to lure children into dangerous situations.

Factors Contributing to Vulnerability: Several factors heighten children's vulnerability to cybercrime. These include:

Lack of Supervision: Many parents are unaware of their children's online activities. With digital devices often used privately and autonomously, children may encounter risks without adult intervention.

Inadequate Legislation and Enforcement: In many countries, laws have not kept pace with the rapid evolution of digital technology. Even where laws exist, enforcement can be inconsistent due to jurisdictional issues or lack of training among law enforcement.

Technological Anonymity: The anonymity provided by the internet emboldens perpetrators. They can hide their identity, location, and actions more easily than in the physical world.

Peer Pressure and Social Media Culture: Children and adolescents often seek validation through likes, followers, and online interactions. This social media culture can push them to overshare, engage with strangers, or take risks to gain approval.

Low Digital Literacy: Without proper education, children may not understand privacy settings, the permanence of digital footprints, or the signs of online manipulation.

Cases Involving Children in Cybercrime

❖ Schoolchildren Drawn into Phishing Schemes in Jamtara, Jharkhand[6]

In Jamtara, a region notorious for phishing scams, school students were found to be engaging in cybercrimes. At a government school in Karamatand Block, investigations revealed that roughly one-fifth of the students were leaving school premises after marking attendance to participate in online fraud. To address the issue, the administration introduced attendance checks at multiple points during the school day, which significantly curbed this behavior.

❖ Tech Graduate Scams Families with Missing Children in Delhi[7]

A 28-year-old man from Uttar Pradesh used stolen access to police databases to deceive families who had reported their children missing. Posing as a police officer, he contacted around 950 such families, claiming their child had been found and demanding payments ranging from ₹2,000 to ₹40,000 for "recovery." The fraud was exposed after one of the targeted families filed a police complaint.

[6] https://www.indiatoday.in/india/story/cyber-fraud-new-jamtara-from-financial-frauds-to-phishing-attacks-and-social-media-scams-1767548-2021-02-09

[7] https://timesofindia.indiatimes.com/city/delhi/how-these-cyber-cons-exploited-parents-fears/articleshow/109258473.cms

Case of Children as Cybercrime Victims:

1. **Interpol's Operation Blackwrist: Major Child Abuse Network Uncovered**[8]

In a coordinated global sting named Operation Blackwrist, Interpol dismantled a dark web network involved in the distribution of child sexual abuse material. The investigation led to arrests in multiple countries, including Thailand, Australia, and the U.S., and successfully rescued 50 child victims. The case revealed how these crimes transcend national borders and thrive in the anonymity of the dark web.

2. **The '764' Network and Global Youth Exploitation**[9]

The '764' group, a notorious international online network, has been linked to multiple cybercrimes, including child abuse and violence. In Sweden, a 14-year-old affiliated with a subgroup known as "No Lives Matter" livestreamed violent attacks. Around the same time, a teen in Canada—also tied to the group—was arrested on charges related to child pornography and possession of explosives. The group's activities have sparked international investigations and arrests, shedding light on how digital platforms are being misused for dangerous purposes.

Children as victims of cybercrime represent one of the most pressing challenges in the digital era. As the online world continues to evolve, so do the threats that lurk within it. The responsibility to protect children does not lie with a single entity but requires collaboration between families, educators, governments, international organizations, and technology companies.

Children as Perpetrators of Cyber-crime

In the modern digital age, where technology is deeply interwoven into the daily lives of young people, the internet serves both as a space for learning and socialization—and increasingly, as a platform for misconduct. One concerning trend is the growing involvement of children in cybercrime, not merely as victims, but as perpetrators. The increasing accessibility of smartphones, laptops, and high-speed internet, combined with limited awareness and weak digital ethics, has paved the way for a disturbing new reality: minors engaging in unlawful activities online.

---

[8] https://www.interpol.int/en/News-and-Events/News/2024/20-rescued-144-arrested-in-major-child-abuse-operation-across-South-America

[9] https://www.justice.gov/usao-dc/pr/leaders-764-arrested-and-charged-operating-global-child-exploitation-enterprise

Understanding Juvenile Cybercrime

Juvenile cyber-crime refers to any unlawful digital activity committed by individuals below the age of 18. These activities vary in scope and severity, from hacking into school systems to change grades or cyberbullying peers, to more sophisticated crimes like financial fraud, identity theft, and ransomware deployment. While some of these acts are carried out for fun, mischief, or peer approval, others stem from a desire to make quick money or out of coercion by organized criminal networks.

Psychological Impact of Cybercrime on Children through Social media:

Emotional Distress and Anxiety: Children who experience cybercrime, such as cyberbullying, harassment, or exploitation, often suffer from heightened anxiety, fear, and depression. The anonymity and pervasive nature of social media can amplify these feelings, making children feel helpless or unsafe[10].

Loss of Self-Esteem: Victims of cyberbullying or online harassment may experience a decline in self-esteem and self-worth. Negative comments, rumors, or public shaming can have long-lasting effects on a child's self-perception.

Trauma and Post-Traumatic Stress: Severe cybercrimes, such as online grooming or sextortion, can lead to trauma. Children may develop symptoms similar to post-traumatic stress disorder (PTSD), including nightmares, withdrawal, and difficulty trusting others.

Academic and Social Impact: The psychological toll from cybercrime can impair concentration, motivation, and social interactions, leading to academic decline and social withdrawal.

Fear and Paranoia: Children may develop a generalized fear of social media or the internet, avoiding online platforms altogether, which can hinder their social development and access to educational resources.

Impact on Mental Health in India: In India, where awareness about cyber safety is still evolving, children are particularly vulnerable due to limited digital literacy among parents and

---

10 https://www.researchgate.net/publication/380402545_Psychological_Influences_of_Cyber_Crimes_on_Human_Mind_and_Behaviour

educators, as well as cultural stigmas surrounding mental health, which can delay seeking help[11].

Key statistics from NCRB 2022:

The NCRB annually publishes the Crime in India report, which includes data on cyber crimes. The 2022 NCRB report indicates an increase in cyber crimes against children, with specific focus on offenses related to child pornography and grooming[12].

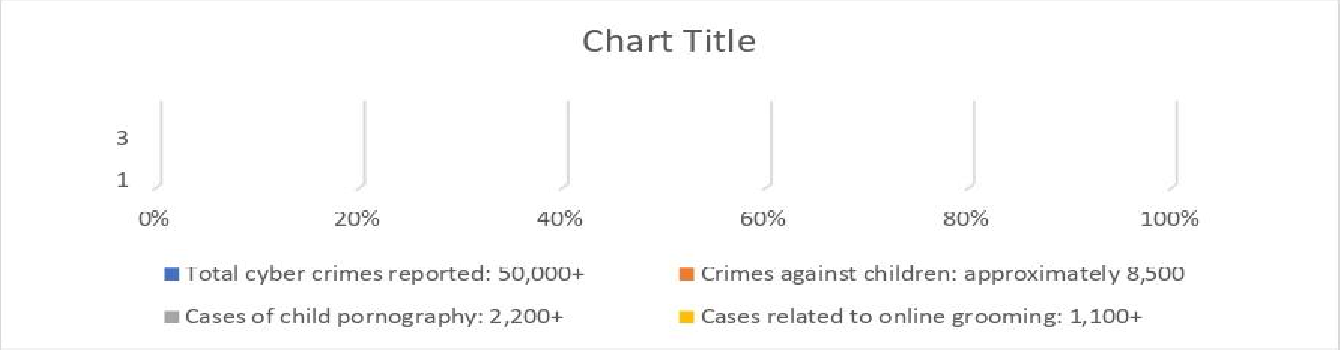

Recommendations and Preventive Strategies: -

- Investigate the effectiveness of AI-based tools in detecting and preventing cybercrimes against children in India.
- Analyze the socio-cultural barriers to reporting cybercrimes and their impact on victim rehabilitation.
- Conduct comparative studies with countries like the U.S. and U.K. to identify best practices in combating online child exploitation.

[11] Nixon CL. Current perspectives: the impact of cyberbullying on adolescent health. Adolesc Health Med Ther. 2014 Aug 1;5:143-58. doi: 10.2147/AHMT.S36456. PMID: 25177157; PMCID: PMC4126576.
[12] https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=2003505

Conclusion :

In light of these findings, Cyber-crimes against children in India pose a significant threat to their safety, mental health, and development. The legal framework, comprising the IT Act, POCSO Act, and BNS, provides a foundation for addressing these crimes, but gaps in legislation, enforcement, and awareness undermine its effectiveness. The rising trend of cybercrimes, as evidenced by NCRB data and Interpol reports, underscores the urgency of adopting a synergetic approach that combines robust laws, technological innovation, education, and international cooperation.

To protect children in the digital age, India must prioritize proactive measures, such as amending laws to cover emerging crimes, enhancing law enforcement capabilities, and fostering a culture of digital literacy. By addressing these challenges, India can ensure a safer online environment for its children, who are the nation's future.

Adress: H.No.56 Shahpura Bhopal Pincode:- 462016
Contact No. 8871732946

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 419-421

डिजिटल शिक्षा और क्षेत्रीय भाषाओं का भविष्य

नेहा राठौर
सहायक प्राध्यापक गणित, शशिधर पंडा शासकीय महाविद्यालय, सरिया, जिला सारंगढ़– बिलाईगढ़ (छ.ग.)

प्रस्तावना :–

संयुक्त राष्ट्र के सतत् विकास २०३० एजेंडे के मूलभूत घटकों में से एक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा है। इसका उद्देश्य सभी को समावेशी और समान गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए डिजिटल शिक्षा अत्यंत महत्वपूर्ण तकनीक के रूप में उभरी है। देश व समाज का विकास डिजिटल शिक्षा के माध्यम से ही संभव है। डिजिटल शिक्षा की अवधारणा नयी नहीं है बल्कि यह अनेक वर्षों से विभिन्न रूपों में मौजूद है लेकिन जब कोविड–१६ महामारी ने चाक व डस्टर द्वारा होने वाली पारंपरिक शिक्षा की पढ़ाई को स्थगित कर दिया तो इसका महत्व कहीं गुना बढ़ गया। अधिकांश शिक्षण संस्थानों ने डिजिटल शिक्षा को एक समाधान के रूप में अपनाया। शिक्षा में डिजिटल तकनीको के अनुप्रयोगों ने शिक्षा को अधिक मनोरंजकदायक बना दिया है। इन डिजिटल तकनीको ने पूरी शिक्षा प्रणाली में एक आदर्श बदलाव किया। शिक्षा में तकनीकी सुधारो ने छात्रों के लिए जीवन को आसान बना दिया है। कलम और कागज का उपयोग करने के बजाय आजकल छात्र अपना प्रोजेक्ट बनाने के लिए विभिन्न साफ्टवेयर व टूल्स का उपयोग करते है। नोटबुक के ढेर को एक लैपटॉप या मोबाइल ने अपेक्षाकृत अधिक हल्का कर दिया है। विद्यार्थियों के जीवन में अहम बदलाव लाने में डिजिटल शिक्षा के कहीं फायदे होते है जैसे – निर्णय क्षमता, विजुअल लर्निंग, सांस्कृतिक जागरूकता, बेहतर शैक्षिक गुणवत्ता और नयी चीजों की खोज। ये सब शिक्षा को अधिक इंटरेक्टिव बनाते है।

डिजिटल शिक्षा :–

डिजिटल शिक्षा का अर्थ एक ऐसी शिक्षा प्रणाली से है जो किसी तकनीकी संसाधन जैसे कि कम्प्यूटर, मोबाइल, इंटरनेट, प्रोजेक्टर या किसी भी प्रकार के ऑनलाइन प्लेटफार्म के माध्यम से प्रदान की जाती है। यह शिक्षा प्रणाली विद्यार्थियों को चाक तथा डस्टर युक्त शिक्षा प्रणाली जो किसी एक कक्षा तक ही सीमित रहती है, इससे बाहर निकालकर छात्रो को कभी भी, कहीं से भी तथा दुनिया में मौजूद अच्छे से अच्छे शिक्षको से पढ़ने की सुविधा प्रदान करती है।

नयी शिक्षा प्रणाली–२०२० में भी डिजिटल शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसके अंतर्गत विद्यार्थियों को डिजिटल तकनीको तथा नवाचार में कुशल बनाने पर जोर दिया गया है।

क्षेत्रीय भाषा :–

भारत एक ऐसा देश है जहां अनेक अलग अलग भाषाएं तथा बोलियां बोली जाती है। हर भारतीय भाषा

का अपना एक अलग इतिहास, संस्कृति तथा साहित्य है जो देश की संस्कृति को और अधिक समृद्ध तथा मजबूत बनाती है। क्षेत्रीय भाषाओं के प्रयोग से देश की सांस्कृतिक इतिहास को सुरक्षित तथा संरक्षित रखने में सहायता प्राप्त होती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० भी भारतीय भाषाओं के लिए स्वीकार करती है कि "भारतीय भाषाएं दुनिया में सबसे समृद्ध, सबसे सुंदर, सबसे वैज्ञानिक तथा सबसे अधिक अभिव्यंजक भाषाएं हैं जिनमें प्राचीन और आधुनिक साहित्य (गद्य और कविता दोनों) के विशाल भंडार है।" राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० में भारतीय भाषाओं के महत्व को स्वीकार करने, बहुभाषिकता को बढ़ावा देने, साथ ही साथ अध्ययन अध्यापन हेतु भाषा संबंधी बाधाओं को दूर करने पर जोर दिया गया है साथ ही प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा मे देने की सिफारिश की गई है।

"भाषा एक सेतु है, जो हमारी परंपरा, संस्कृति और पहचान को जोड़ता है।" **श्री हरिवंश राय बच्चन**

डिजिटल शिक्षा में क्षेत्रीय भाषाओं का महत्व :-

डिजिटल शिक्षा, शिक्षा को अधिक लचीला तथा समावेशी बनाती है जबकि क्षेत्रीय भाषाएं छात्रो को उनकी सांस्कृतिक विरासत से जुड़े रहने में मद्द करती है तथा उनकी शिक्षा को प्रासंगिक बनाने में सहायता करती है। क्षेत्रीय भाषाएं सांस्कृतिक इतिहास को बनाये रखने, भाषाई विविधता को प्रोत्साहित करने, विकास को मजबूत करने, तथा कैरियर की संभावनाओ को बढ़ाने में अहम भूमिका निभाती है। इन दोनों के समन्वय से हम छात्रो के लिए एक अधिक प्रभावी और समावेशी शैक्षिक अनुभव बना सकते है साथ ही इसके जरिए सभी छात्रों के लिए सफलता के समान अवसर वाले समावेशी समाज तैयार किया जा सकता है।

"यदि कोई बच्चा अपनी मातृभाषा में सिखता है तो वह केवल विषय ही नहीं जीवन भी बेहतर समझता है।" **-नेल्सन मंडेला**

हालांकि डिजिटल शिक्षा में क्षेत्रीय भाषाओं के प्रयोग करने के लिए अनेक तकनीकी, शैक्षणिक, सामाजिक तथा प्रशासनिक चुनौतियां सामने आती है जैसे कि :-

- शैक्षणिक ऐप्स एवं साफ्टवेयर का केवल अंग्रेजी तथा हिन्दी भाषा में ही उपलब्ध होना।
- शिक्षको का क्षेत्रीय भाषा मे डिजिटल माध्यम से पढ़ाने हेतु प्रशिक्षित ना होना।
- ई-बुक्स, अभ्यास सामग्री तथा वीडियो लेक्चर जैसे अनेक शैक्षणिक सामग्रियों का क्षेत्रीय भाषा में उपलब्ध ना होना।
- ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट समस्या, स्मार्टफोन की कमी होना।
- भारत की भाषाई विविधता जहां एक ही राज्य में अनेक बोलियां बोली जाती है जैसे छत्तीसगढ़ में छत्तीसगढ़ी, हल्बी, लरिया इत्यादि। ऐसे में सभी बोलियों के लिए फान्टस व स्क्रिप्ट बनाना अत्यंत कठिन काम हो सकता है।
- गणितीय, तकनीकी जैसे विषयों का क्षेत्रीय भाषा मे सरल तथा सटीक अनुवाद करना कठिन हो सकता है।

समाधान/सुझाव :-

- शिक्षण सामग्रियों का क्षेत्रीय भाषा में अनुवाद को प्राथमिकता दिया जाना चाहिए।
- सभी शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

- ग्रामीण क्षेत्रों तक डिजिटल शिक्षा की पहुंच को आसान बनाना चाहिए।
- क्षेत्रीय भाषाओं हेतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० में जो भी प्रावधान किए गए है उनका जमीनी स्तर पर सही से कार्यान्वयन किया जाना चाहिए।
- ग्रामीणो क्षेत्र के लोगों में डिजिटल शिक्षा हेतु जागरूकता लानी चाहिए।
- भाषाओं के व्याकरण, उच्चारण तथा भाव को पहचानने वाले टूल्स का निर्माण करना चाहिए ताकि क्षेत्रीय भाषा में अनुवाद सही से किया जा सके।

निष्कर्ष :-

डिजिटल शिक्षा में क्षेत्रीय भाषाओं को शामिल करना युवाओं के विकास तथा देश की प्रगति के लिए अत्यंत सराहनीय कदम है। इससे शिक्षा प्राप्त करना अधिक सरल तथा मनोरंजक होता है जिससे विद्यार्थियों की रूचि उस विषय में बनी रहती है।

हालांकि डिजिटल शिक्षा के सकारात्मक व नकारात्मक प्रभाव दोनों है किंतु अगर सही तरीके से इसका प्रयोग किया जाए तो यह अत्यंत लाभदायक सिद्ध होगा जैसे कि कोविड–१६ के दौरान हुआ था। इस शिक्षा पद्धति की वजह से कोविड–१६ जैसे कठिन समय मे भी शिक्षा बाधित नहीं हो पायी।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. डॉ. नितिन बाजपेयी और लक्ष्मी मिश्रा, डिजिटल शिक्षा : आवश्यकता, संभावनाएं एवं चुनौतियां, INJRD
2. डॉ. जितेन्द्र कुमार, 2024, उच्च शिक्षा में नयी शिक्षा नीति व शिक्षक की बदलती भूमिका, शोध सागर (341–348)
3. डॉ. महेंद्र सिंह मीणा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और भारतीय भाषायें।
4. डॉ. एम.एल.गुप्ता 'आदित्य', भाषा प्रौद्योगिकी : सत्तर साल का सफरनामा।
5. डॉ. संदीप कुमार श्रीवास एवं डॉ. मोनिका गुप्ता, नयी शिक्षा नीति 2020 में शिक्षा आनलाइन और डिजिटल शिक्षा।
6. Charanjiv singh saroa and kawaljeet Singh, 2020, problem and challenges in the digitization of Regional languages.

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 422-424

प्रवासी साहित्य में नॉस्टेल्जिया की समस्या

डॉ. काकानि श्रीकृष्ण
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, आचार्य नागार्जुन विश्वविद्यालय, नागार्जुन नगर–522510.

उषा प्रियंवदा जी ने अपने उपन्यासों में नॉस्टेल्जिया से द्वन्द्वग्रस्त जीवन की छवि को वर्णन किया है। ''रूकोगी नहीं राधिक'' उषा जी का दूसरा उपन्यास है। उपन्यास की मुख्य पात्र राधिका अपने पिता के दूसरी शादी के कारण कुद्ध होकर अपने से 20 वर्ष बड़े पुरूष डैन के साथ अमेरिका चली जाती है। विदेश में रहकर राधिका पर पश्चिमी परिवेश का प्रभाव पड़ना शुरू हो जाता है। राधिका और डैन का संबंध कुछ ही समय में विच्छेद हो जाता है। कई परेशानियों के बावजूद वह अपने आपको स्थिर रखने की चेष्टा करती है। विदेश में डैन से संबंधि विच्छेद होने पर राधिका की स्वच्छन्दतावादी भावना को गहरा आघात लगता है। राधिका अपने आपको पश्चिम की चकाचौंध के प्रभाव से मुक्ति नहीं कर पाती है और न ही भारतीय सभ्यता और संस्कृति को छोड़ पाती है। उसे सदा भारत की याद आती रहती है। भारत वापस जाने की इच्छा किन्तु पिता से बदला लेने की चाह उसे भारत लौटने नहीं देती है। अन्त में वह भारत लौटती है और वहाँ की चीजों को देखकर प्रसन्न होती है – ''राधिका बड़ी निर्मम बना यह सब छोड़कर चली गयी थी, और विदेश में यदि याद आते थे तो प्रियजन, विशेष त्योहार या बदलते मौसम व फूल पर इन छोटी–छोटी चीजों की स्मृति भी अवचेतन में दबी ही रही होगी, नही ंतो उन्हें पुनः देख मन में ऐसा पीड़ा–भरा सुख क्यों होता।''[1]

उषा प्रियंवदा जी की 'शेषयात्रा' उपन्यास में भी नॉस्टेल्जिया के प्रभाव को दर्शाया गया है। 'अनु' उपन्यास की नायिका जो पति प्रणव के द्वारा छोड़ देने पर पंख कटे पक्षी की तरह निस्हाय हो जाती है। वह अकेलेपन के दारूण त्रासद से क्षत–विक्षत हो उठती है। उसे अपने बचपन के दिनों की याद आने लगती है। ''अनु के मन में आता है कि अगर वह दर्पण न होकर एक रहस्यमय दरवाजा होता इसमें बैठकर वह एकदम दुनिया से ओझल हो जाती तो कैसा अच्छा होता। यह सब जो घट रहा है, जो बीत रहा है, उसको भूल जाती, किसी तरह उन लकीरों को मिटाकर किसी अद्भुत समय विमान पर चढ़कर वह छः साल पीछे लौटे जाती और पाती कि वह दो लंबी–लंबी चोटिया झुलाती, घर की धुली सलवार कमीज पहने खाट पर बैठी है–एक हाथ में सिनेमा की एक पत्रिका है और दूरा हाथ अपने आप पुराठे का कौर तोड़कर आचार से छुआता है और मुँह में पहुँच जाता है।''[2]

उषा प्रियंवदा जी के उपन्यास 'अन्तर्वंशी' में भी नॉस्टेल्जिया की भावना को दिखाया गया है। विदेशों में कड़ाके के ठंड पड़ती हैं। प्रवासी भारतीय ऐसे मौसय में भारत की गुनगुनी धूप को याद करते हैं। वाना भी अमेरिका में पड़ती कड़ाके की ठंड में भारत को याद करती है। ''बाप रे! ऐसी ठंड और बर्फ में कौन हॅस–बोल

सकता हैं चार महीने ऐसे ही बीतेंगे। न कहीं आ सको, न जा सके। आसमान? ऐसा ही मन हस जब देखो तब बरफ सूरज का नाम ही नहीं। वहा सब जगह धूप होगी गरम, गुनगुनी, धीरे–धीरे शरीर और चेहरे को थपथपाती हुई, वहाँ बनारस में जहाँ चुन्नी, मुन्नी, बुआ अपनी दिन चर्या कामकाज में व्यस्त होगी। बड़िया, मंग्रेडिया तोड़ने में, आलू और साबूदाने के पांपड़ बनाने में गंगा स्नान और पूजा आरती में।''[3] भारतीयों को अपने देश में बिताये दिन याद आते रहते हैं। नॉस्टेल्जिया के प्रभाव को एक अन्य सदर्भ में उषा प्रियंवदा जी ने इस प्रकार वर्णन किया। एक तमिल दंपति का उल्लेख है– ''अभी–अभी भारत से आयी है घर को बहुत याद करती है, अकेले सड़कों पर भटकती है .... वाना उस युवती के बारे में सोच रही है। हम सभी एक ही दुःख के मारे हुए है। अपनों को छोड़कर इस ठंडी, उजाड़ जिन्दगी को भुगतते हुए।''[4] प्रवासी अपने महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए विदेश आते हैं किन्तु उनका दिल अपने देश और बन्धुओं केलिए तड़पता रहता है।

'भया कबीर उदास' नामक उपन्यास में लिली पात्र के माध्यम से एक कैंसर पीडित नारी की विषाद गाथा का परिचय मिलता है। बरसों से अमेरिका में बसी उषा प्रियंवदा जी के इस उपन्यास की कथा भूमि अमेरिक से भारत की यात्रा है। लिली स्वतंत्र व्यक्तित्व तथा आधुनिक विचारों वाली पैतीस वर्षिय अविवाहिता युवती है जो वक्ष कैंसर से पीडित हैं। वह अपने आप को पूरी तरह अमेरिकी सभ्यता और संस्कषति में ढ़ाल चुकी है किन्तु उसका रोग उसे अपने अतीत से जोड़ता जाता है। वह अपने भारत के बारे में सोचने लगती है। आत्मीयता की तलाश में वापस भारत आ जाती है।

''वह याद करती है, घर के पास में ही नया मंदिर बना था, वहाँ जब लाउडस्पीकर बजता था तो वह पूरे घर में गूजता था रोजाना सुनते–सुनते उसे कुछ पंक्तियाँ याद हो गयी थी, ''को नहिं जानत है जग में, कपि संकट मोचन नाम तुम्हारो।''[5] लिली कैंसर की पीड़ा को अकेली झेलती है। ऑपरेशन के बाद भारत लौट जाना चाहती है। कैंसर के ऑपरेशन के बाद नर्स उससे आगे के बारे में पूछती है तो लिली कहती है–''मालूम नहीं, सब कुछ छोड–छाड़कर वापस घर जाने की सोच रही हूँ।''[6] इससे पता चलता है कि कितने भी वर्ष विदेशों में रहे प्रवासी भारतीय अपने देश वापस आने पर ही संतुष्टि को प्राप्त करते हैं। उनका अपना घर भारत ही है।

आकाश गंगा के माध्यम से 'नदी' उपन्यास में भी नॉस्टल्जिलया के प्रभाव को दर्शाया गया है। आकाश गंगा विदेश में बस जाती है किन्तु भारत को भूल नहीं पाती है। भारत में बिताये अपने बचपन को याद करती है और ह्रदय में सुकून का अनुभव करती है। ''हम लोग सिविल लाइन्स में रहते थे, पास में ही पुलिस लाइन्स थी, हाइकोर्ट और आगे चलकर प्रसिद्ध यूनिवर्सिटी। हर रविवार, को सुबह साइकिल पर घर का नौकर महादेव कटेरे जाता था, वहाँ एक हलवाई की दुकान थी, शुद्ध घी की जिलेबिया और पिट्ठी भरी कचौडियॉ बनती थी। महादेव लेकर आता और फिर हम सब वही नाश्वा करते। हर पर्व त्योहार और गंगा नहाने को हम सब ताऊजी की नीली मोटर में थुसकर संगम जाते थे। नौकर एक साफ–सुथरी जगह देखकर दरी बिछा देते थे। खाने–पीने के सामान रख देते थे। हम सब नाव लेकर संगम जाते और खचाखच भीड़ के बीच नाहते।'' आकाश गंगा विदेश में बैठी अपने अतीत के दिनों के सुनहरे पलों के बारे में अपने विदेशी पुत्र को बताती है। विदेश में बस जाने पर भी आकाश गंगा भारत की यादों को दिल से नहीं निकाल पाती है। इस प्रकार उषा पियंवदा जी ने अपने उपन्यासों में प्रवासी साहित्य में नॉस्टेल्जिया की समस्या को सफलता पूर्वक सुन्दर ढंग से वर्णन किया है।

सहायक ग्रंथ सूची :-

1. उषा प्रियंवदा, रूकोगी नहीं राधिक, पृ. 136
2. उषा प्रियंवदा, शेषयात्रा, पृ. 08
3. उषा प्रियंवदा, अन्तर्वंशी, पृ. 65
4. उषा प्रियंवदा, अन्तर्वंशी, पृ. 112
5. उषा प्रियंवदा, भया कबीर उदास, पृ. 68
6. उषा प्रियंवदा, भया कबीर उदास, पृ. 95
7. उषा प्रियंवदा, नदी, पृ. 148

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5
पृष्ठ : 425–428

दलित विमर्श

सुभाष चंद्र वर्मा
सहायक आचार्य (हिंदी), राजकीय महाविद्यालय राजगढ़, चूरू (राज.)

प्रस्तावना :–

दलित का शाब्दिक अर्थ है –जिसका दमन दलन किया गया हो। दलित साहित्यकार श्यौराज सिंह बेचौन के अनुसार स्वामी अछूतानंद हरिहर ने सन 1910 में सर्वप्रथम दलित शब्द का प्रयोग किया था। दलित चिंतक कंवल भारती ने लिखा है कि "दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य है, जिसमें दलितों ने स्वयं अपने पीड़ा को रूपायित किया है, अपने जीवन संघर्ष में जिस यथार्थ को भोग है, दलित साहित्य उनका उसी की अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला का नहीं, बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है।"[1] गांधी जी ने दलित शब्द का प्रथम प्रयोक्ता विवेकानंद को माना। अंबेडकर ने लोक शिक्षा प्रसारक मंडल के दलित साहित्य सेवक संघ व 1970 के दलित पैंथर्स नामक दलितों के राजनीतिक दल ने दलित शब्द का सर्वाधिक प्रचार प्रसार किया। यह एक भारतीय विमर्श है क्योंकि जाति भारतीय समाज की बुनियादी संरचना में से एक है। किस विमर्श ने भारत की अधिकांश भाषा में दलित विमर्श को जन्म दिया। दलित विद्वानों ने नवजागरण का आरंभ बंगाल नहीं, महाराष्ट्र से मना है जहां से दलित मुक्ति की लहर चली। दलित विमर्श का वैचारिक आधार डॉक्टर अंबेडकर का जीवन व रचना कर्म है। ज्योतिबा फूले व महात्मा बुद्ध का दर्शन दार्शनिक पृष्ठभूमि में है। दलित साहित्यकार प्रेमचंद को दलित साहित्य के दायरे में लाना पसंद नहीं करते क्योंकि उनका मानना है कि प्रेमचंद ने कभी भी दलित पीड़ा को नहीं झेला।

"दलित साहित्य में प्रेमचंद की परंपरा नहीं चलने वाली है। दलितों के बारे में प्रेमचंद का सत्य चिड़िया की आंख से देखा हुआ सत्य था।..... डॉ अंबेडकर ने दलितों के लिए मंदिर के दरवाजे खोलने की लड़ाई लड़ी तब भी प्रेमचंद अंबेडकर के साथ नहीं गांधी के साथ खड़े थे। बाद में डॉक्टर अंबेडकर ने कहा कि उनकी लड़ाई सिर्फ इतनी थी कि दलित भी भारतीय हिंदू समाज का हिस्सा है, इसलिए उन्हें भी मंदिर जाने का हक होना चाहिए"[2]। दलित विमर्श पूंजीवाद में ब्राह्मणवाद दोनों को खतरनाक मानता है। संपूर्ण रूप से देखे तो यह जाति से मुक्ति का साहित्य है।" जाति एक ऐसा राक्षस है जो अपना रास्ता काटेगा। जब तक आप इस राक्षस को नहीं मारोगे तब तक आप न तो कोई राजनीतिक सुधार कर सकते और न हीं आर्थिक सुधार कर सकते।"[3] दलित चिंतक मार्क्सवादी विचारधारा से भी सहमत नहीं है। मार्क्स दलित समस्या को मूलतः आर्थिक समस्या मानते हैं व इसे श्रम विभाजन की दृष्टि से देखते हैं। लेकिन दलित जीवन की समस्या केवल श्रम नहीं श्रमिक विभाजन से भी जुड़ी है। दलित साहित्य वर्तमान का ऐसा विमर्श बन चुका है जिसका अध्ययन किए बिना संपूर्ण हिंदी

साहित्य को समझाना गलत होगा। भारी संख्या में इस दिशा में लेखन की ओर प्रेरित होना इस बात का संकेत है कि आज दलित विमर्श हिंदी का ही नहीं बल्कि हिंदी प्रदेश से बाहर निकाल कर बड़ा स्वरूप ले चुका है। साहित्य में सर्वप्रथम 1914 में हीरादोडोम की कविता 'अछूत की शिकायत' सरस्वती पत्रिका में छपी थी। स्वामी अछूतानंद जो हरिहर उपनाम से कविता लिखते थे, उसे समय के प्रमुख दलित लेखक थे।

हिंदी साहित्य में दलित विमर्श :-

1970 की दलित कविता का केंद्रीय स्वर अंबेडकर की स्तुति है लेकिन आठवीं दशक में दलित कविता का स्वर बदलने लगता है और उसमें दलित वर्ग की पीड़ा एवं विद्रोह भावना के व्यक्ति होने लगती है। दलित कवि कमल भारती अतार्किक परंपराओं को चुनौती देते हुए एवं दलित वर्ग की मुक्ति के स्वप्न को शब्द देते हुए लिखते हैं –

"मेरे परदादा मर गए झूठन खाते
उतरे चिथरे पहने खेत
खेत बोते जोतते
....पर अब मैं पूर्व जन्म नहीं वर्तमान देखता हूं।"

दलित कविता दलित की स्थिति के लिए सीधे रूप से स्वर्ण समाज विशेष कर ब्राह्मण जाति को जिम्मेदार ठहरती है। "दलित समाज को अपनी मुक्ति के लिए सवर्णो से नहीं बल्कि स्वयं से भी संघर्ष करना पड़ेगा। यह बहुत ही पीड़ा दायक और मुक्ति की राह में बड़ी रुकावट है।"[4] आज की दलित कविता शोषण की बहुविध रूपों की पहचान कर रही है। भूमंडलीकरण, विचारधाराओं के छद्म, जाति व्यवस्था की जकड़न, पूंजीवाद आदि के शोषणकारी स्वरूप की पहचान दलित कविता करती है। दलित साहित्य में आत्मकथाओं का बड़ी मात्रा में सृजन हुआ है। तुलसीराम की आत्मकथा' मुर्दहिया' एवं मणिकर्णिका पूर्वी उत्तर प्रदेश मेके ग्रामीण अंचल में शिक्षा के लिए जूझते एक दलित की मार्मिक अभिव्यक्ति है।' बेचैन 'की आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' में एक दलित बालक के बचपन के गले को बहुत ही बेरहमी से घोंटने का प्रयास किया गया है। दलित विमर्श स्त्री विमर्श को अपने साथ रखकर देखने की पैरवी करता है। हालांकि, कई महत्वपूर्ण स्त्री दलित रचनाकारों ने दलित समाज में स्त्री की खराब दशा को देखते हुए उसे 'दलितों में भी दलित' मानकर दलित स्त्रियों के अलग विचार को आगे बढ़ाने की मांग की है।

साहित्य में दलित विमर्श की धाराएं :-

साहित्य में दलित विमर्श की तीन धाराएं दिखाई देती है।

पहली :

दलित जातियों में जन्मे लेखक जो स्वानुभूति के आधार पर केवल दलितों द्वारा रचित दलित साहित्य को दलित साहित्य मानते हैं।

दूसरी :

दलित इतर लेखक जिन्होंने दलित जीवन के विषय में लिखा।

तीसरी :

वे मार्क्सवादी लेखक जो दलितों को सर्वहारा की स्थिति में देखते है।

प्रमुख दलित लेखक :-

हीरा डोम, बिहारी लाल हरित, ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, डॉक्टर धर्मवीर, जयप्रकाश कर्दम, सुशीला टाकभौरे, श्यौराज सिंह बेचौन, कंवल भारती, कुसुम वियोगी, कौशल्या बैसंत्री, सूरजपाल सिंह चौहान, मनोज सोनकर, डॉ सूर्य नारायण रणसुभे, कृष्णदत्त पालीवाल, राम पुनियानी, बद्री नारायण, राजदेव सिंह, मीरा गौतम, आदि प्रमुख दलित लेखक हैं।

दलित विमर्श के उपन्यास :-

रामजीलाल सहायक कृत 'बंधन मुक्ति 'को हिंदी का प्रथम दलित उपन्यास कहा जाता है। किंतु यह रचना अप्राप्त है। कालक्रम की दृष्टि से डी.पी. वरुण कृत 'अमर ज्योति' (1980) दूसरा दलित उपन्यास है किंतु उसे साहित्यिक मानदंडों पर स्तरीय उपन्यास नहीं माना जाता है। उपर्युक्त दोनों उपन्यासों पर विवाद के पश्चात अधिकतर चिंतक व विद्वान जयप्रकाश कर्दप कृत 'छप्पर' (1994) को प्रथम हिंदी दलित उपन्यास मानते हैं।

दलित उपन्यास एवं उपन्यासकार :-

जयप्रकाश कर्दम करुणा (1986), शमशान का रहस्य (1991), छप्पर (1994), डॉक्टर धर्मवीर : पहला खत (1991), देवेंद्र दीपक : संत रविदास की राम कहानी (2011), के. नाथ : गांव का कुआँ (2000) पलायन (2006), प्रेम कपाड़िया : माटी की सौगंध, मोहदास नैमिशराय 'जख्म हमारे' (2011), मुक्ति पर्व, वीरांगना झलकारी बाई (2003), महानायक बाबा साहब डॉक्टर अंबेडकर (2013), जगदीश चंद्र : यादो के पहाड़ (1966), धरती धन न अपना (1972), आधा पुल (1973), मुट्ठीभर कांकर, घास गोदाम (1985), नरक कुंड में वास (1994), जमीन अपनी तो थी (2001), अजय नावरिया : उधर के लोग (2009) कावेरी : मिस रमिया, विपिन बिहारी : हमलावर (2013), सुशीला टाकभौरे : नीला आकाश, शिकंजे का दर्द, तुम्हें बदलना ही होगा (2017)।

हिंदी दलित कहानी :-

दलित लेखक सतीश की कहानी वचनबद्ध मुक्ति स्मारिका का पत्रिका में 1975 में प्रकाशित हुई। ओम प्रकाश वाल्मीकि : पच्चीस चौका डेढ़ सौ (1993), सलाम (2000), घुसपैठिये (2003), प्रमोशन, दिनेश पाल जाटव उर्फ दिग्दर्शन, बेल की खाल, छतरी (2013), दयानंद बटोही : सुरंग (1995), कफन खोर, सूरजपाल सिंह चौहान : हैरी कब आएगा (1999), साजिश, छूत कर दिया, अहिल्या, टिल्लू का पोता, सुशीला टाकभौरे : सिलिया, टूटा वहम (1997), कुसुम वियोगी : चार इंच की कलम, अंतिम बयान, जयप्रकाश कर्दप : नो बार, अरविंद राही : दृष्टिकोण, प्रेम कपाड़िया : हरिजन, उमेश सिंह : पहली रात का अंत, कावेरी : द्रोणाचार्य एक नहीं (1996), रूपनारायण सोनकर : जहरीले जड़े (2005), मनोज सोनकर : जांच (2005), अनीता भारती : एक थी कोठे वाली तथा अन्य कहानियां (2012)।

दलित नाटक व उनके रचनाकार :-

स्वामी अछूतानंद हरिहर : राम राज्य न्याय (1926), मायानंद बलिदान (1926), परखपाद, बलि छलन, ज्योतिबा फूले : त्रिरत्न, रामेश्वर प्रसाद 'राम' : अछूतोद्धार (1926), मोहन दास नैमिशराय : अदालतनामा (1989), डेढ़ इंच मुस्कान, क्या मुझे खरीदोगे (1990), हैलो कामरेड, रघुवीर सिंह : इतिहास की पहली घटना, सुशीला टाकभौरे : नंगा सत्य, रंग और व्यंग्य।

दलित विमर्श : रचनाकार और रचनाएं :-

ओमप्रकाश वाल्मीकि – दलित साहित्य : अनुभव, संघर्ष और यथार्थ (2013), दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, डॉ. सूर्यनारायण – डॉ बाबासाहेब अंबेडकर, दलित चेतना की पहचान (2013), कृष्णदत्त पालीवाल –दलित साहित्य बुनियादी सरोकार, उत्तर आधुनिकतावाद और दलित साहित्य, मीरा गौतम–गुरु रविदास वाणी एवं महत्व, राजदेव सिंह–निर्गुण राम भक्त और दलित जातियां, श्यौराज सिंह बेचौन–सामाजिक न्याय और दलित साहित्य (2014), डॉ. धर्मवीर – डॉ आंबेडकर के प्रशासनिक विचार, कामसूत्र की संताने, तीन द्विज हिंदू स्त्रीलिंगों का चिंतन, प्रेमचंद : सामंत का मुंशी, चमार की बेटी रूपा, दलित चिंतन का विकास : अभिशप्त चिंतन कसे इतिहास चिंतन की ओर, उमाशंकर चौधरी– दलित विमर्श : कुछ मुद्दे कुछ सवाल, नितिन गायकवाड –दलित बचपन : वेदना का विस्फोट (1913), डॉ रामचंद्र –दलित साहित्य की विकास यात्रा (2013)

संदर्भ सूची :-

1. दलित साहित्य की भूमिका : कंवल भारती पृष्ठ संख्या, 67
2. http//www.bbc.com/hindi/entert
3. डॉ. बी. आर. अम्बेडकर, अनुवादक– आचार्य जुगल किशोर बौद्ध' जातिभेद का बिजनास, पृष्ठ, 31
4. दिलीप कोठारिया, दरारे, दलित अस्मिता, जनवरी मार्च 2015, पृष्ठ 59

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor 8.642

बोहल शोध मंजूषा
Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
HOD Hindi, Tantia University
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834

Gina Shodh SANGAM

A Peer Reviewed & Refereed International Research Journal
Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गीना शोध संस्थान भिवानी के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज भिवानी से छपवाकर कार्यालय 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से वितरित की।

ISSN 2321:8037